ISSN: 2249-2577

वर्ष 11 अंक 2
जुलाई-दिसंबर, 2019

विशेषांक :
गठबंधन की सरकार एवं प्रशासन

लोक प्रशासन

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली
की अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

संपादक
प्रो. एस. एन. मिश्र

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

अध्यक्ष

निदेशक, आई. आई. पी. ए.,
नई दिल्ली

सम्पादक

प्रो. एस. एन. मिश्र
नोएडा

सम्पादक मंडल

प्रो. के. के. पाण्डेय
आई. आई. पी. ए., नई दिल्ली

प्रो. अमिता सिंह
जे.एन.यू., नई दिल्ली

प्रो. श्रीप्रकाश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. प्रवीण कुमार
प्राचार्य, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली

डा. अशोक कुमार पाण्डेय
भूतपूर्व आई.ए.एस., नई दिल्ली

पाठ-संशोधक

स्नेहलता

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली–110002

Ykkd i’kkluu

vuØef.kdk

	i"B
lEikndh;	v
Yks[k	
गठबन्धन राजनीति की अवधारणा : भारतीय परिपेक्ष्य श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी	1
भारत में संविद सरकार एवं दलीय स्थिति बिन्दा कुमारी	7
भारत में गठबंधन की सरकार एवं स्थायित्व की समस्या शशि भूषण कुमार	18
वैचारिक प्रतिबद्धता और गठबंधन का स्थायित्व : भारतीय परिदृश्य राजेंद्र कुमार पांडेय	31
गठबंधन सरकारों की कमियाँ और नरेंद्र मोदी का योगदान गाँधीजी राय	42
भारत में गठबन्धन की राजनीति की रूपरेखा कौशल किशोर मिश्र	57
भारत में गठबन्धन की राजनीति : एक अवलोकन सुरेन्द्र कुमार	69
भारत की गठबन्धन सरकार में नौकरशाही का कार्यकरण मदन गोपाल सिन्हा	76
भारत में दलीय प्रणाली की गठबंधन सरकार में भूमिका एवं चुनौतियाँ उमेश कुमार	87
गठबन्धन की राजनीति की उपादेयता सत्यप्रकाश मणि त्रिपाठी	101

i"B

गठबन्धन का भारतीय राजनीति पर प्रभाव
मो0 ताहिर अंसारी 107

गठबंधन सरकार में नौकरशाही की भूमिका
निलांजना जैन 114

भारतीय लोकतंत्र और गठबंधन सरकारें
ममता मणि त्रिपाठी 125

भारत में गठबन्धन सरकारों की राजनीति : नूतन परिपेक्ष्य
अम्बुजेश कुमार मिश्र 131

गठबंधन की राजनीति : स्वरूप एवं संभावनाएँ (जनादेश 2019 के संदर्भ में)
रजनीकांत तिवारी 139

गठबंधन राजनीति में भारतीय प्रशासन का बदलता स्वरूप
प्रवीण कुमार झा 148

भारत में गठबंधन सरकारें : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ
शीला कुमारी 157

भारतीय गठबंधन राजनीति का विकासात्मक स्वरूप
सच्चिदानन्द मिश्र 175

गठबन्धन सरकार की कमियाँः एक अध्ययन
गुंजन त्रिपाठी 184

गठबन्धन के दौर में स्थायी एवं अस्थायी सरकारों का विवेचनात्मक अध्ययन
शैलेश कुमार राम 189

भारत में गठबन्धन की राजनीति : ऐतिहासिक परिपेक्ष्य
ब्रजेश कुमार मिश्र 198

भारत में गठबन्धन की राजनीति : अतीत, वर्तमान, भविष्य
महेश कुमार सिंह 205

भारतीय प्रशासन में गठबन्धन सरकारों की भूमिका
कमल कुमार श्रीवास्तव 212

भारत में गठबंधन सरकारों का दौरः एक विवेचन
मनु सिंह व जनक सिंह मीना 225

गठबन्धन सरकार : समस्यायें एवं समाधान
स्निग्धा त्रिपाठी 236

गठबंधन राजनीति और स्थायित्व की समस्या
कमलेश नारायण मिश्र एवं अंजुलता मिश्र 242

बिहार के सन्दर्भ में गठबन्धन सरकार एवं प्रशासन
कुमारी सरोज एवं अनिल कुमार ओझा 246

गठबंधन की सरकार एवं भारतीय राजनीति
सुमित्रा देवी शर्मा 253

गठबन्धन की सरकार व नौकरशाही : उभरते हुए आयाम
कृष्ण कुमार एवं ममता रानी 266

गठबंधन सरकार की स्थिति
बिपिन दूबे 276

भारतीय संघवाद का रूप एवं भारतीय संघवाद पर साझा सरकारों का प्रभाव
अंशु मोहन 283

पुस्तक समीक्षाः उत्तर-पूर्व भारत का इतिहास–राजेश वर्मा
समीक्षकः वीरेन्द्र परमार 290

गठबंधन की सरकार एंव प्रशासन : ग्रन्थ सूची
मीना मिश्रा 292

y[kd

प्रो. श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी – आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, अधिष्ठाता, कला संकाय, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. बिन्दा कुमारी – सह-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, वीमेन्स कॉलेज, समस्तीपुर, बिहार।

डॉ. शशि भूषण कुमार – सह-आचार्य, स्नातकोत्तर, राजनीति विज्ञान विभाग, आर. एन. कॉलेज, हाजीपुर, वैशाली, बिहार।

डॉ. राजेंद्र कुमार पांडेय् – सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

प्रो० गांधीजी राय – सेवा निवृत्त आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुवंर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. कौशल किशोर मिश्र – आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार – सह-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, बी. एस. कॉलेज, दानापुर, पटना, बिहार।

डॉ. मदन गोपाल सिन्हा – सह-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, हिन्दू पी. जी. कॉलेज, जमानियां, गाजीपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. उमेश कुमार – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. सत्यप्रकाश मणि त्रिपाठी – अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, संत विनोबा पी. जी. कॉलेज, देवरिया, उत्तर प्रदेश।

मो. ताहिर अंसारी – शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. निलांजना जैन – सह-आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

डॉ. ममता मणि त्रिपाठी – सह-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, बुद्ध स्नातकोतर, महाविद्यालय, कुशीनगर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. अम्बुजेश कुमार मिश्र – शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रजनीकांत तिवारी – सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय इन्टर कॉलेज, धनवती, सीवान, बिहार।

डॉ. प्रवीण कुमार झा – सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

शीला कुमारी – शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार।

डॉ. सच्चिदानंद मिश्र – सेवा निवृत्त प्राचार्य, एस.डी.पी.जी. कॉलेज मठ-लार (देवरिया), लार, उत्तर प्रदेश।

डॉ. गुंजन त्रिपाठी – सह-आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, ए. एम. एड., जे. एन. के. गर्ल्स पी. जी. कॉलेज, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. शैलेश कुमार राम – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.।

डॉ. ब्रजेश कुमार मिश्र – सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, अखिल भारतीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानापार, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

श्री महेश कुमार सिंह – शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. कमल कुमार श्रीवास्तव – सह-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मनु सिंह – प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)।

डॉ. जनक सिंह मीना – महासचिव, नेपासी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)।

कु. स्निग्धा त्रिपाठी – शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. कमलेश नारायण मिश्र – सह-आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, म. मो. मा. पी. जी. कॉलेज भाटपारानी, देवरिया, उत्तर प्रदेश।

डॉ. अंजुलता मिश्र – सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, अवध सेन्टर फॉर वीमेन कॉलेज, संत कबीर नगर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. सरोज कुमारी – सह-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, एम.डी.डी.एम. कॉलेज, मुजफ्फरपुर, बिहार।

डॉ. अनिल कुमार ओझा – आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

डॉ. सुमित्रा देवी शर्मा – पी.एच.डी., छात्रा, लोक प्रशासन विषय, आई.सी.एस.एस. आर. जगतपुरा जयपुर, राजस्थान।

डॉ. कृष्ण कुमार – सहायक प्राध्यापक, जी.एम.एन. कॉलेज, अम्बाला, छावनी, हरियाणा।

डॉ. ममता रानी – सहायक प्राध्यापिका, बाबू अनंतराम जनता कॉलेज, कौल, हरियाणा।

डॉ. बिपिन दूबे – प्रवक्ता, राजनीति शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय महाविद्यालय, खजूरिया बरौली, (गोपालगंज), बिहार।

अंशु मोहन – वरिष्ठ शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.।

श्रीमति मीना मिश्रा – पेशेवर-सहायक (पुस्तकालय), भारतीय लोक प्रशासन संस्थान आई.पी. एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली।

lEikndh;

सरकार के संचालन में राजनैतिक वचनबद्धता बहुत ही महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। यह अवधारणा गठबंधन की सरकार में और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ राजनीतिक विभिन्नताएं बहुत हैं। इनमें बहुत समस्याएं हैं जिनका एकमात्र समाधान गठबंधन की सरकार है। भारत के बहुलवादी समाज में जटिलता, विभिन्न वर्गों में मत विभिन्न्ता, भाषाई विभिन्न्ता, ग्रामीण क्षेत्रों एवं नगरीय आबादी में विभिन्नता आदि प्रमुख हैं। ये गठबंधन की सरकार में अस्थायित्व की समस्या पैदा करते हैं। राजनैतिक वचनबद्धता के सम्बन्ध में बहुत सारे सिद्धांत हैं। जिनका प्रतिपादन राजनैतिक बाध्यता के लिए किया गया है। मशहूर चिंतक हाब्स लौक एवं रूसों ने अपने सिद्धांत में वचनबद्धता की व्याख्या की है।

जैसा कि हम जानते हैं कि गठबंधन की सरकार तब बनती है जब किसी दल का पूर्ण बहुमत नहीं होता। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध एवं इक्कसवीं सदी के पूर्वाद्ध में यह समस्या और भी बढ़ती दिखाई पड़ी है। गठबंधन की सरकार का स्थायित्व बहुत से नियामकों पर निर्भर है जैसे; दलीय वचनबद्धता, विधायकों एवं सासंदों का जनता के प्रति आदर आदि गठबंधन की सरकार के स्थायित्व के लिए बहुत आवश्यक है।

गठबंधन की सरकार में प्रशासन/नौकरशाही की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में नौकरशाही की तानाशाही प्रवृत्तियां और बढ़ जाती हैं जोकि सरकार के स्थायित्व के लिए हानिकारक हो सकती हैं। उसी तरह सरकार को चलाने के लिए जनता की जागरूकता भी अति आवश्यक है क्योंकि जनता की जागरूकता ही सांसदों और विधायकों पर दबाव बनाये रखने में सक्षम है।

इस अंक में लेखकों ने विभिन्न संभावित तथ्यों पर जो गठबंधन की सरकार एवं प्रशासन के आधार पर खरे उतरते हैं उन पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

प्रथम लेख में श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी ने गठबन्धन सरकार किसे कहतें है? इन सरकारों के बनने के क्या कारण होते हैं? इनका निर्माण कैसे होता है? और गठबंधन की स्थिरता और अस्थिरता की स्थिति कैसे उत्पन्न होती है? जैसे प्रश्नों के सिद्धान्त और व्यवहार का भारतीय परिपेक्ष्य में विश्लेषण किया है, क्योंकि इसका परिणाम अब राज्यों पर भी दिखने लगा है इसीलिए ऐसा कोई भी दल नहीं जो अपने दम पर सरकार बना सके।

भारत में संविद सरकार का बनना राजनैतिक वास्तविकता बन गई है। यह दलीय स्थिति पर निर्भर करती है। इसकी संभावना बहुदलीय प्रणाली में अधिक होती है क्योंकि बहुदलीय प्रणाली के कारण जब कोई दल आम चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता तो संविद सरकार बनाना विवशता हो जाती है। इसके बारे में *बिन्दा कुमारी* ने अपने आलेख में पूर्ण स्पष्टीकरण द्वारा प्रस्तुत किया है।

शशिभूषण कुमार ने अध्ययन करके अपने लेख में स्पष्ट किया है कि भारत की संसदीय शासन व्यवस्था एक दलीय आधिपत्य वाली व्यवस्था से निकलकर द्वि-गठबंधनीय पद्धति को आत्मसात कर चुकी है। 1967 के बाद कुछ वर्षों को छोड़कर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में एकदलीय की बजाय गठबंधन प्रणाली का दौर शुरू हो गया। 30 वर्षों बाद 2014 में किसी एक दल (भाजपा) को केन्द्र में स्पष्ट बहुमत मिला। इसी पद्धति का अनुसरण कर यह सफलतापूर्वक कार्यकाल को पूरा कर चुकी है।

राजेन्द्र कुमार पांडेय ने "वैचारिक, प्रतिबद्धता और गठबंधन का स्थायित्वः भारतीय परिदृश्य" में भारत में राजनैतिक दलों की वैचारिक स्पष्टता और उसके अनुरूप विविध राजनीतिक गठबंधनों के स्थायित्व का साररूप विश्लेषण प्रस्तुत किया है, क्योंकि वर्तमान समय में भारत में गठबंधन की राजनीति एक निर्णायक दौर में पहुंच गई सी प्रतीत होती है।

2004 एवं 2009 की यूपीए सरकारों के नकारात्मक क्रियाकलापों ने 2014 के चुनाव में नरेंद्र मोदी को स्पष्ट बहुमत से जीताया। उनकी सरकार के पांच सालों के अच्छे प्रदर्शनों से 17 वीं लोकसभा चुनाव में उनकी प्रचंड जीत से यह प्रमाणित होता है कि वे नये भारत के निर्माण की ओर उत्प्रेरित हैं तथा गठबंधन की राजनीति का दौर भी समाप्त हो जायेगा। *गांधीजी राय* ने अपने लेख में गठबन्धन सरकारों की कमियां और नरेन्द्र मोदी के योगदान पर रोशनी डाली है।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था लोकतन्त्र पर आधारित है। आज गठबंधन के दौर में दलीय व्यवस्था और संसदीय लोकतन्त्र में परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियों में पुनर्विचार की अत्यंत आवश्यकता है। भारतीय दलीय व्यवस्था का स्वरूप बहुदलीय होते हुए भी लम्बे समय तक एक दल की प्रधानता का रहा है परन्तु एक ऐसा दौर भी आया जो अकल्पनीय था वह था 70 के दशक का दौर। *कौशल किशोर मिश्र* ने अपने लेख में गठबन्धन की राजनीति की रूपरेखा का विवेचन किया है।

2014 से पूर्व गठबंधन सरकारें घटक दलों के समर्थन से ही चलती थीं। समर्थन वापस लेते ही सरकारें गिर जाती थीं। अतः 2014 एवं 2019 की सरकारें सही मायने में गठबंधन सरकार नही हैं क्योंकि ये सरकारें बहुमत दल के नेतृत्व में बनीं इसलिये हम ये उम्मीद करते हैं कि यह सरकारें देश को तरक्की के मार्ग पर ले जायेगीं। इसी उम्मीद से *सुरेंद्र कुमार* ने अपना लेख प्रस्तुत किया है।

एक दल की सरकार हो या गठबंधन की सैद्धान्तिक दृष्टि से नौकरशाही की भूमिका एक समान होगी लेकिन व्यवहार में कुछ द्वन्द्व देखने को मिलते हैं। *मदन गोपाल सिन्हा* ने अपने लेख में भारत में गठबन्धन सरकार में नौकरशाही का कार्यकरण किस प्रकार है? और कैसा होना चाहिये? इसका वर्णन किया है कि कैसे उन्हें मंत्रियों से लिखित आदेश प्राप्त करके ही कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहिये क्योंकि मंत्रियों और नौकरशाहों दोनों को सोचना होगा कि समाज और राष्ट्र अधिक महत्वपूर्ण है और अंक उत्थान के लिये ही मंत्रिपरिषद् और नौकरशाही का अस्तित्व है।

गठबंधन की राजनीति ने भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। दलीय प्रणाली की गठबंधन सरकार में क्या भूमिका एवं चुनौतियाँ हैं। यह *उमेश कुमार* ने अपने लेख में बताने की सफल कोशिश की है, कि किस तरह पिछले दो दशकों की राजनीतिक परिघटनाओं का विश्लेषण करें तो दृष्टिगोचर होता है कि गठबंधन की वजह से क्षेत्र स्तरीय दलों की भूमिका में काफी वृद्धि हुई है।

राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के विचारधारात्मक प्रतिबद्धता का अभाव, सशक्त विकल्प की खोज, भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक अवमूल्यन, संतुलित विकास तथा क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति के कारण भारतीय राजनीति में गठबन्धन सरकारों का चलन हुआ परन्तु गठबन्धन में शामिल घटक दलों के क्षेत्रीय हितों, स्वार्थपूर्ण मांगें, अवसरवादिता, तथा अन्तर्विरोधों के कारण कई समस्याएं उत्पन्न हुईं। यही *सत्यप्रकाश मणि त्रिपाठी* ने गठबन्धन की राजनीति की उपादेयता का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

गठबंधन की राजनीति ने भारतीय शासन व्यवस्था को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरीके से प्रभावित किया है। समकालीन राजनीति में गठबंधन इस प्रकार से घुल-मिल गया है कि गठबंधन को अलग कर भारतीय राजनीति के विषय में सोच पाना असंभव है। इसका क्या महत्व है। इसका विश्लेषण *मो. ताहिर अंसारी* ने अपने लेख में बखूबी किया है।

गठबंधन की सरकार में प्रशासन/नौकरशाही की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसी स्थिति में नौकरशाही की तानाशाही प्रवृत्तियाँ और बढ़ जाती हैं, जो कि सरकार के स्थायित्व के लिए हानिकारक हो सकती हैं। संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री व मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यह *निलांजना जैन* ने अपने लेख में प्रभावकारी ढंग से बताने का प्रयास किया है।

ममता मणि त्रिपाठी ने अपने लेख में गठबंधन सरकार के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। जैसे कि गठबंधन सरकार से क्या अभिप्रार्य है? क्या ये लोकतंत्र के लिए अनुकूल है? और यह कहां तक सफल रही है? यदि नहीं तो इसकी सफलता हेतु क्या सुझाव हैं? तत्पश्चात हम इस निर्णय पर पहुंचेगें कि यह लोकतंत्र के लिये उपचुनाव हैं या नहीं।

भारत में गठबंधन की राजनीति का विकास हो रहा है। इसका तुलनात्मक अध्ययन करें तो 1989 से 2019 के चुनाव एवं सरकार की कार्यशीलता की दृष्टि से गठबंधन परिपक्व दिख रहा है। इसकी सफलता हेतु व्यक्तित्व की जगह विचारधारा को प्रतिष्ठित करना होगा। अवसरवादिता एवं एक दल की तानाशाही की प्रवृत्ति को रोकना होगा। उपरोक्त सुझावों के आधार पर ही भारतीय राजनीति में स्वस्थ व स्थायी सरकारों का गठन होगा। यह अपने लेख में *अम्बुजेश कुमार मिश्र* ने कहने का प्रयास किया है।

विगत् दो आम चुनावों (2014, 2019) में जनता ने एक राष्ट्रीय दल को सशक्त

आदेश देकर यह संदेश दे दिया कि देश के विकल्प के लिये स्थायी सरकार का होना आवश्यक है और हमें इस सच्चाई को भी स्वीकारना होगा कि देश की राजनीति गठबंधन के ऐसे दौर में पहुंच गई है जहां से इसकी वापसी असंभव लगती है, इसलिये *रजनीकांत तिवारी* ने अपने लेख में इसके स्वरूप, संभावनायें एवं चुनौतियों के बारे में बताया है ताकि देश के लोकतंत्र को ज्यादा लाभ हो।

आज भारतीय राजनीति में गठबन्धन को लोकतंत्र के लिये खतरा नहीं समझा जाता, बल्कि उसे देश की परिस्थितियों में लोकतंत्र के स्वाभाविक बदलाव के रूप में देखा जा रहा है। गठबन्धन सरकारों में सामाजिक वर्गों तथा क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका भारतीय लोकतंत्र के लिये अभिशाप न होकर उनकी मजबूती और राष्ट्रीय एकता के लिये आवश्यक है। यह *शीला कुमारी* ने बखूबी दर्शाया है।

प्रवीण कुमार झा ने अपने लेख को चार भागों में बांटा है। लेख के पहले भाग में भारत में दलीय प्रणाली के विकास को इंगित किया गया है। दूसरे हिस्से में नब्बे के बाद के उसके विकास को देखा गया है। तीसरे हिस्से में समाजवैज्ञानिक सुहास पलष्किर द्वारा प्रस्तुत *'सेकेंड डोमिनेंट पार्टी सिस्टम'* की संकल्पना को प्रस्तुत करते हुए गठबंधन राजनीति में उभर रहे इस प्रतिमान पर विचार किया है। लेख का चौथा हिस्सा वर्तमान सरकार की *मैक्सिमम गवर्नेंस मिनिमम गवरमेंट* व भारतीय प्रशासन के प्रति अपनाये गये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है।

भारत की गठबंधन की राजनीति भारत की बहुलवादी समाज की प्रतिनिधियात्मक अभिव्यक्ति है 1989 के संसदीय निर्वाचन में दलीय गठबन्धन का जो स्वरूप विकसित हुआ उससे स्पष्ट होने लगा कि राजनीतिक दल चाहें वे क्षेत्रीय हों या राष्ट्रीय गठबन्धन को आवश्यक मानने लगे हैं इसीलिये 2014 व 2019 के संसदीय निर्वाचन में अधिक सीटें प्राप्त करने के बावजूद गठबन्धन की ही सरकार बनाई गई। इसका विश्लेषण *सच्चिदानंद मिश्र* ने अपने लेख में किया है।

तीन दशकों से भारत में गठबंधन सरकारें बनती रहीं हैं तथा गठबन्धन की राजनीति में इस बात की सदैव समस्या रही है कि किसी भी विषय पर आम सहमति कैसे बनायी जाये क्योंकि यह अलग-अलग सिद्धान्तों वाले दलों पर आधारित होती हैं। इसी कारण यह स्थिति बननी लाज़मी है। *गुंजन त्रिपाठी* ने अपने लेख में गठबन्धन सरकारों का राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का विश्लेषण किया है।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था लोकतंत्र पर आधारित है। जहां पर शासन व्यवस्था जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों के द्वारा की जाती है। यहां *शैलेश कुमार राम* ने गठबन्धन के दौर में स्थायी व अस्थायी सरकारों के शासन का विवेचनात्मक अध्ययन किया है, जो भारतीय राजनीति में स्वतंत्रता के लगभग 30 वर्ष बाद राजनीतिक रूप से दूसरी क्रांति की ओर ले गया है। जिसने भारतीय राजनीति की दशा एवं दिशा ही बदलकर रख दी। यही वह दौर था जहां से केन्द्र में गैर-कांग्रेसी सरकार का उद्भव हुआ।

प्रस्तुत लेख में *ब्रजेश कुमार मिश्र* ने 1952 से लेकर 2019 तक बनने वाली गठबंधन सरकारों का संक्षिप्त में ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उल्लेखनीय बात यह है कि 2014 और 2019 में भाजपा पूर्ण बहुमत प्राप्त करने के बावजूद भी गठबंधन धर्म को निभा रही है। इससे यह विदित होता है कि भारतीय राजनीति में गठबंधन अपरिहार्य बन चुका है।

भारत में शनैः शनैः गठबंधन राजनीति की संस्कृति परिपक्व होती दिख रही है। इसमें दोष ढूंढने की बजाये इसमें आई विकृतियों को दूर करना होगा। राजनीतिक दलों को स्वहित का त्यागकर राष्ट्र हित को प्रमुखता देकर स्थायी और मजबूत सरकार के निर्माण हेतु प्रयत्न करना होगा। जिससे भविष्य में सशक्त भारत का निर्माण किया जा सके। इसका विवेचन *महेश कुमार सिंह* ने अपने लेख में किया है।

गठबंधन सरकार में मिश्रित मंत्रिमंडल होता है, और इस मंत्रिमंडल में जो घटक राजनीतिक दल होते हैं वह सरकार बनाने के उद्देश्य से संगठित होने के बाद भी अपने पृथक दलीय अस्तित्व को बनाये रखते हैं, अर्थात विभिन्न राजनैतिक दलों का विलय नहीं होता। किसी भी समय वे समर्थन वापस ले पृथक हो सकतें हैं। प्रशासन में गठबंधन की भूमिका किस प्रकार की होनी चाहिए। इसका विश्लेषण *कमल कुमार श्रीवास्तव* ने अपने लेख में अब तक की सभी लोकसभा चुनावों के माध्यम से किया है।

भारत में गठबंधन सरकारों का दौर बहुत पहले से ही शुरू हुआ है परन्तु इसकी कार्यप्रणाली तथा लोकतांत्रिक मूल्यों में समय के साथ परिवर्तन आया है। 1977 से अबतक दस बार केन्द्र में संविद्-सरकारें बन चुकी हैं। यहां कुर्सी के लिए समझौते किये जाते हैं सुशासन व स्थिर शासन के लिए नहीं। संविद सरकारों का 1977 से 2019 तक के सफर का विस्तार *जनक सिंह मीना व मनु सिंह* ने अपने लेख में किया है।

गठबंधन की सरकार वर्तमान राजनीति की आवश्यकता बन गई है तथा गठबंधन सरकार के समक्ष उत्पन्न होने वाली प्रमुख समस्याओं के समाधान के लिये सुझाव में यह कहा जा सकता है कि इसकी सफलता के लिये हमें अपने देश की राजनीतिक परिस्थितियों और राजनैतिक संस्कृति के अनुरूप मार्ग खोजना होगा तथा घटक दलों की एकमात्र सत्ता में भागीदारी न होकर प्रशासन में गुणवत्ता सुनिश्चित करनी होगी। इसका विवरण *स्निग्धा त्रिपाठी* ने प्रस्तुत किया है।

गठबंधन की सरकार में स्थायित्व की समस्या बनी रहती है। हम सब भली-भांति जानते हैं कि चुनावी सफलता का लक्ष्य लेकर चलने वाले राजनीतिक दलों के लिये पहचान एवं विचारधारा का कोई महत्व नहीं रह गया है। हर दल को यह अपनी आकांक्षाओं की आपूर्तियों का जरिया दिखता है। इसका *कमलेश नारायण मिश्र* व *अंजुलता मिश्र* ने अपने लेख में विवेचन किया है।

कुमारी सरोज व *अनिल कुमार ओझा* ने बिहार के संदर्भ में गठबन्धन सरकार एवं प्रशासन की व्याख्या की है कि किस प्रकार गठबंधन की राजनीति का प्रभाव

प्रशासन पर पड़ता है, क्योंकि बिहार में वर्ष 2000 में नीतीश कुमार की पहली सरकार समता पार्टी, जनता दल (यू) तथा भाजपा की गठबन्धन सरकार थी जिसने अपेक्षति बहुमत न जुटा पाने के कारण इस्तीफा दिया था। निःसन्देह इसका प्रभाव प्रशासन पर पड़ेगा।

भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था के विद्वानों तथा राजनीतिक दलों के नेताओं के बीच गठबन्धन सरकार के गठन और कार्यकरण की समस्त प्रक्रिया पर गंभीर विचार-विमर्श किया जाना चाहिये तथा गठबन्धन की सरकार की राजनीति से उत्पन्न, राजनीतिक अस्थायित्व को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सके जिससे व्यक्तिगत हितों को त्यागकर सामाजिक हितों को महत्व दें और भ्रष्टाचार को खत्म करने का प्रयास करें। इसी का विश्लेषण *सुमित्रा देवी शर्मा* ने करने का प्रयास किया है।

कृष्ण कुमार एवं ममता रानी ने अपने शोधपत्र में यह विश्लेषण करने का प्रयास किया है कि कौन-2 से कारक व शक्तियाँ गठबंधन सरकार की कार्यप्रणाली को प्रभावित करती हैं और इसका नौकरशाही के उत्तरदायित्व, प्रभावशीलता व जवाबदेहिता पर क्या प्रभाव पड़ता है। जिसका शासन प्रणाली व संवैधानिक सिद्धान्तों पर व्यापक असर दिखाई देता है।

बिपिन दूबे ने अपने लेख से गठबंधन सरकारों की शुरूआत, उनकी प्रवृत्ति तथा कार्य करने की रूपरेखा का अध्ययन बिहार सरकार के संदर्भ में किया है कि किस प्रकार गठबंधन सरकार की नाकामी सरकार के विकृत रूप को सामने लाती है परन्तु इस से बचना भी संभव नहीं है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि एक दल या दो दल के लोकतंत्र का कोई स्थान नहीं है।

अंशुमोहन ने अपने लेख में 1950 में भारतीय संविधान के क्रियान्वित होते ही भारतीय संघवाद के स्वरूप जिसके विषय में भारतीय एंव पाश्चात्य विद्धानों की मिश्रित प्रतिक्रिया रही थी। उसके संघात्मक गुण और भारतीय संघवाद पर गठबंधन सरकार का प्रभाव चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक इसका अध्ययन भिन्न-2 सरकारों के माध्यम से किया है।

इस विशेषांक में गठबन्धन की सरकार एवं प्रशासन का सांगोपांग विचार हुआ है। पर्याप्त विश्लेषण के उपरांत सबसे महत्वपूर्ण यही प्रश्न उभरता है कि प्रशासन में गठबन्धन सरकारें किस प्रकार अपनी भूमिका निभाती हैं। चाहे वह नकारात्मक हो या सकारात्मक? तथा सुशासन में यह किस प्रकार सफल रहीं।

इस विशेषांक के संपादन में हम लेखकों के अभारी हैं। उन्होंने अपने प्रबुद्ध लेखों का इस विशेषांक में योगदान दिया। श्रीमती स्नेहलता के अथक, सक्रिय निष्पादन के लिये सधन्यवाद।

& lkind

गठबन्धन राजनीति की अवधारणा : भारतीय परिपेक्ष्य

श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी

lkjk'k% *स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में प्रथम आम चुनाव 1952 से लेकर 1967 तक एक ही दल, कांग्रेस की सरकार थी किन्तु इसके बाद गठबन्धन सरकारों का युग प्रारम्भ हो गया। विभिन्न राज्यों में गठबन्धन सरकारें बनीं। केन्द्र में 1977 से 1980 तक जनता पार्टी की सरकार, गठबन्धन का ही परिणाम थी। पुनः 1989 से 2014 तक लगातार केन्द्रीय स्तर पर गठबन्धन सरकारें बनीं आज भी बिहार, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों में संविद सरकारें हैं। सम्प्रति भारत में गठबन्धन सरकारों का युग यथावत है। प्रस्तुत शोध पत्र में गठबन्धन सरकार किसे कहते हैं, इन सरकारों के बनने के क्या कारण होते हैं, इनका निर्माण कैसे होता है और गठबन्धन की स्थिरता और अस्थिरता की स्थिति कैसे उत्पन्न होती है, जैसे प्रश्नों के सिद्धान्त और व्यवहार का भारतीय परिपेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है।*

प्रस्तावना

विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र भारत में संसदात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् पहले दो दशकों पर अगर दृष्टिपात किया जाये तो निर्विवाद रूप से केन्द्र और आधे से अधिक राज्यों में एक ही पार्टी (कांग्रेस) की ही सरकार रही है। इसे देखते हुए रजनी कोठारी ने इस काल को 'कांग्रेस सिस्टम' नाम दिया (कोठारी, 1964)। 1967 में हुए आम चुनाव के पश्चात् केन्द्र में गठबन्धन का युग शुरू हुआ। स्थूल रूप से गठबन्धन का अर्थ है, दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों की मिली-जुली सरकार। गठबन्धन शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Coalition' से बना है, जो लैटिन भाषा के ''कोलेशियों'' से निष्पन हुआ है, जिसका अर्थ होता है एक साथ जाना, अथवा एक साथ उगना या मिलना। इंग्लिश शब्दकोश में विभिन्न दलों व्यक्तियों या राज्यों को स्थाई रूप से एक में विलीन हुए बिना किसी संयुक्त कार्य के लिए किया गया समझौता, गठबन्धन कहलाता है (ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी)।

गठबन्धन सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों के संयुक्त होने की प्रक्रिया है किन्तु इस स्थिति का विशुद्ध संघर्ष या विशुद्ध सहयोग की स्थिति में बन पाना असंभव है। संघर्ष की स्थिति जहाँ गठबन्धन में बाधक होती है, वही सहयोग की स्थिति में, गठबन्धन का स्वरूप ही परिवर्तित हो जाता है। कदाचित इसीलिए विलयम ए. गेम्सन ने कहा है कि गठबन्धन का निर्माण तभी सम्भव है, जब संघर्ष और सामान्य हित साथ-साथ विद्यमान हों और दोनों साथ-साथ चुने जाने वाले मार्ग का निर्धारण करे। इस प्रकार से गठबन्धन का अर्थ दो या दो से अधिक इकाइयों द्वारा मिश्रित प्रेरणा की स्थिति में किसी निर्णय को प्रभावित करने के उद्देश्य से साधनों के सम्मिलित प्रयोग से होता है।

दो या दो से अधिक दल संयुक्त रूप से जब मिलते हैं और सरकार का गठन करते हैं तो उसे हम गठबन्धन सरकार कहते हैं। यद्यपि अलग-अलग ये दल अल्पमत में होते हैं, तथापि संयुक्त होने पर इन्हें बहुमत प्राप्त हो जाता है और भारतीय संविधान उन्हें सत्ता प्राप्ति का अधिकार प्रदान कर देता है। भारतीय परिपेक्ष्य में दो तरह की स्थिति विद्यमान रही है एक अन्दर से समर्थन और दूसरे बाहर से समर्थन। दोनों ही स्थितियों में व्यवस्थापिका में सत्तारूढ़ दल का बहुमत सैद्धान्तिक तौर पर बना रहता है। यथा– 1989 की वी.पी. सिंह सरकार, 1990 की चन्द्रशेखर सिंह की सरकार और 1991 की नरसिम्हा राव की सरकार बनी तो जरूर परन्तु ये सरकारें अल्पमत में थी। इसी तरह 1996 में देवगौड़ा, 1997 में आई.के. गुजराल, 1998, 1999 में वाजपेयी सरकार तथा 2004 में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली सरकार अन्दर से दिये जाने वाले समर्थन पर बनी थीं।

साधारणतया गठबन्धन तीन कारणों से बनता है, (इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइसेज़, 1963) –

1. बहुदलीय व्यवस्था के अन्तर्गत संसद के निम्न सदन में एक दल को स्पष्ट बहुमत मिलने की स्थिति न हो।
2. द्विदलीय व्यवस्था में दोनों दलों के मध्य सन्तुलन हों और एक दल किसी एक छोटे से गुट के साथ मिलकर सत्ता प्राप्ति का इच्छुक हो।
3. राष्ट्रीय आपात की स्थिति में जब साधारणतया सभी शक्तियाँ सामान्य सुरक्षा की दृष्टि से एक ही दिशा में कार्य करने को तत्पर हों।

भारत में पहले कारण से ही गठबन्धन निष्पादित होता है। भारत में गठबन्धन सरकारों का वर्गीकरण निम्नांकित आधार पर किया जा सकता है –

1. संख्या के आधार पर
2. सिद्धान्त अथवा विचारधारा के आधार पर
3. कार्यक्रम के आधार पर

4. समय अवधि अथवा चुनाव समझौते के आधार पर
5. सदन में स्थिति के आधार पर

उपरोक्त वर्गीकरण के पुनर्वर्गीकरण और उसके उदाहरण को तालिका एक के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

rkfydk&1

Ø-l-	oxhdj.k dk vk/kkj	xBcU/ku ljdkj dk mi oxhdj.k
1	संख्या	संख्या के आधार पर सरकारों को पुनः दो उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है – 1. द्विदलीय गठबन्धन और 2. बहुदलीय गठबन्धन। केरल में 1954, उड़ीसा में 1959, 1967, पंजाब में 1970 और 1997 तथा उत्तर प्रदेश में 90 के दशक में बनी सरकारें, महाराष्ट्र और बिहार की वर्तमान सरकार इत्यादि द्विदलीय गठबन्धन सरकार के उदाहरण हैं। NDA और UPA की सरकारें बहुदलीय गठबन्धन का उदाहरण है।
2	विचारधारा	विचारधारा की समानता तथा सिद्धान्त विहिन गठबन्धन विचारधारा के आधार पर बनने वाले गठबन्धन की सरकारों का उपवर्गीकरण है।
3	कार्यक्रम	कार्यक्रम के आधार पर गठबन्धन की सरकारों का दो उपवर्गीकरण है – 1. निर्धारित कार्यक्रम पर आधारित गठबन्धन और 2. बिना कार्यक्रम के गठबन्धन। NDA सरकार कार्यक्रम पर आधारित गठबन्धन का उदाहरण है और उत्तर प्रदेश में BJP और BSP का गठबन्धन कार्यक्रम विहीन गठबन्धन का उदाहरण है।
4	समयावधि	समयावधि को दो उपवर्गों में बाँट सकते हैं – चुनाव पूर्व और चुनाव पश्चात्।
5	सदन में स्थिति	इसको भी दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है – 1. बहुमत प्राप्त गठबन्धन और 2. अल्पमत गठबन्धन।

भारत की केन्द्रीय राजनीति में गठबन्धन पिछले दशक से इस प्रकार से समाहित हो गया है कि वर्तमान केन्द्रीय नेतृत्व के पूर्ण बहुमत के बावजूद शिवसेना, अकालीदल और लोजपा, अपना दल, और जदयू जैसी क्षेत्रीय दलों को भी छोड़ नहीं पाया हैं। गठबन्धन के सन्दर्भ में गठबन्धन का निर्माण कैसे होता है, गठबन्धन कैसे बना रहता है? और उसमें क्यों दरार पड़ती है? जैसे प्रश्न उठने स्वाभाविक है।

ग्रेनिंग्स ने गठबन्धन के लिए चार तत्वों को महत्वपूर्ण माना है –

1. स्थिति
2. अनुकूलता
3. प्रेरणा
4. अन्तःक्रिया

जिन देशों में द्विदलीय व्यवस्था होती है, वहाँ आपातकाल को छोड़कर के किसी

भी स्थिति में गठबन्धन होना असंभव है। अधिकांशतः बहुदलीय व्यवस्था में ही गठबन्धन सरकारें बनती हैं। भारत में यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात् शुरूआती दो दशकों में केन्द्र और बहुसंख्यक राज्यों में कांग्रेस का बोलबाला रहा किन्तु फिर आगे चलकर के 1967 के बाद केन्द्र और राज्यों में गठबन्धन का दौर शुरू हो गया।

अनुकूलता के सन्दर्भ में ग्रोनिंग्स ने यह कहा है कि वह प्रवृत्ति जो गठबन्धन निर्माण को बढ़ाती है, अनुकूलता कहलाती है। इस सन्दर्भ में तीन तरह के सिद्धान्त निर्मित हो सकते हैं –

1. एक तरह की विचारधारा वाले दलों के गठबन्धन बनने की संभावना अधिक होती है। जैसे–भाजपा और शिवसेना दोनों दक्षिणपंथी दल हैं। अतः इनके विचार एक समान होने की वजह से इनके बीच गठबन्धन होने की संभावना अधिक है।
2. उदार विचार वाले दलों के मध्य गठबन्धन होने की संभावना अधिक होती है।
3. अवसरवादिता का सिद्धान्त है, इसमें सामान्यतया क्षेत्रीय दल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जैसे उत्तर प्रदेश में बसपा और सपा का गठबन्धन।

गठबन्धन निर्माण में प्रेरणा भी प्रभावशाली तत्व होता है। इसमें राजनीतिक दल गठबन्धन के लिए दो प्रकार से प्रेरित हो सकते हैं –

1. सत्ता का लाभ प्राप्त करना, और
2. अपने अस्तित्व को बनाए रखना

प्रत्येक राजनीतिक दल का उद्देश्य सत्ता प्राप्ति होता है। जब कभी अकेले बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो ऐसी स्थिति में सत्ता प्राप्त करने के लिए गठबन्धन होता है। लेकिन गठबन्धन को बनाए रखने में यदि किसी दल को ऐसा प्रतीत होता है कि यदि वह गठबन्धन का हिस्सा बना रहेगा और उसे अपने सिद्धान्तों के प्रति कम से कम समझौता करना पड़ेगा तो वह दल उस गठबन्धन का हिस्सा बनता है। इस प्रकार उसका अस्तित्व बना रह सकता है। जैसे 17वीं लोकसभा चुनाव के दौरान उत्तर प्रदेश में बसपा और सपा का चुनावपूर्ण गठबन्धन अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए ही था।

गठबन्धन निर्माण में चौथा तत्व अन्तःक्रिया का है। दलों के बीच जितनी ही अधिक अन्तःक्रिया होगी गठबन्धन को बनाए रखने की संभावना उतनी ही अधिक होगी। जैसे राजग–एक, संप्रग एक और दो में राजनीतिक दलों के मध्य ऐसी अन्तःक्रिया थी कि दर्जनों राजनीतिक दलों के होने के बावजूद इन सरकारों ने अपना कार्यकाल पूरा किया।

गठबन्धन में सरकार को चलाना घटक दलों में तालमेल पर आधारित होता है और यह एक समिति के माध्यम से किया जाता है। जब तक यह समिति सफलतापूर्वक

कार्य करती रहती है तब तक गठबन्धन यथावत रहता है, लेकिन जैसे ही इसमें तारतम्यता कम होती है, वैसे ही गठबन्धन टूट जाता है। भारतीय परिपेक्ष्य में यह सिद्धान्त व्यवहार में भी लागू होता है। जैसा कि भारत में गठबन्धन के सम्बन्ध में दो तरह की धारणाएँ रही हैं –

1. सरकार में रहकर सरकार को समर्थन देना
2. बाहर से समर्थन देना

1989 में केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा गठबन्धन की सरकार थी जिसे भाजपा और वामदल बाहर से समर्थन दे रहे थे। लेकिन मण्डल एवं कमण्डल ने अपना असर दिखाया और भारतीय जनता पार्टी ने राम मन्दिर के निर्माण हेतु रथयात्रा निकाली। जब यह यात्रा बिहार पहुँची और आडवाणी जी बिहार के तत्कालीन सरकार के द्वारा गिरफ्तार कराये गये, वैसे ही भाजपा ने समर्थन वापस ले लिया और सरकार गिर गई। फिर कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया और चन्द्रशेखर सिंह के नेतृत्व में सरकार बनी और सात महीने के बाद जैसे ही कांग्रेस ने समर्थन वापस लिया, वैसे ही चन्द्रशेखर सरकार गिर गई (बलवीर अरोड़ा, 2002)। इसी प्रकार की स्थिति कमोबेश 1996 में आई, जब भाजपा को सत्ता से दूर रखने के लिए क्रमशः अप्रैल 1997 और नवम्बर 1997 में देवगौड़ा और गुजराल की सरकार को कांग्रेस की समर्थन की वजह से सत्ता प्राप्त हुई और समर्थन वापसी के कारण सत्ता से बेदखल होना पड़ा (विद्युत चक्रवर्ती, 2006)। 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार को अविश्वास प्रस्ताव के कारण सत्ता से बेदखल होना पड़ा। ऐसा इस कारण हुआ, क्योंकि अन्ना-द्रमुक ने मतदान में भाग नहीं लिया। ऐसा पहली बार हुआ जब किसी क्षेत्रीय पार्टी के कारण सरकार गिरी हो (बालवीर अरोड़ा, 2002)।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारत में अस्थिर सरकार का कारण सरकार में रहकर या सरकार के बाहर से समर्थन वापस लेने का कारण होता है। अर्थात जब गठबन्धन वाले घटकों दलों में असहमति होती है और यह असहमति इतनी बढ़ जाती है कि अब कोई बीच का रास्ता नहीं बचता है तो सरकार का गिरना स्वाभाविक है। लेकिन 1999, 2004 और 2009 की सरकारें गठबन्धन पर आधारित थीं और इन्होंने अपना कार्यकाल पूरा किया।

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि गठबन्धन का जो सैद्धान्तिक स्वरूप है वह विशेषतः बहुदलीय पद्धति वाले देशों में ही देखने को मिलता है और यह भारतीय परिपेक्ष्य में बिलकुल सही प्रतीत होता है। यह सत्य है कि भारत में गठबन्धन सरकार अस्थायित्व, परम्परा-कलह को जन्म देती है। फिर भी 1989 से लेकर के 2014 तक के केन्द्र सरकार की स्थिति पर दृष्टिपात किया जाए तो यह विदित होता है कि कुछ अवसरों को छोड़कर के गठबन्धन सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। 2014 और 2019 में हुए आम चुनावों में यद्यपि भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिला है फिर भी भाजपा

ने गठबन्धन धर्म को निभाते हुए चुनावपूर्व किये गये गठबन्धन वाले दलों को छोड़ा नहीं है। सम्प्रति गठबन्धन की राजनीति भारतीय लोकतन्त्र में इस प्रकार से रच बस गयी है कि दोनों को एक दूसरे से अलग कर के सोचा नहीं जा सकता। इस बात को सम्भवतः डॉ. राममनोहर लोहिया ने बहुत पहले भाँप लिया था और कहा था कि यदि कांग्रेस के एकाधिपत्य से छुटकारा पाना है तो प्रत्येक मतभेद को भुलाकर कांग्रेस के विरूद्ध चुनावी समझौता करें और सरकार भी बनाएँ (गौरीशंकर, राजहंस, अप्रैल 1999)। लोहिया के इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर के केन्द्र में 1967 में हुए चौथे आम चुनाव के पूर्व तक चल रहे कांग्रेस के वर्चस्व को तोड़ने के लिए सभी दल एक जुट हो गए और गठबन्धन सरकार का उदय हुआ। इसका परिणाम अब राज्यों पर भी दिखने लगा। 1967 के आम चुनाव के बाद नौ राज्यों उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, केरल और चेनन्ई में कांग्रेस इस स्थिति में नहीं आ पायी कि वह अकेले दम पर सरकार बना सके।

सन्दर्भ

1. ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण, जिल्द-III, ऑक्सफोर्ड 1989, पृ0 389.
2. इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंन्सेज, मैकमिलन कं0, न्यूयार्क, 1963, पृ0 600–605.
3. गौरीशंकर राजहंस, ''क्यों नहीं चलपाती गठबन्धन सरकारें'', हिन्दुस्तान, 18 अप्रैल, 1999.
4. बलबीर अरोड़ा, ''द पॉलिटिकल एण्ड पार्टी सिस्टम : द एमरजेन्स ऑफ न्यू कोलिशंस'', जोया हसन (सं.) पार्टी एण्ड पार्टी पालिटिक्स, इन इण्डिया नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002, पृ0 512.
5. रजनी कोठारी, ''द कांग्रेस सिस्टम इन इण्डिया'', एशियन सर्वे 1967.
6. विद्युत चक्रवर्ती, ''फॉरजिंग पावर : कोलिशन पालिटिक्स इन इण्डिया'', नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनविर्सिटी प्रेस, 2006, पृ0 144.

भारत में संविद सरकार एवं दलीय स्थिति

बिन्दा कुमारी

Lkkjk'k% *संविद की सरकार दलीय स्थिति पर निर्भर करती है। इसकी संभावना बहुदलीय प्रणाली में अधिक होती है। बहुदलीय प्रणाली के कारण जब कोई दल आम चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता है, तो संविद सरकार बनाना विवशता होती है। संविद सरकार भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की मुख्य प्रकृति है। यहाँ तृतीय आम चुनाव के पूर्व कांग्रेस निरंतर चुनाव में जीत कर सरकार बनाती रही पर तृतीय आम चुनाव के बाद कांग्रेस के प्रति असंतोष बढ़ा और संविद सरकार की स्थिति राज्यों एवं फिर केन्द्र में बनी। संविद सरकार सहयोग और सहमति पर आधारित होती है।*

आज तो स्थिति बदली है और संविद सरकार का बनना राजनीतिक वास्तविकता बन गई है। 16वीं एवं 17वीं लोकसभा चुनाव में यद्यपि भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिला है, परन्तु कांग्रेस और भाजपा दोनों मुख्य ध्रुवों ने ही चुनाव के पूर्व ही एक निश्चित कार्यक्रम के आधार पर गठबंधन बना लिये। राजनीतिक दलों को यह पता था कि ज्यादा वोट और बड़ी जीत एक ताकतवर गठबंधन के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। भाजपा को जीत मिली और सरकार बनी है। वास्तव में भारत जैसे बहुलबादी समाज में विभिन्न क्षेत्रों एवं दबे वर्गों की आकांक्षाओं की उपेक्षा कर सरकार आगे नहीं बढ़ सकती है। सरकार में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति का भी माध्यम होता है, जो लोकतंत्र के लिए भी शुभ है।

प्रस्तावना

संसदीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता का केन्द्र मंत्रिमंडल होता है जो सामूहिक रूप से अपने कार्यों के लिए विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होता है। मंत्रिमंडल की प्रभावशीलता, उसका स्वरूप, उसकी कार्यशीलता विधानमंडल की दलीय स्थिति पर निर्भर करती है। यदि आम चुनाव के पश्चात् विधानमंडल में चाहे वह केन्द्र स्तर पर हो या राज्य स्तर पर बहुमत प्राप्त होता है और उसी दल के नेता

को मंत्रिमंडल बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है तो उसे सजातीय मंत्रिमंडल कहा जाता है, परन्तु यदि विधानमंडल में किसी एक दल को बहुमत प्राप्त नही हो ऐसी स्थिति में एक या एक से अधिक दल एक साझा कार्यक्रम के आधार पर एकत्रित होकर बहुमत सिद्ध करते हैं तो इस प्रकार से गठित मंत्रिमंडल को मिला जुला, मिश्रित मंत्रिमंडल, संयुक्त मंत्रिमंडल, गठबन्धन की सरकार या संविद सरकार कहते हैं। मिश्रित या संयुक्त मंत्रिमंडल राजनीतिक ताकतों के किसी गठजोड़ अथवा अस्थायी संघ को इंगित करता है, यह अस्थायी संघ राष्ट्रीय या राज्य दोनों ही स्तर पर हो सकता है।[1]

संविद भी दो तरह के होते हैं। एक आम चुनावों के पूर्व कुछ दल मिलकर एक निश्चित कार्यक्रम बना लेते हैं तथा उस निश्चित कार्यक्रम के आधार पर आपसी तालमेल स्थापित कर चुनाव लड़ते हैं और तब चुनाव बाद संविद सरकार का गठन करते हैं। दूसरे जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता ऐसी स्थिति में संविद सरकार का गठन होता है। इसमें चुनाव बाद कुछ दल मिलकर अपना सर्वसम्मत नेता चुन लेते हैं और मंत्रिमंडल के सभी दलों को प्रतिनिधित्व दे देते हैं। इस प्रकार संविद सरकार वास्तव में मिली जुली सरकार है जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमंडल के निर्माण के लिए बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रम के ऊपर एकमत होते हैं।[2]

सामान्यतः संविद की सरकार दलीय प्रणाली पर निर्भर करती है। इसकी संभावना उन देशों में अधिक होती है जहाँ बहुदलीय प्रणाली होती है। बहुदलीय प्रणाली के कारण जब कोई भी दल आम चुनावों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता तो मिश्रित सरकार बनाना उन दलों की विवशता होती है। जहाँ द्विदलीय पद्धति है वहाँ प्रायः किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत मिल ही जाता है। इंग्लैंड में द्विदलीय पद्धति है। कुछ अपवादों को छोड़कर वहाँ सजातीय मंत्रिमंडल बनते रहे हैं।[3] परन्तु वहाँ भी 1824-1829 तक लेबर पार्टी के प्रधानमंत्री मैक्डोनाल्ड के नेतृत्व में मिला-जुला मंत्रिमंडल रहा। राष्ट्रीय संकट के समय भी गठबन्धन की सरकार बनायी जाती है। 1914-19 और 1939-45 में प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्धों में भी इंग्लैंड में सर्वदलीय मंत्रिमंडल बनाये गये। 1931 में भी इंग्लैंड में विश्व आर्थिक मंदी का सामना करने के लिए सर्वदलीय मंत्रिमंडल बनाया गया था। संविद सरकार का सुन्दर उदाहरण इटली है। इटली में बहुदलीय व्यवस्था है और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वहाँ कोई भी दल बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी है, फलतः वहाँ संविद की सरकार ही बनती रही है। फ्राँसीसी राजनीतिक व्यवस्था की परम्परा में भी संविद निर्माण की प्रक्रिया शासन में चली आ रही है। इसी प्रकार यूरोप के स्केन्डेवियन देश यानि फिनलैंड, नार्वे, डेनमार्क, स्वीडन, आयरलैंड आदि देशों में भी बहुदलीय व्यवस्था है, फलतः वहाँ सरकार संविद प्रकृति की रही है। पश्चिमी जर्मनी में भी क्रिश्चियन डेमोक्रेट तथा सोशल डेमोक्रेट ने मिलकर

कई बार शासन संभाला है। कनाडा में भी कई बार संविद सरकार बनी है। सन् 1947 में स्वाधीन लंका के शासन का श्रीगणेश ही संयुक्त दल से हुआ। विकसित और विकासशील दोनों प्रकार के देशों में गठबन्धन सरकारों के व्यापक अस्तित्व के बावजूद इसके गठन तथा विलय की प्रक्रिया के संबंध में कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है। जर्मन का संविधान एक महत्वपूर्ण अपवाद है जिसमें ऐसे प्रावधान हैं जो किसी विकल्प को समर्थन देने के लिए तैयार हुए वगैर किसी सरकार को गिरा देना गैर जिम्मेदार सांसदों के लिए असंभव बनाते हैं। स्वीडन के सरकारी दस्तावेज 1974 कुछ विस्तार के साथ गठबन्धन सरकार की निर्माण प्रक्रिया की व्याख्या करने का प्रयास करता है।[4]

संविद सरकार भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की भी मुख्य प्रकृति है। भारत में संविद राजनीति की शुरूआत काँग्रेस पार्टी के विरोध के रूप में सामने आयी। आजादी के बाद यहाँ 1952 से 1967 तक काँग्रेस निरन्तर चुनावों में जीतकर केन्द्र और राज्यों में अपनी सरकार बनाती रही है। परन्तु तृतीय आम चुनाव के बाद देश में असंतोष बढ़ने लगा। ऐसे समय में डा. राममनोहर लोहिया ने गैर-काँग्रेसी दलों को मिलाने का प्रयास किया। डा. लोहिया का मत था कि चुनावों में कांग्रेस की विजय का कारण गैर-कांग्रेसी दलों में एकता का अभाव है। सत्ता पर कांग्रेस के एकाधिकार को समाप्त करने की दृष्टि से उन्होंने विरोधी दलों को एक मंच पर लाकर एक संघ बनाने की कोशिश की। स्वाभाविक रूप से स्थापित और व्यापक पैमाने पर संगठित कांग्रेस दल के विरोध के लिए सभी प्रतिपक्षी दलों ने मिलजुलकर मुकाबला करने का फैसला किया। इस फैसले का कारण था कि कांग्रेस को आमतौर पर कुल वोटों के 40 प्रतिशत से अधिक कभी नहीं मिले थे। अतः 1967 के चुनाव में प्रतिपक्षी दलों ने इसका प्रयोग किया और उन्हें सफलता मिली।[5] यद्यपि केन्द्र में कांग्रेस पार्टी को बहुमत मिला, पर उसे पहले चुनावों की अपेक्षा कम स्थान मिले। पहला 1952 में लोकसभा की 489 सीटों में कांग्रेस ने 364 सीटें हासिल की थी। दूसरे लोकसभा 1957 के चुनाव में 494 सीटों में कांग्रेस को 371 सीटें मिली, तीसरे 1962 के लोकसभा चुनाव में 494 सीटों में से कांग्रेस ने 361 सीटें प्राप्त की, जबकि 1967 के चौथे आम चुनाव में स्थिति बदल गयी। लोकसभा की 520 सीटों में कांग्रेस को 283 सीटें मिल पायी। प्रतिपक्षी दलों के इस प्रयोग को राज्यों में पर्याप्त सफलता मिली। केरल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और मद्रास की विधानसभाओं में कांग्रेस को सफलता नहीं मिल सकी। उड़ीसा में स्वतंत्र दल और जन कांग्रेस की सरकार बनी। मद्रास में द्रविड़ मुनेत्रम कड़गम की तथा अन्य छः राज्यों में संविद की सरकार बनी। वैसे संविद सरकार का प्रयास पूर्व में भी हुआ था। अंग्रेज सरकार के रहते पंडित जवाहरलाल के नेत्तृत्व में जब अंतरिम सरकार की स्थापना का प्रयत्न 1946 में किया गया था, उस समय मुस्लिम लीग को सम्मिलित करने की व्यवस्था की गयी थी। परन्तु वह सफल नहीं हो सकी। लोगों ने असहयोग की नीति अपनायी तथा बाद में तो वे मंत्रिमंडल में अड़ंगा डालते ही रहे।

पुनः 1954 में त्रावनकोर कोचीन में मध्यावधि चुनाव के बाद विधानसभा में कांग्रेस को केवल 44 स्थान प्राप्त हुए फलस्वरूप विभिन्न दलों ने मिलकर संविद सरकार का निर्माण किया।[6]

संविद सरकार के निर्माण के कारण स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात निरन्तर प्रतिपक्ष में रहे दलों को पहली बार सत्ता का स्वाद चखने का अवसर प्राप्त हुआ। 1967 के चुनावों के बाद प्रायः संयुक्त मोर्चे की सभी सरकारों ने पारस्परिक सहमति से एक न्यूनतम समयबद्ध कार्यक्रम बनाया था। सभी दल इस बात से सहमत थे कि प्रशासन से भ्रष्टाचार को खत्म किया जाये और जमाखोरी और मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति समाप्त हो। विभिन्न प्रदेशों में नीति संबंधी निर्णय के नये तरीके विकसित किए गये। कई प्रदेशों में नीति निर्धारण के लिए दोहरी व्यवस्था हुई। एक मंत्रिमंडल दूसरे मोर्चे में शामिल सभी दलों के प्रतिनिधियों को मिलाकर गठित की गयी समन्वय समितियों की। समन्वय समितियाँ मंत्रिमंडल से भी अधिक प्रभावशाली थी। परन्तु समन्वय समितियाँ की बैठकों में दलीय नीतियों एवं आग्रहों का प्रश्न पैदा होने के कारण तीव्र मतभेद हो जाया करता था और बैठक सफल नहीं हो पाती थी। मोर्चे में शामिल दल आपस में ही एक दूसरे पर आरोप लगाने लगे। समन्वय समितियाँ निष्प्रभावी हो गयी। इस प्रकार दृष्टि और नीति संबंधी एकता और एकोन्मुखता के अभाव के कारण मोर्चे में स्थायित्व नहीं आ सका।[7] गठबंधनात्मक प्रबंध से फिर वैचारिक विसंगति का संकेत मिलने लगा।

संयुक्त सरकार का स्थायित्व कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि विभिन्न दल अपने सहयोग करने वाले दलों के साथ परस्पर एक दूसरे के लिए किस सीमा तक कुर्बानी देने के लिए तैयार हैं ? अर्न्तविरोधी दृष्टिकोण इसमें हमेशा बाधक होता है और जब कोई दल अपनी स्वायत्तता और पहचान को अधिक महत्वपूर्ण मानते या समझते हुए अपने को रेखांकित करना चाहता है तब विरोध और असंतोष की सृष्टि हो जाती है। जैसा कि 1967 के चौथे आम चुनाव के बाद हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, केरल, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बिहार, गुजरात एवं पंजाब में संविद से बनी राज्य सरकारों की स्थिति हुई। उपर्युक्त मिलीजुली सरकारों का प्रयोग पूर्ण रूप से असफल रहा। ये सरकारें अन्तर्विरोध के कारण अपना कार्यकाल पूरा किये बिना ही गिरती रही हैं। इनमें सबसे कम कार्यकाल मध्यप्रदेश में राजा नरेश चन्द्र सिंह की सरकार का सात दिन का और अधिकतम कार्यकाल उड़ीसा में आर0एन0 सिंह देव की सरकार का तीन वर्ष दस महीनों का रहा। बिहार में मार्च 1967 के चुनावों में किसी भी दल को जब स्पष्ट बहुमत नहीं मिला तब महामाया प्रसाद सिन्हा ने 5 मार्च 1967 को संविद सरकार बनायी जो आंतरिक मतभेदों के कारण 25 जनवरी 1968 को गिर गयी यानि मात्र 11 महीने 20 दिन चल सकी उसके बाद 1968 से 1971 तक चार वर्षों में आठ सरकारें बनी।

संविद की जो सरकारें बनी थीं उसमें ध्रुवीकरण के सिद्धान्तों को भी आधार नहीं बनाया गया था। एक हीं सरकार में उग्र वामपंथी दल और दक्षिण पंथी राजनीतिक दल साथ-साथ दिखाई देने लगे थे। फलस्वरूप संसदीय सिद्धान्त संयुक्त उत्तरदायित्व को ताक पर रख दिया गया था। निर्णय लेने की प्रक्रिया में राज्य मंत्रिमंडल का महत्व भी घटता चला गया था। संविद के घटक ही निर्णय लेते थे और मंत्रिमंडल की स्थिति तो पुष्टिकरण करने वाले निकाय के समान हो गयी थी। तनाव की राजनीति का उदय हुआ। विभिन्न घटक दलों में मतभेद और तनाव बढ़ा। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री श्री अजय मुखर्जी तथा उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु के बीच भयंकर मतभेद बढ़े। संयुक्त मोर्चे द्वारा राज्यपाल धर्मवीर को भी हटाने की माँग की जाने लगी। डाक्टर पी0 सी0 घोष खाद्यमंत्री ने संयुक्त मोर्चे से त्यागपत्र देकर काँग्रेस दल के सहयोग से संयुक्त मोर्चा मंत्रिमंडल में दलबदल करने वाले विधायकों का एक अल्पसंख्यक दल बनाया। दल बदल को बहुत बढ़ावा मिला। जिन राज्यों में मिली जुली सरकारें बनी उन सभी में राजनीतिक दल बदल के द्वारा ही मिली जुली सरकारों को बनाया गया था। दल बदल करने के लिए धन और मंत्रिमंडल में स्थान देने का लालच दिया जाता रहा। फलस्वरूप राजनैतिक अनैतिकता को भी बढ़ावा मिल रहा था।[8]

जिन राज्यों में संयुक्त मंत्रिमंडल की सरकारें थीं वे केन्द्र के प्रति विरोध की नीति अपनाते देखे गये। आर्थिक प्रश्न, रक्षा के प्रश्न तथा राज्यपालों की नियुक्ति के संबंध में केन्द्र राज्य के बीच उग्र मतभेद शुरू हुए। केन्द्रीय निर्देशों की अवहेलना की जाने लगी।

संयुक्त मोर्चे के मतभेद का एक बहुत बड़ा कारण सैद्धान्तिक भी रहा। कुछ दल अपने चिंतन में उदार और कुछ में साम्प्रदायिकता और क्षेत्रीयता का आग्रह है। कुछ की दृष्टि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के संबंध में भिन्न है। स्वतंत्र पार्टी की नीति बड़े परिवर्तन के पक्ष में नहीं थी तो दूसरी ओर कम्युनिस्ट और समाजवादी परिवर्तन के पक्ष में थे। केन्द्र और राज्यों के संबंध के स्वरूप पर भी मतभेद रहा। एक तरफ स्वतंत्र पार्टी चाहती थी कि अधिकारों का विकेन्द्रीकरण हो तो जनसंघ एक मजबूत केन्द्र के पक्ष में थी। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय दृष्टिकोण के बावजूद अपनी अनिवार्यता के कारण क्षेत्रीय मुद्दों के प्रति अधिक आग्रहशील रही। कुछ दलों के सामने तो मुख्य प्रश्न राष्ट्रीय न होकर क्षेत्रीयता तक ही सीमित रहा क्योंकि लोकतांत्रिक गठबन्धन की छत्रछाया में गठजोड़ करती पार्टियों की सरकार की रक्षा के साथ गठबन्धन में एक साझीदार के रूप में भी अपनी पृथक पहचान का भी सामना करना पड़ता है।[9]

गैर-कांग्रेसवाद की नीति का सफल परिणाम गुजरात में मिला जब वहाँ जनता पार्टी की सरकार बनी। 16 जून 1975 को मोर्चे के नेता बाबूभाई पटेल ने किसान मजदूर लोकदल के सहयोग से मंत्रिमंडल का गठन किया जो 1980 तक चलती रही।

केन्द्र में तो 1984 के आम चुनाव में कांग्रेस को भारी विजय हुई, पर राज्य स्तर पर गठबन्धन की राजनीति जारी रही। उदाहरण के लिए कांग्रेस ने जम्मू-कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस के साथ, तमिलनाडु में 1980 में द्रमुक तथा 1984 के चुनावों में अन्नाद्रमुक के साथ गठजोड़ किया। इस अवधि के दौरान केरल, त्रिपुरा एवं पश्चिम बंगाल राज्यों में वामदलों के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकारें बनायी गयीं। भारतीय राजनीति के ग्राम्यकरण एवं क्षेत्रीयकरण ने क्षेत्रीय दलों के उदगमन की ओर प्रवृत्त किया जिनकों संख्यात्मक रूप से सशक्त और आर्थिक रूप से शक्तिशाली धनी कृषक जातियों का समर्थन प्राप्त था। आन्ध्रप्रदेश में तेलगुदेशम, पंजाब में अकालीदल तथा असम में असम गण परिषद् उन क्षेत्रीय दलों में से थे जिन्होंने राजनीतिक दलों के बीच सर्वसुलभ प्रतिस्पर्द्धा सुनिश्चित की। राज्यों में द्विध्रुवीकरण की प्रवृत्ति उभरी और राज्य स्तर पर कांग्रेस प्रभुत्व की समाप्ति की राह गढ़ी।[10]

राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1977 के लोकसभा चुनावों में जनता पार्टी ने अपने आपको कांग्रेस के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करने का दावा किया। चुनाव पूर्व ही संगठन कांग्रेस जनसंघ, भारतीय लोकदल और समाजवादी पार्टी ने जनता पार्टी में अपना विलय कर लिया। 26 जून 1975 से लगभग 19 माह तक राष्ट्र ने जो आपातकालीन अत्याचार सहे उनकी परिणति कांग्रेस के आकस्मिक एवं आश्चर्यजनक पतन में हुई और इसके स्थान पर केन्द्र में पहली बार जनता पार्टी के रूप में गैर कांग्रेसवाद सत्ता में आया। किंतु जिन दलों का अस्तित्व जनता पार्टी के एक दल में समाहित हो गया था, वे धार्मिक, आर्थिक, क्षेत्रीय आधार पर अपन-अपने पूर्वाग्रह को छोड़ नहीं पाये और तमाम राजनीतिक अर्न्तविरोधों के कारण (भारतीय जनसंघ जहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सदस्यता और जनता पार्टी की सदस्यता दोनों को साथ लेकर चलना चाहता था, वहीं जनता पार्टी के शेष घटक दोहरी सदस्यता के त्यागपत्र की मांग करते थे) चौधरी चरण सिंह, मोरारजी देसाई तथा जगजीवन राम के गठनात्मक प्रबंध से फिर वैचारिक विसंगति का संकेत मिला और इसमें कोई कौतुक नहीं कि मोर्चा बिखर गया। परन्तु यह सरकार संविद सरकार नहीं थी क्योंकि जनता पार्टी में अन्य दलों ने अपना विलय ही कर लिया था।

केन्द्र में पहली बार संविद सरकार की पृष्ठभूमि कांग्रेस द्वारा समर्पित चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व वाली केन्द्रीय सरकार के रूप में 29 जुलाई 1979 को अभिभूत होती है। बाद में तो अन्नाद्रमुक भी इसमें शामिल हो गया। किन्तु धीरे-धीरे एक-एक दल इससे अलग होने लगे और यह सरकार भी संसद का विश्वास प्राप्त नहीं कर सकी। पुनः संविद सरकार 1989 में देखी गयी जब नौवीं लोकसभा की 543 में से 525 सीटों के निर्वाचन हुए। कांग्रेस (ई) को राजीव गाँधी के विरूद्ध विरोधी दलों द्वारा बोफोर्स दलाली कांड आदि मुद्दे के कारण उपजे असंतोष से जो चुनाव परिणाम सामने आये उसमें कांग्रेस (ई.) के हाथ से केन्द्र सरकार की सत्ता निकल गयी, किन्तु किसी अन्य

दल को भी स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। अतः कुछ विरोधी दलों ने 1989 में श्री वी.पी.सिंह की जनता दल सरकार को जहाँ कम्युनिस्टों, डी. एम. के., अकाली दल आदि के सक्रिय समर्थन तथा भारतीय जनता पार्टी के बिना समर्थन से संविद सरकार की स्थापना का अवसर दिया वहीं रामजन्मभूमि सवाल पर एक वर्ष के अंदर ही नवम्वर 1990 को संसद में रखे गये विश्वास प्रस्ताव पर मतदान के समय इसका पतन भी हो गया। वी. पी. सिंह सरकार के पक्ष में 151 तथा विपक्ष में 356 मत आये। भारतीय राजनीति में जनादेश की इच्छा से भिन्न पुनः कांग्रेस (ई) के विद्रोह करनेवाले चन्द्रशेखर एवं चौधरी देवीलाल ने नया जनता दल (समाजवादी) बनाया और कांग्रेस के सहयोग से केन्द्र में सरकार बना ली। कांग्रेस (ई) सरकार में शामिल नहीं हुई लेकिन चन्द्रशेखर सरकार को बाहर से समर्थन दिया। यह अल्पमतीय सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी। मार्च 1991 में कांग्रेस अध्यक्ष राजीव गाँधी के निवास स्थान पर हरियाणा पुलिस के दो सिपाहियों द्वारा की जाने वाली कथित जासूसी के मामले को लेकर कांग्रेस (ई) और चन्द्रशेखर के संबंध खराब हो गये। परिणाम स्वरूप 06 मार्च 1991 को चन्द्रशेखर ने प्रधानमंत्री के अपने पद से त्यागपत्र देते हुए राष्ट्रपति से लोकसभा भंग कर नये चुनाव कराने की सिफारिश की। 13 मार्च 1991 को राष्ट्रपति वेंकट रमण द्वारा प्रधानमंत्री की सिफारिश से लोकसभा को भंग कर दिया गया।

इन सभी सरकारों का स्वरूप कई दलों के सक्रिय या बिना शर्त समर्थन वाले संविद के निर्माणाधीन अस्पष्ट था।

श्री नरसिम्हा राव के नेतृत्व में संचालित अल्पमत कांग्रेस की सरकार (जो बाद में दलबदल के आधार पर बहुमत प्राप्त हो गई) के पाँच वर्षों के अंतराल के पश्चात पुनः संसदीय चुनाव ने भारतीय राजनीति को संविद के दहलीज पर ला खड़ा कर दिया। ग्यारहवीं लोकसभा के लिए हुए अप्रैल-मई 1996 के चुनावों में लोकसभा में किसी एक दल को बहुमत नहीं मिला और लोकसभा की स्थिति त्रिशंकु जैसी हो गयी। भाजपा को 161 तथा कांग्रेस को 140 स्थान प्राप्त हुए। भाजपा ने अपने सहयोगी दलों शिवसेना, समता पार्टी, अकाली दल, विश्व हिन्दू परिषद सदस्यों की सहायता से सरकार बनाने का दावा पेश किया। 16 मई 1996 को अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में पहली बार भाजपा ने 12 अन्य दलों के समर्थन से मिश्रित सरकार का गठन किया। परन्तु लोकसभा में सरकार द्वारा प्रस्तुत किये गये विश्वास प्रस्ताव पर दो दिन के बहस के उपरान्त अटल बिहारी वाजपेयी ने यह महसूस किया कि वह बहुमत सिद्ध नहीं कर पायेंगे और उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। भाजपा के मंत्रिमंडल का 13 दिनों के बाद ही विघटन हो गया। जून 1996 को केन्द्र में संयुक्त मोर्चे की सरकार का गठन किया गया तथा कर्नाटक के नेता एच0 डी0 देवगौड़ा को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। यद्यपि संयुक्त मोर्चे को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं था लेकिन कांग्रेस के बाहरी समर्थन से यह सरकार 11 महीने चलती रही। कांग्रेस के समर्थन वापसी के कारण 21 अप्रैल 1997

को यह सरकार गिर गयी। ज्ञातव्य है कि इसके पूर्व की संविद सरकारें बिना किसी शर्त या न्यूनतम कार्यक्रम के गठित हुई थी। परन्तु पहलीबार इस संविद सरकार में घटक दल न्यूनतम सहमति प्राप्त कार्यक्रमों के परिपेक्ष्य में सरकार के निर्माण में सहमत हुए और कांग्रेस का तो इसे बिना शर्त समर्थन ही सम्प्रदाय विरोधी सिद्धान्त के आध ाार पर मिला था। साथ ही इस संविद सरकार में घटक दलों की संचालन समिति भी थी जो पश्चिम बंगाल के संयुक्त मोर्चा सरकार की तर्ज पर थी, जो सरकार के शासन संचालन के क्रम में उत्पन्न विवादास्पद मुद्दों का निर्णायक मंच था। यह भी उल्लेखनीय रहा कि यह संयुक्त मोर्चा आजतक के सभी संविद घटकों में विशिष्ट और व्यापक था जिसमें 15 दल शामिल थे जो क्षेत्रीय, आर्थिक रूप से भिन्न एक राष्ट्रीय स्तर के भी थे। पुनः कांग्रेस के बाहरी समर्थन से आई. के. गुजराल के नेतृत्व में दूसरे संयुक्त मोर्चे का गठन हुआ। इस सरकार में आई. के. गुजराल प्रधानमंत्री बने लेकिन शीघ्र ही राजीव गाँधी की हत्या की जाँच कर रहे जैन आयोग की रिपोर्ट से पता चला कि संयुक्त मोर्चे में शामिल तमिलनाडु की डी.एम.के. पार्टी भी इस हत्या में लिट्टे के साथ संलिप्त थी। अतः कांग्रेस द्वारा यह मांग की गई कि गुजराल सरकार से डी.एम. के. के मंत्रियों को हटा दिया जाये।

लेकिन संयुक्त मोर्चे की सरकार ने इस मांग को स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस ले लिया। संयुक्त मोर्चा सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा। 17 महीने सरकार चली। इस प्रकार नेशनल फ्रन्ट की दूसरी सरकार को भी कांग्रेस की महात्वाकांक्षा ने काल कवलित कर दिया।

मार्च 1998 में 12वीं लोकसभा चुनाव में पुनः किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। खंडित जनादेश के कारण लोकसभा की स्थिति त्रिशंकु जैसी हो गयी। भाजपा को 179 स्थान मिले थे जो किसी भी दल को मिले स्थानों में सर्वाधिक थे। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने 18 दलों के समर्थन से साझी सरकार का गठन किया। इस सरकार से पूर्व गठित मिली जुली सरकारों में एक मौलिक अन्तर यह था कि 1998 से पूर्व गठित सभी मिश्रित सरकारें विभिन्न दलों के सामयिक समझौते का परिणाम थीं जो चुनाव के बाद किये गये थे जब कि 1998 की भाजपा सरकार के घटक दल चुनाव पूर्व समझौता कर चुके थे। इन दलों का एक घोषित एजेन्डा भी था।

1998 की भाजपा गठबन्धन सरकार में ए.डी.एम.के. सबसे बड़ा घटक था। सरकार बनने के कुछ ही दिन पश्चात ए.डी.एम.के. नेता जयललिता ने केन्द्र पर तमिलनाडु की डी.एम.के. सरकार को भंग करने के लिए दबाव देना शुरू किया। 14 अप्रैल 1999 को ए.डी.एम.के. ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया। फलस्वरूप 17 अप्रैल 1998 को केवल 13 महीने बाद भाजपा सरकार गिर गयी।

तेरहवीं लोकसभा के चुनाव में यद्यपि सैद्धान्तिक मुद्दों के स्थान पर कांग्रेस की

सोनिया गाँधी और भाजपा के श्री अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तिगत करिश्में, कारगिल संघर्ष, सोनिया गाँधी की भारतीय नागरिकता आदि मुद्दों को तरजीह दी गयी किन्तु श्री वाजपेयी के नेतृत्व में जनमत ने अपना विश्वास प्रकट किया और भाजपा ने सबसे बड़ी पार्टी के रूप में 182 सीटों पर विजय प्राप्त की तथा कांग्रेस को अब तक सबसे कम स्थान 114 सीटें मिलीं। इस बार क्षेत्रीय दलों की शक्ति में वृद्धि हुई और उन्हें 162 स्थान प्राप्त हुए। क्षेत्रीय दलों को मिलाकर भाजपा की सरकार बनी। इस बार बहुदलीय संविद गठबन्धन का विस्तार हुआ। इसने अपना पूर्णकाल भी लगभग समाप्त किया। किन्तु नवम्बर 2003 में कुछ राज्यों जैसे गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश में अपनी सफलता और अपनी सरकार का बनना, अपने आर्थिक सुधार, कारगिल में विजय, भारत उदय और फीलगुड के खुशनुमा अहसास में आठ महीने पहले ही लोकसभा भंग कर दी गई। 1998 और 1999 के चुनावों में भाजपा और कांग्रेस ने यह दिखा दिया कि अपने बूते पर किसी भी पार्टी को बहुमत न मिलने के बावजूद क्षेत्रीकृत, बहुदलीय प्रणाली के भीतर दो ध्रुव सुस्पष्ट हो गये हैं–कांग्रेस और भाजपा। स्वाभाविक है कि दोनों ही दल गठबन्धन राजनीति तथा गठजोड़ किये जाने के आदेशों को धीर-धीरे स्वीकार करते गये हैं।

चौदहवीं लोकसभा का चुनाव मई 2004 में सम्पन्न हुआ। लोकसभा के चुनाव परिणाम राष्ट्रीय गठबन्धन के पक्ष में नहीं आ सके। राष्ट्रीय राजनीति पर क्षेत्रीय राजनीति छा गयी। गठबन्धन के संबंध में श्रीमती सोनिया गाँधी के फैसले ज्यादा व्यावहारिक और राजनीतिक साबित हुए। तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार और झारखंड में कांग्रेस ने जो सहयोगी ढूंढे थे, उन्होनें उसे विजय दिलाई।

यह गठबन्धन चुनाव पूर्व ही राष्ट्रीय जनतांत्रिक दल श्री लालू प्रसाद यादव, राष्ट्रीय कांग्रेस के श्री शरद पवार, द्रविड़ मुनेत्रम कड़गम् के श्री करूणानिधि की पहल पर तथा वामपंथी दलों के सहयोग से सफल हुआ जिसका नाम ''संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन'' रखा गया तथा जिसे न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर गठित किया गया। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में अधिकतर वामपंथी दलों ने इसे बाहर से सहयोग दिया। लेकिन भारत द्वारा अमेरीका के साथ किये गये परमाणु समझौते के प्रश्न पर कांग्रेस तथा वामपंथी दलों में मतभेद उत्पन्न हो गये तथा 8 जुलाई 2008 को वामपंथी दलों ने कांग्रेस से अपना समर्थन वापस ले लिया। लेकिन अन्य दलों के समर्थन से 22 जुलाई 2008 को मनमोहन सिंह की सरकार ने लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने में सफलता प्राप्त कर ली और गठबन्धन की यह सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया।

पुनः 2009 के 15वीं लोकसभा चुनाव में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार बनी। इस चुनाव में कांग्रेस को व्यक्तिगत तौर पर 205 सीटें प्राप्त हुई और भाजपा को 116 सीटें। परिणामतः मनमोहन सिंह के नेतृत्व में पुनः 22 मई 2009 को ''संयुक्त

प्रगतिशील गठबन्धन'' की सरकार का गठन किया गया। इस गठबन्धन की सरकार ने भी अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया।

16वीं लोकसभा चुनाव 2014 में भारतीय जनता पार्टी ने श्री नरेन्द्र मोदी को सौंपा। श्री नरेन्द्र मोदी की ''राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन'' ने कांग्रेस के पिछले कार्यकाल में हुए बड़े-बड़े घोटालों कोयला घोटाला, 2-जी स्पैक्ट्रम घोटाला, राष्ट्रमंडल खेल स्कैम, राबर्ट वाडेरा लैण्ड स्कैम आदि को जनता के सामने रखा और जनता का सम्पूर्ण समर्थन प्राप्त कर अकेली पार्टी 282 स्थान ले आयी। केन्द्र में एक राजनीतिक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ जबकि विपक्ष में कांग्रेस को प्रतिपक्ष के नेता के चयन के लिए निर्धारित 10 प्रतिशत स्थान भी प्राप्त नहीं हुए, केवल 44 स्थान मिले। अब खींचतान और लूटपाट वाली गठबन्धन का दौर समाप्त हो गया।[11]

पुनः 17वीं लोकसभा चुनाव में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की प्रचंड लहर पर सवार भारतीय जनता पार्टी ने राष्ट्रवाद, हिन्दू गौरव और नये भारत के मुद्दों पर लोकसभा चुनाव में ऐतिहासिक जीत दर्ज कर लगातार दूसरी बार सरकार बनायी है। बीजेपी को अकेले 303 सीटें हासिल हुई है। भाजपा और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन में शामिल उसके सहयोगी को मिलाकर 353 सीटें हासिल हुई है। कांग्रेस पार्टी ने 52 सीटें जीती और कांग्रेस के नेतृत्ववाले गठबन्धन ने 92 सीटें। अन्य दलों एवं उनके गठबन्धन ने भारतीय संसद में 97 सीटें पायी। इस बार भी कांग्रेस प्रतिपक्ष के नेता के लिए निर्धारित 10 प्रतिशत स्थान नहीं प्राप्त कर सकीं।

यद्यपि 2014 और 2019 यानि 16वीं और 17वीं लोकसभा चुनाव में भाजपा को स्पष्ट बहुमत मिला है। परन्तु वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था ही गठबन्धन की व्यवस्था है। दोनों ही चुनावों में कांग्रेस एवं भाजपा दोनों मुख्य ध्रुव ने एक निश्चित कार्यक्रम के आधार पर चुनाव के पूर्व ही गठबन्धन बना लिए। चुनाव के पूर्व जो गठबन्धन बनते हैं उनमें अवसरवादिता के तत्व कम होते हैं, साथ ही साथ काम करने का आधार बन जाता है। भाजपा ने जहाँ शिवसेना, जदयू, अकाली दल, लोजपा के साथ लगभग दो दर्जन दलों से भी ज्यादा 29 दलों को शामिल कर एक ताकतवर गठबन्धन बना लिया। वहीं कांग्रेस के साथ डी.एम.के., आर.जे.डी., जनता दल सेक्युलर, नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी, एन.सी.पी., ए.एम. डी. एम. के., माया की बसपा एवं अखिलेश की सपा के साथ चन्द्रबाबू नायडू भी जुड़े। इस गठबन्धन में ऐसी पार्टियाँ भी थी जो सोच और नीति एक दूसरे से अलग रखती है पर बीजेपी को हराने के लिए एक दूसरे के साथ खड़ी नजर आयी। राजनीतिक दलों को यह पता था कि ज्यादा वोट और बड़ी जीत गठबन्धन में शामिल पार्टियों पर निर्भर करेगी। आज भारत जैसे बहुलबादी समाज में दबे वर्ग की आकांक्षाएँ चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक हो जग गयी है। जिनके आकंक्षाओं की पूर्ति इन दलों के द्वारा हो पाती है। इन दलों के आधार चाहे व्यापक हो या सीमित फिर भी विभिन्न वर्गों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व इनके द्वारा

हीं सरकार तक पहुँच पाती है। लोकसभा चुनाव 2019 में कांग्रेस के नेतृत्व में बिखरे हुए गठबन्धन बने जो जातिगत जोड़ घटाव के गणित पर बने थे और उनका गणित बिगड़ गया।

आज सरकार अपने मतों के आधार पर तो सत्ता प्राप्त कर सकी है परन्तु उन्हें सभी वर्गों एवं क्षेत्रों को साथ लेकर चलना है। फलस्वरूप सरकार में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी बनी है, जो लोकतांत्रिक अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। इससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया के साथ संघवाद को भी मजबूती मिल रही है। गठबन्धन की राजनीति जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए भी एक नई राजनीतिक संस्कृति की शुरूआत है जो लोकतंत्र के लिए शुभ है।

संदर्भ

1. कोठारी, रजनी–पालिटिक्स इन इंडिया, ओरियन्ट ब्लैक स्वान प्राईवेट लिमिटेड, 2013 पृ.–51
2. वही –पृ.–55
3. कश्यप और गुप्त–हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2011 पृ.–57
4. डा. हरिद्वार राय एवं प्रसाद सिंह, माइग्रो हिल एडूकेशन लि., न्यू दिल्ली, तुलनात्मक राजनीति, पृ.–316
5. कोठारी, रजनी –भारत में राजनीति, ओरिएन्ट ब्लैक स्वान प्राईवेइ लिमिटेड, पृ.–128
6. गुप्ता, डी. सी. –रिफलेक्शन ऑन इंडियन पोलिटिक्स, विकास पब्लिकेशन, पृ.–28
7. वही – पृ. 30
8. शर्मा हरिश्चन्द्र– भारत में राज्यों की राजनीति, कालेज बुक डिपो, जयपुर 1986–87 पृ.–328
9. एम. लक्ष्मीकान्त :–भारत की राज व्यवस्था–माइग्रो हिल एडूकेशन लि., न्यू दिल्ली–2014, पृ.–645
10. शर्मा हरिश्चन्द्र – भारत में राज्यों की राजनीति, कालेज बुक डिपो, जयपुर 1986–87 पृ.–362
11. अवस्थी ए. पी.– भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–2016 पृ.–376–380

भारत में गठबंधन की सरकार एवं स्थायित्व की समस्या

शशि भूषण कुमार

Lkkjk'k% *बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक एवं 21वीं शताब्दी का प्रथम दशक केन्द्र एवं प्रांतीय शासन के स्तर पर एक नई व्यवस्था, जिसे गठबंधन अथवा संविद सरकार के रूप में जाना जाता है, के रूप में दृष्टिगोचर होता है। विशेषकर राष्ट्रीय स्तर पर एकदलीय अथवा द्विदलीय राजनीति समाप्त सी हो गई है तथा इसके स्थान पर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) एवं संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की राजनीति प्रारम्भ हो गई है। एक गठबंधन सरकार बनाता है तो दूसरा विपक्ष की भूमिका में होता है। प्रांतीय स्तर पर भी ज्यादातर राज्यों में गठबंधन की सरकार भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की नियति बन चुकी है।*

1977 के बाद की राष्ट्रीय एवं प्रांतीय राजनीति के कारण देश को अनेक मध्यावधि चुनावों की मार झेलनी पड़ी जिसमें किसी भी एक दल को स्पष्ट बहुमत अथवा कामचलाऊ बहुमत (विशेषकर 2009 के आम चुनावों तक) भी प्राप्त नहीं हो पा रहा था। इन संविद सरकारों के क्रियाकलापों के अध्ययन से यही प्रतीत होता है कि ऐसी स्थिति राष्ट्रीय विकास, सरकार में स्थायित्व एवं अच्छे शासन -प्रशासन के लिए उपयुक्त नहीं है। प्रस्तुत आलेख में गठबंधन सरकार के इन्हीं पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावना

1947 में भारत की आजादी के बाद हमारे संविधान निर्माताओं ने प्रजातांत्रिक गणतंत्र की आधारशिला रखी, जिसके तहत संसदीय शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई। संसदीय शासन प्रणाली में राजनीतिक दलों का विशेष महत्व है, क्योंकि सरकार के निर्माण में ये अपनी निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। वर्तमान संसदीय शासन प्रणाली 1952 से लेकर अभी तक काफी उथल-पुथल देख चुकी है।

1967 तक पूरे देश में एक दल (कांग्रेस पार्टी) का आधिपत्य था लेकिन 1967 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस 16 राज्यों में हुए चुनावों में से आठ राज्यों में हार गई

और कई क्षेत्रीय दल सशक्त होकर उभरे। आठ राज्यों में गैर-कांग्रेस राज्यों की स्थापना ने एक नए युग का सूत्रपात किया। राष्ट्रीय राजनीतिक दल अब क्षेत्रीय व राज्य स्तरीय दलों के समर्थन पर निर्भर होकर सरकार बनाने को अभिशप्त है। 1977 के छठे आम चुनावों के परिणाम ने भारतीय राजनीति में अभूतपूर्व स्थिति उत्पन्न की। लगातार 30 वर्षों के कांग्रेसी शासन को खासकर मध्य व उत्तर भारत में मिली पराजय ने भारतीय दलीय व्यवस्था का स्वरूप ही बदल दिया। कांग्रेस न केवल लोक सभा का चुनाव हारी बल्कि 1977 में ही 10 राज्यों में से आठ राज्यों के विधानसभा चुनावों में भी उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा। 1990 के आते-आते कांग्रेस पार्टी के वर्चस्व का प्रायः अंत हो गया और गठबंधन सरकार का उदय हुआ। इस प्रकार सर्वप्रथम राज्यों में, फिर केन्द्र में गठबंधन सरकार अपरिहार्य बन गई। 1990 के दशक तक भारत में गठबंधन की संस्कृति धीरे-धीरे परिपक्व हो गई तथा 2014 तक प्रजातांत्रिक संसदीय राजनीति को इसी परिपेक्ष्य में देखा जा सकता है।

गठबंधन सरकार के अभिप्राय

गठबंधन का निर्माण लोकतांत्रिक राजनीति एवं शासन का अभिन्न हिस्सा रहा है। अपने विस्तृत अर्थ में गठबंधन निर्माण में साझा राजनीतिक लक्ष्यों की खातिर भिन्न-भिन्न सामाजिक समूहों एवं सम्प्रदायों के बीच सहमति को सुरक्षित करने हेतु युक्तियों की पहल निहित है।[1] जब एक राजनीतिक दल विधायिका में स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने में असफल हो जाता है तब गठबंधन की सरकार विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच अंतःक्रिया के संचालन का प्रमाणिक तरीका हो जाता है।[2] 'गठबंधन' राजनीतिशास्त्र की एक नई परिभाषा प्रस्तुत करता है। यह न केवल राजनीतिक गतिविधि का एक नया नमूना है बल्कि राजनीतिक दलों का दृष्टिकोण तथा राजनीतिक दलों की भिन्नता और जटिलताओं को सरल बनाकर प्रस्तुत करता है। विलियम गैमसन के अनुसार, ''गठबंधन साधनों का संयुक्त इस्तेमाल है जो दो या दो से अधिक इकाइयों के मिश्रित प्रेरक शक्ति का फल होता है। यह मिश्रित प्रेरक शक्ति का परिणाम है''।[3] इसको राइकर ने दूसरी तरह से परिभाषित किया है–इसमें संघर्ष का तत्व है, क्योंकि इसमें सभी को अधिकतम लाभ नहीं हो सकता है। इसमें समन्वय का तत्व भी है, क्योंकि इसमें दो से अधिक राजनीतिक दल हैं जिससे वे अपने बीच समन्वय स्थापित कर साधनों का बेहतर उपयोग कर सकें।[4]

गैमसन एवं राइकर की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर गठबंधन की परिस्थितियों में शामिल है:

(1) शक्ति का अनुप्रयोग (संसाधनों के संयुक्त इस्तेमाल द्वारा परिणामों के निर्धारण के अर्थ में)।

(2) मिश्रित प्रेरक शक्ति का अर्थ है 'संघर्ष' एवं 'सहयोग' दोनों की मौजूदगी।

(3) यह एक सामूहिक प्रयास है (जिसमें दो से अधिक इकाइयों की पारस्परिक क्रिया शामिल है)।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार 'गठबंधन' सामान्यतः एक सहयोगी व्यवस्था है जिसके तहत भिन्न राजनीतिक दलों अथवा दलों के सदस्य सरकार अथवा मंत्रालय के निर्माण हेतु संगठित होते हैं।[5] अटल बिहारी वाजपेयी के शब्दों में, ''गठबंधन की संस्कृति अपने सार रूप में समझौते की संस्कृति है और बहुत हद तक यह राजनीतिक दलों के बीच निर्वाचित अथवा अनिर्वाचित कार्यालयों की हिस्सेदारी है''।[6] गठबंधन की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गठबंधन राजनीतिक बाध्यताओं का परिणाम है जो वैसे संकट का व्युत्पन्न है जब एक राजनीतिक दल के द्वारा स्पष्ट बहुमत पाना असंभव हो जाता है और एक से ज्यादा दल सुस्पष्ट समझदारी अथवा साझा न्यूनतम कार्यक्रम (Common Minimum Programme) के आधार पर राजनीतिक शक्तियों एवं कैबिनेट में विभागों की साझेदारी हेतु आगे आते हैं। इस प्रकार गठबंधन राजनीतिक बाध्यता का शिशु है।

गठबंधन सरकार के प्रतिमान

सामान्यतः गठबंधन सरकार की दो व्यवस्थाएँ देखी जाती हैं:

(1) चुनाव लड़ रहे दलों के बीच राजनीतिक सत्ता में साझेदारी हेतु चुनाव पूर्व गठबंधन अथवा समायोजन।

(2) राजनीतिक दलों के बीच सरकार में साझेदारी हेतु चुनाव बाद समझौता।

इन्हीं दो प्रतिमानों के आधार पर गठबंधन की सरकार का अस्तित्व सामने आता है। वास्तव में, गठबंधन सरकार की सफलता परिस्थितिजन्य कारकों पर निर्भर करती है। जहाँ तक भारत में गठबंधन का अनुभव है तो कभी-कभी इसमें व्यक्तित्व जैसे कारक की भी भूमिका रही है। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में राजग की गठबंधन सरकार में वाजपेयी और लाल कृष्ण आडवानी के व्यक्तित्व का खासा योगदान रहा है। उसी प्रकार 2004 में संप्रग-वाम की गठबंधन सरकार में सोनिया गाँधी के व्यक्तित्व की प्रधानता रही। राजग और संप्रग दोनों ही चुनाव पूर्व गठबंधन के परिणाम थे और दोनों के ही गठबंधन के निर्माण में राजनीतिक औचित्य की मात्रा ज्यादा थी। दूसरी तरफ, चुनाव बाद गठबंधन में जो पार्टियाँ शामिल होती हैं उनका मुख्य प्रयोजन किसी भी तरह सत्ता को हासिल करना तथा जहाँ तक संभव हो सके उसको बरकरार रखने का होता है। कहा भी जाता है कि राजनीति अजनबियों को हमबिस्तर बनाती है और यह फार्मूला चुनाव बाद गठबंधन की स्थिति में सटीक बैठता है।

भारत में गठबंधन सरकार की विशिष्टता एवं चरण

किसी भी राजनीतिक दल से संबद्धता का निर्धारण बहुत से कारकों, जैसे

विचारधारा, धर्म, राष्ट्रीयता, शिक्षा, पेशा, जाति, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, आर्थिक हित इत्यादि पर निर्भर करती है। व्यक्तिगत और पार्टी के स्तर पर ये कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अतः राजनीतिक दल व्यक्तियों का एक संगठित समूह है जो कुछ निश्चित उद्देश्यों के लिए राजनीतिक सत्ता को धारण करने तथा उसके प्रयोग हेतु एक साथ आगे आते हैं। इसलिए इल्डर्सवेल्ड ने ठीक ही कहा है कि ''राजनीतिक दल को एक सहबंध (alliance) की उपसंरचना अथवा उपगठबंधन के रूप में परिकल्पित किया जा सकता है''।[7]

भारतीय राजनीतिक परिदृश्य का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ गठबंधन की राजनीति कोई नई बात नहीं है। आलोचकों का कहना है कि भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों की बाढ़ सी आ गई है जो अंततः गठबंधन सरकारों में अस्थायित्व अथवा घबराहट का कारण बनती जा रही है। लेकिन भारत में गठबंधन के इतिहास का अवलोकन करने पर पता चलता है कि पहली गठबंधन सरकार 1952 के शुरूआत में ही अस्तित्व में आ गई थी जब तत्कालीन पेप्सू (PEPSU) राज्य में पहली गठबंधन सरकार का निर्माण हुआ था। हालांकि यह गठबंधन अपने कार्यकाल को पूरा नहीं कर सकी। सच्चे अर्थ में गठबंधन की सरकार का पर्दापण 1967 में हुआ जब सत्ता का क्षेत्रीय केन्द्र ज्यादा संगठित और स्वीकार्य बन गई।

पहले के एक-दो गठबंधन सरकार के असफल प्रयोग के बाद 1967 में कांग्रेस आधिपत्य की समाप्ति के साथ ही भारत में सरकार-निर्माण में गठबंधन सामान्य सी बातें हो गई। आठ राज्यों में सत्ता की समाप्ति के साथ ही केरल में भी 1967-72 तक कांग्रेस एक निम्न श्रेणी की दल बनी रही। हालांकि इस काल में गठबंधन के निर्माण का मुख्य आधार काँग्रेस-विरोध थी, फिर भी गठबंधन के सहयोगियों के बीच सामान्य विचारधारा की कमी स्पष्ट थी। जैसा कि विक्टर फिक का आकलन है, कि ''चुनाव विकास के अर्थपूर्ण वैकल्पिक कार्यक्रम एवं विचारधारात्मक धरातल पर नहीं लड़े गए, लेकिन निचले स्तर पर सत्ता के लिए संघर्ष में कमी आई और चुनावों में जीत उन्हीं के हाथ लगी जो गठबंधन राजनीति की कला को समझते थे''।[8]

इस प्रकार 1967 से लेकर वर्तमान तक भारत में बनने वाली गठबंधन सरकार की कमोवश यही विशिष्टताएँ रहीं। बहुत दिनों तक कांग्रेस गठबंधन की संस्कृति को नकारती रही लेकिन संप्रग के निर्माण के साथ ही कांग्रेस ने भी इसे लगभग स्वीकार कर लिया है। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) इस स्थिति को पहले ही समझ चुकी थी। भारत में गठबंधन सरकार के चरणों की विवेचना निम्न प्रकार से की जा सकती हैः

igyk pj.k ¼1967&71½& jkT;k esa xBc/ku ljdkj dh 'k:vkr& 1967 का काल भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इस वर्ष कांग्रेस के आधिपत्य को धक्का लगा और राज्य स्तरीय राजनीति से कांग्रेस के बेदखली की शुरूआत हुई। 16 राज्यों में से आठ राज्यों में कांग्रेस सत्ताच्युत हो गई और नये-नये

क्षत्रपों ने इन राज्यों के शासन-सत्ता की बागडोर अपने हाथों में ले ली। कांग्रेस के पारंपरिक प्रभुत्व को चुनौती मिली तथा प्रारंभिक सहयोगी संघवाद से अब भारत प्रतिस्पर्द्धी संघवाद की ओर अग्रसर हो गया। 20 वर्षों तक कांग्रेस बिना किसी प्रतिरोध के केन्द्र तथा प्रांतों के स्तर पर लगभग बहुमत प्राप्त करती रही। 1967 से पूर्व इसे मात्र दो बार सरकार बनाने के लिए गठबंधन करना पड़ा तथा मात्र पांच बार राज्यों में मध्यावधि चुनाव कराने पड़े, जिसमें से तीन बार केरल में ही हुए।[9] आठ राज्यों में गैर-कांग्रेस राज्यों की स्थापना ने नए युग को प्रारम्भ किया।

चतुर्थ आम चुनावों (1967) में विपक्ष ने राम मनोहर लोहिया की प्रसिद्ध रणनीति के तहत आपसी टकराव से बचने के लिए युनाईटेड फ्रंट (United Front) की नीति अपना ली साथ ही इंदिरा गांधी के कांग्रेस पर नियंत्रण करने के प्रयास ने कांग्रेस के अंदर एक संग्राम को जन्म दे दिया था। इन अंतर्दलीय संघर्षों (intra-party conflicts) के कारण कांग्रेस की साख को धक्का लगा। कांग्रेस के इस संग्राम ने आम जन-मानस को अन्य दलों के विषय में सोचने का मौका दिया। विपक्षी दलों की क्षमता में विस्तार हुआ और वे चतुर्थ आम चुनावों में चुनौती प्रस्तुत करने में सफल रहे। इंदिरा के नेतृत्व में कांग्रेस अपने संघीय स्वरूप को खोती जा रही थी तथा अब यह संस्थाकृत कम तथा केन्द्रीकृत व व्यक्तिनिष्ठ अधिक होती जा रही थी। इस बात की चर्चा कई विचारकों ने अपने-अपने तरीके से बार-बार की है।[10] इन्हीं परिस्थतियों में उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाज पार्टी का उदय हुआ। इनके अलावा स्वतंत्र पार्टी, जनसंघ (जिसका नाम अब भारतीय जनता पार्टी है) ने तथा फिर जनता दल व उससे टूटे अन्य दल, कांग्रेस से टूटे दल, वामपंथी दल तथा अन्य क्षेत्रीय दलों ने अपना आधार मजबूत कर लिया।

1969 में इंदिरा सरकार में इंदिरा समर्थक 'सरकार में कांग्रेस' तथा 'कांग्रेस-सिंडिकेट' के बीच संघर्ष प्रारम्भ हो गया जो कांग्रेस के विभाजन में परिणत हुआ। इस विभाजन ने कांग्रेस को दो भागों में बांट दिया-कांग्रेस (इंदिरा) तथा कांग्रेस (ओ)। कांग्रेस इंदिरा के पक्ष में 222 सांसद आए जबकि कांग्रेस (ओ) के पक्ष में मात्र 65 सांसद आए। वामपंथी दल तथा कुछ अन्य दलों के साथ साझा करके इंदिरा ने सरकार तो बना ली किन्तु दिसम्बर 1970 में मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर दी गई।[11] 1971 के चुनावों में कांग्रेस (ओ), जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी तथा एस.एस.पी. ने मिलकर ''ग्रैंड अलायंस'' का निर्माण किया पर असफल रहे और गठबंधन बिखर गया।[12]

nljk pj.k ¼1977-79½& dUnz dh Lrj ij xBc/ku ljdkj dk :i esa turk ikVhZ dk mn;;– 1971 के लोकसभा चुनावों में अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद इंदिरा ने 1972 के विधानसभा चुनावों में भी जबर्दस्त वापसी की। लेकिन यह स्थिति छठे आम चुनावों (1977) में उलट गई। लगातार 30 वर्षों के कांग्रेसी शासन के उपरान्त छठे आम चुनावों में कांग्रेस की हार ने भारतीय दलीय व्यवस्था का स्वरूप

ही बदल दिया। जनता पार्टी का अभ्युदय 1971 के ''ग्रैंड अलायंस'' की भांति कांग्रेस का विरोध मात्र ही नहीं था बल्कि कांग्रेस के तानाशाही स्वरूप का सभी संगठित होकर विरोध करना चाहते थे। इस प्रकार कांग्रेस (ओ), भारतीय लोक दल, जनसंघ तथा स्वतंत्र पार्टी जैसे राजनीतिक दल जनता पार्टी के संघटक बने। विपक्ष की एकजुटता ने जनसमूह को कांग्रेस के विरूद्ध कर दिया। परिणामस्वरूप छठे लोक सभा चुनावों सहित 10 राज्यों में से आठ राज्यों के विधानसभा चुनावों में भी कांग्रेस को पराजय का सामना करना पड़ा।

1977 के चुनावों ने भारतीय दलीय व्यवस्था में एक-दलीय प्रभुत्व व्यवस्था का अंत कर 'द्वि-दलीय व्यवस्था' की शुरूआत कर दी। 17 प्रमुख राज्यों में से 12 राज्यों में इन्हीं दोनों दलों (कांग्रेस एवं जनता पार्टी) का या इनमें से कोई एक दल प्रमुख था। सिर्फ पांच राज्यों में द्वि-दलीय व्यवस्था स्पष्ट रूप से नहीं उभर पाई थी।[13] 1977 के चुनाव परिणाम को कांग्रेस की तानाशाही के विरूद्ध भारत की जनता की प्रतिक्रिया का प्रतिफल माना जाता है। जनता पार्टी मजबूत होकर उभरी फिर भी कांग्रेस कमजोर होकर अभी मरणासन्न नहीं हुई थी।[14] यह भारत में उभरती द्वि-दलीय व्यवस्था की छवि प्रस्तुत कर रही थी।

rhljk pj.k ¼1989-1999½& dUnzh; Lrj ij jk"Vªh; ny dk urRo e{k=h; nyksa dh xBc/ku ljdkj– 1989 में हुए नौवें लोक सभा चुनाव से लेकर 1998 में हुए 12वीं लोक सभा चुनाव तक दलीय व्यवस्था अपने एक दल प्रधान की व्यवस्था प्राप्त नहीं कर सकीं। भाजपा की लगातार मजबूत होती स्थिति तथा कांग्रेस में आ रही लगातार गिरावट ने द्वि-दलीय अवस्था की संभावना को बल प्रदान किया। किन्तु 2009 के 15वीं लोक सभा चुनाव तक न ही भाजपा न ही कांग्रेस बहुमत ला पाई। उनकी इसी असफलता तथा उत्पन्न हुई 'रिक्तता' ने क्षेत्रीय दलों को आगे आकर राष्ट्रीय स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने का अवसर दिया। इस दौरान बड़े दल छोटे दलों को सरकार बनाने के लिए बाहर से समर्थन देते नजर आए। चाहे वह 1990 में कांग्रेस द्वारा बाहर से दिए गए समर्थन से बनी सरकार हो या 1996 से 1998 तक एच.डी.देवगौड़ा व आई.के.गुजराल के नेतृत्व वाली संयुक्त मोर्चे (United Front) की सरकार, छोटे दलों के गठबंधन को बड़े दल का बाहर से समर्थन प्राप्त हुआ। किन्तु ऐसी कोई भी सरकार अपने कार्यकाल का एक वर्ष भी पूरा नहीं कर सकी। इसलिए आलोचकों ने गठबंधन सरकार के अस्थायित्व की आलोचना भी की।

1989 का आम चुनाव दलीय व्यवस्था में गठबंधन सरकार की विफलता के रूप में जाना जाता है। ई. श्रीधरन का मानना है कि 1889 का चुनाव परिणाम मात्र 1977 के कांग्रेस विरोधी गठबंधन की पुनरावृत्ति नहीं है बल्कि यह तो भारतीय दलीय व्यवस्था में एक दूरगामी विस्थापन है, जिसकी जड़े राजनीतिक संरचनाओं में परिवर्तन, राज्यों की संख्या में वृद्धि, मतदान व्यवहार में अंतर, आर्थिक व सामाजिक संरचनाओं

में परिवर्तन आदि में जमे हुए हैं।[15] 1989 से 1999 के 11 वर्षों के दौरान कई ऐसे नए मुद्दे उभर कर सामने आए जिसकी अब तक भारतीय राजनीति में अपनी महत्ता नहीं थी। इस दौरान कांग्रेस क्रमिक रूप से पतन तथा भाजपा एवं क्षेत्रीय व राज्य आधारित दलों का उदय महत्वपूर्ण परिवर्तन है।[16]

लगातार परिवर्तित इस व्यवस्था में दो सबसे बड़े दल कांग्रेस तथा भाजपा दिखाई देते हैं। किन्तु ये दोनों दल अभी तक दलीय व्यवस्था को द्वि-दलीय व्यवस्था का स्वरूप प्रदान कर पाने के असफल रहे हैं परिणामतः कई छोटे दलों को उभरने का मौका मिला।

1989-1998 काल में अल्पमत या अस्थिर गठबंधन सरकारें:

दिसम्बर 1989 से 10 नवम्बर 1990– वी.पी.सिंह के नेतृत्व वाली अल्पमत गठबंधन सरकार जो कि वामपंथी तथा भाजपा के बाह्य समर्थन से अस्तित्व में आई और भाजपा के समर्थन वापसी से गिर गई।

10 नवम्बर 1990 से 21 जून 1991– कांग्रेस के बाह्य समर्थन से चन्द्रशेखर के नेतृत्व में बनी अल्पमत गठबंधन सरकार जो कांग्रेस द्वारा समर्थन वापसी से गिर गई।

21 जून 1991 से 31 दिसम्बर 1993– नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस की अल्पमत सरकार जो 1993 तक अविश्वास प्रस्ताव न लाए जाने की स्थिति में अल्पमत होते हुए भी चलती रही तथा अविश्वास प्रस्ताव लाए जाने पर बहुमत प्राप्त करने में सफल रही।[17]

1 जून 1996 से 21 अप्रैल 1997 से 28 नवम्बर 1997– क्रमशः देवगौड़ा तथा गुजराल के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की अल्पमत गठबंधन सरकार। दोनों कांग्रेस के बाह्य समर्थन से बनी तथा कांग्रेस के समर्थन वापसी के कारण अल्पकालिक रही।

19 मार्च 1998 से 17 अप्रैल 1999– भाजपा नेतृत्व वाली अल्पमत गठबंधन सरकार जो तेलगुदेशम, तृणमूल कांग्रेस तथा अन्य के बाह्य समर्थन से चली तथा अन्नाद्रमुक के समर्थन वापसी के कारण 13 महीनों में ही गिर गई। वाजपेयी ने 12 अक्टूबर 1999 तक कार्यवाहक प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया।

pkFkk pj.k ¼1999&2019½& f}-/kqoh; xBc/ku 0;oLFkk dh vkj– 1989-98 के काल में दल टूट रहे थे तथा गठबंधन बिखर रहे थे। कोई भी गठबंधन लम्बे समय तक टिक नहीं रहा था। किसी दल विशेष के विरोध के अलावा और कोई ऐसा मुद्दा नहीं था जो गठबंधन के घटक दलों को आपस में जोड़े। दलों के बीच किसी साझा कार्यक्रम पर सहमति के प्रयास नहीं हो पा रहे थे। 1998 में हुए 13वें लोक सभा चुनावों के बाद राजग पुनः सत्ता में आई। राष्ट्रीय स्तर पर आए गठबंधन में यह गठबंधन अद्वितीय था।

यद्यपि राजग का विकास मुख्यतः कांग्रेस विरोधी विचार के साथ हुआ, तथापि इसने अलग विचार रखने वाले क्षेत्रीय दलों को लामबंद करते हुए एक अलग विचार-व्यवस्था का निर्माण किया। 24 दलों वाली गठबंधन ने सरकार के लिए निर्धारित कार्यकाल (1999-2004) को पूरा किया।[18] यह गैर-कांग्रेसी दलों द्वारा केन्द्र के स्तर पर स्थायी रूप से कार्यकाल पूरा करने वाली पहली सरकार बनी। इस प्रकार राजग ने केन्द्र के स्तर पर गठबंधन की व्यवस्था को वास्तविक स्वरूप प्रदान कर ऐतिहासिक बना दिया।

कांग्रेस ने भाजपा से सीख लेते हुए 2004 के चौदहवीं लोक सभा चुनाव में गठबंधन राजनीति को आत्मसात किया। साथ ही, अपने अभी तक के अकेले सत्ता में आने की मनोवृत्ति का त्याग किया। कांग्रेस ने 2004 से पूर्व तक सत्ता में आने के लिए गठबंधन को स्वीकार नहीं किया था। अतः उसने समान विचार वाले दलों के साथ साझा कर सत्ता में आने को ही उचित समझा। इसी आधार पर 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी। यद्यपि संप्रग का गठबंधन वास्तविक रूप से चुनाव के बाद ही विकसित हो सका तथापि कांग्रेस ने तमिलनाडु, बिहार, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, जम्मू और कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय दलों के साथ चुनावी समझौते किए जो सकारात्मक रही। संप्रग ने पिछली राजग सरकार की तरह अपने पांच वर्ष के कार्यकाल को न केवल सफलतापूर्वक पूरा किया बल्कि 2009 में संपन्न 15वीं लोक सभा के चुनाव में भी बहुमत हासिल किया और अक्टूबर 2012 में ममता बनर्जी के डीजल और रसोई गैस के मूल्य बढ़ाने तथा खुदरा व्यापार में विदेशी निवेश के मुद्दों पर समर्थन वापस लेने के बावजूद सपा तथा बसपा के बाहरी समर्थन से सरकार के अस्तित्व को बनाए रखा।

2014 में सम्पन्न 16वीं लोक सभा का चुनाव परिणाम भाजपा के नेतृत्व में (राजग) के पक्ष में रहा। संप्रग-2 के कार्यकाल में बढ़ती महंगाई एवं भ्रष्टाचार के आरोपों ने राजग की सत्ता में वापसी को आसान कर दिया। भाजपा, प्रधानमंत्री के रूप में नरेन्द्र मोदी को आगे बढ़ाने में सफल रही और अपने बूते बहुमत के आंकड़े को पार करती हुई 282 सीटें जीतने में सफल रही। 1984 (लगभग 30 वर्षों के अंतराल) के बाद यह पहला मौका था जब केन्द्र में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत मिला। अपने बूते बहुमत प्राप्त करने के बाद भी भाजपा ने राजग की गठबंधन सरकार के निर्माण में ही दिलचस्पी दिखाई। इसलिए 2014 में बनी केन्द्र की सरकार बहुमत प्राप्त भाजपा की गठबंधन सरकार के रूप में ही जानी जाती है। भाजपा ने गठबंधन के सहयोगियों को कैबिनेट में स्थान देकर द्वि-गठबंधनीय पद्धति को ही बरकरार रखा।

मई 2019 में सम्पन्न 17वीं लोकसभा का चुनाव परिणाम भी राजग के पक्ष में रहा। पुनः एक बार भाजपा अपने पिछले प्रदर्शन को उन्नत करते हुए 303 सीटों पर अकेले विजय प्राप्त की जबकि राजग के कुल सीटों की संख्या 350 के ऊपर रही। केन्द्र में

एक बार पुनः राजग की सरकार का गठन हो चुका है जो भाजपा के गठबंधन की अपरिहार्यता की समझ को दर्शाता है।

1999 से लेकर 2019 के चुनावों में भारतीय राजनीतिक क्षीतिज पर गठबंधन सरकार का दौर रहा। वर्तमान संदर्भ में तीसरे मोर्चे की परिचर्चा चलती रहती है पर द्वि-गठबंधनीय पद्धति को सतह पर देखा जा सकता है। केन्द्र की सत्ता तथा अधिकांश राज्यों की सत्ता पर द्वि-गठबंधन का सत्तारूढ़ होना यह इंगित करता है कि वर्तमान समय में द्वि-गठबंधनीय व्यवस्था ने भारतीय राजनीतिक प्रणाली पर अपनी पकड़ मजबूत कर ली है। यही कारण है कि 2014 एवं मई 2019 में स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने के बावजूद भाजपा द्वारा गठबंधन सरकार की परम्परा को बरकरार रखा गया।

गठबंधन सरकार में स्थायित्व

लोकतांत्रिक प्रक्रिया के सफल संचालन के लिए जरूरी है कि जनता के द्वारा चुने गए प्रतिनिधि व्यापक सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक एवं राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए सरकार निर्माण की प्रक्रिया में अपनी सकारात्मक भागीदारी सुनिश्चित करेगें। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में जहाँ हर क्षेत्र में विविधता मौजूद है, जनप्रतिनिधियों से अपेक्षाएँ ज्यादा है। लेकिन न ही राजनीतिक दल और न ही जनप्रतिनिधि अपेक्षाओं को पूरा करने में समर्थ हो रहे हैं।

1951-52 से लेकर 1967 तक राजनीतिक व्यवस्था में एक दल की प्रधानता बनी रही लेकिन जन अपेक्षाएँ पूरी नहीं हो सकीं। 1967 के बाद की राजनीतिक व्यवस्था में गठबंधन सरकार का चलन शुरू हुआ लेकिन कुछ को छोड़कर अधिकांश गठबंधन सरकारें अपने स्थायित्व के लिए ही संघर्ष करती रहीं। 1977,1989,1996 के गठबंधन सरकारों के अनुभव यह बताते हैं कि गठबंधन सरकार स्थिर नहीं होती है और अगर स्थायित्व है भी तो गठबंधन में शामिल दलों के अपने संकुचित हितों के कारण सरकार इच्छित परिणाम नहीं दे पाती जैसा कि संप्रग-2 में देखने को मिला।

1967 के बाद जाति, साम्प्रदायिक संबद्धता, भाषायी संबद्धता, क्षेत्रीय संबद्धता, आपराधिक छवि, धनबल, बाहुबल, चुने जाने की प्रबल संभावना चाहे उम्मीद्वारों की छवि कैसी भी हो इत्यादि जैसे कारकों ने चुनाव परिणामों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जाति इतनी महत्वपूर्ण हो गई कि जातीय आधार पर राजनीतिक दलों का निर्माण होने लगा। जैसा कि सी. पी. शाम्भरी का कहना है, ''संसद और विधानसभा के चुनावों में उम्मीद्वारों के जीतने की क्षमता का अध्ययन निर्वाचन क्षेत्रों की जातीय संरचना अथवा धार्मिक संरचनाओं, उम्मीद्वारों की पृष्ठभूमि इत्यादि के आधार पर होने लगा''।[19] इस प्रकार गठबंधन की सरकार में सांप्रदायिक, क्षेत्रीय तथा जातीय तत्व हावी होने लगे जिससे इसके स्थायित्व को खतरा पहुँचा। पामर के शब्दों में, ''उत्तर-दक्षिण, क्षेत्रीय और भाषायी समूह, साक्षर और निरक्षर, शहरी और ग्रामीण,

सांप्रदायिक और जातीय समूह के बीच भेद-भाव ने राजनीतिक जीवन और बर्ताव पर गहरा प्रभाव डाला''।[20] जाहिर है कि राजनीतिक जीवन में इस तरह के विचारों का गठबंधन की सरकार के स्थायित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में गठबंधन की सरकार हमेशा अविश्वास, शत्रुता और दोषारोपण के वातावरण से घिरी रहेगी।

राजनीतिक मोर्चे के निर्माण में अक्सर अवसरवादिता देखी जाती है। मोर्चे के संघटकों में गठबंधन को नेतृत्व प्रदान कर रहे नेता के प्रति संयुक्त जिम्मेवारी तथा इच्छाशक्ति का भी अभाव होता है। कोई दल विपक्ष में तभी तक एकीकृत बना रहता है जब तक वो सत्तासीन सरकार को अपदस्थ न कर दे। पुनः जब वही विपक्ष सरकार में शामिल होती है तब गठबंधन के सहयोगियों के बीच असहमति सतह पर आ जाती है जिससे सरकार का स्थायित्व खतरे में आ जाता है।

सरकार गिराने का खेल और दल-बदल की राजनीति भी गठबंधन सरकार के स्थायित्व के लिए चुनौती है। दल-बदल का खेल कोई वैचारिक धरातल पर नहीं होता है बल्कि यह नेताओं की व्यक्तिगत इच्छा, गुटबाजी तथा निराशा की स्थिति में होता है। आंकड़ों पर नजर डाले तो 1967 के बाद लगभग 700 से अधिक विधायकों ने अपने राजनीतिक निष्ठा को पल भर में ही बदल डाला। अंदर अथवा बाहर से सरकार को समर्थन दे रहे दल/दलें अपने स्वार्थ को पूरा न होते देख तुरन्त समर्थन वापसी की घोषणा कर देते हैं और सरकार का अस्तित्व ही खत्म हो जाता है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में पनप रही कुछ ऐसी कुरीतियाँ गठबंधन सरकार के स्थायित्व पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देती हैं।

गठबंधन की सरकार का प्रशासन पर प्रभाव

प्रशासन की कार्यक्षमता का उन्नयन बहुत हद तक सरकार के स्थायित्व अथवा गठबंधन के सहयोगियों के बीच तालमेल पर निर्भर करती है। गठबंधन की सरकार में प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर बनी रहती है जिसके कारण प्रशासन पर उनका नियंत्रण ढीला बना रहता है। सभी दल गरीबों के मसीहा बन जाते हैं तथा लोक-लुभावन नीतियों को लागू करवाने के लिए सरकार पर अनावश्यक दबाव डालते हैं। प्रशासनिक स्तर पर इसे लागू करना कठिन होता है फिर भी सरकार के बचाने के लिए ऐसा करना बाध्यता हो जाती है। इसका प्रशासन की दक्षता और कार्यकुशलता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

भारत जैसे देश में प्रतिबद्ध नौकरशाही के की अवधारणा के कारण नौकरशाह (स्थायी कार्यपालिका) सरकार की नीतियों को लागू करवाने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं चाहे नीतियाँ कितनी भी अव्यवहार्य अथवा लोक कल्याण से विमुख हों। गठबंधन की सरकार ने प्रशासनिक कार्यकरण में नौकरशाही की पारदर्शिता को बुरी तरह से

प्रभावित किया है। यह चिंता का विषय है कि नौकरशाह आजकल अपनी स्वामिभक्ति किसी विशेष राजनीतिज्ञ अथवा समूह के साथ प्रदर्शित करते हैं ताकि वैसे राजनीतिज्ञ अथवा दल जब सरकार में आए तो स्वामिभक्ति की कीमत हासिल की जा सके। नौकरशाही में पनप रही इस तरह की प्रवृत्ति ने प्रशासन में वस्तुनिष्ठा एवं कानून के शासन का क्षरण किया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि मंत्रियों (राजनीतिक कार्यपालिका), नौकरशाहों एवं अपराधियों के बीच अंतर्बधन हो गया है।[21] 1975-77 की अवधि में बहुत से प्रशासकों पर अपनी सीमा से बाहर जाकर कार्य करने के आरोप लगे। नागरिक अधिकारों का हनन किया गया। न्यायाधीश शाह ने भी लिखा है कि लोक सेवकों को अपने देश-समाज के हित में कार्य करना चाहिए न कि संकीर्ण राजनीतिक हितों के लिए।[22]

गठबंधन की सरकार में प्रशासन में भ्रष्टाचार की मात्रा में बढ़ोतरी हुई है। आए दिन नौकरशाहों एवं राजनीतिज्ञों के काले कारनामें समाचार पत्रों की सुर्खियों में रहते हैं। कई लेखकों का कहना है कि अन्य विकासशील देशों की तरह भारत में भी नौकरशाही कमजोर तथा अस्थिर राजनीतिक व्यवस्था के कारण प्रशासन तंत्र का राजनीतिकरण हो गया है जो लोकतंत्र के आदर्श से अलग है।[23] इस प्रकार गठबंधन सरकारों का अनुभव प्रशासनिक दक्षता व कार्यकुशलता के विपरीत रहा है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत की संसदीय शासन व्यवस्था 'एकल दलीय आधिपत्य' वाली व्यवस्था से निकलकर द्वि-गठबंधनीय पद्धति को आत्मसात कर चुकी है जहां सत्ता के संघर्ष में दो मुख्य राष्ट्रीय दल-भाजपा और कांग्रेस हैं तथा अन्य क्षेत्रीय व राज्य स्तरीय दलें या तो भाजपा नीत राजग के साथ हैं या कांग्रेस नीत संप्रग के साथ हैं। 1967 के बाद से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में (कुछ वर्षों को छोड़कर) एकदलीय प्रणाली की बजाय गठबंधन प्रणाली का दौर शुरू हो चुका है। 1984 के बाद 30 वर्षों के अंतराल पर 2014 में किसी एक दल (भाजपा) को केन्द्र में स्पष्ट बहुमत (282 सीटें) प्राप्त हुई। पुनः अप्रैल-मई 2019 के आम चुनावों में भी भाजपा को पिछले चुनावों की तुलना में ज्यादा सीटें (303) मिली फिर भी राजग की निरंतरता बनी रही जो द्वि-गठबंधनीय पद्धति के विकास और परिपक्वता का द्योतक है। 2014 के पूर्व संप्रग-1 एवं संप्रग-2 इसी पद्धति का अनुसरण कर सफलतापूर्वक अपने कार्यकाल को पूरा कर चुकी है।

हालाँकि गठबंधन की सरकार राजनीतिक बाध्यता का प्रतिफल है फिर भी वर्तमान परिस्थिति में अपरिहार्य है। राजनीतिक दल भी इसकी अपरिहार्यता को समझ चुके हैं। गठबंधन सरकार के संचालन में जो सबसे बड़ी बाधा है वो है गठबंधन के सहयोगी दलों के बीच तालमेल का अभाव एवं पदलोलुपता की भावना। जब गठबंधन के

सहयोगी दलों के तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति नहीं हो पाती है तब वे समर्थन वापसी की धमकी देकर सरकार के स्थायित्व की समस्या पैदा करते हैं। अतः गठबंधन सरकार का संचालन बहुत हद तक राजनीतिक नेतृत्व के दिल और दिमाग की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। केन्द्र के स्तर पर एक दल की सरकार अब मिथ्या धारणा बन चुकी है और निकट भविष्य में ऐसा संभव भी नहीं लगता है। क्षेत्रीय व राज्य स्तरीय दलों की क्षमता में 1967 के बाद लगातार बढ़ोतरी हुई है और वे राष्ट्रीय दल के साथ मिलकर केन्द्र की सत्ता में भी भागीदारी कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी राष्ट्रीय दल अपने जनाधार में कटौती की बात सोच भी नहीं सकता है। यही कारण है कि 2014 एवं 2019 के आम चुनावों में अकेले भाजपा को स्पष्ट बहुमत के बाद भी राजग का अस्तित्व बना हुआ है। एक समान विचारधारा एवं न्यूनतम साझा कार्यक्रम (सी.एम.पी.) के आधार पर गठबंधन की सरकार में स्थायित्व की समस्या का भी समाधान ढूंढ़ा जा सकता है और भारत की संसदीय शासन प्रणाली को एक नई दिशा दी जा सकती है।

संदर्भ

1. चक्रवर्ती, विद्युत, *कोइलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया,* नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014, पृ. XVII.
2. वही.
3. गैमसन, विलियम ए., ''एक्सपेरिमेंटल स्ट्डीज ऑफ कोइलिशन फॉरमेशन'', लियोनार्ड बर्कोवीज (संपा.), *एडवांसेज इन एक्सपेरिमेंटल सोशल साइकोलॉजी,* न्यूयार्कः एकेडेमिक पब्लिकेशन्स, 1964.
4. राइकर, विलियम एच., *द थ्योरी ऑफ पॉलिटिकल कोइलिशन्स,* लंदनः येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1962, पृ. 12.
5. *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज,* वोल. III, न्यूयार्कः मैकमिलन कं. एण्ड द फ्री प्रेस, 1968, पृ. 600.
6. *द हिन्दू,* कलकत्ता, सितम्बर 1999.
7. एल्डर्सबेल्ड, सैमुअल जे., *पॉलिटिकल पार्टीजः बिहैवियरल एनालिसिस,* शिकागोः रैण्ड मैक्नेल्ली एण्ड को., 1964, पृ. 6.
8. फिक, विक्टर एम., *इंडियाः केरल, येनान ऑफ इंडियाः राइज ऑफ कम्युनिस्ट पॉवर,* 1937-1969, बाम्बेः नचिकेता, 1970, पृ. 407.
9. शर्मा, एल. एन. एवं मुरारी, कृष्ण, *राजनीतिक समाजशास्त्रः 21वीं सदी के बदलते संदर्भ में,* नई दिल्लीः ओरियंट ब्लैकस्वॉन, 2014, पृ. 144.
10. हसन, जोया (संपा.), *पार्टिज एण्ड द पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया,* नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004, पृ. 10-11.
11. शर्मा, एल. एन. एवं मुरारी, कृष्ण, *उपरोक्त,* पृ. 145.
12. सिंह, एम. पी., *स्प्लिट इन ए प्रीडॉमिनेन्ट पार्टीः द इंडियन नेशनल कांग्रेस इन 1969,* नई दिल्लीः अभिनव पब्लिकेशन्स, 1981, पृ. 1-2.

13. शर्मा, एल. एन. एवं मुरारी, कृष्ण, *उपरोक्त,* पृ. 147.

14. मेन्डलसन, ऑलिवर, ''कॉलप्स ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस'', *पेसिफिक अफेयर्स,* वोल. 15, नं. 01, 1978, पृ. 41.

15. श्रीधरन, ई., ''द फ्रेगमेंटशन ऑफ द इंडियन पार्टी सिस्टम, 1952-1999'', हसन, जोया (संपा.), *उपरोक्त,* पृ. 485.

16. *वही.*

17. नरसिम्हा राव सरकार ने अविश्वास प्रस्ताव को 351 के मुकाबले 365 मतों से गिरा दिया। उन्हें मुख्य रूप से जे.एम.एम. तथा जनता दल (अजीत) के सांसदों का समर्थन प्राप्त हुआ। इन दलों के सरकार में शामिल हो जाने से सरकार अल्पमत से बहुमत में परिवर्तित हो गई।

18. शर्मा, एल. एन. एवं मुरारी, कृष्ण, *उपरोक्त,* पृ. 151.

19. शाम्भरी, सी. पी., *ब्यूरोक्रैसी एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया,* दिल्लीः विकास पब्लिकेशन्स, 1971, पृ. 10.

20. पामर, नार्मन डी., *द इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम,* लंदनः जार्ज एलेन एण्ड उनवीन लि., 1961, पृ. 3.

21. *बोहरा समिति प्रतिवेदन,* 1993.

22. शाह कमीशन रिपोर्ट, इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वोल. 36, नं. 3, 1990.

23. हक, एम.एस., ''द कन्टेक्स्टलेस नेचर ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन थर्ड वर्ल्ड कंट्रीज'', *इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव साईंसेज,* वोल. 62, नं. 3, 1996, पृ. 315–29.

वैचारिक प्रतिबद्धता और गठबंधन का स्थायित्व : भारतीय परिदृश्य

राजेंद्र कुमार पांडेय

lkjk'k *भारत में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा गठबंधनों के निर्माण, उनके उद्देश्य, गठबंधनों को बदलने की उनकी प्रवृत्ति तथा विभिन्न गठबंधनों के स्थायित्व पर दृष्टिपात करने पर हमारे समक्ष कुछ प्रश्न सहज ही उत्पन्न हो जाते हैं। उदहारण के लिए, गठबंधन बनते क्यों हैं? इनके निर्माण का आधार क्या होता है? कुछ गठबंधन क्षणभंगुर जबकि कुछ दीर्घकालिक क्यों होते हैं ? इस सन्दर्भ में प्रस्तुत पत्र जिस प्रश्न के विश्लेषण का प्रयत्न करता है वह है: क्या वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर बने गठबंधन अधिक स्थाई तथा दीर्घकालिक होते हैं ? गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित यह पत्र भारत के विभिन्न राजनीतिक गठबंधनों के निर्माण के कारक तत्वों का विश्लेषण कर इस परिकल्पना के सत्यापन का प्रयत्न है कि वैचारिक प्रतिबद्धता पर आधारित राजनीतिक गठबंधन तुलनात्मक रूप से अधिक स्थाई और उपादेयी होते हैं।*

प्रस्तावना

भारत में गठबंधन की राजनीति का इतिहास काफी दीर्घकालिक रहा है। 1960 के दशक से गठबंधन की राजनीति का जो क्रम विभिन्न राज्यों में आरम्भ हुआ था वह अंततः 1977 में केंद्रीय स्तर पर भी फलीभूत हो गया। अंततोगत्वा देश की राजनीति में एक ऐसा भी दौर आया जब गठबंधन की राजनीति ही देश की नियति प्रतीत होने लगी। 1990 के दशक से आरम्भ हुआ वह दौर आज भी अनवरत जारी है। लगभग 30 वर्ष के इस लम्बे कालखंड में केंद्रीय स्तर पर अनेक गठबंधनों का निर्माण हुआ, अनेक खंडित हुए, बहुत सारे राजनीतिक दल कभी इस गठबंधन में तो कभी उस गठबंधन का हिस्सा बनते रहे। हालाँकि पिछले लगभग 20 वर्षों के दौरान राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) तथा संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) नामक दो महत्वपूर्ण राजनीतिक गठबंधन देश की केंद्रीय राजनीति की धुरी बने हुए हैं, तथापि

कुछ अन्य राजनीतिक गठबंधन अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखकर देश की राजनीति में अपना योगदान देते रहे हैं ।

विषय की और अधिक स्पष्टता के लिए, सैद्धांतिक रूप से, इस शोध पत्र के दोनों मूलभूत चरों - वैचारिक प्रतिबद्धता तथा गठबंधन के स्थायित्व - को परिभाषित करना समीचीन प्रतीत होता है। 'वैचारिक' का अर्थ यहाँ 'विचारधारा' से लिया गया है जबकि 'प्रतिबद्धता' से अभिप्राय 'दीर्घकालिक अटूट विश्वास' से हैं। इस प्रकार वैचारिक प्रतिबद्धता से अर्थ किसी भी राजनीतिक दल के उस विचारधारा के प्रति दीर्घकालिक अटूट विश्वास से है जिसे आधार मानकर उस राजनीतिक दल का गठन अथवा निर्माण हुआ था। यहाँ विचारधारा का अर्थ उस संकुचित भाव से नहीं लिया गया है जिसमें विचारधारा को केवल उदारवादी और साम्यवादी तक ही सीमित कर दिया गया है। इसके विपरीत इस पत्र में विचारधारा को व्यापक अर्थ में लेते हुए यह माना गया है कि किसी भी प्रकार का क्रमबद्ध राजनीतिक विचार पुंज वस्तुतः एक विचारधारा ही होता है जो दीर्घकाल तक लोगों का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ उन्हें जीवन के प्रति ध्येयनिष्ठ बनाता है। इसी प्रकार, गठबंधन के स्थायित्व से तात्पर्य किसी राजनीतिक गठबंधन के पूर्णरूपेण अक्षुण्ण रहने से नहीं है। यहाँ गठबंधन के स्थायित्व से अर्थ एक विशिष्ट राजनीतिक गठबंधन के साथ किसी राजनीतिक दल के दीर्घकालिक जुड़ाव से है। दूसरे शब्दों में, आयाराम गयाराम की प्रवृत्ति के विपरीत यदि कोई राजनीतिक दल किसी विशिष्ट राजनीतिक गठबंधन के साथ लम्बे समय तक जुड़ा रहता है तो इसे उस गठबंधन का स्थायित्व माना जाता है । इस दोनों मूलभूत चरों के सैद्धांतिक गुणधर्मों की स्पष्टता के आधार पर पत्र में आगे भारत में राजनीतिक दलों की वैचारिक स्पष्टता और उसके अनुरूप विविध राजनीतिक गठबंधनों के स्थायित्व का साररूप विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

jk"Vªh; turkf=d xBc/ku ¼jkjx½

विचारधारा आधारित राजनीतिक गठबंधनों में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) वर्तमान समय में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है। न केवल यह गठबंधन वर्तमान में केंद्र सरकार का संचालन कर रहा है अपितु विविध राजनीतिक गठबंधनों में यह वैचारिक और सांगठनिक रूप से सर्वाधिक सशक्त है। इस गठबंधन का निर्माण 1998 के आम चुनाव से पूर्व भारतीय जनता पार्टी के पूर्व अध्यक्ष और प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में किया गया था। स्वाभाविक रूप से भाजपा नीत गठबंधन होने के कारण इसके विचारधारा का मूल आधार सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है जिसका सरलतम प्रकटीकरण धर्म और संस्कृति को राजनीति के केंद्र में मानकर चलना होता है। दूसरे शब्दों में, इसे उन दलों का गठबंधन माना जा सकता है जिनकी राजनीतिक विचारधारा दक्षिणपंथी है और धर्मनिरपेक्षवादियों की तरह धर्म और राजनीति में विभेद

करके राजनीति करने से कोई वास्ता नहीं है। आरम्भ में इस गठबंधन में कुल 13 राजनीतिक दल शामिल थे जिनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही है। आश्चर्यजनक बात यह है कि 17वें लोक सभा चुनाव के बाद हालाँकि भाजपा को संसद में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ है फिर भी गठबंधन धर्म के निर्वहन हेतु इस गठबंधन को अक्षुण्ण रखते हुए भाजपा ने इसके अहम् घटकों को सरकार में शामिल होने का अवसर प्रदान किया है और इस प्रकार यह गठबंधन निर्विवाद रूप से आज भी गतिमान है ।

विचारधारा के नाते राजग के स्वरूप का निर्धारण मूलतः भाजपा के वैचारिक अधिष्ठान से निर्धारित होता रहा है। भाजपा के बारे में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसका मूल वैचारिक स्वरूप दक्षिणपंथी है तथा भारतीय राष्ट्र के प्रति उसका दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष न रहकर धर्मयुक्त संस्कृतिमय रहा है। दूसरे शब्दों में, भाजपा का यह दृढ़ मत है कि भारत मूल रूप से एक धार्मिक तथा सांस्कृतिक समाज है जिसकी प्राणवायु हिन्दू धर्म में बसती है। अतः भारत की मूल आत्मा अर्थात हिन्दू धर्म तथा संस्कृति को समुचित स्थान दिए बिना भारतीय राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती है। भाजपा द्वारा प्रद्धत्त भारतीय राष्ट्र के इस स्वरूप से राजग के विभिन्न घटकों का पूर्णरूपेण सहमत होना आवश्यक नहीं है। इस दृष्टि से भाजपा राजग के अन्य घटकों को अपने वैचारिक अधिष्ठान को स्वतंत्र रूप से प्रतिस्थापित करने की स्वायत्तता प्रदान करती है। यही कारण है कि वैचारिक रूप से राजग का स्वरूप बदलते समय के साथ थोड़ा बहुत कठोर या शिथिल होता रहा है। इस दृष्टि से जहाँ वाजपेयी के कालखंड वाला राजग काफी हद तक अपने वैचारिक अधिष्ठान में लचीला रुख अपनाने के लिए विख्यात है वहीँ नरेंद्र मोदी के कालखंड वाला राजग अपने वैचारिक अधिष्ठान में काफी कड़ा रुख कायम किये हुए है। वर्तमान समय में इस स्थिति में और अधिक कड़ापन आने की संभावना हो सकती है क्योंकि भाजपा अब सरकार के अस्तित्व के लिए राजग के अन्य घटक दलों पर निर्भर नहीं है। इस स्थिति में राजग का हिस्सा बने लगभग हर दल को कमोबेश दक्षिणपंथी विचारधारा के साथ-साथ सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विचारधारा का प्रत्यक्ष या परोक्ष वाहक बनाना पड़ेगा।

13 दलों के गठबंधन के साथ आरम्भ हुई राजग की यात्रा एक समय ऐसे मुकाम पर भी पंहुची थी जहां इसके घटक दलों की संख्या 33 तक पहुँच गई थी। ये भी कह सकते हैं कि आज की तरह जब भाजपा का विराट अखिल भारतीय स्वरूप नहीं हुआ था तब राजग के द्वारा ही भाजपा सरकार को अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त हुआ था। देश के विभिन्न कोनों से छोटे-छोटे राजनीतिक दलों को अपने साथ मिलाकर भाजपा एक ऐसे वटवृक्ष रूपी गठबंधन की रचना करने में सफल हुई थी जिसकी पहुँच कमोबेश देश के लगभग हर हिस्से तक हो गई थी। परन्तु शनैः शनैः अधिकतर राजनीतिक दल एक-एक कर के राजग गठबंधन से विदा होते रहे और उन्होंने या तो

अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखा अथवा प्रतिद्वंदी राजनीतिक गठबंधन में शामिल हो गए। अतः यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से खड़ा होता है कि आखिर विभिन्न राजनीतिक दल राजग गठबंधन को क्यों छोड़ते रहे और उनके दूसरे गठबंधन में शामिल होने का क्या कारण रहा? इस प्रश्न के विविध संभावित उत्तरों का विश्लेषण करने पर हमें अनेक ऐसे कारक पता चलते हैं जिनके माध्यम से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि वैचारिक प्रतिवद्धता विभिन्न राजनीतिक दलों के राजग गठबंधन में बने रहने का प्रमुख कारण रहा।

राजग के निर्माण के समय इसमें शामिल बड़े राजनीतिक दलों में प्रमुख रूप से नेशनल कांफ्रेंस, द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम, तृणमूल कांग्रेस, समता पार्टी (बाद में जनता दल यूनाइटेड), इंडियन नेशनल लोक दल, तेलंगाना राष्ट्र समिति, बीजू जनता दल, राष्ट्रीय लोक दल, शिव सेना, शिरोमणि अकाली दल, जनता दल (सेक्युलर), तेलुगु देशम पार्टी, जम्मू-कश्मीर पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, राष्ट्रीय लोक समता पार्टी, गोरखालैंड जनमुक्ति मोर्चा तथा सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट जैसे राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों को गिना जा सकता है। राजग के निर्माण के समय हालाँकि ये सारे दल उसके घटक नहीं बने थे किन्तु उनकी दृष्टि इस कांग्रेस विरोधी गठबंधन पर बराबर बनी हुई थी। किसी भी प्रकार की वैचारिक प्रतिबद्धता के बजाय इनमें से अधिकतर दलों का ध्यान विशुद्ध राजनीतिक नफा नुकसान पर था। वे इसी उधेड़बुन में थे कि राजग में शामिल होने पर उन्हें क्या नफा और क्या नुकसान हो सकता है । परन्तु कालांतर में जब उन्हें लगा कि इस नवीन राजनीतिक गठबंधन में शामिल होने में ही उन को फायदा है तो अधिकतर गैर कांग्रेसी दल एक एक कर के राजग में शामिल होते गए और यह गठबंधन देश का सबसे बड़ा गठबंधन बन गया। इन दलों के राजग में शामिल होने के तीन प्रमुख कारण माने जा सकते हैं।

प्रथम, राजग में शामिल लगभग सभी दल या तो कांग्रेस पार्टी से टूट कर अलग दल के रूप में अस्तित्व में आये थे या उनका जन्म कांग्रेस विरोध के कारण हुआ था। अतः चूँकि राजग कांग्रेस विरोधी धुरी के रूप में स्थापित हुआ था, इसलिए कांग्रेस विरोधी लगभग सभी दल क्रमशः राजग के घटक बनते चले गए। इस प्रकार के दलों में द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम, तृणमूल कांग्रेस, समता पार्टी (बाद में जनता दल यूनाइटेड), इंडियन नेशनल लोक दल, तेलंगाना राष्ट्र समिति, बीजू जनता दल, राष्ट्रीय लोक दल प्रमुख हैं। इन दलों का कांग्रेस विरोध इसलिए था क्योंकि कांग्रेस अखिल भारतीय प्रभुत्व वाली पार्टी थी और वह इन दलों की क्षेत्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक बन रही थी। किन्तु धीर-धीरे जब भाजपा कांग्रेस के स्थान पर वह स्थान प्राप्त करने की और अग्रसर होने लगे, इन दलों के मन में भाजपा के प्रति भी वितृष्णा का भाव उत्पन्न होने लगा और उन्हें राजग को तिलांजलि देना ही उचित लगा। चूँकि इनमें से अधिकतर दलों का निर्माण विशुद्ध रूप से कांग्रेस के विरोध में हुआ था और इन्हें किसी विशिष्ट

राजनीतिक विचारधारा से कोई ज्यादा लेना देना नहीं था अतः इन्हें भाजपा किसी भी प्रकार से अस्पृश्य नहीं लगती थी। या यों भी कह सकते हैं कि राजग में शामिल होने के इनके निर्णय में विचारचरा जनित प्रश्नों का दूर दूर तक कोई वास्ता नहीं था। इस गठबंधन में ये क्योंकि विशुद्ध स्वार्थ पूर्ति हेतु आये थे, अतः इनके स्वार्थों की जिस दिन से सिद्धि होनी कम या बंद हो गई, इन्हें राजग को छोड़ने में कोई गुरेज नहीं हुआ।

द्वितीय, कई दल अपने क्षेत्रीय राजनीतिक समीकरणों के चलते उस क्षेत्र के प्रभावी राजनीतिक दल से अलग मार्ग की तलाश कर रहे थे। अतः जब राजग का गठन एक राष्ट्रीय राजनीतिक इकाई के रूप में हुआ तो उन्हें इसमें शामिल होने में फायदे का सौदा ही प्रतीत हुआ। उदाहरण के लिए जम्मू-कश्मीर पीपल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, राष्ट्रीय लोक समता पार्टी, गोरखालैंड जनमुक्ति मोर्चा तथा सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट आदि। इन दलों के लिए राजग एक ऐसे छत्र के रूप में आया जिसकी छत्रछाया में ये दल अपने क्षेत्र के प्रभुत्व वाले दलों को ना केवल चुनौती दे सकते थे अपितु अपने लिए एक सम्मानजनक राजनीतिक जमीन का भी निर्माण कर सकते थे। किन्तु शनैः शनैः जब इन दलों को अपने क्षेत्रों में पर्याप्त राजनीतिक जमीन मिल गयी तो इन्हें अपने स्वतंत्र अस्तित्व को प्रबल बनाना अधिक महत्वपूर्ण लगने लगा ना कि राजग का हिस्सा बने रहना। इसलिए इनमें से कुछ दल भी कालांतर में राजग को छोड़कर अन्य गठबंधनों का हिस्सा बन गए। इन दलों का न तो कोई विशेष वैचारिक अधिष्ठान है न ही इन्हें किसी प्रकार की राजनैतिक विचारधारा से कोई लगाव या दुराव है। इनके लिए सर्वप्रमुख चिंता अपने क्षेत्र में राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना है। अतः कांग्रेस या क्षेत्रीय दल के विरोध में जब इन्हें राजग का साथ मिला तो इनको अपने अभीष्ट की प्राप्ति का मार्ग काफी सुगम लगने लगा और अंततः ये अपने क्षेत्रों के अग्रणी दल बन बैठे। तदुपरांत, इनको राजग में बने रहने का कोई वैचारिक या व्यावहारिक फायदा नहीं लगा और इन्होंने इस गठबंधन को तिलांजलि देना ही उचित समझा ।

तृतीय, इन दो विशुद्ध राजनीतिक गुणाभाग के अतिरिक्त राजग में कुछ ऐसे दल भी शामिल हुए जो भाजपा से अपनी वैचारिक नजदीकी के कारण पहले से भी उसके साथ किसी न किसी रूप में राजनीतिक भागीदारी बनाये हुए थे। ऐसे दलों में शिव सेना तथा शिरोमणि अकाली दल को शामिल किया जा सकता है। जहाँ शिव सेना महाराष्ट्र की एक बहुत प्रभावशाली क्षेत्रीय पार्टी है वहीं शिरोमणि अकाली दल पंजाब की सर्वप्रमुख राजनीतिक दल है। अपनी धर्म आधारित राजनीतिक विचारधारा के चलते इन दलों में भाजपा के साथ मिलकर काम करने में कोई हर्ज नहीं लगा। यही कारण था कि राजग के बनने से पहले भी भाजपा इस दलों के साथ राजनीतिक गठजोड़ बनाये हुए थी। हालाँकि इन दलों, विशेषकर शिव सेना के साथ भाजपा के संबंधों में कई बार उतार चढ़ाव आते रहे हैं किन्तु कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि दोनों दलों को अपने सम्बन्ध विच्छेद करने पड़े हों। दूसरे शब्दों में, भाजपा के साथ

अपने वैचारिक साम्य के चलते इन दलों को दो प्रकार की विशिष्ट परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। पहले तो, कई बार अपने प्रबल साथी से कुछ क्षेत्रों में प्रतिद्वंदिता के बावजूद इन दलों को वैचारिक साम्यता के कारण कुछ समझौते करने पड़े किन्तु इनके लिए अपने गठबंधन को तोड़ना समुचित प्रतीत नहीं हुआ। यही कारण है कि राजग की केंद्र में सरकार होने या न होने से इन दलों के भाजपा के साथ संबन्धों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और इनका साथ अनवरत बना रहा। इसके अतिरिक्त, इन दलों की राजनीतिक विचारधारा भाजपा की विचारधारा से इतनी अधिक मेल खाती है कि अन्य दलों अथवा गठबंधनों के लिए ये दल उतने ही अछूत बन गए हैं जितनी कि उनके लिए भाजपा है। अतः शिव सेना और शिरोमणि अकाली दल जैसे राजनीतिक दलों के लिए अन्य राजनीतिक गठबंधनों में कोई स्थान ही नहीं बचता है। इस प्रकार, वैचारिक प्रतिबद्धता इन दलों के लिए एक साथ वरदान तथा अभिशाप का कार्य करती है जिसके कारण विचारधारा आधारित राजग जैसे राजनीतिक गठबंधन हर प्रकार की परिस्थितियों को सम्यक रूप में झेलते हुए चिरजीवी बने रहने में सक्षम रहते हैं।

l;|ä çxfr'kh y xBc/ku ¼l|çx½

राजग के राजनीतिक विकल्प के रूप में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) का गठन 2004 के लोक सभा चुनाव के पश्चात हुआ था। इस चुनाव में राजग को हार का सामना करना पड़ा था। उस समय देश के राजनीतिक परिदृश्य में काफी राजनीतिक दल भाजपा के विरोधी हो गए थे और उनका भरसक प्रयास था कि किसी भी सूरत में राजग की सरकार दोबारा नहीं बननी चाहिए। इसलिए हालाँकि लोक सभा का चुनाव विभिन्न राजनीतिक दलों ने अलग अलग लड़ा था और अपने अपने दम पर लोक सभा की सीटों पर विजय प्राप्त की थी किन्तु भाजपा विरोध ने उन्हें एक ऐसे राजनीतिक गठबंधन के निर्माण के लिए प्रेरित किया जिसके द्वारा वे राजग को पुनः सत्ता में आने से रोक सकें। उस समय चूँकि कांग्रेस सबसे बड़े राजनीतिक दल के रूप में लोक सभा में स्थापित हुई थी अतः स्वाभाविक रूप से उसे ही भाजपा विरोधी इस राजनीतिक गठबंधन की धुरी बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गाँधी को इस राजनीतिक गठबंधन का अध्यक्ष मनोनीत किया गया और उन्हें ही यह जिम्मेदारी दी गई कि वे देश की अगली प्रधानमंत्री बने या किसी अन्य व्यक्ति को इस पद हेतु मनोनीत करें। इस प्रकार मनमोहन सिंह बिना कोई लोक सभा चुनाव लड़े देश के दस वर्षों तक प्रधानमंत्री बने रहे।

संप्रग के गठन के समय इसके घटकों की संख्या हालाँकि बहुत अधिक नहीं थी किन्तु कालांतर में इसमें नए-नए दल शामिल होते गए और एक समय ऐसा भी आया कि इसके घटक दलों की संख्या 36 तक पहुँच गई थी। इसमें शामिल होने वाले दलों

में कुछ ऐसे भी दल थे जो परंपरागत रूप से भाजपा विरोधी होने के कारण कभी भी राजग का हिस्सा नहीं रहे। किन्तु संप्रग में शामिल अधिकतर दल वे थे जो अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनी राजग की पिछली सरकार में शामिल हुए थे। अलग-अलग कारणों से ये दल चुनाव से ठीक पहले एक एक करके राजग से अलग होते गए और चुनाव बाद राजग विरोधी संप्रग के हिस्से बन गए। संप्रग में आरम्भ में शामिल होने वाले दलों में प्रमुख दल थेरू तेलंगाना राष्ट्र समिति, बहुजन समाज पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी), कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, जम्मू एंड कश्मीर पीपल्स डेमोक्रटिक पार्टी, पट्टाली मक्कल कच्ची, तृणमूल कांग्रेस, द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम, इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग आदि। इनमे से जहाँ कुछ दल सरकार का हिस्सा भी बने वहीं कई दलों ने सरकार के बाहर रहकर ही उसके समर्थन का निर्णय लिया। किन्तु इन सभी दलों का यह दृढ़ मत था की भाजपानीत राजग को *एनकेनप्रकारेण* सत्ता से बाहर रखा जाये। अतः संप्रग सरकार को अंदर या बाहर से समर्थन देना इन दलों की विवशता सी बन गई थी।

वैचारिक रूप से संप्रग वास्तव में देश की केंद्रीय - वामपंथी दलों का गठबंधन माना जा सकता है। इस सन्दर्भ में रोचक बात यह है कि इस गठबंधन के केंद्र में स्थित कांग्रेस पार्टी आरम्भ से ही देश की लगभग सभी विचारधाराओं, वर्गों तथा हितों का प्रतिनिधित्व और संरक्षण करती रही है। इस दल के संरक्षण से जहाँ एक ओर भारतीय संविधान को समाजवादी रंग में रंगने का प्रकल्प हुआ वहीं इसी पार्टी के प्रशय में देश में पूंजीवाद और सामंतवाद भी पुष्पित पल्लवित होते रहे हैं । इसलिए एक राजनीतिक दल के नाते कांग्रेस को किसी विचारधारा विशेष से जोड़ना उचित प्रतीत नहीं होता है। किन्तु संप्रग के निर्माण की परिस्थितियां कुछ ऐसी थीं कि भाजपा के दक्षिणपंथ के विरोध में अधिकतर विरोधी दलों को मजबूरन वामपंथ की ओर अपना रूझान करना पड़ा हालाँकि वे जन्मजात वामपंथी नहीं माने जा सकते हैं। उदहारण के लिए, बहुजन समाज पार्टी मूलरूप से एक जातिवादी पार्टी रही है जिसकी स्थापना ही समाज के एक वर्ग विशेष के हितों को संरक्षित करने के लिए किया गया था। इस पार्टी का किसी भी प्रकार की राजनैतिक विचारधारा से दूर-दूर तक कोई लेना देना नहीं है। इसका केवल एक ही मकसद रहा है कि कैसे समाज के अनुसूचित वर्ग के लोगों का राजनीतिक ध्रुवीकरण करके उत्तर प्रदेश में सत्ता प्राप्त की जा सके। किन्तु संप्रग में आने पर इसे भी वामपंथ का चोला पहनना पड़ा। फिर भी, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि राजग के दक्षिणपंथ के विरूद्ध संप्रग मूलतः एक वामपंथी दृष्टिकोण वाला केंद्रीय वैचारिक अधिष्ठान है ।

राजग विरोधी राजनीतिक ताकत के रूप में संप्रग का निर्माण जिस जोशोखरोश से किया गया था कुछ समय के उपरांत वह कमजोर पड़ता गया और धीरे-धीरे इसके घटक दल इसका साथ छोड़ने लगे। इस प्रक्रिया की शुरुआत सबसे पहले तेलंगाना

राष्ट्र समिति ने की जब उसने अलग तेलंगाना राज्य के मुद्दें पर इस गठबंधन का परित्याग कर दिया। तत्पश्चात एक-एक करके बाकी दलों ने भी या तो गठबंधन का पूर्ण परित्याग कर दिया अथवा सरकार से अलग होने का निर्णय लिया। विभिन्न दलों के संप्रग त्याग की प्रक्रिया का यदि वैचारिक अधिष्ठान के आधार पर मूल्यांकन करें तो यह बात स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है कि इस गठबंधन में विभिन्न दलों का न ही आगमन किसी विशिष्ट विचारधारा के वशीभूत होकर हुआ था और न ही उनके द्वारा इसका परित्याग किसी वैचारिक असहमति के कारण हुआ। इस गठबंधन से जुड़ने का अधिकतर दलों का तात्कालिक कारण भाजपा नीत राजग को सत्ता से बाहर रखना था और दीर्घकालिक कारण अपने-अपने हितों को साधते हुए अपने लिए नयी राजनीतिक जमीन तलाश करना था। चूँकि उस समय तक भाजपा देश में एक सशक्त राजनीतिक ताकत के रूप में उभर आई थी, इसलिए कई दलों को यह चिंता थी कि अब उनकी राजनीतिक प्रतिद्वंदिता कदाचित कांग्रेस से न होकर भाजपा से ही होगी। अतः जैसे ही विभिन्न दलों को अपनी खोयी जमीन प्राप्त होने लगी उन्हें संप्रग में बने रहने का कोई औचित्य समझ नहीं आया और वैचारिक प्रतिबद्धता के अभाव में काफी दल संप्रग को छोड़कर अपनी अलग राह चल पड़े।

oke ekpk rFkk vU; {k=h; xBc/ku

भारत में वैचारिक प्रतिबद्धता वाले राजनीतिक गठबंधनों में वाम मोर्चे का नाम सर्वप्रमुख रूप से लिया जाना चाहिए। हालाँकि एक अमूर्त गठबंधन के रूप में देश में पहली बार वाम दलों की सरकार का गठन केरल में 1990 के दशक में ही हो गया था किन्तु एक सुदृढ़ राजनीतिक गठबंधन के रूप में वाम मार्चे का प्रादुर्भाव पश्चिम बंगाल से माना जाना चाहिए। देश में आपातकाल की पृष्ठभूमि में पश्चिम बंगाल में वाम मोर्चे का गठन जनवरी 1977 में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया मार्क्सवादी) के नेतृत्व में किया गया था। यह गठबंधन वस्तुतः उस समय राज्य में सक्रिय विभिन्न वाम दलों को एक मंच पर लाकर राज्य की चुनावी फिजां में वाम दलों के लिए एक नयी जमीन की तलाश में किया था। आरम्भ में इस गठबंधन में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (सीपीआई) शामिल नहीं थी। किन्तु कुछ समय पश्चात यह दल भी राज्य के वाम मोर्चे में शामिल हो गया और इस प्रकार देश में एक सशक्त विचारधारा आधारित राजनीतिक गठबंधन अस्तित्व में आया। पश्चिम बंगाल के साथ साथ केरल और त्रिपुरा में भी इस गठबंधन को मिले अपार जन समर्थन के चलते यह गठबंधन उत्तरोत्तर मजबूती प्राप्त करता रहा। इस गठबंधन की राजनीतिक यात्रा में एक मुकाम ऐसा भी आया जब इस गठबंधन के किसी व्यक्ति को देश का प्रधानमंत्री बनाने के सुअवसर प्राप्त हो सकने की सम्भावना बनी। किन्तु अपनी वैचारिक मर्यादाओं के साथ-साथ मोर्चे के अंदर की व्यक्तिगत ईर्ष्या द्वेष के चलते आज एक कोई भी वामपंथी देश का प्रधानमंत्री नहीं बन पाया है ।

लम्बे समय तक वाम मोर्चे की विभिन्न राज्यों, विशेषकर पश्चिम बंगाल, में अनवरत विजय ने इसे देश के राजनीतिक परिदृश्य पर एक सशक्त किरदार के नाते प्रासंगिक बनाये रखा। किन्तु ज्योति बासु के देहावसान के बाद पश्चिम बंगाल में वाम मोर्चे की लोगों पर राजनीतिक पकड़ क्रमशः कमजोर पड़ती गई। और अंततः एक ऐसा समय आया जब इस मोर्चे का परचम पश्चिम बंगाल में लहराना बंद हो गया। साथ ही साथ त्रिपुरा की हार ने भी इस मोर्चे की राजनीतिक हैसियत को काफी कमजोर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वाभाविक रूप से, सत्ता के नाजुक बंधन से मुक्त होते ही इस मोर्चे के विभिन्न अवयवों में मतभेद उभर कर सामने आने लगे। किन्तु इस मोर्चे का परित्याग करने की सामर्थ्य इसके घटक दलों में कदाचित नहीं थी। इसका मूल कारण यह था कि इस मोर्चे का पूरा दारोमदार कमोबेश मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ऊपर ही था। शेष सारे दल, यहाँ तक कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का भी अस्तित्व उसी की शुभेक्षा पर ही निर्भर करता था। अतः अपने वर्चस्ववादी भागीदार से असहमति होने के बावजूद भी इस मोर्चे के घटक इससे बाहर जाने की नहीं सोच पाए। फिर भी इस राजनीतिक समीकरण के बावजूद इस मोर्चे के निरंतर अस्तित्ववान रहने में इसके घटक दलों की वैचारिक प्रतिबद्धता की महत्वपूर्ण भूमिका को नाकारा नहीं जा सकता है। वस्तुतः इस मोर्चे के घटक दलों को उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता के लिए समुचित श्रेय देना चाहिए कि राजनीतिक हार जीत के आंकड़ों से ऊपर उठकर उन्होंने इस मोर्चे से इतर अपने लिए कोई और राजनीतिक जमीन तलाशने की बात कभी नहीं सोची और इसी मोर्चे का हिस्सा बने रहे।

समकालीन भारतीय राजनीति में तीन प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक गठबंधनों के अतिरिक्त राज्य स्तरों पर भी कई राजनीतिक गठबंधनों का निर्माण किया गया था। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण राज्यों के गठबंधनों का विश्लेषण करना समीचीन प्रतीत होता है। उत्तर प्रदेश में राजग तथा संप्रग के साथ साथ एक नए गठबंधन, जिसे महागठबंधन का नाम दिया गया, का निर्माण राज्य तीन प्रमुख जातिवादी पार्टियों - समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी तथा राष्ट्रीय लोक दल - ने मिलकर किया था। पूर्व में एक दूसरे के धुर विरोधी रहे इन राजनीतिक दलों के इस अप्रत्याशित गठबंधन का एकमेव हेतु इन दलों की समर्थक जातियों के मतों का विभाजन रोकना और उन्हें एक दूसरे के समर्थन में हस्तांतरित करवाकर अपने अधिक से अधिक उम्मीदवारों को लोक सभा का चुनाव जितवाना था। किन्तु इन दलों के कार्यकर्ताओं और समर्थकों के मध्य दीर्घकाल से व्याप्त आपसी अविश्वास और वैमनस्य कदाचित इन्हें एक दूसरे की सहायता और समर्थन करने से इस कदर रोकता रहा कि लोक सभा चुनाव में इनका प्रदर्शन अत्यधिक सोचनीय रहा। जहाँ राष्ट्रीय लोक दल का कोई भी प्रत्याशी चुनाव नहीं जीत पाया वहीं समाजवादी पार्टी केवल पांच और बहुजन समाज पार्टी मात्र 10 सीटों पर ही अपने उम्मीदवार जीता पाईं। स्वाभाविक रूप से, चुनाव के कुछ समय

पश्चात ही इन दलों के आपसी वैमनस्य उभर कर सामने आ गए और यह तथाकथित महागठबंधन समय से पूर्व ही अकाल मृत्यु मर गया।

लोगों द्वारा अवसरवादी राजनीतिक गठबंधन की पूर्ण अस्वीकारोक्ति का दूसरा दृष्टांत बिहार में देखने को मिला जहाँ राजग के मुकालबे संप्रग का विस्तार करके इसमें उन दलों को भी स्थान दिया गया जो पूर्व में राजग का हिस्सा रह चुके थे। उदहारण के लिए, राष्ट्रीय लोक समता पार्टी जिसके राष्ट्रीय अध्यक्ष उपेंद्र कुशवाह 2019 के लोक सभा चुनाव से कुछ समय पहले तक केंद्रीय सरकार में मंत्री थे, अधिक उर्वर राजनीतिक फसल काटने के लिए राजग का साथ छोड़कर संप्रग में शामिल हो गए। इस प्रकार बिहार में राष्ट्रीय जनता दल के नेतृत्व में बने महागठबंधन के घटक दलों का न तो कोई सुस्पष्ट वैचारिक अधिष्ठान था और न ही उनमे कोई पुराना मेल ही था। उत्तर प्रदेश की तरह चुनाव से ठीक पहले राजग के विरोध स्वरूप बने इस महागठबंधन का एकमेव लक्ष्य अपनी अपनी जाति के मतों का विभाजन रोककर अपने उम्मीदवारों को जिताने और राजग के उम्मीदवारों को हराना था। किन्तु इस चुनाव का जो अंतिम परिणाम आया उसमें महागठबंधन के न केवल कई उम्मीदवारों की जमानत जब्त हो गई अपितु इसके लगभग सारे प्रत्याशियों को हार का सामना करना पड़ा। किसी भी प्रकार की वैचारिक प्रतिबद्धता के अभाव में इस गठबंधन में शामिल हुए दलों के सामने चुनावी हार ने अस्तित्व का संकट पैदा कर दिया जिससे महागठबंधन की निरंतरता पर भी प्रश्नचिन्ह लगता नजर आ रहा है।

निष्कर्ष

भारतीय राजनीति में हालाँकि विचारधारा विषयक आग्रह राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही काफी बलवती हो गई थी किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात विचारधारा का आग्रह क्रमशः शिथिल पड़ता गया। देश की राजनीति में वामपंथ अथवा समाजवाद के वाहक ने नाते पंडित नेहरू ने अपने आग्रह को मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में तब्दील कर दिया था। कालांतर में जैसे जैसे कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व देश की राजनीति में काम होता गया वैसे वैसे देश की दलीय व्यवस्था गठबंधन की राजनीति की ओर अग्रसर होने लगी। किन्तु 1970 के दशक में निर्मित दो राजनीतिक गठबंधन दो पृथक मान्यताओं पर आधारित दिखे। जहाँ एक ओर वाम दलों का गठबंधन विशुद्ध रूप से साम्यवादी विचारधारा पर आधारित था वहीँ जनता पार्टी के रूप में बना गठबंधन विविध वैचारिक अधिष्ठानों वाले दलों का तालमेल सा बन गया था। कुल मिलाकर भारतीय राजनीति में गठबंधन की राजनीति वस्तुतः अवसरवाद की राजनीति के रूप में परिवर्तित हो गयी थी जहाँ विभिन्न दल एक दूसरे से किसी वैचारिक मतैक्य के कारण न मिलकर विशुद्ध रूप से सत्ता पर काबिज़ होने के लिए अवसरवादी राजनीतिक गठबंधनों का निर्माण करने लगे। इस प्रकार के गठबंधनों की अनेक मिसाल 1990 के दशक की भारतीय राजनीति में देखने को मिल जाती है। किन्तु इस

प्रकार के राजनीतिक गठबंधनों के बोलबाले के बीच एक नयी पहल की शुरुआत राजग के रूप में होती है जहाँ सत्ता प्राप्ति के लक्ष्य को नजरअंदाज किये बिना गठबंधन के विभिन्न घटक दलों के मध्य वैचारिक प्रतिबद्धता पर भी बल देने का आग्रह बराबर बना रहा। यहाँ तक की राजग के गठन के पूर्व से ही भाजपा का कुछ राज्यों में अपने वैचारिक अधिष्ठान के समर्थक अथवा समरूप दलों के साथ चुनावी गठबंधन शाश्वत रूप से गतिमान रहा है।

वर्तमान समय में भारत में गठबंधन की राजनीति एक निर्णायक दौर में पहुँच गई प्रतीत होती है। इस दौर में पिछले वर्षों के दौरान देश की चुनावी राजनीति के केन्द्र बिन्दु बने अनेक अवसरवादी, जातिवादी, क्षेत्रवादी तथा कुछ हद तक धर्मनिरपेक्षतावादी दलों का प्रभुत्व काफी सीमा तक क्षीण हुआ है। इसके साथ ही देश की राजनीतिक सत्ता पर लम्बे समय तक आसीन रही कांग्रेस पार्टी की मध्यमार्गीय राजनीति लोगों द्वारा अस्वीकार कर दिए जाने के बाद अब सारा जोर वैचारिक प्रतिबद्धता वाले दलों पर आ गया है। इस दृष्टि से देश में राजनीतिक गठबंधनों के स्थायित्व का एक नया कीर्तिमान राजग ने स्थापित किया है। अपनी सुस्पष्ट विचारधारा के आधार पर भाजपा नीत राजग के अंदर अब केवल उन्हीं दलों की स्वीकार्यता रह गयी है जो भाजपा के वैचारिक अधिष्ठान के साथ कमोबेश स्वयं को सहमत पाते हैं। इस प्रकार की मर्यादित वैचारिक कड़ाई से निश्चित रूप से राजग एक ऐसे राजनीतिक गठबंधन के रूप में स्थापित हुआ है जिसके स्थायित्व पर दूर-दूर तक कोई सवालिया निशान लगता दिखाई नहीं पड़ता है। ऐसी स्थिति में इस परिकल्पना को झुठलाया नहीं जा सकता है की वैचारिक प्रतिबद्धता किसी भी राजनीतिक गठबंधन के दीर्घकालिक स्थायित्व के लिए एक पूर्व शर्त के सामान है जिसके अभाव अथवा न्यूनता की स्थिति में उस राजनीतिक गठबंधन का चिरस्थायी होना हमेशा संदेह के घेरे में रहेगा ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रदीप के. छिब्बर तथा राहुल वर्मा, *आइडियोलॉजी एंड आइडेंटिटीः दा चेंजिंग पार्टी सिस्टम्स इन इंडिया,* नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018, पृ. 144
2. सुभेंदु रंजन राज, *कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया,* नई दिल्ली : मानक पब्लिकेशंस, 2009, पृ. 198
3. बिद्युत चक्रबर्ती, *फोर्जिंग पावररू कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया,* नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2005, पृ. 276
4. आर. के. तिवारी, पॉलिटिकल पार्टीज़, पार्टी मनिफेस्टोस, एंड एलेक्शंस इन इंडिया, 1909–2014, नई दिल्लीय रूटलेज, 2018, पृ. 163
5. विजय प्रशाद, नो फ्री लेफ्टः दा फ्यूचरस ऑफ इंडियन कम्युनिज्म, लंदनय लेफ्टवोर्ल्ड बुक्स, 2016, पृ. 72
6. वेंकटेश रामकृष्णन, राइट ऑन टॉप, फ्रंटलाइन, जून 7, 1019, पृ. 8

गठबंधन सरकारों की कमियाँ और नरेंद्र मोदी का योगदान

गाँधीजी राय

Ikjk'k 1960 एवं 70 के दशकों में क्रमशः राज्यों और केंद्र में मोरारजी देसाई की जनता पार्टी सरकार के गठन से भले इसकी शुरुआत हुई हो, इसका वास्तविक उभार 1989 और 90 के दशक में ही हुआ जब अल्पावधि के लिए निर्मित गठबंधन सरकारों की कमियों और उनके आने-जाने से भारतीय राजनीति बुरी तरह प्रभावित हुई। 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी ने 24 दलों के सहयोग से एनडीए की स्थापना कर गठबंधन की अवधारणा को साकार किया। 2004 एवं 2009 की यूपीए सरकारों के नकारात्मक क्रियाकलापों ने 2014 के चुनाव में देश ने नरेंद्र मोदी को स्पष्ट जनादेश देकर उन्हें अपने ढंग से सरकार चलाने का अवसर दिया। उनकी सरकार के पाँच सालों के अच्छे प्रदर्शनों से 17वीं लोकसभा चुनाव में उनकी प्रचंड जीत ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वे भारतीय लोकतंत्र को आज एक नए भारत के निर्माण की ओर उत्प्रेरित कर रहे हैं। उनकी जीत ने देश की राजनीति को बड़े पैमाने पर प्रभावित करते हुए न सिर्फ जाति एवं वंशवाद की सियासत की राजनीति को अवरुद्ध किया, वरन् वामपंथी दलों के साथ-साथ देश में पनप रहे क्षेत्रीय दलों के दायरे को भी सीमित कर दिया है। ऐसा होने से भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की प्रासंगिकता पर सवाल उठेगा और अंततोगत्वा राष्ट्रीय परिदृश्य से उनके ओझल हो जाने से गठबंधन राजनीति का दौर भी समाप्त हो जाएगा।

प्रस्तावना

लोकसभा चुनावों में किसी भी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने की स्थिति में भारत में इस अवधारणा का विकास हुआ है। 1970 के दशक में और 1989 से गठित गठबंधन सरकारों के क्रियाकलापों ने भारतीय राजनीति में इस अवधारणा को सुदृढ़ किया है। यह गठबंधन का ही परिणाम है कि आज एनडीए एवं यूपीए के माध्यम से भाजपा और कांग्रेस दोनों विभिन्न राजनीतिक दलों के गठजोड़ से चुनावों में भाग ले

रही है। 2004 और 2009 में गठित *यूपीए -1* और *यूपीए -2* सरकारों के नकारात्मक प्रदर्शनों के आलोक में 2014 के चुनावों में भाजपा सहित एनडीए गठबंधन को मिले स्पष्ट जनादेश से निर्मित नरेंद्र मोदी सरकार को 17वीं लोकसभा चुनाव में अप्रत्याशित जीत ने यह सिद्ध कर दिया कि उनकी करिश्माई पहल आज भारतीय लोकतंत्र को एक नए भारत के निर्माण की ओर उत्प्रेरित कर रही है। उनकी समावेशी विकास की परिकल्पना '*सबका साथ, सबका विकास* ' अब 'सबका विश्वास' हो जाने से *नए भारत* के निर्माण की संकल्पना के साकार होने की संभावना बढ़ गई है। यह नरेंद्र मोदी के व्यक्तित्व का ही परिणाम है कि 2014 में भाजपा को स्पष्ट जनादेश के बावजूद उन्होंने *एनडीए* के सभी साथियों को साथ लेकर गठबंधन की डोर को कमजोर नहीं होने दिया और उन्होंने कहा, ''हमारे लिए क्षेत्रीय दलों को जोड़ना देश की एकता को जोड़ने के प्रयास जैसा है'' ।[1]

केंद्र की गठबंधन सरकारें

1967 के चौथे आम चुनाव के बाद देश के बहुत से प्रदेशों– पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और केरल में गैर-कांग्रेसी सरकारों का निर्माण हो चुका था और केंद्र में किसी तरह इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में काँग्रेस की सत्ता स्थापित रही। 1967 के चुनाव परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया था कि कांग्रेस को पराजित किया जा सकता है। 1971 के आम चुनाव के बाद कांग्रेस में बिखराव और टूट के चलते केंद्र में इंदिरा गाँधी सरकार अल्पमत में आने के बावजूद *भारतीय साम्यवादी दल* और *डीएमके* जैसे दलों से मुद्दा आधारित समर्थन के सहारे सत्ता में बनी रही। उल्लेखनीय है कि 1971 के आम चुनाव में बड़े गैर-साम्यवादी और गैर-कांग्रेसी विपक्षी दलों ने *'शानदार समझौते'* (Grand Alliance) के नाम से एक *गठबंधन* बना लिया था। उस आम चुनाव में इंदिरा गाँधी के विरोध में संयुक्त समाजवादी पार्टी, प्रजा समाजवादी पार्टी तथा भारतीय क्रांति दल एक *छतरी* के नीचे आ गए थे। दूसरी तरफ सत्तारूढ़ कांग्रेस ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ गठजोड़ किया था। 1971 में पाकिस्तान के साथ युद्ध में भारत की शानदार विजय से इंदिरा गाँधी की लोकप्रियता बढ़ गई थी। जब विरोधी दलों ने उनका विरोध किया तब इंदिराजी ने 25 जून 1975 को आपात स्थिति की उद्घोषणा कर अपने प्रशासन के खिलाफ आवाज उठाने वाले *जय प्रकाश नारायण* सहित सभी राजनीतिक दलों के नेताओं को जेल में बंद कर दिया। इसी संदर्भ में इंदिरा गाँधी के वर्चस्व को तोड़ने के लिए केंद्र में सभी राजनीतिक दलों का *गठबंधन* हुआ और मई 1977 में *जनता पार्टी सरकार* का गठन हुआ। केंद्र में बने गठबंधन सरकारों की संक्षिप्त जानकारी यहाँ आवश्यक है–

मोरारजी देसाई की जनता पार्टी सरकार (24 मार्च 1977–28 जुलाई 1979)– इंदिरा गाँधी की तानाशाही का विरोध करने के लिए फरवरी 1977 के प्रारंभ में जनसंघ, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी, संगठन कांग्रेस इत्यादि दलों को मिलाकर *जनता पार्टी* की स्थापना की गई। मार्च 1977 के आम चुनाव में इंदिरा-विरुद्ध अभियान में इसे अप्रत्याशित सफलता मिली और केंद्र में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में *जनता पार्टी* की सरकार बनी। मोरारजी देसाई सरकार में चौधरी चरण सिंह को गृह मंत्रालय सौंपा गया। मोरारजी देसाई और चौधरी चरण सिंह के बीच मतभेद और अंतर्द्वंद्व के चलते यह गठबंधन सरकार जिन उद्देश्यों को लेकर बनी थी, उसे पूरा नहीं कर पाई। चौधरी चरण सिंह से बढ़ते मतभेद के चलते मोरारजी देसाई ने गृहमंत्री चौधरी चरण सिंह तथा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्री राजनारायण को अपने मंत्रिमंडल से निकाल फेंका।[2] इस प्रकार नेतृत्व तथा अन्य विभिन्न कारणों से मोरारजी देसाई की *जनता पार्टी* की सरकार जय प्रकाश आंदोलन के मंसूबों के अनुकूल खरा नहीं उतर पायी। 23 जून 1979 को राज नारायण द्वारा जनता पार्टी से त्यागपत्र देते ही मोरारजी देसाई की जनता पार्टी की सरकार के समक्ष संकट के बादल छा गए।[3] परिणामस्वरूप, 15 जुलाई 1979 को प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई द्वारा अपना तथा अपने मंत्रिमंडल का त्यागपत्र राष्ट्रपति *नीलम संजीव रेड्डी* को दिए जाने से केंद्र में बड़े पैमाने पर राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो गई।

चौधरी चरण सिंह की गठबंधन सरकार (28 जुलाई 1979–14 जनवरी 1980)– मोरारजी देसाई सरकार के त्यागपत्र से केंद्र में भयंकर संकट उत्पन्न हुआ। चौधरी चरण सिंह और मोरारजी देसाई के बीच नेतृत्व को लेकर छिड़े विवाद में राष्ट्रपति ने दोनों से अपने-अपने समर्थकों की जब सूची मांगी तब केंद्र की राजनीतिक अस्थिरता और गहरा गई। गंदी राजनीति तथा सत्ता हासिल करने की चौधरी चरण सिंह की लालच के चलते इंदिरा गाँधी ने चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री बनाने में *बाहर* से समर्थन दिया। 26 जुलाई 1979 को राष्ट्रपति ने चौधरी चरण सिंह को सरकार बनाने के लिए *सशर्त* आमंत्रित किया कि 20 अगस्त को वे लोकसभा का विश्वास प्राप्त कर लें। इंदिरा गाँधी द्वारा 19 अगस्त 1979 को चौधरी चरण सिंह सरकार से अपना समर्थन वापस लेते ही चौधरी चरण सिंह की सरकार 24 दिनों में ही उलट गई और उनका मंत्रिमंडल एक दिन भी लोकसभा का सामना नहीं कर सका। स्पष्ट है कि चौधरी चरण सिंह की गठबंधन सरकार इंदिरा गाँधी के बाहरी समर्थन पर टिकी थी। चौधरी चरण सिंह ने न सिर्फ प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दिया वरन् राष्ट्रपति से लोकसभा को भंग कर मध्यावधि चुनाव की भी सिफारिश की। उनकी *कामचलाऊ सरकार* द्वारा लोकसभा भंग की मध्यावधि चुनाव संबंधी निर्णय का न तो कोई *औचित्य* था और न कोई *नैतिक* आधार। अनेक विधि-विशेषज्ञों ने चौधरी चरण सिंह के लोकसभा भंग करने के निर्णय को गलत ठहराया। *एन. ए. पालकीवाला* ने कहा कि

राष्ट्रपति को चौधरी चरण सिंह सरकार को कामचलाऊ सरकार ही समझना चाहिए था, क्योंकि यह सरकार लोकसभा में अपना बहुमत साबित करने में असफल रही।[4] *बी. ए. तारकुण्डे* ने कहा कि चूँकि चौधरी चरण सिंह एकबार भी लोकसभा में बहुमत साबित नहीं कर सके, इसलिए राष्ट्रपति उनकी सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं थे।[5] *राम जेठमालानी* ने कहा कि अल्पमत सरकार को राष्ट्रपति से लोकसभा भंग करवाने की अनुशंसा करने का कोई अधिकार नहीं था। उनके विचार में विधिशास्त्र में एक शब्द 'न्याय-हत्या' है और चौधरी साहब तो संदिग्ध स्थिति में ही प्रधानमंत्री हुए थे।[6]

वी.पी. सिंह की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार (2 दिसंबर 1989–10 नवंबर 1991)– 1987 में जब विश्वनाथ प्रताप सिंह को राजीव गाँधी सरकार से रक्षा मंत्री के पद से हटाया गया तब उन्होंने अरुण नेहरू, आरिफ मोहम्मद खान, मुफ्ती मोहम्मद सईद के साथ *जन मोर्चा* का गठन किया। 'जन मोर्चा' राजीव गाँधी सरकार में हुए हवाला भ्रष्टाचार के खिलाफ मोर्चा खोले हुए था। 1989 के *नौवें लोकसभा* के चुनाव से पूर्व चंद्रशेखर की जनता पार्टी, जन मोर्चा, लोक दल और कांग्रेस (एस) को मिलाकर *जनता दल* का निर्माण हुआ।[7] 1989 के चुनाव में कांग्रेस को 197, जनता दल को 143, भाजपा को 86 तथा वामदलों को 45 सीटें मिलीं। राजीव गाँधी द्वारा सरकार बनाने से इन्कार करने पर वी. पी. सिंह के नेतृत्व में *राष्ट्रीय मोर्चा* (National Front) की सरकार *वामदल* और *भाजपा* के सहयोग से तो बनी, लेकिन 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद भाजपा द्वारा समर्थन वापस लेने से 11 महीने में ही गिर गई। स्पष्ट है कि वी. पी. सिंह सरकार का गठन विपरीत विचारधारा वाले घटक दलों के सहयोग से हुआ था जिनकी विचारधाराओं में विरोधाभास था। वी. पी. सिंह सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशों के आलोक में सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों को 26 प्रतिशत आरक्षण देकर राष्ट्रीय एकता को बड़ी चुनौती दी।

चंद्रशेखर सरकार (10 नवंबर 1990–21 जून 1991)– नवंबर 1990 में चंद्रशेखर ने इंदिरा कांग्रेस के बाहरी समर्थन से सरकार का गठन किया। उल्लेखनीय है कि जहाँ वी. पी. सिंह सरकार भाजपा और साम्यवादी दलों के समर्थन पर टिकी हुई थी, वहाँ चंद्रशेखर की सरकार *इंदिरा कांग्रेस* के बाहरी समर्थन के चलते राष्ट्रीय स्तर पर कोई निर्णय लेने में अक्षम थी। वी. पी. सिंह सरकार जैसा ही चंद्रशेखर सरकार के पास राजनीतिक शक्ति की मजबूती नहीं थी। उनके शासन काल में खाड़ी संकट के समय इंदिरा कांग्रेस के दबाव में आकर अमेरिकी विमानों को दी जाने वाली ईंधन भरने की सुविधा बंद करनी पड़ी। इससे भारत-अमेरिकी संबंधों में कटुता तो उत्पन्न हुई ही, राष्ट्रीय स्तर पर भी देश को विभिन्न परेशानियों से जूझना पड़ा।

पी. वी. नरसिम्हा राव की त्रिशंकु सरकार (21 जून 1991–16 मई 1996) **&** 1990 के दशक में त्रिशंकु लोकसभा के चलते भारतीय राजनीति में गठबंधन के वास्तविक चेहरे का तब उभार हुआ जब 1991 की *दसवीं* लोकसभा चुनाव के पश्चात् सबसे बड़े

दल के रूप में उभरे कांग्रेस के नेता पी. वी. नरसिम्हा राव ने छोटे-छोटे राजनीतिक दलों एवं कुछ निर्दलीय सांसदों के समर्थन से *गठबंधन सरकार* का गठन किया। बाद में व्यापक पैमाने पर दल-बदल कराकर उन्होंने अपनी अल्पमत सरकार को बहुमत में बदल दिया। जिन दलों और सांसदों का सहयोग लेकर नरसिम्हा राव ने अपनी सरकार चलायी, उन्होंने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए हर संभव तरीके अपनाकर भारतीय राजनीति की छवि को दूषित किया। सरकार में सम्मिलित इन छोटे दलों की गतिविधियों से नरसिम्हा सरकार की कमियाँ उजागर हुईं। उनके द्वारा अपनी सरकार बचाने के लिए अपनाए गए हथकंडे और झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) के सांसदों को रिश्वत दिए जाने का प्रकरण उजागर होने के बाद उनकी सरकार की काफी आलोचनाएँ हुईं।[8]

अटल बिहारी वाजपेयी की अल्पमत सरकार (16 मई 1996–1 जून 1996)& गठबंधन राजनीति का अगला पड़ाव मई 1996 में हुए लोकसभा चुनावों के बाद आया। इस चुनाव में *भारतीय जनता पार्टी* और सहयोगी दलों को 194, कांग्रेस को 140 तथा अन्य क्षेत्रीय दलों को 150 स्थान प्राप्त हुए। भारतीय जनता पार्टी के नेता *अटल बिहारी वाजपेयी* के नेतृत्व में अल्पमत सरकार का गठन हुआ जो लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध नहीं करने के चलते मात्र *13* दिन ही रह पाई।

एच. डी. देवेगौड़ा की अल्पमत सरकार (1 जून 1996–21 अप्रैल 1997)– 1 जून 1996 को एच. डी. देवेगौड़ा के नेतृत्व में जनता दल तथा अन्य विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग से सरकार का गठन हुआ। इस सरकार में सम्मिलित विभिन्न क्षेत्रीय दलों की आपसी खींचतान और पारस्परिक अविश्वास के चलते एच. डी. देवेगौड़ा की सरकार काफी कमजोर होकर राष्ट्रीय चुनौतियों का मुकाबला करने में असमर्थ थी। परिणामस्वरूप, 20 अप्रैल 1997 को उन्होंने पदत्याग कर केंद्र के समक्ष एक बड़ी चुनौती उत्पन्न की।

इंद्र कुमार गुजराल सरकार (21 अप्रैल, 1997–18 मार्च, 1998)– त्रिशंकु लोकसभा में 21 अप्रैल 1997 को इंद्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में *संयुक्त मोर्चे* की सरकार का गठन हुआ। एच. डी. देवेगौड़ा की पूर्ववर्ती सरकार की भाँति इंद्र कुमार गुजराल की अल्पमत सरकार भी गठबंधन राजनीति के विरोधाभासों और जटिलताओं में लगातार उलझी रही और अपना कार्यकाल पूरा करने के पूर्व ही गिर गई।

अटल बिहारी वाजपेयी की एनडीए सरकारें (18 मार्च 1998–22 मई 2004)– 1998 में संपन्न मध्यावधि चुनावों के बाद भारतीय जनता पार्टी ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में अकाली दल, शिवसेना, तेलगु देशम् पार्टी, जेडीयू, तृणमूल कांग्रेस और एआईएडीएमके जैसे सहयोगी दलों के साथ सरकार का गठन किया। पूर्ववर्ती गठबंधन सरकारों की भाँति यह सरकार भी अपने सहयोगी दलों की महत्त्वाकांक्षाओं और स्वार्थों की टकराहट के बीच फँस कर 13 माह में ही जयललिता की नाराजगी के चलते गिर गई।[9] 13वीं लोकसभा चुनाव के बाद पुनः एकबार त्रिशंकु

लोकसभा में वाजपेयी द्वारा *24* दलों के सहयोग से गठित *एनडीए* सरकार का पाँच साल की अवधि पूरा करने के बावजूद उनकी मंत्रिपरिषद के 81 मंत्रियों में आपसी खींचतान और क्षेत्रीय दलों का प्रभाव सरकार पर बना रहा।

मनमोहन सिंह की यूपीए सरकारें (22 मई 2004–26 मई 2014)– 2004 की 14वीं लोकसभा चुनाव में कांग्रेस ने अपने पूर्व की एकाधिकारवादी राजनीतिक दल की अवधारणा को छोड़कर *गठबंधन राजनीति* की आवश्यकता को गंभीरता से महसूस किया और छोटे-छोटे राजनीकि दलों को मिलाकर 22 मई 2004 को डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में *संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन* (संप्रग) सरकार का गठन कर पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। *यूपीए* सरकार में कांग्रेस के साथ-साथ लालू प्रसाद यादव की *राष्ट्रीय जनता दल,* शिबू सोरेन की *झारखंड मुक्ति मोर्चा* (झामुमो), रामविलास पासवान की *लोकतांत्रिक जनता पार्टी* (एलजेपी) और शरद पवार की *नेशनल कांग्रेस पार्टी* (एनसीपी) जैसे राजनीतिक दल सम्मिलित थे। वामपंथी दल इसे बाहर से समर्थन दे रहा था। 2009 में 15 वीं लोकसभा चुनाव के बाद पुनः मनमोहन सिंह के नेतृत्व में *यूपीए -2* सरकार का गठन हुआ। आपसी खींचतान और पारस्परिक अविश्वास के बावजूद मनमोहन सिंह की *यूपीए* सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया। उनकी यूपीए सरकार का दोनों कार्यकाल घटक दलों के आपसी मतभेद और खींचतान के चलते अनेक तरह के विवादों में फँसा रहा। इन दोनों कार्यकालों में मनमोहन सिंह एक कमजोर प्रधानमंत्री के रूप में यूपीए अध्यक्ष सोनिया गाँधी की कठपुतली के रूप में काम करते रहे। कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गाँधी ने भी अपने अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मनमोहन सिंह की यूपीए सरकार को काफी प्रभावित किया। इससे यूपीए सरकार के संबंध में मतदाताओं में भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक था और देश की जनता अगले आम चुनाव का इंतजार करने लगी।

नरेंद्र मोदी की एनडीए सरकार (26 मई 2014 से)– 2014 में 16वीं लोकसभा चुनावों से पूर्व भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले *राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन* (एनडीए) में लगभग 25 दल शामिल हो चुके थे। आम चुनावों में *भारतीय जनता पार्टी* को स्पष्ट बहुमत (282) के साथ सत्ता में आने के बाद *एनडीए* सहयोगियों की संख्या बढ़कर 29 हो गई और लोकसभा में *एनडीए* खेमे में 337 सांसद हो गए। नरेंद्र मोदी द्वारा बड़ोदरा सीट से त्यागपत्र देने के बाद *एनडीए* की संख्या 336 रह गईं।

26 मई 2014 को नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण किया और देश हित में मंत्रिपरिषद का आकार पहले की तुलना में छोटा रखते हुए सिर्फ 45 मंत्रियों को ही मंत्रिपरिषद में शामिल किया। इन सभी 45 मंत्रियों के साथ केंद्रीय मंत्रिपरिषद् में मंत्रियों की कुल संख्या 46 ही रही। इसने देशवासियों को अच्छा संदेश दिया। अपने मंत्रिपरिषद में सात महिलाओं को स्थान देकर उन्होंने नारी सशक्तिकरण की दिशा में पहल करते हुए आदर्श मिसाल पेश किया। अपने मंत्रिपरिषद् में उन्होंने भाजपा की दूसरी पीढ़ी के नेताओं को आगे बढ़ाते हुए *एनडीए* के अन्य घटक दलों को भी शामिल किया।

Ø-l-	ikVh	lkln	Ø-l-	ikVh	lkln
1.	भाजपा	282	16.	हरियाणा जनहित कांग्रेस	&
2.	शिवसेना	18	17.	डीएमडीके	&
3.	तेलगुदेशम् पार्टी	16	18.	एमडीएमके	&
4.	लोक जनशक्ति पार्टी	6	19.	केएमडीके	&
5.	शिरोमणि अकाली दल	4	20.	आइजेके	&
6.	राष्ट्रीय लोक समता पार्टी	3	21.	न्यू जस्टिस पार्टी	&
7.	अपना दल	2	22.	जन सेना पार्टी	&
8.	नगा पीपुल्स फ्रंट	1	23.	गोरखा जनमुक्ति मोर्चा	&
9.	नेशनल पीपुल्स पार्टी	1	24.	केरल कांग्रेस (नेशनलिस्ट)	&
10.	स्वाभिमानी पक्ष	1	25.	मिज़ो नेशनल फ्रंट	&
11.	पीएमके	1	26.	महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी	&
12.	ऑल इंडिया एनआर कांग्रेस	1	27.	गोवा विकास पार्टी	&
13.	रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी	1	28.	नॉर्थ ईस्ट रिज़नल पोलिटिकल फ्रंट	&
14.	रिपब्लिकन पार्टी (अठावले)	–	29.	मणिपुर पीपुल्स पार्टी	&
15	राष्ट्रीय समाज पक्ष	–			
				dy lkln	**337**

प्रशासनिक व्यवस्था और नौकरशाही पर प्रभाव

नरेंद्र मोदी की एनडीए सरकार की सकारात्मक पहल और तेज गति से प्रशासनिक व्यवस्था पहले से अधिक चुस्त-दुरुस्त, कुशल, जिम्मेवार और समावेशी हुई। सरकार की विभिन्न योजनाओं की परिणाम आधारित निगरानी, उच्चतम स्तर पर परियोजनाओं में लाई गई तेजी, राज्यों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना पैदा करना, मंत्रालयों में एकांगी रूप से काम करने की प्रवृत्ति को तोड़ना और सरकार में प्रतिभाओं का समावेश करना शामिल था। उनके पूरे शासनकाल के दौरान पहला महत्त्वपूर्ण सुधार यह हुआ कि प्रशासनिक ध्यान 'इनपुट' और आउटपुट' से हटकर परिणाम पर केंद्रित हो गया और उसकी समीक्षा एवं निगरानी स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा की जाने लगी।[10] इससे लोक प्रशासन के अधिकारियों में पहले की तुलना में अधिक दायित्व बोध की भावना आई। नरेंद्र मोदी सरकार की *दूसरी* महत्त्वपूर्ण पहल 'प्रगति' सक्रिय शासन और समयबद्ध कार्यान्वयन की ऐसी पहल थी जिसके अंतर्गत बुनियादी ढाँचा और सामाजिक क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं पर प्रधानमंत्री के स्तर पर चर्चा और समीक्षा किए जाने से नौकरशाही अधिक अनुशासित हुई। यह प्रशासनिक अधिकारियों को स्पष्ट और निश्चित समय सीमा के अंदर परियोजनाओं को पूरा किए जाने के लिए जिम्मवारियाँ सौंपता है। 2016 में सरकार द्वारा विभिन्न विषयों पर *आठ* 'सचिव समूहों' का गठन

किया गया था जिनमें ऐसे वरिष्ठ अधिकारियों को सम्मिलित किया गया जिनके विभाग इन विषयों से सीधे संबंधित नहीं थे। 25 दिसंबर 2015 को वाजपेयी के 90वें जन्मदिन को 'सुशासन दिवस' के रूप में मनाते हुए नरेंद्र मोदी सरकार ने 'सर्कुलर' जारी कर सभी कार्यालयों को निर्देश दिया कि इस दिन प्रशासनिक पदाधिकारी शपथ लेंगे कि वे सुशासन लाने में सरकार की सहायता करेंगे।[11] उन्होंने नौकरशाहों से कहा, ''विकास और सुशासन पर आगे बढ़ने का एकमात्र रास्ता है कि हम साथ मिलकर लोगों के जीवन में सकारात्मक प्रभाव लायें और एक विकसित भारत की स्थापना करें। 17 अप्रैल 2017 को सिविल सेवा प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को पुनः प्रेरित-प्रोत्साहित करते हुए उन्हें नसीहत के साथ हिदायत भी दी कि नौकरशाहों को सुशासन लाने के उद्देश्य से अपनी रीति-नीति बदलने के मामले में बहुत कुछ करना है।[12] प्रधानमंत्री के इस संदेश का सकरात्मक प्रभाव नौकरशाही पर पड़ा। पूर्व की गठबंधन सरकारों में जहाँ नौकरशाही मनमाने ढंग से काम करती रही, वहाँ नरेंद्र मोदी सरकार में अधिक जिम्मेवार और अनुशासित होकर विकास परियोजनाओं को साकार करने में जुट गई। इनके चलते ही केंद्र एवं राज्यों के स्तर पर उदघोषित योजनाएँ गरीबों तक अपनी पहुँच बनाई। प्रशासनिक पदाधिकारियों के सक्रिय सहयोग से ही सरकार की *जन-धन खाते* खोले गए तथा कल्याणकारी योजनाओं के तहत देश में *नौ करोड़* से अधिक शौचालय बने। देश के 714 जिलों में *सात करोड़* से अधिक रसोई गैस सिलेंडर बाँटे गए।[13] इसके अलावा, महज सात माहों में 30 लाख लोगों ने *आयुष्मान योजना* का लाभ उठाया। इन योजनाओं की सफलता ने आम आदमी में भरोसे की बुनियाद मजबूत की। अपने पूरे कार्यकाल और उसके बाद जून 2019 तक *96* विदेशी दौरा कर उन्होंने *विदेश मंत्रालय* को सक्रिय और गतिशील बनाया। पुलवामा आतंकी हमले के बाद पाकिस्तान के बालाकोट पर *जैश-ए-मोहम्मद* के आतंकी कैंप को हवाई हमला द्वारा तहस-नहस कर *रक्षा मंत्रालय* ने देशवासियों में यह विश्वास जगाया कि नरेंद्र मोदी के हाथ में ही देश सुरक्षित है।

नरेंद्र मोदी की प्रचंड जीत का भारतीय राजनीति पर प्रभाव

पिछले पाँच वर्षों में नरेंद्र मोदी के कामकाज के आधार पर देश के लोगों ने *एनडीए* के खाते में 355 सीटों के साथ-साथ भाजपा को भी 303 सीट दिलाकर उनको खुला हाथ दिया ताकि वे देश को अपने हिसाब से प्रगति के मार्ग पर ले जा सकें। इस आम चुनाव में नरेंद्र मोदी और अमित शाह ने अपनी जीत से न सिर्फ कांग्रेस को झटका दिया, बल्कि जतिवादी राजनीति करने वाले दलों के भविष्य पर भी सवाल खड़े कर दिए। 20 सालों तक दिल्ली में *बीबीसी* के ब्यूरो चीफ रहे *मार्क टली* का कहना है कि *भारतीय जनता पार्टी* ने पूर्वी भारत में पहली बार अपनी शानदार उपस्थिति दर्ज कराई और 2019 की इस मोदी लहर का एहसास दक्षिण में भी कराया।[14] शुरु से लेकर आखिर तक और प्रचार खत्म होने की रात *केदारनाथ* की गुफा में बिताकर नरेंद्र मोदी

ने राष्ट्रवाद में हिंदू तत्व को बनाए रखा। इस चुनाव में जाति समीकरणों की बुनियाद पर टिके सियासी दल और उनकी स्वार्थपरक राजनीति न सिर्फ ध्वस्त हुई, बल्कि पहली बार विकास की आकांक्षा से युक्त समाज ने सकारात्मक वोट कर मौजूदा मोदी सरकार को ही दोबारा जनादेश दिया। 2015 में 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' को लेकर दिया गया उनका बयान कोई औपचारिक भर नहीं था, बल्कि वह सरकार और उसके तंत्र के लिए पूर्वी भारत में विकास की गाथा लिखने का 'मंत्र' था, जिसके आधार पर पांच साल में मोदी सरकार ने विकास के मोर्चे पर देश के पूर्वी हिस्से के लिए वह कर दिखाया जो अकल्पनीय है।[15] 2014 में मोदी सरकार ने सर्वप्रथम पिछली सरकारों द्वारा पूर्वोत्तर के विकास के नाम पर शुरु किए गए अधूरे कार्यों को संपूर्णता तक पहुँचाने का प्रयास किया। असम में **21** सालों से लंबित देश का सबसे लंबा डबलडेकर रेल-सह-रोड ब्रिज इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है। *भारत -म्यांमार -थाईलैंड सुपर हाईवे प्रॉजेक्ट* पीएम मोदी की 'एक्ट ईस्ट नीति' का ही नतीजा है। 2017 के बजट में पूर्वोत्तर में रेल संपर्क बढ़ाने के लिए 13,500 करोड़ रुपये और 2018 में 43 परियोजनाओं पर 9,000 करोड़ रुपये की राशि से पूर्वोत्तर में जीवन की मूलभूत सुविधाएँ पहुँचाकर वहाँ लोगों के जीवन स्तर को सुधारने का श्रेय मोदी सरकार को जाता है। 2019 के आम चुनाव में उनकी बड़ी जीत ने विपक्ष के सामने अस्तित्व का संकट खड़ा कर दिया है। नरेंद्र मोदी की करिश्माई जीत ने देश की राजनीति को निम्नलिखित रूप में प्रभावित किया है–

1. *वंशवाद की सियासत की गति पर अवरोध–* यूपी-बिहार के दो बड़े राजनीतिक घरानों मुलायम और लालू परिवार के उत्थान और पतन की कहानी एक जैसी है। 1970 के दशक में सियासत के दोनों धुरंधरों की राजनीति जेपी आंदोलन से शुरु हुई और दोनों राम मनोहर लोहिया की विचारधारा से आगे बढ़ते रहे। वोट बैंक की राजनीति में बिहार में लालू यादव के बेटे तेजस्वी यादव ने जातीय आधार पर *पाँच* दलों से *महागठबंधन* कर परिवार-रिश्तेदार को प्रश्रय दिया। इसी तरह यूपी में भी मुलायम सिंह के पुत्र अखिलेश यादव ने धुर विरोधी रही मायावती की *बहुजन समाज पार्टी* संग गठबंधन किया और दोनों बुरी तरह पराजित हुए। मुलायम परिवार द्वारा *पाँच* सीटें बचाने के बावजूद बिहार में न लालू प्रसाद की बेटी मीसा भारती जीत सकी और न यूपी में मुलायम की बहू डिंपल यादव।[16]
2. *'माय', 'मुनिया' समीकरण ध्वस्त–* बिहार में *राजद* बनाने के बाद लालू प्रसाद 'माय' (मुस्लिम-यादव) समीकरण के बल पर मजबूती के साथ राजनीति में जमे रहे। लेकिन, भाजपा का नीतीश कुमार के *जदयू* के साथ गठबंधन के बाद लालू यादव का 'मुस्लिम-यादव' समीकरण कमजोर पड़ता गया। 2019 के चुनाव के पहले *राजद, एनडीए* से अलग हुई उपेंद्र कुशवाहा की *रालोसपा,*

जीतनराम मांझी की *हम* और मुकेश साहनी की *वीआईपी* का महागठबंधन में शामिल हो जाने से राजनीति के दांव-पेंच में माहिर लालू प्रसाद ने अपने *'माय'* समीकरण का विस्तार करते हुए इसे 'मुनिया' (मुस्लिम-निषाद-यादव) कर दिया। रांची की जेल में बंद होने के बावजूद उन्होंने संदेश जारी किया कि 'मुनिया' के सहारे महागठबंधन की जीत होगी। उल्लेखनीय है कि नि ाद, सहनी और इसकी उपजातियाँ केवट, मल्लाह, बिंद आदि की बिहार में अच्छी संख्या को देखते हुए ही *महागठबंधन* में मुकेश साहनी की *वीआईपी* को *तीन* सीटें मिल गईं।[17] लेकिन, नरेंद्र मोदी की *'सबका साथ, सबका विकास'* की कामयाबी अवधारणा ने महागठबंधन की 'मुनिया' को ध्वस्त कर दिया। मुकेश साहनी समेत उनके तीनों उम्मीद्वारों की हार तो हुई ही, जिन सीटों पर यह समीकरण मजबूत था, वहाँ भी महागठबंधन को मुँह की खानी पड़ी।

3. *हरियाणा की जाट राजनीति पर ग्रहण*– नरेंद्र मोदी ने हरियाणा की सभी *दस* लोकसभा सीटें जीतकर जाट नेताओं की चिंता बढ़ा दी। जिस तरह से कई सीटों पर जाट मतदाता एकजुट नजर आए, उसी तरह नरेंद्र मोदी से प्रभावित गैर-जाट मतदाताओं की एकजुटता उन पर भारी पड़ गई।[18]

4. *झारखंड की नामधारी पार्टियों एवं अदृश्य शक्तियों के विरूद्ध मतदान*– झारखंड में एक तरफ *महागठबंधन* तो दूसरी तरफ नरेंद्र मोदी-रघुबर की जोड़ी के बीच मतदान हुआ। एक तरफ ईसाई मिशनरियों की चुनाव के पूर्व पर्चेबाजी तथा आदिवासियों के बीच जल, जंगल और जमीन को लेकर भ्रम फैलाने की साजिश महागठबंधन की राणनीति थी तो दूसरी तरफ नरेंद्र मोदी सरकार के बोलते काम थे। चुनाव के दौरान झारखंड के मुख्यमंत्री रघुवर दास ने महागठबंधन के प्रत्येक झूठ का डटकर मुकाबला करते हुए प्रदेश की जनता को यह विश्वास दिलाया कि नरेंद्र मोदी हैं तो झारखंड में सब मुमकिन है।

5. *राजग के गढ़ में भाजपा का उछाल*– चुनाव परिणामों से यह साबित हुई कि *भाजपा* के साथ *राजग* में भी यदुवंशी राजनेताओं का जबरदस्त उभार हुआ। इस चुनाव में यादव बहुल संसदीय क्षेत्रों से *पाँच* एनडीए सांसद चुने गए क्योंकि जातिगत समीकरणवाले इन पाँच क्षेत्रों में *भाजपा* और *जदयू* ने यादव उम्मीद्वार दिए थे। उजियारपुर में नित्यानंद राय, पाटलिपुत्र में रामकृपाल यादव, मधुबनी में अशोक यादव जहाँ भाजपा के टिकट पर विजयी रहे, वहाँ मधेपुरा में दिनेश चंद्र यादव और बांका में गिरिधारी लाल यादव जदयू उम्मीद्वार के रूप में कामयाब रहे। दूसरी तरफ *राजद* ने अपना आधार वोट बैंक मानते हुए *दस* यादवों पर दांव लगाया था, लेकिन सभी धराशायी हो गए।[19] इसी प्रकार, सारण लोकसभा की *छह* विधानसभा सीटों में से *चार* पर

राजद और दो पर *भाजपा* का कब्जा है। इन चारों सीटों पर 2015 के विधानसभा चुनाव में *राजद* के विधायक जितने वोट पाए थे, उतना भी वोट *राजद* के प्रत्याशियों को 2019 के लोकसभा चुनाव में नहीं मिला।

6. *उत्तराखंड के कई मिथक बह गए*– 1919 के लोकसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी द्वारा उत्तराखंड के *पाँचों* सीटों पर कब्जा किए जाने से वहाँ के कई *मिथक* भी ध्वस्त हो गए। टिहरी सीट पर तत्कालीन टिहरी रियासत की महारानी माला राज्यलक्ष्मी शाह यहाँ से लगातार तीसरी बार जीती हैं। यहाँ कहा जाता था कि भगवान *बद्रीनाथ* के कपाट बंद रहने के दौरान मतदान होने पर टिहरी राज परिवार के सदस्यों को हार का सामना करना पड़ता था। इस बार उत्तराखंड में 11 अप्रैल को मतदान हुआ था जबकि *बद्रीनाथ* के कपाट 10 मई को खुले थे। उत्तराखंड प्रदेश के गठन के बाद हरिद्वार सीट से किसी भी सांसद के लगातार दो बार नहीं जीत पाने का मिथक भी टूट गया जब पूर्व मुख्यमंत्री रमेश पोखरियाल निशंक ने शानदार तरीके से दोबारा विजय प्राप्त की।[20]

7. *बंगाल में मोदी मैजिक की करामात*– कभी पश्चिम बंगाल में अछूत मानी जाने वाली *भारतीय जनता पार्टी* ने राजनीतिक पंडितों को चौंकाते हुए लोकसभा चुनाव में धमाकेदार उपस्थिति दर्ज की और देश के साथ-साथ पश्चिम बंगाल में भी मोदी मैजिक सिर चढ़कर बोला। नरेंद्र मोदी और अमित शाह की दूरदर्शी हिन्दुत्ववादी राजनीति की ही देन है कि इस चुनाव में राज्य की कुल 42 सीटों में से भाजपा का आंकड़ा दो सीटों से बढ़कर *18* हो गया, जबकि *तृणमूल कांग्रेस* की सीटों की संख्या 34 से घटकर *22*] कांग्रेस के सीटों की संख्या चार से घटकर *दो* और वामपंथी दलों का पूरी तरह सफाया हो गया।

8. *वामपंथी दलों की समाप्त होती प्रासंगिकता*– नरेंद्र मोदी ने वामपंथी पार्टियों को बड़ा झटका देते हुए उनके दायरे को सीमित कर दिया। वामपंथी दलों का गढ़ समझे जाने वाले पश्चिमी बंगाल में इनका पूरी तरह सफाया तो हुआ ही, देश में इनके अन्य ठिकाने के दायरे भी काफी सीमित हो गए। केरल में 2014 के आम चुनावों में प्राप्त 8 सीटों के मुकाबले 2019 में यह सिर्फ *एक* सीट पर सिमट गया। त्रिपुरा में भी **nk** सीटों के मुकाबले उसे एक भी स्थान नहीं मिला और उसका वोट प्रतिशत 65 से घटकर 17 हो गया। वाम अर्थशास्त्री *प्रसेनजित बोस* का कहना है, ''हमारे देश की वामपंथी पार्टियाँ आज अपनी प्रासंगिकता खो दी हैं। जनता के जिन हिस्सों को लामबंद करने का काम लेफ्ट का था, वे आज मोदी-मोदी का नारा लगा रहे हैं। जनता की बुनियादी मुश्किलों का ठोस हल पेश करने में वामपंथी पार्टियाँ विफल रही हैं''।[21]

9. *राष्ट्रहित के लिए एकजुटता*– 14 फरवरी 2019 में पुलवामा आतंकी हमले के बाद पाकिस्तान स्थित बालाकोट में *जैश -ए -मोहम्मद* के आतंकी कैंप पर हवाई हमला कर उन्होंने पूरे भारत में राष्ट्रवाद की भावना का संचार किया। मोदी सरकार द्वारा स्थिरता और दृढ़ता की जो गारंटी मिली है, वह भारत के भविष्य का एक स्वर्णिम आश्वासन तथा वरदान ही कहा जा सकता है''।[22] उनकी राष्ट्रहित एवं राष्ट्रवाद की अवधारणा ने देश में ऐसी लहर उत्पन्न की, जिसने युवाओं को मतदान करते समय उनकी जाति भूलने पर विवश कर दिया।

10. *सामाजिक न्याय के गलत विश्लेषण का पर्दाफाश और सुप्रीमोवाद की समाप्ति*– समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल ने सामाजिक न्याय की विचारधारा से भिन्न सामाजिक आंदोलन और बहुजन जनता के सशक्तिकरण से जुड़े ठोस मुद्दों से रिश्ता तोड़कर *सामाजिक न्याय* को महज जातियों के गणित और जोड़-तोड़ से परिभाषित करके पार्टी के अंदर आंतरिक जनतंत्र की जगह *नंगा सुप्रीमोवाद* और परिवारवाद स्थापित किया।[23] यही कारण था कि ''85 प्रतिशत बहुजन जनता की नुमाइंदगी की दावा करने वाली पार्टियों में एक तरफ तो भारतीय लोकतंत्र में उभरती हुई नई आवाजों– अति दलित, अति पिछड़े और पसमांदा के लिए कोई जगह नहीं थी, तो वही टिकट के खरीद फरोस्त की राजनीतिक संस्कृति ने आम कैडर को हतोत्साहित कर दिया''।[24]

11. *क्षेत्रीय दलों की दरकती जमीन*– वी. पी. सिंह सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई थी। ऐसा लगने लगा था कि अब भारत की राजनीति का भविष्य इन्हीं क्षेत्रीय पार्टियों से जुड़ा है। यह अवधारणा विकसित हो गई थी कि यदि कांग्रेस या भाजपा जैसी पार्टियों को केंद्र में राज करना है तो इन क्षेत्रीय पार्टियों के साथ सत्ता में साझेदारी करनी पड़ेगी। 1990 के दशक की गठबंधन सरकारों में इन क्षेत्रीय दलों ने बहुत मनमानी की। 2014 के लोकसभा चुनावों में *भारतीय जनता पार्टी* को पूर्ण बहुमत (282) और 1919 में मिले उससे अधिक बहुमत (303) से स्पष्ट है कि ये क्षेत्रीय पार्टियाँ *भाजपा* को रोकने या उसे अपने ऊपर निर्भर बनाने में नाकाम रही हैं।[25] उत्तर भारत में क्षेत्रीय दलों का असर समाप्त होता दिखाई दिया। मध्य प्रदेश, छतीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, उत्तराखंड, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, बिहार और झारखंड में इनका प्रदर्शन बहुत ही निराशाजनक रहा। उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा गठबंधन 80 में से मात्र 15 सीटें जीत कर कुछ हद तक अपना वजूद बचाने में कामयाब रहे, लेकिन बिहार में *राजद, रालोसपा, हम* और *वीआईपी* जैसे दलों ने एक भी सीट नहीं जीती। झारखंड में *झामुमो* मात्र एक सीट ही जीत

पाई। उत्तर-भारत की तुलना में दक्षिण-भारत में क्षेत्रीय दलों में तमिलनाडु में *द्रमुक* का ही सिर्फ शानदार प्रदर्शन रहा जो 23 सीटें जीतकर लोकसभा में तीसरी बड़ी पार्टी बनकर उभरी। इसी प्रकार *टीआरएस* (तेलंगाना राष्ट्र समिति) ने 17 में से नौ, आंध्र प्रदेश में 25 सीटों में से 22, ओडिशा में नवीन पटनायक के नेतृत्व वाला *बीजू जनता* दल 21 में 12, जम्मू कश्मीर में *पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी* (पीडीपी¼ को मिली करारी हार के साथ उसका वोट प्रतिशत 2014 के आम चुनाव के 20.50 प्रतिशत से गिरकर 17वीं लोकसभा चुनाव में 2.4 प्रतिशत पर आ गया। 2014 के लोकसभा चुनाव में *पीडीपी* ने जहाँ तीन सीटें जीती थीं, वहाँ 2019 के आम चुनाव में उसे मात्र 2.4 प्रतिशत ही वोट मिले। पश्चिमी बंगाल में भी *तृणमूल कांग्रेस* को मात्र 23 स्थान ही प्राप्त हुए।

वाजपेयी की एनडीए सरकार से तुलना– भाजपा के नेतृत्व में बनी इन दोनों एनडीए सरकारों के कामकाज के तौर तरीके अलग-अलग थे और इन दोनों सरकारों के नेतृत्व की अपनी अलग पहचान थी। एक समय था जब भाजपा में अटल-आडवाणी के होते हुए भी कई गुट थे जो अपने-अपने ढंग से वाजपेयी के एनडीए सरकार को प्रभावित करते थे। ऐसा नहीं है कि नरेंद्र मोदी की एनडीए सरकार में भाजपा के सारे लोग पूरी तरह से संतुष्ट हैं, लेकिन ऐसे लोगों के लिए समस्या यह है कि नरेंद्र मोदी के शासन में उनके पास शिकायत का कोई मौका नहीं है। 1999 में 13वीं लोकसभा के लिए आम चुनाव सितंबर-अक्टूबर के दौरान हुए थे। इस लिहाज से 14वीं लोकसभा के लिए आम चुनाव सितंबर-अक्टूबर 2004 में होने थे। लेकिन, भाजपा और एनडीए के रणनीतिकारों ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को निर्धारित समय से पांच महीने पूर्व ही चुनाव कराने की गलत सलाह दे डाली। उस समय वाजपेयी को समझाया गया कि 'फील गुड फैक्टर' (Feel Good Factor) और 'इंडिया शाइनिंग' (India Shining) के प्रचार अभियान की मदद से *एनडीए* सत्ता विरोधी लहर को बेअसर कर देगा और स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लेगा। इसके बावजूद 2004 के 14वें आम चुनाव में *भाजपा* हार गई क्योंकि वाजपेयी के समय सरकार और संगठन एक हो गया था। सरकार की उपलब्धियों को आम लोगों तक पहुँचाने का काम भी संगठन ने सरकार पर छोड़ दिया था।[26] नरेंद्र मोदी की एनडीए सरकार में भाजपा अध्यक्ष अमीत शाह के कुशल नेतृत्व के चलते सरकार और संगठन कदम से कदम मिलाकर चले। वाजपेयी सरकार ने आधारभूत ढाँचे को सुधारने के लिए बड़े ऐतिहासिक काम तो किए, लेकिन आम जनता विकास का आकलन इस बात से करती है कि उसे ठोस रूप में क्या मिला, जो उनके जीवन स्तर को सुधार सके। नरेंद्र मोदी की एनडीए सरकार ने उज्जवला, शौचालय, प्रधानमंत्री आवास, बिजली कनेक्शन और आयुष्मान जैसी योजनाओं द्वारा मतदाताओं की इस इच्छा को पूरा किया। 2014 की एनडीए सरकार में मोदी शाह की जोड़ी ने *तीसरा* अहम काम *राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ* से सर्वांगीण तालमेल करने का किया। इसके लिए बकायदा एक सांस्थनिक व्यवस्था की गई। ये सब कारण हैं जिनके चलते 2019 के 17वें आम चुनाव में नरेंद्र मोदी की एनडीए सरकार को अप्रत्याशित सफलता

मिली। 2014 और 2019 में नरेंद्र मोदी ने अपने हिसाब से मंत्रिपरिषद् में घटक दलों को शामिल इसलिए किया कि उनके पास क्रमशः 282 और 303 का स्वयं का आंकड़ा लोकसभा में प्राप्त था। नरेंद्र मोदी की दूसरी सरकार में शामिल नहीं होने पर नीतीश कुमार ने कहा कि अटलजी की सरकार में घटक दलों को आनुपातिक ढंग से मंत्रिपरिषद में शामिल होने की व्यवस्था थी। अभी की बात अलग है, क्योंकि भाजपा खुद पूर्ण बहुमत में है।[27]

निष्कर्ष

2019 के 17वें लोकसभा चुनाव में पिछले पाँच सालों में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के कामकाज के आधार पर लोगों ने उनपर फिर से भरोसा व्यक्त करते हुए यह महसूस किया है कि नरेंद्र मोदी ने समाज के सबसे निचले तबके के जीवन में सुधार के लिए हर संभव प्रयास किया। मोदी की इस पहल से देश के लोगों में उनके लिए भरोसे के जिस भाव में वृद्धि हुई, उसके चलते ही उन्होंने क्षेत्रीय दलों को बड़े पैमाने पर सीमित करते हुए प्रधानमंत्री को खुला हाथ दिया ताकि वे अपने हिसाब से अपनी सरकार का संचालन करते हुए देश को आगे ले जा सकें। वाजपेयी की *एनडीए* सरकार के कामकाज और अंतर्विरोधों के आलोक में नरेंद्र मोदी ने 2014 की अपनी सरकार को सर्वजातीय हितों की पूर्ति के लिए समर्पित कर समाज के आखिरी पायदान पर बैठे व्यक्ति के उत्थान और कल्याण के लिए काम किया। यही कारण है कि बंगाल के वामपंथी काडर ने भाजपा को अपना अंतिम आश्रय मान लिया जहाँ से उसका एक भी सदस्य लोकसभा के लिए नहीं चुना गया। शासन को *पारदर्शी* और *जबावदेह* बनाने की कोशिश में जिस तरह प्रधानमंत्री जनता से *प्रत्यक्ष संवाद* कर रहे हैं, उससे नए भारत के नागरिकों ने यह भरोसा करना भी शुरु कर दिया है कि वे भी राष्ट्रनिर्माण और देश के आर्थिक विकास में राजनीतिक वर्ग के साथ मिलकर योगदान दे सकते हैं। उनकी समावेशी विकास *'सबका साथ, सबका विकास'* अब *'सब में विश्वास'* की अवधारणा बन जाने से जमीनी स्तर पर यही भावना बलवती हुई है कि विकास का फल निरंतरता के साथ सभी के पास पहुँचेगा। ऐसा होने से भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की प्रासंगिकता पर सवाल उठेगा और अंततोगत्वा राष्ट्रीय परिदृश्य से उनके ओझल हो जाने से गठबंधन राजनीति का दौर भी समाप्त हो जाएगा।

संदर्भ

1. aajtak.intoday.in (Edited by, राहुल विश्वकर्मा) नई दिल्ली, 13 मई, 2019
2. Gandhijee Roy : *Bharatiya Sambidhan aur Sasan* (Patna, Bharti Bhawan, 1980), p. 475
3. *The Indian Express* (New Delhi, Moday, June 25, 1979)
4. Indian Express, vol. XLVII, No. 250 (New Delhi, 22 August, 1979), p. 9
5. *Ibid*

6. "In Law there was 'miscarriage' and Mr. Charan Singh was never 'born alive' to the office of the Prime Minister. Therefore he could not advise within the meaning of article 75 of the constitution."- Ram Jethmalani, *Ibid*
7. गठबंधन का दौर, www.livehindustan.com
8. गठबंधन की राजनीति के पड़ाव, https://navbharattimes.indiatimes.com...
9. उपरोक्त
10. गाँधीजी राय का आलेख, 'नरेंद्र मोदी की शक्तिशाली भारत की संकल्पना– डिजिटल इंडिया मिशन एवं विविध योजनाएँ': *लोक प्रशासन,* वर्ष 10, अंक 1, (नई दिल्ली, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, जनवरी-जून, 2018), पृ.1-18
11. *दैनिक जागरण* (पटना, 26 दिसंबर, 2015), पृ.1
12. संपादकीय *दैनिक जागरण* (पटना, 22 अप्रैल, 2017), पृ.10
13. राजीव कुमार का आलेख, 'ऐतिहासिक कायाकल्प का पड़ाव': *दैनिक जागरण* (पटना, 29 मई 2019), पृ.10
14. *दैनिक भास्कर* (पटना, 24 मई 2019), पृ.2
15. धमेंद्र प्रधान का आलेख, 'मोदी सरकार ने लिखी विकास की नई गाथा': *दैनिक जागरण* (पटना, 30 मई 2019), पृ.10
16. अरविंद शर्मा का आलेख 'अब लालू-मुलायम परिवार की नियति भी एक', *दैनिक जागरण* (पटना, 27 मई 2019), पृ.15
17. प्रेमशंकर मिश्र का आलेख, 'बिहार में महागठबंधन' : *दैनिक जागरण* (पटना, 26 मई 2019), पृ.15
18. अनुराग अग्रवाल का आलेख, 'हरियाणा की जाट राजनीति पर ग्रहण, अब भाजपा में आस', उपरोक्त
19. *दैनिक जागरण* (पटना, 27 मई 2019), पृ.11
20. *प्रभात खबर* (पटना, 27 मई 2019), पृ.9
21. प्रसेनजित बोस का आलेख, 'नए बाम सोच, नए नेतृत्व की जरुरत': *प्रभात खबर* (पटना, 20 मई 2019), पृ.8
22. तरुण विजय का आलेख, 'चाहिए सशक्त और विवेकी विपक्षः *प्रभात खबर* (पटना, 26 मई 2019), पृ.8
23. खालिद अनीस अंसारी का आलेख, 'सामाजिक न्याय वाली पार्टियों में सुप्रिमोवाद से नुकसान': *प्रभात खबर* (पटना, 26 मई 2019), पृ.8
24. उपरोक्त
25. राजेंद्र धोड़पकर का आलेख, 'क्षेत्रीय गढ़ों की दरकती जमीन': *हिन्दुस्तान* (पटना, 30 मई 2019), पृ.12
26. प्रदीप सिंह का आलेख 'चुनावी रणनीति के शहंशाह': *दैनिक जागरण* (पटना, 31 मई 2019), पृ.12
27. *दैनिक भास्कर* (पटना, 1 जून 2019), पृ.1

भारत में गठबन्धन की राजनीति की रूपरेखा

कौशल किशोर मिश्र

lkjk'k *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था लोकतन्त्र पर आधारित है। यहाँ पर हम वर्तमान समय में गठबन्धन की बढ़ती प्रवृत्ति का विवेचन कर रहें हैं। आज गठबन्धन के दौर में दलीय व्यवस्था और संसदीय लोकतन्त्र में परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियों में पुनर्विचार की अत्यंत आवश्यकता है। क्योंकि विगत् कुछ वर्षों के आम चुनावों से भारत में साझा सरकारों के गठन का जो दौर आरम्भ हुआ, उसने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को एक विचित्र मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है। भारत की दलीय व्यवस्था का स्वरूप बहु दलीय होते हुए भी लम्बे समय तक एक दल की प्रधानता की रही है। लेकिन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की शासन प्रणाली में एक दौर ऐसा भी आया, जो अकल्पनीय था। वह दौर 70 के दशक का था। इस दशक में भारतीय राजनीति में एक दल की प्रधानता धराशाही होती हुई नजर आयी। जिसका परिणाम था कि कांग्रेस पार्टी में विभाजन हो गया। इस समय का लाभ काँग्रेस से अलग हुए नेताओं ने उठाया। नये दल बनाये और जो दल पहले से भारतीय राजनीति में भाग ले रहे थे तथा जिनकी भागीदारी नाममात्र की थी, उन दलों ने मिलकर 1977 में गठबन्धन का निर्माण किया। 1977 के आम चुनाव में यह मोरारजी देसाई के नेतृत्व में सत्ता प्राप्त करने में सफल रहे। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में किसी गैर-कांग्रेसी दल की केन्द्र में सरकार बनी। 70 के दशक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में जो विघटन आरम्भ हुआ, उसमें लोकतन्त्र की रक्षा के नाम पर विपक्ष में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। जनता पार्टी 70 के दशक में जिन मुद्दों को लेकर सत्ता में आयी थी उसके आधार पर वह एक स्थायी शासन स्थापित करने में विफल रही। अपने अन्तर्विरोधों के कारण सरकार ज्यादा समय तक नहीं चल सकी। 70 के दशक के बाद से गठबन्धन का ऐसा दौर शुरू हुआ जो रुकने का नाम नहीं ले रहा था, इसमें क्षेत्रीय दलों की लोकप्रियता भी बढ़ती गई। कई बार छोटे-छोटे दलों ने*

मिलकर गठबन्धन बनाकर स्थायी सरकार बनाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप, देश में त्रिशंकु लोकसभा और अस्थिर सरकारों के गठन का दौर प्रारम्भ हुआ। भारत के संसदीय लोकतंत्र में गठबन्धन एक नया अनुभव था।

प्रस्तावना

भारतीय लोकतन्त्र के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं। वर्तमान परिस्थितियों में संसदीय शासन व्यवस्था को शक की नजर से देखा जाने लगा है और इस व्यवस्था के स्थान पर दूसरी व्यवस्था विशेषकर अध्यक्षीय सरकार की स्थापना के सुझाव आने लगे हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है की क्या विघटनकारी शक्तियों पर अंकुश लगा देने मात्र से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में एक स्थायी एवं सशक्त सरकार का निर्माण किया जा सकता है? लोकतंन्त्र को सुदृढ़ एवं सफल बनाने के लिये कैसे परिवर्तन अपेक्षित हैं?

सत्तर के दशक में गठबन्धन का उद्भव

गठबन्धन से आशय दो या दो से अधिक दलों द्वारा आपस में मिलकर गठित उस समूह से है जो किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्मिलित किये गये हों। यहाँ इसी संदर्भ में कुछ भ्रमों का निराकरण करना भी आवश्यक है। जैसे गठबन्धन और अल्पमत की सरकार को एक दूसरे का समानार्थी समझा जाता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। जब दो या दो से अधिक राजनीतिक दल संयुक्त रूप से सरकार का निर्माण करते हैं तो उसे गठबन्धन सरकार कहते हैं। गठबन्धन के सहयोगी दल अलग-अलग विचारधारा में अल्पमत में होते हैं। परन्तु सम्मिलित रूप से संसद में बहुमत प्राप्त कर लेते हैं। केन्द्र में, गठबन्धन की उत्पत्ति के सन्दर्भ में 70 का दशक सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। यही वह दशक है जिसमें केन्द्र में गैर-कांग्रेसी यानि गठबन्धन की सरकार बनी। इस दशक में भारतीय राजनीति में उथल-पुथल का दौर रहा है जिसमें एक दलीय व्यवस्था का भारतीय राजनीतिक व्यवस्था से ह्रास हुआ। बहुदलीय व्यवस्था का विकास हुआ। यह यहीं नहीं, बल्कि आगे केन्द्र के साथ ही राज्यों को भी प्रभावित किया। मोरारजी देसाई के नेतृत्व में केन्द्र में बनी जनता पार्टी की सरकार का प्रभाव, राज्यों की राजनीति पर पड़ा। जिसका परिणाम यह हुआ कि सत्ता परिवर्तन से राज्यों में भी सत्ता परिवर्तन बहुत ही तीव्र गति से हुआ। लेकिन यह दौर, जिसमें गठबन्धन की सरकारें थोड़े समय में ही धराशायी हो गई। इसका कारण यह रहा की गठबन्धन में सत्ता को लेकर कलह उत्पन्न हुआ और गठबन्धन में शामिल दल अपने आप को अलग करना अधिक उपयुक्त समझने लगे। मोरारजी ने त्यागपत्र देना उचित समझा और जनता सरकार लगभग 800 दिन ही चल सकी। लेकिन इस दौर ने सम्पूर्ण भारतीय राजनीति में एक ऐसे मार्ग का निर्माण किया, जिस पर आज के राजनीतिक दल चलकर सत्ता प्राप्त कर रहे हैं और उसका भली-भाँति प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन, भारत में गठबन्धन की राजनीतिक ने अनेक क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया।

अस्सी और नब्बे का दशक

भारतीय राजनीति में अस्सी के दशक में फिर एक दलीय शासन का अभ्युदय आश्चर्य का विषय था। क्योंकि जिन कारणों से 70 के अन्तिम समय में कांग्रेस सत्ता से दूर हुई उससे यह स्पष्ट हुआ कि कांग्रेस के पुनः सत्ता में आने में काफी समय लगेगा, लेकिन गठबन्धन की सरकारें शायद भूल गईं कि जो जनता उनको सत्ता में ला सकती है, वही जनता उन्हें सत्ता से बेदखल भी कर सकती है। पंजाब के आपरेशन ब्ल्यू स्टार से कांग्रेस को बहुत बड़ी क्षति का सामना करना पड़ा। अस्सी के अन्तिम दशक में पुनः गठबन्धन की सरकार का आना भी एक आश्चर्य था क्योंकि इस समय के आम चुनाव में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। जिसका कारण था कि वी.पी. सिंह के नेतृत्व में 1989 में जनता दल की सरकार बनी। यह सरकार भी अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी और अपने अन्तर्विरोधों के कारण बिखर गईं।

1989 का चुनाव भारतीय राजनीति में कांग्रेस के पतन और भाजपा के उत्कर्ष का युग प्रारम्भ करने वाला निर्णायक चुनाव था। जब नौवीं लोकसभा की 543 में से 525 सीटों के लिए निर्वाचन हुए। फिर से एक दलीय सरकार के युग की समाप्ति और साझा सरकारों का युग प्रारम्भ हुआ। देश में राजनीतिक स्थायित्व के स्थान पर अस्थायित्व का जन्म हुआ। 1988 में चौधरी देवीलाल के प्रयासों से जनता दल का गठन हुआ। इस दल में तीन नेताओं के नाम उभरकर सामने आया– विश्वनाथ प्रताप सिंह, चन्द्रशेखर और चौधरी देवीलाल। जनता दल की संसदीय बैठक में देवीलाल को सर्व सम्मति से नेता चुना गया। लेकिन उन्होंने वी.पी. सिंह के नाम को प्रस्तावित कर दिया और सबने उनका अनुमोदन कर दिया। इस निर्णय से नाराज होकर चन्द्रशेखर बैठक से उठकर चले गये और यहीं से जनता दल में फूट के बीज पड़ गये। 90 के दशक में चन्द्रशेखर 60 सीटें प्राप्त कर सरकार बनाने वाले पहले भारतीय नेता हुए। कांग्रेस अन्य दलों के सहयोग से सरकार बनायी लेकिन यह सरकार ज्यादा दिन नहीं चल सकी। अस्थिर सरकारों के दौर में प्रशासनिक अस्थिरता भी समने आती है। प्रशासन अनिर्णयकारी हो जाता है।

1991 के आम चुनाव में नौ राष्ट्रीय दल, 39 क्षेत्रीय दल और 301 रजिस्टर्ड दलों ने भाग लिया। यह पहला चुनाव था जिसमें नेहरू परिवार से कोई व्यक्ति चुनाव मैदान में नहीं था। किन्तु राजीव गांधी की हत्या के कारण मतदाताओं की सहानुभूति का मत कांग्रेस को मिला। 1991 के आम चुनाव में भाजपा को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। यह पार्टी 120 सीटें प्राप्त कर विपक्ष में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर आयी। 10वीं लोक सभा ने अपनी पाँच वर्षों की अवधि पूरी की। इसका पूरा श्रेय कांग्रेस पार्टी के प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव को जाता है। नरसिम्हा राव के नेतृत्व में संचालित अल्पमत कांग्रेस सरकार ने दल-बदल के आधार पर बहुमत प्राप्त किया, लेकिन कांग्रेस के आगे की यात्रा बहुमत से दूर होती नजर आई। एक बार पुनः भारतीय राजनीति को गठबन्धन

के दौर में लाकर खड़ा कर दिया। 1996 में 11वीं लोकसभा के आम चुनाव परिणाम ने त्रिशंकु सरकार को जन्म दिया। भाजपा और उसके सहयोगी दलों को 194 स्थान प्राप्त हुए। कांग्रेस को 140 स्थान प्राप्त हुए। इस चुनाव में क्षेत्रीय दलों एवं छोटे-छोटे दलों की सामूहिक शक्ति में भारी वृद्धि हुई। यह चुनाव अधिक अस्थिरता से भरा था। सत्ता के दावेदार तीन मुख्य राजनीतिक दल थे, कांग्रेस, भाजपा और राष्ट्रीय मोर्चा, चुनाव के कुछ दिन पहले जैन हवाला, भ्रष्टाचार काण्ड सामने आने से लाल कृष्ण आडवाणी समेत 29 लोगों पर आरोप लगे। मुख्य चुनाव आयोग टी.एन. शेषन ने नयी आचार संहिता के आधार पर चुनाव कराया। यह चुनाव भारत के चुनावी इतिहास में अभूतपूर्व था। 1996 में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार बनी। लेकिन यह सरकार 13 दिन तक ही चल सकी। मई 1996 से जनवरी 1998 और फिर मार्च 1998 तक तीन सरकारें बनी और टूटी और अन्त में 4 दिसम्बर 1997 में पुनः चुनाव हुए। 12वीं लोक सभा चुनाव में भाजपा को 179वाँ स्थान मिला, जिसने एक दर्जन से अधिक दलों को मिलाकर संविद सरकार बनायी। परन्तु यह सरकार 13 महीनों तक ही अस्तित्व में रही। जयललिता से विवाद बढ़ा और जयललिता ने समर्थन वापस ले लिया। इस समय कई प्रकार की समस्या उत्पन्न हो गई। जयललिता सरकार ने अविश्वास प्राप्त रखा जिससे 17 अप्रैल, 1999 को विवादित रूप से मतदान हुआ और सरकार एक मत से गिर गई।

13वीं लोकसभा के चुनाव ने गठबन्धन की दिशा एवं दशा ही बदल कर रख दिया। 12वीं लोकसभा भंग होने के बाद विभिन्न राजनीतिक दल चुनावों को दूसरी दिशा में ले गये। 1997 से पहले चुनाव के बाद कई दल मिल कर गठबन्धन की सरकार बनाते थे, लेकिन 1999 के समय एन.डी.ए. ने चुनाव से पहले गठबन्धन कर चुनाव लड़ा और सत्ता में आयी। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एन.डी.ए. ने 297 सीटें प्राप्त कीं। कांग्रेस ने यू.पी.ए. का निर्माण किया जो इस चुनाव में 136 तथा अन्य को 109 सीटें प्राप्त हुईं। इस चुनाव में भाजपा ने 182 तथा कांग्रेस ने 114 सीटें प्राप्त कीं।

13वीं लोक सभा चुनाव के दौरान एक ऐसे राजनीतिक परिवर्तन का दौर शुरू हुआ जिसके चलते भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में विभिन्न राजनीतिक दलों को गठबन्धन के माध्यम से सत्ता पक्ष से जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ। जिन क्षेत्रीय दलों ने कभी यह आशा नहीं की थी कि वे कभी केन्द्र में सत्ता का स्वाद चखेंगें, वे भी अब सत्तारूढ़ दल से मिलकर सरकार में शामिल हो गये। यह दौर राजनीतिक उथल-पुथल का दौर था। इस चुनाव में क्षेत्रीय पार्टियों का और विकास हुआ। 13वीं लोकसभा के निर्वाचन में अटल जी के नेतृत्व में सरकार बनी। सरकार फिर अपने पांच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण करने में असफल रही और राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने आठ महीने पहले ही सरकार भंग कर दी।

6 फरवरी 2004 को राष्ट्रपति ने 13वीं लोकसभा को भंग कर दिया। साथ ही साथ 14वीं लोकसभा चुनाव की घोषणा कर दी। यह ऐसा अवसर था जब 55 वर्ष के

गणतन्त्र में चौथी बार सरकार को समय से पहले भंग कर दिया गया। इस चुनाव में मतदाताओं की संख्या 67.5 करोड़ थी। इण्डिया टुडे ने लिखा की ''इस महाभारत में इस बार गठबन्धनों की जंग होने वाली है''। इस बात का आशय यह था की भारतीय लोकतन्त्र में 14वीं लोक सभा के चुनाव में एक तरफ सत्तारूढ़ राजग (एन.डी.ए.) तो दूसरी तरफ कांग्रेस के नेतृत्व में सेक्युलर मोर्चा (यू.पी.ए)। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एन.डी.ए. में 24 दलों के गठबन्धन के सफल प्रयोग ने भाजपा में राजनीतिक आत्म विश्वास का संचार किया। इसलिए अटल जी चाहते थे की चुनाव जल्द से जल्द सम्पन्न हो जायें। 24 दलों का यह गठबन्धन चुनाव के पहले था। घोषणा पत्र भी कामन मिनिमम प्रोग्राम के तहत था।

भारतीय लोकतन्त्र में यह आम चुनाव एक अनोखा चुनाव था। भारतीय लोकतन्त्र के इतिहास में अब तक के सबसे पेचिदा चुनाव में दो गठजोड़ सत्ताधारी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (राजग) और कांग्रेस के अगुवाई वाला (यूपीए) अपनी जोर आजमाईश कर रहे थे। यह चुनाव चार चरणों 20, 26 अप्रैल तथा 5, 10 मई 2004 को सम्पन्न हुआ। इस चुनाव में राजग (एनडीए) सत्ताधारी गठबन्धन को जनता ने नकार दिया। राजग ने जिस तरह से 'शाइनिंग इण्डिया' तथा 'फीलगुड' का नारा पूरे देश में फैलाया, वह पूरी तरह से जनता के गले नहीं उतरा था। नेताओं और मीडिया पर भ्रम का नशा छा गया। हकीकत यह थी कि राजग के शासन काल में उसके नेता और कार्यकर्ता विलासिता में डूब गये थे। जिसने उन्हें सत्ता से दूर कर दिया। 13 मई, 2004 के परिणाम में राजग की पराजय एवं धर्मनिरपेक्ष दलों को सत्ता ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ। राजग के खिलाफ 'अण्डर करण्ट' था जिसे वे लोग भांप नहीं पाये। यह चुनाव एक और अन्य विशेषताओं को लिए सम्पन्न हुआ क्योंकि यही वह चुनाव था जिसमें पहली बार प्रत्येक चुनाव केन्द्रों पर ईवीएम (इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन) से सफलतापूर्वक चुनाव सम्पन्न हुआ। ई.वी.एम. से हुए चुनाव में राजग की हार हुई।

14वीं लोक सभा चुनाव में कांग्रेस को 145 सीटें और भाजपा को 138 सीटें प्राप्त हुईं। कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में उभरा और भाजपा दूसरे बड़े दल के रूप में उभरी। इन दोनों दलों के बीच सात सीटों का अन्तर था। इस चुनाव में जनादेश के तीन पहलू स्पष्ट हैं :– (1) राजग को देश की जनता ने पूरी तरह से ठुकराया। (2) सत्ताधारी राजग 300 के अपने आकड़े बहुमत से फिसल कर 175 से कुछ ऊपर ही रह गये, कांग्रेस की सरकार बनाने के लिए वामपंथी दल एवं अन्य राजनीतिक दलों ने सहयोग किया। जिसका परिणाम हुआ कि यू.पी.ए. की अध्यक्ष सोनिया गाँधी ने प्रधानमंत्री खुद न बनकर डा. मनमोहन सिंह को प्रधानमंत्री बनाया था। डा. मनमोहन सिंह ने 22 मई, 2004 को देश के 14वें प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की। मनमोहन सरकार में कुछ निरपेक्ष राजनैतिक दलों जैसे समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी,

वामपंथी पार्टी आदि सरकार में शामिल न होकर बाहर से समर्थन दिया। भाजपा के गठबन्धन की सरकार रोकने के लिये भाजपा विरोधी दलों का एक गठबन्धन बना लिया।

15वीं लोक सभा के पूर्व ही यू.पी.ए. सरकार में विघटन के आसार दिखने लगे। यह विघटन अविश्वास तक पहुँच गया। इसका कारण 2007 में अमेरिका के साथ हुए परमाणु मुद्दों पर वामंपथी दल द्वारा समर्थन वापस लेना था। लेकिन सपा एवं बसपा के समर्थन से सरकार अपना पांच वर्ष का कार्यकाल काल पूरा करने में सफल रही।

15वीं लोकसभा चुनाव मई, 2009 में सम्पन्न हुआ। इस चुनाव में भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया। सभी दल समस्त राजनीतिक मूल्यों एवं मान्यताओं को त्यागकर अपने स्वार्थ के लिए एक दल छोड़कर दूसरे दल में शामिल होने लगे। जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आते गये, राजनीतिक दलों के सम्बन्ध तेजी से परिवर्तित होने लगे। यू.पी.ए. से लालू प्रसाद यादव (राजद), राम विलास पासवान (लोजपा) अलग हो गये। साम्यवादी पार्टी पहले से ही अपना समर्थन वापस ले चुकी थी।

इस चुनाव में यह सम्भावना बन रही थी की जिस पार्टी ने पिछली सरकार को गिरने से बचाया था वह और कांग्रेस मिलकर चुनाव लड़ेगी। लेकिन सीटों के बंटवारे को लेकर विवाद होने से अलग-अलग चुनाव लड़ा गया।

राजग से चन्द्रबाबू नायडू के नेतृत्व वाली तेलगूदेशम् पार्टी ने सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। ओडिशा में नवीन पटनायक भाजपा से अलग हो गये। जो दल एन.डी.ए. और यू.पी.ए. से अलग हुए, उन सबने मिलकर तीसरे व चौथे मोर्चे के नाम पर अलग गठबन्धनों का निर्माण किया। यह गठबन्धन चुनाव मैदान में उतरा।

2009 के आम चुनाव ने बहुत आश्चर्यजनक परिणाम दिये। कश्मीर से कन्याकुमारी तक लगभग समान सफलता प्राप्ति की। कांग्रेस को जो 2004 में 145 सीटें मिली थीं, वह इस चुनाव में बढ़कर 201 सीटें हो गयीं। इस चुनाव में भाजपा को अधिक हानि हुई। उसने केवल 116 सीटें ही मिलीं। इस चुनाव में मध्य प्रदेश, कर्नाटक, छत्तीसगढ़ में भाजपा का प्रदर्शन अच्छा रहा जबकी उत्तर प्रदेश में स्थिति सामान्य रही। चुनाव में यू.पी.ए. को 262 स्थान प्राप्त हुए और एन.डी.ए. को 159 स्थान प्राप्त हुए। चुनाव में साम्यवादी दलों को बहुत नुकसान हुआ। पश्चिम बंगाल उसके हाथ से निकलकर तृणमूल कांग्रेस के हाथ में चला गया। चुनाव में यू.पी.ए. की संख्या में इजाफा होने से क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के अस्तित्व और उनके जनाधार पर प्रश्न चिन्ह खड़े होने लगे। यू.पी.ए के नेता डा. मनमोहन सिंह ने 22 मई, 2009 को दूसरी बार प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। अपने पिछले पाँच वर्ष के कार्यकाल में डा. मनमोहन सिंह ने हर संकट के मौके पर जिस गंभीरता, सौम्यता और सहनशीलता का परिचय दिया, उसे देखकर मतदाताओं में यह उम्मीद जगी कि अब कांग्रेस नेतृत्व की यह सरकार स्थायी सरकार साबित होगी।

केन्द्र में गठबन्धन सरकारों के समक्ष स्थायित्त्व होने का सबसे कठिन सवाल उठता रहा है। क्षेत्रीय दलों ने प्रादेशिक हितों एवं दलीय स्वार्थों की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय सरकारों को स्थायित्व प्रदान करने में यू.पी.ए. ने भूमिका निभाई। संयुक्त सरकारों के स्थायित्व भविष्य के लिए यह एक रामबाण इलाज के समान प्रतीत हुआ। यू.पी.ए. और एन.डी.ए. के गठबन्धन ने जिस तरह से स्थायी सरकार के पांच वर्ष पूरे किये उसे देखकर यह आभास हुआ की भले ही किसी राजनीतिक दल को पूर्ण बहुमत न मिले लेकिन गठबन्धन के माध्यम से अल्प अवधि की सरकारें बनती थीं, डा. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में 2004 एवं 2009 में यू.पी.ए. की सरकार एक स्थायी सरकार के रूप में आगे बढ़ी। गठबन्धन की राजनीति ने स्थाई सरकार देने का एक नया आधार दिया।

16वीं लोक सभा का आम चुनाव भारतीय राजनीति में एक परिवर्तन का दौर लेकर आया। यह चुनाव 1977 के आम चुनाव की याद दिलाता है। जनता कांग्रेस सरकार के शासन से त्रस्त हो चुकी थी और परिवर्तन लाना चाहती थी। जिसका परिणाम था कि मोरारजी देसाई के नेतृत्व में पहली बार चार दलों ने मिलकर गठबन्धन का निर्माण किया था। इतिहास खुद को दोहराता है। 2014 में 16वीं लोक सभा का आम चुनाव 1977 के आम चुनाव के समान माना गया। उस समय भारतीय राष्ट्रीय कांगेस का विभाजन हो चुका था, कांग्रेस के गठबन्धन की सरकार के दो कार्यकालों ने देश में भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, हत्या, लूट, चोरी, बलात्कार आदि समस्याओं को जन्म दिया। इन मुद्दों के कारण 16वीं लोकसभा चुनाव में सरकार आने से वंचित रह गई। भारतीय जनता कांग्रेस के विरोध में खड़ी हो गई। सेना के रिटायर्ड सैनिक, अन्ना हजारे का आन्दोलन, युवाओं की कांग्रेस विरोधी प्रवृत्ति, देश की अराजक होती स्थिति ने यू.पी.ए. की बुरी गति कर दी।

भाजपा अब तक देश की प्रमुख राष्ट्रीय पार्टी बन चुकी थी। भारतीय राजनीति को देखकर कभी-कभी तो लगता है कि भारत में लोकतन्त्र महज एक दिखावा जैसा शब्द बनकर रह गया है। दुनिया के अधिकांश देशों, में लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनायी गयी है। परन्तु क्या वहाँ पर लोग सच्चे लोकतान्त्रिक मायनों में जी पा रहे हैं? यह एक विचारणीय प्रश्न है। 2014 से पूर्व भारत में सात ऐसी सरकारें सत्ता में आयीं जो पूर्ण बहुमत के अभाव में थी। फलस्वरूप संविद सरकारों का निर्माण हुआ। लेकिन ये सरकारें दुविधा की सरकारें थीं। कभी भी गिर सकती थीं। 'बिना पेन्दी के लोटा' जैसी कहावत ऐसी सरकारों पर बहुत सटीक लगती थी। 2014 के चुनाव में भाजपा को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। ऐसे में गठबन्धन की राजनीति पर प्रश्न चिह्न लगना स्वाभाविक हो गया। एक सकारात्मक पहलू यह भी था की जिसे हम चुनाव पूर्व गठबन्धन का नाम देते हैं। समकालीन भारतीय राजनीति में राष्ट्रीय दलों के साथ क्षेत्रीय दलों के बीच चुनाव पूर्व गठबन्धन होते रहे। राजनीतिक दल चुनाव पूर्व गठबन्धन कर सरकारें बनाने की अभ्यस्त हो चलीं थी। भाजपा ने चुनाव पूर्व गठबन्धन 1999 की अपेक्षा 2014

में और ठोस ढंग से किया। अधिकांश गठबन्धन पिछले गठबन्धनों के मुकाबले आर्थिक अनुकूल शर्तों पर किये गये। 2014 में भाजपा ने लगभग 10 राज्यों में चुनाव पूर्व गठबन्धन किये। 2014 में भाजपा को भी यह आभास नहीं था कि उसे अकेले दम पर पूर्ण बहुमत प्राप्त होगा।

15वीं लोक सभा चुनाव 2009 में छः गठबन्धन किये गये थे। जिसमें भाजपा और उसके सहयोगी दलों ने चुनाव लड़ा। जिसमें से सात राज्यों में बिहार, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, हरियाणा, केरल, मेघालय और उत्तर प्रदेश में नये गठबन्धन हुए थे। 2014 के गठबन्धन में 45 राजनीतिक दल शामिल थे।

1984 में कांग्रेस के पूर्ण बहुमत के बाद पहली बार ऐसा हुआ किसी एक पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ हो। 16वीं लोक सभा के चुनाव में भाजपा ने शानदार जीत हासिल की। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक नरेन्द्र मोदी के नाम की जबरदस्त आंधी चली। 2014 का चुनाव भारतीय राजनीति को एक ऐसे दिशा में लेकर आया, जहां से अन्य पार्टी विपक्ष में भी बैठने लायक सीटें भी प्राप्त करने में असमर्थ रहीं। कांग्रेस, जो भारत की सबसे पुरानी पार्टी है वह भी इस चुनाव में 44 सीटों पर ही सिमटकर रह गयी। नरेन्द्र मोदी का नेतृत्व सब पर भारी पड़ा। इस चुनाव में कई राजनीतिक दल हाशिये पर पँहुच गये। एक्जिट पोल के अनुमानों को पीछे छोड़ते हुए भाजपा ने अपने 'मिशन 272 प्लस' को पार करते हुए अकेले ही उससे अधिक सीटें प्राप्त कीं। भाजपा ने अकेले 282 सीटें प्राप्त किया। अब देश के 15वें प्रधानमंत्री के रूप में नरेन्द्र मोदी को 26 मई 2014 को शपथ दिलाई गई। सत्ता विरोधी यह सूनामी था, कई राज्यों में कांग्रेस का सूपड़ा साफ हो चुका था। इस चुनाव में कांग्रेस को इमरजेंसी के बाद 1977 में हुए चुनाव से भी अधिक करारी हार का सामना करना पड़ा। भाजपा की इस ऐतिहासिक जीत के साथ लगभग 30 साल बाद केन्द्र में किसी पार्टी की पूर्ण बहुमत की सरकार बनी। राजनीति के इस बदलते परिवेश में गठबन्धन की राजनीति पर फिर से विमर्श शुरू हुआ।

16वीं लोक सभा चुनाव में सभी रिकार्डों को तोड़ते हुए अब तक का सर्वाधिक 66.4 प्रतिशत मतदान हुआ। इसके पहले 1984 के चुनाव में 64 प्रतिशत मतदान हुआ था जो इन्दिरा गांधी के हत्या के कारण देश की जनता ने सहानुभूति में आकर अधिक से अधिक मतदान किया था। वह समय था जब कांग्रेस को अब तक के आम चुनाव से भी अधिक 404 सीटें प्राप्त हुई थी। इस चुनाव में 81.4 करोड़ मतदाता थे, जिसमें से 55.1 करोड़ मत पड़े थे। इस प्रकार संख्या आधार पर 13.4 करोड़ (लगभग 32 प्रतिशत) अधिक मत पड़े थे। सरकारी खजाने से लगभग 3426 करोड़ रूपये खर्च हुए। पिछले चुनाव के मुकाबले इस चुनाव में 131 फीसदी वृद्धि हुई थी। पांच वर्ष पहले हुए आम चुनाव में कुल 1483 करोड़ रुपये खर्च आया था। 2014 के लोकसभा चुनाव में भाजपा को पूर्ण बहुमत मिलने के बाद भी गठबन्धन का दौर जारी रहा। उसे भाजपा

सरकार नहीं 'राजग सरकार' या 'मोदी सरकार' कहा गया। यह गठबन्धन का नया रूप था। एक राष्ट्रीय दल पूर्ण बहुमत प्राप्त करके भी गठबन्धन की सरकार चलाने का दावा करता रहा।

17वीं लोकसभा आम चुनाव 2019 के चुनाव ने गठबन्धन को नये मायने दिये। यह चुनाव भारत में राष्ट्रवादी भावना को लेकर लड़ा गया। राफेल जैसे मुद्दे का भी काफी प्रभाव पड़ा। जनादेश को देखने से यह स्पष्ट होता है की देशभर में भाजपा का प्रदर्शन 2014 की तुलना में अधिक सशक्त था। लेकिन, इसके बावजूद उसे मिले समर्थन में केवल मामूली बदलाव भी देखने को मिला। 2019 के चुनाव में राजनीतिक रूप से भारत के तीन क्षेत्रों में भाजपा ने शानदार प्रर्दशन किया। उत्तर और पश्चिम में भी प्रदर्शन शानदार रहा और साथ ही साथ पूर्वी और पूर्वोत्तर भारत में बड़ी सेंध लगा दी। ओडिशा, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा के चुनाव में स्पष्ट हो जाता है। वहीं कर्नाटक में शानदार प्रदर्शन करते हुए 28 में से 25 सीटें प्राप्त करने में सफल रही है। जबकि वहाँ पर काँग्रेस-आरजेडी (एस) गठबन्धन में चुनाव लड़ी थी। तेलगांना में चार सीटें प्राप्त करने में भाजपा सफल रही। लेकिन, दक्षिण भारत में प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा।

भारत की जनता ने किसी अन्य बात से प्रभावित होने के बजाय राष्ट्रवाद के नाम पर भाजपा के समर्थन में अपना मत दिया। राष्ट्रवाद की भावना का उभार पुलवामा और बालाकोट की घटना के बाद हुआ। राष्ट्रवाद ने सभी मुद्दों को गौण कर दिया। सत्ताधारी भाजपा सरकार के विभिन्न कार्यों से मतदाता नाखुश थे। इसके बावजूद जब राष्ट्र की बात आयी तो मतदाता सभी गिले-शिकवे भूल कर राष्ट्रवाद के नाम पर सरकार के समर्थन में आ गये। सरकार को वोट उसके कार्यो के बजाय ज्यादा राष्ट्रवाद के मुद्दे पर मिला है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को वोट लोगों की उम्मीद और विश्वास के नाम पर मिला। देश में बढ़ती बेरोजगारी एवं ग्रामीण असंतोष की स्थिति में भी जनादेश का प्रचंड भाव दिखाई पड़ा। राष्ट्रवाद के एक अकेले मुद्दे ने इन सभी मुद्दों को गौण कर दिया।

विपक्ष ने राष्ट्रवाद को लेकर सरकार को घेरने एवं राफेल मुद्दे को तूल देना चाहा। राष्ट्रवाद की भावना के आगे सब मुद्दें स्वाहा हो गये। विपक्ष सोच रहा था की इन मुद्दों को लाकर मतदाताओं को प्रभावित किया जा सकता है। उसकी यह चाल उल्टी ही पड़ गई और मोदी विपक्ष के अभियान के बीच दृढ़ता के साथ डटे रहे। मोदी 2014 की अपेक्षा 2019 के चुनाव में राजनीति के अकेले केन्द्र में रहे। 2019 चुनाव में 2014 की अपेक्षा मोदी को अधिक मत मिले हैं। भारतीय मतदाता मोदी की तरफ किस कदर खींचे चले आये यह देखने वाली बात है। लेकिन कुछ राज्य में इसके अपवाद भी रहे कि क्षेत्रीय दलों के अनेक गठबन्धन असफल साबित हुये। यूपी और बिहार का महागठबन्धन एक तरह से असफल रहा।

17वीं लोक सभा चुनाव में भाजपा पूर्ण बहुमत प्राप्त करने में सफल हुआ। भाजपा ने 303 सीटें जीतीं और 37.4 प्रतिशत मत प्राप्त करते हुए पिछले लोकसभा चुनाव की अपेक्षा अधिक मत प्राप्त करने में सफल रही। 2014 की अपेक्षा भाजपा का प्रदर्शन काफी बेहतर था। भाजपा ने अपने सहयोगी दलों के साथ जहां 2014 के चुनाव में 336 सीटें प्राप्त की थीं वहीं इस चुनाव में एन.डी.ए. गठबन्धन 351 सीटें प्राप्त करने में सफल रही। एन.डी.ए. का मत प्रतिशत 2014 में 39 से बढ़कर 2019 में 44.9 हो गया। गुजरात, राजस्थान, दिल्ली, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र में भाजपा ने अपने पूर्व प्रदर्शन को दोहराया है। अन्य राज्यों में भाजपा का मत प्रतिशत बढ़ा। कुछ राज्यों में तो पचास प्रतिशत से भी अधिक मत प्राप्त किये हैं। भाजपा ने न केवल हिन्दी भाषी राज्यों और पश्चिम भारत में अपना जनाधार बढ़ाने में सफलता पाई, बल्कि पूर्वी भारत खासकर पश्चिम बंगाल और ओडिशा में अपनी छाप छोड़ी है। इसके अतिरिक्त असम और त्रिपुरा में अपना जनाधार बनाये रखने में सफल रही। दक्षिण भारत में भी पार्टी ने अच्छे प्रदर्शन के लिहाज से कर्नाटक में भाजपा ने 51.38 प्रतिशत मत एवं 26 सीटें प्राप्त की। तेलगांना में भी चार सीटें प्राप्त की हैं। तेलगांना में केसीआर की पुत्री कविता को हराकर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। इन सब नतीजों को देखकर यह स्पष्ट हो गया है कि भाजपा भारत की एक राष्ट्रीय पार्टी के रूप में उभर चुकी है। उसने कांग्रेस जैसे पुराने पार्टी के स्थान को ले लिया है।

भाजपा के प्राप्त बहुमत के नतीजे इस बात की ओर संकेत कर रहे है कि विपक्ष द्वारा नकारात्मक प्रचार अभियान, जैसे राफेल और भ्रष्टाचार के मुद्दे, मोदी को 'चौकीदार चोर' तक कहा गया, लेकिन वे दृढ़ता के साथ डटे रहे। विपक्ष द्वारा नकारात्मक अभियान से मतदाताओं को प्रभावित करने के बजाय मतदाताओं ने ही उनका जायका खराब कर दिया। भाजपा के पक्ष में वोटों के रूझानों से पता चलता है की भाजपा न केवल अपने परम्परागत जनाधार को बनाये रखा, बल्कि दलित, आदिवासियों एवं पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यक वर्गों में भी अपना नया जनाधार भी तैयार कर लिया। 2014 के आम चुनाव में भाजपा ने युवा मतदाताओं को अपनी ओर आकर्षित करने का कार्य किया। इस बार के चुनाव में उसे युवा मतदाताओं के अलावा ओबीसी के मतदाताओं का समर्थन अधिक प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश में सपा+बसपा+आरएलडी के गठबन्धन के खराब प्रदर्शन से साफ हो जाता है कि यादव और दलित जैसा उनका परम्परागत जनाधार दरका है। यादवों और मुस्लिमों में दरकने से बिहार में महागठबन्धन का प्रदर्शन बेहद निराशाजनक रहा। महाराष्ट्र में कांग्रेस और एनसीपी के खराब प्रदर्शन से पता चलता है कि ये पार्टियाँ तेजी से अपना जनाधार खोती जा रही हैं। इन पार्टियों के निराशाजनक प्रदर्शन से बड़ा सवाल उभरता है कि इनके द्वारा तैयार गणित के दिन लद गये हैं। भारत गठबन्धन की राजनीति को 2019 के चुनाव में नया मुकाम मिला। जो सोशल इंजीनियरिंग और वोट बैंक की राजनीति से अलग है।

17वीं लोक सभा आम चुनाव में कांग्रेस के खराब प्रदर्शन से उसके भविष्य पर सवाल उठ खड़ा होने लगा है। जिसके चलते पार्टी स्तर पर नेतृत्व का मुद्दा सिर उठा सकता है। 2014 के आम चुनाव में कांग्रेस की करारी हार को यह समझा जा सकता है कि कांग्रेस को उस समय सत्ता-जनित रोष का सामना करना पड़ा था, उसके अनेक मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप होने के कारण जनाधार में ह्रास हुआ। लेकिन 2019 के आम चुनाव में कोई सत्ता-जनित, आक्रोश जैसी कोई बात नहीं थी। गठबन्धन सरकारों के युग में 2014 से 2019 तक भारतीय लोक प्रशासन गठबन्धन सरकारों के साथ समायोजित हो चुका था।

संदर्भ

1. राय, हरिद्वार एवं प्रसाद, (1977) ''तुलनात्मक सरकार एवं राजनीति'', भारती भवन प्रकाशन, पटना, पृ. 320।
2. गुप्ता, डीसी, (1972) ''इण्डियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, विकास प्रकाशन'', नई दिल्ली, पृ. 85।
3. चक्रवर्ती, निखिल, (1997) ''गठबन्धन की राजनीति से बचना मुश्किल'', दैनिक जागरण, पृ. 8।
4. गुप्ता, भवानी सेन (1996) ''इण्डिया प्राब्लेमस् ऑफ गवर्नेन्स'', कोणार्क प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 105।
5. आहुजा, ए.एल. (1998) ''इलेक्टोरल पॉलिटिक्स एवं जनरल इलेक्शन इन इण्डिया'', मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 35।
6. सईद, एस.एम. (2003) ''भारतीय राजनीतिक व्यवस्था'' हिमांशु प्रिंटर्स दिल्ली, पृ. 272।
7. कोठारी, रजनी (2005) ''कांग्रेस व्यवस्था राजनीति की किताब'' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 25–26।
8. सईद, एस.एम. (2009) ''भारतीय राजनीति व्यवस्था'' हिमांशु प्रिन्टर्स नई दिल्ली, पृ. 245।
9. सिंह, प्रो. एम.पी., चौधरी, वासुकी, कुमार युवराज (2011) ''भारतीय शासन और राजनीति, ओरियंट ब्लैकस्वान, प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 236।
10. सिंह, महेन्द्र प्रसाद (2012) ''भारतीय शासन एवं राजनीति, ओरियंट ब्लैकस्वान प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 282।
11. सईद, एस.एम. (2016) भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, हिमांशु प्रिटंर्स संशोधित संस्करण, नई दिल्ली, पृ. 287।
12. एम. लक्ष्मीकान्त, (2015) ''भारत की राजव्यवस्था, मैग्राहिल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 34, 6 ।
13. दैनिक जागरण, समाचार पत्र, 14 मई 2014, पृ. 13।
14. राष्ट्रीय सहारा, समाचार पत्र, 25 मई, 2019, पृ. 01।

15. दैनिक जागरण, समाचार पत्र, 24 मई, 2019, पृ. 12।
16. राष्ट्रीय सहारा, समाचार पत्र 'हस्तक्षेप' शास्त्री संसदीय चुनाव : कड़ी टक्कर के बावजूद बन सकती है एन.डी.ए. सरकार'' पृ. 01, 18 मई 2019।
17. कुमार, संजय, निदेशक, सीएसडीएस, दिल्ली, राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, 25 मई 2019 ''कामकाज से ज्यादा राष्ट्रवाद पर वोट'' पृ. सं. 01।
18. जोशी प्रमोद, 'राजनीतिक भंवर में कांग्रेस' 25 मई 2019, राष्ट्रीय सहारा हस्तक्षेप, पृ. 04।
19. मणि, प्रेम कुमार, 'क्यों घड़ाम हुआ गठबंधन' 25 मई 2019 राष्ट्रीय सहारा हस्तक्षेप' पृ. 03।

भारत में गठबन्धन की राजनीति : एक अवलोकन

सुरेन्द्र कुमार

I kjk'k% *2014 से पूर्व गठबन्धन सरकार घटक दलों के समर्थन से ही चलती थी। समर्थन वापस लेते ही सरकारें गिर जाती थीं। किन्तु 2014 से ऐसा नहीं है। सरकार बनाने के लिए गठबन्धन की आवश्कता नहीं है। भाजपा स्वयं सरकार बनाने की स्थिति में है। गठबन्धन सरकारों की लाचारी एवं विवशता नहीं है। सरकार में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी है, किन्तु वे सौदेबाजी एवं ब्लैकमेल की स्थिति में नहीं हैं। अतः, 2014 एवं 2019 की सरकारें सही मायने में गठबन्धन सरकारें नहीं हैं जहाँ सरकार बनाने के लिए विभिन्न दल विचारधारा से समझौता करते हुए एक साथ आते हैं। ये गठबन्धन सरकारें बहुमत दल (भाजपा) के नेतृत्व में बनीं। उम्मीद की जाती है कि नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाला वर्तमान एन. डी. ए. सरकार सहकारी संघवाद की भावना को कायम रखते हुए देश को तरक्की के मार्ग पर उत्तरोत्तर ले जाएगा तथा भारत हर क्षेत्र में विकास के नए आयाम स्थापित कर पाएगा।*

प्रस्तावना

सामान्यतः जब एक दल सरकार बनाने की स्थिति में नही होता तब गठबन्धन का निर्माण होता है। अनेक दल सरकार बनाने के लिए एक साथ आते हैं। ये दल अपने सिद्धान्त एवं विचारधारा के साथ समझौता करते हुए साथ आते हैं।[1] घटक दल न्यूनतम साझा कार्यक्रम का निर्माण करते हैं जिसके आधार पर सरकार अपना काम करती है। भारत में गठबन्धन का लम्बा इतिहास रहा है।[2] स्वतंत्रता के पूर्व भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत 1937 में गठबन्धन सरकार का निर्माण हुआ था। स्वतंत्र भारत में गठबन्धन का प्रथम प्रयोग 1977 में हुआ। 1977 से लेकर अबतक विभिन्न गठबन्धन सरकारों का निर्माण हुआ जिनका मिला-जुला अनुभव रहा है। इस लेख में 1977 से लेकर 2019 तक के गठबन्धन का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है।

मोरारजी देसाई के नेतृत्व में 1977 में गैर-कॉंग्रेसी राजनीति दलों ने जनता पार्टी सरकार की स्थापना की। 1963 में राम मनोहर लोहिया ने 'गैर-कॉंग्रेसवाद'[3] का नारा

दिया। आजादी के बाद संपन्न हुए तीन आम चुनावों में काँग्रेस की भारी जीत हुई थी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि काँग्रेस को हराया नहीं जा सकता तथा यह हमेशा सत्ता में काबिज़ रहेगी। गैर-काँग्रेसी मतों के विभाजन को रोकने के लिए काँग्रेस के खिलाफ केवल एक विपक्षी उम्मीदवार की बात लोहिया ने की। डा. लोहिया का यह फार्मूला काम कर गया तथा 1967 के आम चुनाव में काँग्रेस पार्टी को सात राज्यों में पराजय का सामना करना पड़ा।[4] लोहिया के फार्मूले ने भारत में गठबन्धन की राजनीति की नींव रख दी। प्रथम गठबन्धन सरकार केन्द्रीय स्तर पर मोरारजी देसाई के नेतृत्व में 1977 में गठित की गई। जनता सरकार लगभग दो वर्षों (1977-79) तक सत्ता में रही। सरकार में सत्ता संघर्ष के कारण देसाई को त्याग-पत्र देना पड़ा।

दूसरा गठबन्धन अक्टूबर 1979 में चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में बना। इस गठबन्धन को CPI एवं CPI(M) का समर्थन प्राप्त था। किन्तु चरण सिंह लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त नहीं कर सके। जब राष्ट्रपति ने उन्हें तीन सप्ताह के अन्दर विश्वास मत प्राप्त करने को कहा तो चरण सिंह ने सदन का सामना किए बगैर त्याग-पत्र दे दिया। इस प्रकार, वे भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बन गए जिन्होंने सदन का सामना नहीं किया।[5]

गठबन्धन की राजनीति का तीसरा प्रयोग 1989 में हुआ। वी. पी. सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी। इस मोर्चा को काँग्रेस के साथ-साथ भाजपा का समर्थन प्राप्त हुआ। इसे CPI, CPI(M), RSP एवं फारवर्ड ब्लॉक का भी समर्थन प्राप्त था। किन्तु यह सरकार भी अधिक समय तक नहीं चल पायी। लालकृष्ण आडवाणी को रथ यात्रा के दौरान गिरफ्तार कर लिया गया। प्रतिक्रियास्वरूप भाजपा ने वी. पी. सिंह सरकार से समर्थन वापस ले लिया। इस प्रकार, यह सरकार मात्र ग्यारह महीने तक चल सकी।

केन्द्रीय स्तर पर चौथा गठबन्धन चन्द्रशेखर के नेतृत्व में बना। वी. पी. सिंह के त्याग-पत्र देने के पश्चात् चन्द्रशेखर ने सरकार बनाने का दावा पेश कर दिया। काँग्रेस, AIADMK , बहुजन समाज पार्टी, मुस्लिम लीग, नेशनल काँफ्रेंस, केरल काँग्रेस, शिरोमणि अकाली दल एवं कुछ स्वतंत्र सदस्यों के सहयोग से चन्द्रशेखर ने 11 नवम्बर 1990 को सरकार का गठन किया। किन्तु यह सरकार भी अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। काँग्रेस के समर्थन वापसी के कारण चन्द्रशेखर ने प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया।

पाँचवाँ गठबन्धन एच. डी. देवेगौड़ा के नेतृत्व में बना। संयुक्त मोर्चा सरकार का गठन उन्होंने किया। यह मोर्चा 13 राजनीतिक दलों का गठबन्धन था। इस मोर्चा को काँग्रेस, CPI, CPI(M), समाजवादी पार्टी, डी. एम. के., असम गणपरिषद, राष्ट्रीय जनता दल तथा तेलगू देशम पार्टी सहित कुल 13 दलों का समर्थन प्राप्त था। संयुक्त मोर्चा की सरकार उस रथ के समान थी जिसमें 13 घोड़े विभिन्न दिशाओं में सरकार को

खींच रहे थे।[6] सरकार पर अनावश्यक दबाव था। सौदेबाजी चरम पर थी। इन सबके बीच काँग्रेस ने सरकार से समर्थन वापस ले लिया जिसके कारण सरकार बीच में ही गिर गई।

आई. के. गुजराल के नेतृत्व में छठे गठबन्धन सरकार का गठन हुआ। इस गठबन्धन सरकार को भी काँग्रेस, CPI, CPI(M) समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल सहित अन्य दलों का समर्थन प्राप्त था। पूर्व की भाँति यहाँ भी काँग्रेस पार्टी ने समर्थन वापस ले लिया। सरकार अल्पमत में आ गई। प्रधानमंत्री गुजराल ने इस्तीफा दे दिया तथा राष्ट्रपति के. आर. नारायणन को लिखा कि चूँकि मेरी सरकार ने बहुमत खो दिया है, इस कारण नैतिक आधार पर मैं अपने पद पर बने रहना नहीं चाहता हूँ। राष्ट्रपति ने वैकल्पिक सरकार के गठन का प्रस्ताव रखा। किन्तु किसी भी दल के द्वारा सरकार बनाने का दावा पेश नहीं किए जाने की स्थिति में राष्ट्रपति ने संसद को भंग कर दिया।

सातवें गठबन्धन का नेतृत्व अटल बिहारी वाजपेयी ने 19 मार्च 1998 से 10 अक्टूबर 1999 तक किया। वाजपेयी सरकार को AIADMK, भाजपा, अकाली दल, शिवसेना, DMK, सहित अन्य दलों का समर्थन हासिल था। यह सरकार भी अधिक दिनों तक नहीं चल पायी क्योंकि वाजपेयी ने AIADMK की माँग को अस्वीकार कर दिया। जयललिता ने रक्षा मंत्री जार्ज फर्नान्डीस को अपदस्थ करने की माँग की थी जिसे वाजपेयी ने अस्वीकार कर दिया।[7] जब वाजपेयी ने लोक सभा में बहुमत प्रस्ताव पेश किया तो AIADMK ने प्रस्ताव के विरोध में मत दिया तथा इस प्रकार एक मत से सरकार गिर गई। प्रधानमंत्री वाजपेयी ने राष्ट्रपति को अपना इस्तीफा सौंप दिया।

पुनः, अटल बिहारी वाजपेयी ने आठवें गठबन्धन का नेतृत्व किया। तेरहवीं लोक सभा चुनाव के पश्चात् एन. डी. ए. का नेतृत्व वाजपेयी ने किया। इस गठबन्धन को चौबीस राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त था जिसमें AIADMK, तेलगू देशम पार्टी, नेशनल कांफ्रेंस, तृणमूल काँग्रेस, शिवसेना तथा शिरोमणि अकाली दल प्रमुख थे। इस प्रकार, इस गठबन्धन को विभिन्न विचारधारा, संस्कृति, धर्म, क्षेत्र, सामाजिक संरचना आदि का समर्थन प्राप्त था। देश में गठबन्धन के इतिहास में पहली बार इस गठबन्धन ने वाजपेयी के नेतृत्व में अपना कार्यकाल पूरा किया।[8]

नौवीं गठबन्धन की सरकार का नेतृत्व मनमोहन सिंह ने 2004 से 2009 तक किया। मनमोहन सिंह ने यू. पी. ए. का नेतृत्व किया जिसे एन. सी. पी., राष्ट्रीय लोकदल, नेशनल काँफ्रेंस, मुस्लिम लीग, केरल काँग्रेस, समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल तथा वाम दलों का समर्थन प्राप्त था।

यू. पी. ए. ने पुनः दसवें गठबन्धन सरकार का गठन 2009 में किया। इस बार फिर मनमोहन सिंह प्रधान मंत्री चुने गए। इस गठबन्धन को बहुमत से दस सीट कम मिलीं थे। इसे कुल 262 सीटें मिलीं थे। इस गठबन्धन को समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, तथा जनता दल (सेक्युलर) का सर्मथन मिला। इन सभी दलों

ने यू.पी.ए. को बिना शर्त समर्थन जारी रखा ताकि अगले पाँच वर्षों तक भाजपा नेतृत्व वाले एन.डी.ए. को सत्ता से बाहर रखा जा सके।[9]

2014 से 2019 तक नरेन्द्र मोदी ने ग्यारहवें एन.डी.ए. सरकार का नेतृत्व किया। भाजपा को पूर्ण बहुमत प्राप्त था। फिर भी क्षेत्रीय दलों की भागीदारी के साथ गठबन्धन सरकार का निर्माण मोदी ने किया।

अंततः, 2019 के लोकसभा चुनाव में मोदी ने बारहवें गठबन्धन सरकार का गठन किया। यहाँ भी भाजपा को स्पष्ट बहुमत प्राप्त है। फिर भी क्षेत्रीय दलों की भागीदारी के साथ गठबन्धन सरकार का गठन मोदी ने किया।

बहुदलीय व्यवस्था की शुरूआत

1989 के आम चुनाव में काँग्रेस की हार ने भारतीय राजनीति में काँग्रेस के वर्चस्व को समाप्त कर दिया तथा बहुदलीय व्यवस्था की शुरूआत हुई। चुनाव में अनेक दलों की भागीदारी शुरू हुई। किसी भी एक दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला तथा केन्द्रीय स्तर पर गठबन्धन सरकार एक वास्तविकता बन गई जिसमें क्षेत्रीय दलों की अहम् भूमिका हो गई।

क्षेत्रीय दलों के उदय एवं गठबन्धन की राजनीति ने राज्यों की सौदेबाजी की क्षमता में वृद्धि की।[10] केन्द्र राज्यों को उपेक्षित नहीं कर सकता था, विशेषकर तब जब केन्द्र की सरकार उस दल के समर्थन पर टिकी हुई थी जिसकी सरकार किसी राज्य में थी। केन्द्र के महत्त्वपूर्ण निर्णय उस राज्य सरकार के दबाव में लिए जाने लगे। मंत्रियों की नियुक्ति तथा विभागों के बदलाव में ऐसे राज्य सरकारों का दबाब स्पष्ट था। इस कारण, अन्य राज्यों ने केन्द्र के सौतेले व्यवहार की भी आलोचना की।

इस प्रकार, 1989 के बाद केन्द्र में गठबन्धन सरकार का दौर शुरू हुआ। किसी भी एक दल को सरकार बनाने के लिए स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। 1991-1996 की नरसिम्हा राव की सरकार भी पूर्ण बहुमत में न होने के कारण अन्य दलों के बाहरी समर्थन पर चली। 1996 के बाद से केन्द्र में जो सरकारें बनीं, वे क्षेत्रीय दलों के सहयोग से बनीं। केन्द्र सरकारों का बनना एवं टूटना क्षेत्रीय दलों की मर्जी एवं दया पर निर्भर करने लगा। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की पहली सरकार 13 दिन और दूसरी सरकार 13 महीने चली। 1999 से 2004 तक वाजपेयी ने 24 दलों वाली गठबन्धन सरकार का नेतृत्व किया। 2004 से 2014 तक मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकार चली। इस दौरान केन्द्र सरकार गठबन्धन के दबाव में लाचार एवं विवश दिखी। राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका निर्णायक हो गई। सहकारी संघीय व्यवस्था का स्थान ब्लैकमेलिंग संघवाद ने ले लिया। केन्द्र सरकार के निर्णय गठबन्धन के सहयोगियों के दबाव में लिए जाने लगे। प्रधानमंत्री पद का भारी अवमूल्यन हुआ। क्षेत्रीय दलों का दबदबा देशी-विदेशी मामलों में बढ़ने लगा। घटक दलों की मदद के बिना केन्द्र में सरकार चलाना मुश्किल हो गया।

एन.डी.ए.: 1999-2004

1999 में भाजपा के नेतृत्व वाले एन. डी. ए. में 16 दल थे तथा जिसने 300 सीटें जीतीं। इस गठबन्धन में भाजपा 182 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी थी। काँग्रेस एवं उसके सहयोगी दलों को 134 सीटें मिलीं। काँग्रेस को सबसे अधिक 112 सीटें प्राप्त हुईं। वहीं वामदलों ने 42 सीटें जीतीं।[11] वाजपेयी के नेतृत्व में एन.डी.ए. ने गठबन्धन राजनीति को एक नई दिशा प्रदान की। एन.डी.ए. सरकार ने स्वस्थ केन्द-राज्य सम्बन्ध पर बल दिया। इसके द्वारा दावा किया गया कि वह राष्ट्रीय हितों तथा क्षेत्रीय आकांक्षाओं दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार, एन.डी.ए. का मुख्य उद्देश्य बहुस्तरीय विविधता में राष्ट्रीय एकता, सघन बहुलवाद तथा संघवाद का चरित्र प्रस्तुत करना था जो गठबन्धन प्रयोग की सफलता में कारगर सिद्ध हुआ।

यू.पी.ए.: 2004-2014

2004 लोकसभा के चुनाव ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत पूर्ण रूप से गठबन्धन युग में प्रवेश कर चुका है। एक-दलीय सरकार अब और नहीं चल सकती। कई दलों का गठजोड़ ही अब केन्द्रीय राजनीति की नियति बन गई। यहाँ यह भी स्पष्ट हो गया था कि जो गठबन्धन बन रहा है, वह कहीं से भी वैचारिक नहीं है बल्कि परिस्थितिवश निर्मित है। यू. पी. ए. की सरकार को वाममोर्चा ने समर्थन दिया। यू. पी. ए. चुनाव के बाद बना गठजोड़ था, जबकि एन. डी. ए. मूल रूप से चुनाव से पूर्व का गठजोड़ था। काँग्रेस 145 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी थी। पार्टी ने पिछले चुनाव (1999) की 49 सीटें बरकरार रखी। 65 सीटों पर हारी जहाँ पिछली बार जीती थी। वहीं 96 नई सीटों पर कब्जा किया। दूसरी ओर भाजपा 44 सीटें हारते हुए कुल 138 सीटें ही जीत पाई। वोट प्रतिशत 23 से 21.5 होने के कारण बहुत सारे लोकसभा क्षेत्र इसके हाथ से निकल गए।[12]

2009 के चुनाव में यू. पी. ए. की लगातार दूसरी बार सरकार बनी। यह 1989 के बाद पहली गठबन्धन सरकार थी। जो लगातार दूसरी बार चुनकर आई। यहाँ गठबन्धन में काँग्रेस की स्थिति मजबूत हुई। 206 सीटों के साथ काँग्रेस सबसे बड़ी पार्टी बनी। यू. पी. ए. - II के दौरान संघवाद की ऐसी प्रवृति सामने आयी है जिसमें कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति सहयोगी संघवाद एवं सौदेबाजी संघवाद के बीच डोलती नजर आती है।[13] कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि कमजोर केन्द्र सरकार एवं मजबूत राज्य सरकारों के बीच संघवादी चरित्र का संतुलन न बिगड़ जाय।

केन्द्र की यू. पी. ए. सरकार आतंकवाद को रोकने के लिए आतंकविरोधी ट्रिब्यूनल (NCT) कानून लाना चाहती थी, परन्तु कई क्षेत्रीय दलों यथा तृणमूल काँग्रेस, जे. डी. यू., तथा बीजेपी ने इसका विरोध किया। उनका तर्क था कि इस तरह का कानून राज्य सरकारों को विश्वास में लिए बगैर नहीं पारित किया जा सकता है। यह देश के संघीय चरित्र पर आघात होगा। सरकार यह कानून पारित नहीं करवा सकी। इस घटना ने

देश के संघीय चरित्र को प्रदर्शित किया जहाँ टकराव और वैमनस्य केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच देखा गया।

यू. पी. ए. सरकार के साथ उसके सहयोगी दल तृणमूल काँग्रेस का सम्बन्ध काफी तनावपूर्ण रहा। खुदरा क्षेत्र में निवेश का मुद्दा हो, पश्चिम बंगाल के लिए विशेष पैकेज की माँग हो या बढ़ती महँगाई का मुद्दा हो– सभी में तृणमूल काँग्रेस ने जमकर विरोध किया। राष्ट्रपति के उम्मीदवार के मसले पर त णमूल काँग्रेस ने प्रणव मुखर्जी का विरोध किया जबकि एन. डी. ए. के सहयोगी दल जदयू ने मुखर्जी का समर्थन किया। गठबन्धन राजनीति का नया स्वरूप सामने आया।

2011 में प्रधानमंत्री के बांग्लादेश दौरे पर पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी को भी जाना था, जहाँ दोनों देशों के बीच तीस्ता नदी जल बँटवारा संधि पर हस्ताक्षर करना था। किन्तु अन्तिम क्षणों में ममता बनर्जी ने अपना कार्यक्रम रद्द कर दिया। फलतः, संधि पर हस्ताक्षर नहीं हो पाया। इसी तरह यू. एन. ओ. के मानवाधिकार आयोग में श्रीलंका के विरूद्ध लाये गए निन्दा प्रस्ताव पर केन्द्र सरकार को न चाहते हुए भी घटक दल डी. एम. के. के दबाव में खिलाफ में मतदान करना पड़ा।

एन.डी.ए.: 2014-2019

2014 के आम चुनाव में गठबन्धन की प्रवृत्ति में बदलाव आया। भाजपा 282 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी बनी। अपने बल पर भाजपा सरकार बना सकती थी। समर्थन की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी नरेन्द्र मोदी ने एन. डी. ए. के घटक दलों को शामिल करते हुए सरकार का गठन किया। भाजपा के नेतृत्व वाला यह गठबन्धन पूर्व के गठबन्धनों से अलग था। पूर्व की गठबन्धन सरकारों की लाचारी एवं विवशता नहीं थी। सरकार स्थायी थी। सरकार में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी थी, किन्तु वे सौदेबाजी एवं ब्लैकमेल की स्थिति में नहीं थे।

2019 लोकसभा चुनाव

2019 के आम चुनाव में लगातार दूसरी बार नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एन. डी. ए. की सरकार बनी। इस बार भाजपा 303 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी। यहाँ भी घटक दलों की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए मोदी ने सरकार का गठन किया है। इस प्रकार, भारतीय राजनीति गठबन्धन की राजनीति के साथ उत्तरोत्तर अग्रसर है जो दो गठबन्धनों के इर्द-गिर्द घूम रही है।[14]

2014 से पूर्व गठबन्धन सरकारें घटक दलों के समर्थन से ही चलती थीं। समर्थन वापस लेते ही सरकारें गिर जाती थीं। किन्तु 2014 से ऐसा नहीं है। सरकार बनाने के लिए गठबन्धन की आवश्यकता नहीं है। भाजपा स्वयं सरकार बनाने की स्थिति में है। अतः, 2014 एवं 2019 की सरकारें सही मायने में गठबन्धन सरकारें नहीं हैं जहाँ सरकार बनाने के लिए विभिन्न दल विचारधारा से समझौता करते हुए एक साथ आते हैं। ये गठबन्धन सरकारें बहुमत दल (भाजपा) के नेतृत्व में बनीं।

निष्कर्ष

इस प्रकार, भारत में केन्द्रीय स्तर पर 1977 से लेकर 2019 तक अनेक गठबन्धन सरकारों का गठन हुआ। भारत पूरी तरह से गठबन्धन युग में प्रवेश कर चुका है। गठबन्धन दो दल - भाजपा एवं काँग्रेस के इर्द - गिर्द घूम रहा है। वर्तमान एन. डी. ए. सरकार में स्थायित्व है जो विकास के लिए आवश्यक है। गठबन्धन सरकारों की लाचारी एवं विवशता नहीं है। उम्मीद की जाती है कि मोदी के नेतृत्व वाली एन. डी. ए. सरकार सहकारी संघवाद की भावना को कायम रखते हुए देश को तरक्की के मार्ग पर उत्तरोत्तर ले जाएगी तथा भारत हर क्षेत्र में विकास के नए आयाम स्थापित कर पाएगा। अंत में, हम कह सकते हैं कि भारतीय राजनीति गठबन्धन की राजनीति के साथ उत्तरोत्तर अग्रसर है जो दो गठबन्धनों के इर्द-गिर्द घूम रही है।

संदर्भ

1. पॉल. आर. ब्रास कोएलिएशन पॉलिटिक्स इन नार्थ इंडिया, द पॉलिटिकल साइंस रिव्यू, वॉल्यूम 62, नं. 4, दिसम्बर 1968.
2. डी. डी. बसु, ''इन्ट्रोडक्शन टु द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इंडिया'', वाधवा पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 2002.
3. रोनाल्ड ए. वाट्स फेडरलिज्म, फेडरल पॉलिटिकल सिस्टम एण्ड फेडरेशन, *एनवल रिव्यू ऑफ पॉलिटिकल साइंस,* वैल्यूम–1, 1998.
4. विद्युत चक्रवर्ती, ''रूट्स ऑफ इंडियन नेशनलिज्म : द कंटेपररी एजेंडा, इनकउन्टर'', सितम्बर-अक्टूबर,1998.
5. एम. पी. सिंह ''इलेक्शनस एण्ड पार्टी सिस्टम इन इंडिया : फेडराइजेशन ऑफ द पॉलिटी'', थिंक इंडिया, वैल्यूम-15, नं. 1, जनवरी-मार्च, 2012.
6. पार्थ चटर्जी, *स्टेट एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1997.
7. बलबीर सिंह, *स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया,* मैकमिलन पब्लिसर्स, नई दिल्ली, 1980.
8. एन. सी. साहनी, द *थ्योरी ऑफ कोएलिशन,* अकेडमिक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन्स, जालंधर, 1971.
9. राजहंस, ''इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स'', कॉसमॉस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1992.
10. कमला प्रसाद, ''बीजेपी एण्ड द नेशन्स गर्वनेंस'', मेनस्ट्रीम, दिसम्बर-19, 1998.
11. पी. रमन, *एज ऑफ कोएलिशन्स,* हिन्दुस्तान टाईम्स, अप्रैल 11, 1997.
12. के. के. कत्याल, *मेकिंग कोएलिशन्स वर्क,* द हिन्दू, मार्च 26, 2001.
13. महेन्द्र प्रसाद सिंह, *कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया* : प्रोब्लम्स एण्ड प्रौसपेक्टस, मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2004.
14. डब्लू एच. रिकर, द *थ्योरी ऑफ पॉलिटिकल कोएलिशन्स,* न्यू हेवेन, 1962.

भारत की गठबन्धन सरकार में नौकरशाही का कार्यकरण

मदन गोपाल सिन्हा

lkjk'k *भारत में संसदीय/मंत्रिमण्डलात्मक शासन -व्यवस्था ब्रिटेन से ग्रहण की गई है। ब्रिटेन एक विकसित राष्ट्र है और वहाँ पर लोकतंत्र की जड़ें काफी गहरी हैं, लोग जागरूक हैं और सरकार के सभी घटक अपने अधिकारों और कर्तव्यों से भिज्ञ हैं। ब्रिटेन में दो ही प्रमुख दल हैं– अनुदार दल और मजदूर दल। इनके अलावा, 'लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी' को भी लगभग 20 प्रतिशत मतदाताओं का समर्थन प्राप्त है। वहाँ कुछ अन्य छोटे दल भी हैं, लेकिन उनका प्रभाव क्षेत्र बहुत सीमित है। ब्रिटेन या किसी भी विकसित राष्ट्र में एक राजनीतिक दल की सरकार हो या गठबन्धन की, नौकरशाही की भूमिका एक समान रहती है। लेकिन भारत में लोकतंत्र अभी विकास के क्रम में है। यहाँ पर जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र, भाषा इत्यादि से सम्बन्धित मतभेद प्रबल हैं। इस कारण भारत में बड़ी संख्या में राजनीतिक दल अस्तित्व में हैं और कई दर्जन राजनीतिक दल लोकसभा में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सफल भी हो जाते हैं। भारत में 1967 में पहली बार अनेक प्रांतों में गठबन्धन सरकारें अस्तित्व में आईं लेकिन वह प्रयोग सफल नहीं रहा। भारत में 1989 से 2014 तक केन्द्र में गठबंधन सरकारें ही रहीं। वर्तमान समय में भी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन की सरकार है लेकिन इसके सबसे बड़े घटक भारतीय जनता पार्टी को अकेले भी लोकसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त है। एक दल की सरकार हो या गठबन्धन की, सैद्धांतिक दृष्टि से नौकरशाही की भूमिका एक समान होगी लेकिन व्यवहार में कुछ द्वन्द्व देखने को मिलता है। बेहतर प्रशिक्षण द्वारा नौकरशाही के सदस्यों के और जनजागरूकता द्वारा राजनीतिज्ञों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर द्वन्द्व मिटाया जा सकता है। गठबन्धन सरकार में भी नौकरशाही को ईमानदारी के साथ तथ्यों को एकत्र करके मंत्रियों को उचित परामर्श देना चाहिए। यदि किसी मंत्री से कोई नौकरशाह असहमत है तो उसे अपनी असहमति अवश्य दर्ज करानी चाहिए लेकिन उसके बाद भी मंत्री द्वारा लिए गए निर्णय को पूरी निष्ठा से लागू करना चाहिए। नौकरशाहों को मंत्रियों से*

लिखित आदेश प्राप्त करके ही कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहिए। मंत्रियों और नौकरशाहों, दोनों को सोचना होगा कि समाज और राष्ट्र अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और उनके उत्थान के लिए ही मंत्रिपरिषद् और नौकरशाही का अस्तित्व है।

प्रस्तावना

भारत में अधिकांश लोकतांत्रिक राष्ट्रों की ही तरह अराजनीतिक नौकरशाही की व्यवस्था की गई है। किसी भी राजनीतिक दल या गठबन्धन की सरकार हो, नौकरशाही उसके साथ पूरा सहयोग करेगी। लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए निष्पक्ष नौकरशाही (लोकसेवा/लोक प्रशासन/नागरिक प्रशासन) अनिवार्य है। गठबंधन सरकार की सफलता इस पर निर्भर करती है कि उसके विभिन्न घटकों और उनके प्रमुख नेता अपनी सरकार से कितना सार्थक सहयोग करते हैं। नौकरशाही तो सरकार का सहायक निकाय है, वह तो सरकार से सहयोग करने के लिए ही गठित की जाती है। ''शासन और प्रशासन, अर्थात् राजनीतिक कार्यपालिका एवं लोकप्रशासन, जनता के लिए ही हैं, जनता, शासन और प्रशासन के लिए नहीं है। जनता साध्य है और शासन-प्रशासन साधन हैं। अतः शासन-प्रशासन का गठन एवं संचालन इस तरह किया जाना चाहिए कि वे जनता के सर्वांगीण विकास में सहायक हों''[1]।

सैद्धान्तिक दृष्टि से फ्रांस के पंचम गणतंत्र के संविधान को छोड़कर अन्य किसी भी लोकतांत्रिक राष्ट्र के संविधान में राजनीतिक दलों की चर्चा नहीं की गई है। फ्रांस के संविधान में भी राजनीतिक दलों से सम्बन्धित व्यवस्था का सीमित रूप में ही उल्लेख है। संविधान के अनुच्छेद 4 में यह उल्लिखित है कि ''जनमत की अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन राजनीतिक दल होंगे। राजनीतिक दलों का गठन व संचालन स्वतंत्रतापूर्वक किया जा सकता है, लेकिन उनके लिए राष्ट्र की सम्प्रभुता एवं लोकतंत्र के आधारभूत सिद्धांतों का सम्मान करना अनिवार्य होगा''[2]।

गेटेल के अनुसार, ''एक राजनीतिक दल न्यूनाधिक संगठित उन नागरिकों का समूह होता है, जो राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं और जिनका उद्देश्य मतदान की व्यक्ति के आधार पर सरकार पर नियंत्रण करना तथा अपनी सामान्य नीतियों को कार्यान्वित करना होता है''[3]। गिलक्राइस्ट के अनुसार, ''राजनीतिक दल उन नागरिकों का एक संगठित समूह होता है, जो राजनीतिक रूप से एक विचार के हों और एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए सरकार पर नियंत्रण करना चाहते हों''[4]।

राजनीतिक दलों को स्वतंत्रता-प्रेमी लोग सन्देह की दृष्टि से देखते थे, इसी कारण अधिकांश लोकतांत्रिक राष्ट्रों ने राजनीतिक दलों को संवैधानिक मान्यता प्रदान करने से परहेज किया है। फ्रांस के वर्तमान अर्थात् पंचम गणतंत्र के संविधान के प्रमुख शिल्पी ''जनरल दिगॉल'' भी राजनीतिक दलों को संवैधानिक मान्यता प्रदान किए जाने

के पक्ष में नहीं थे और इसी कारण संविधान के मूल प्रारूप में इसका उल्लेख नहीं था लेकिन परामर्शदात्री संवैधानिक समिति की सिफारिश पर संविधान में उनका उल्लेख किया गया।[5]

लेकिन संविधानेतर विकास के बावजूद लोकतांत्रिक राष्ट्रों में सरकार का गठन और संचालन राजनीतिक दल ही करते हैं। लोकतंत्र के लिए द्विदलीय व्यवस्था उपयुक्त मानी जाती है, ताकि किसी एक दल द्वारा आम चुनाव में बहुमत का समर्थन प्राप्त करके सरकार का गठन और संचालन किया जा सके और दूसरा दल विरोधी दल के रूप में सरकार की सकारात्मक आलोचना करे।

आधुनिक लोकतंत्र की गंगोत्री, ब्रिटेन में दो ही प्रमुख राजनीतिक दल हैं– अनुदारवादी दल और श्रमिक दल। अनुदारवादी दल परम्परावादी है और श्रमिक दल आम लोगों के पक्षधर और प्रगतिशील है। वहाँ पर कुछ अन्य राजनीतिक दल भी हैं लेकिन उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं है।

पहली बार लिखित संविधान का निर्माण करने वाले राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका में भी दो ही राजनीतिक दल हैं– *रिपब्लिकन पार्टी* और *डेमोक्रेटिक पार्टी*। इन अमेरिकी राजनीतिक दलों के बीच ब्रिटेन के राजनीतिक दलों की तरह कोई सैद्धांतिक अन्तर नहीं है। ये दोनों दल व्यक्तिवाद, उदारीकरण एवं खुली अर्थ व्यवस्था के समर्थक हैं।

भारत में बहुदलीय व्यवस्था है। यहाँ सैकड़ों की संख्या में राजनीतिक दल भारत के चुनाव आयोग में पंजीकृत हैं। इनमें से बहुत से छोटे दल भी लोकसभा में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में सफल हो जाते हैं। वर्तमान समय में संगठनात्मक आधार पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी और भारतीय साम्यवादी दल, बड़े राजनीतिक दल हैं। भारत के मूल संविधान में भी राजनीतिक दलों को मान्यता प्रदान नहीं की गई थी। आज भी वही स्थिति है। भारत में दल-बदल को राजनीतिक व्यवस्था का एक बड़ा दोष माना जाता है। दल-बदल को सीमित करने के लिए संविधान में दसवीं अनुसूची जोड़ी गई। इसके अनुसार यदि कोई सांसद/विधायक/विधान पार्षद अपने राजनीतिक दल की नीति के विरुद्ध संसद/राज्य विधान मण्डल में कार्य करता है तो उसकी सदस्यता समाप्त की जा सकती है और उसका राजनीतिक दल भी उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई कर सकता है। यदि किसी राजनीतिक दल के एक-तिहाई लोकसभा सदस्य/राज्यसभा सदस्य/विधायक/विधान पार्षद दल का परित्याग करके नया संगठन बनाते हैं तो उस संगठन को मान्यता प्राप्त होगी और वे सभी सदस्य दल-बदल कानून से भी मुक्त होंगे। यदि किसी राजनीतिक दल के दो-तिहाई लोकसभा सदस्य/राज्यसभा सदस्य/विधायक/विधान पार्षद अपने दल का परित्याग करके किसी अन्य दल में अपना विलय कर लेते हैं तो भी वे दल-बदल कानून से मुक्त होंगे। यदि कोई सांसद/विधायक/विधान पार्षद स्वयं अपने दल का

परित्याग करता है तो उसे संसद/राज्य विधानमण्डल की सदस्यता छोड़नी पड़ सकती है लेकिन यदि उसे उसका राजनीतिक दल, दल से निष्कासित कर देता है तो उसकी संसद/राज्य विधान मण्डल की सदस्यता बनी रह सकती है।[6]

लेकिन संविधान की दसवीं अनुसूची सिर्फ दलबदल रोकने के लिए है, ताकि सांसद/विधायक/विधान पार्षद जल्दी-जल्दी अपनी निष्ठा में परिवर्तन न कर सकें जिससे स्थाई सरकारों का गठन हो सके।

भारत की जनता ने मुख्यतः 1885 में गठित अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के माध्यम से गांधीजी के नेतृत्व में लम्बे संघर्ष के बाद स्वतंत्रता प्राप्त की थी। कहा जाता है कि गांधीजी ने सुझाव दिया था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही कांग्रेस पार्टी का उद्देश्य पूरा हो गया, अतः इसे भंग करके नए राजनीतिक दल बनाए जाएँ, क्योंकि गांधीजी को भय था कि कांग्रेस के लोग स्वतंत्रता आन्दोलन में कांग्रेस के योगदान के नाम पर लम्बे समय तक आसानी से सत्ता प्राप्त करते रहेंगे, जो लोकतंत्र के लिए हानिकारक होगा। गांधीजी चाहते थे कि विचारधारा के आधार पर कुछ नए राजनीतिक दल बनें और वे चुनाव में जनता के बहुमत का समर्थन प्राप्त करके सरकार का गठन और संचालन करें। लेकिन कांग्रेस के नेताओं के लिए गांधीजी अप्रासंगिक हो चुके थे और 30 जनवरी, 1948 को उनकी हत्या भी हो गई।

गांधीजी की भविष्यवाणी सच निकली और कांग्रेस के नेता स्वतंत्रता आन्दोलन में कांग्रेस के योगदान के आधार पर लम्बे समय तक केन्द्र में भी और प्रान्तों में भी सत्ता-सुख भोगते रहे।

पहली बार लोहिया जी के प्रभाववश अनेक राज्यों में कांग्रेस 1967 में सत्ता से बाहर हुई। 1969 में कांग्रेस का सत्तारूढ़ कांग्रेस और संगठन कांग्रेस में विभाजन हो गया। सत्तारुढ़ कांग्रेस की नेता प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी किसी तरह लोक सभा में काम चलाऊ बहुमत का जुगाड़ करती रहीं। 1971 के चुनाव में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई।

लोकनायक जय प्रकाश नारायण के प्रभाववश कांग्रेस 1977 में पहली बार केन्द्र की सत्ता से बेदखल हुई। 1977 में केन्द्र में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी। यह सैद्धान्तिक रूप से एक राजनीतिक दल की सरकार थी लेकिन व्यवहार में यह मिलीजुली सरकार ही थी। 1971 के लोकसभा चुनाव के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री के रूप में सरकार के सभी अंगों की शक्तियाँ स्वयं ग्रहण करती जा रही थीं और विभिन्न संवैधानिक संस्थाओं को शक्तिहीन करती जा रही थीं। जय प्रकाश जी ने इसका विरोध किया और उनके प्रभाव में अनेक विरोधी दलों ने मिलकर जनता पार्टी का गठन किया और 1977 के लोकसभा चुनाव में सफलता भी प्राप्त की। लेकिन नेताओं की महत्त्वाकांक्षाओं के चलते यह सरकार तीन साल तक भी नहीं चल सकी। 1980 के प्रारंभ में ही मध्यावधि चुनाव हुआ और उसमें श्रीमती इन्दिरा

गांधी की कांग्रेस पार्टी को प्रचण्ड बहुमत मिला। 31 अक्टूबर 1984 को इन्दिरा गांधी की हत्या हो गयी और 1984 के ही अन्त में हुए लोकसभा चुनाव में सहानुभूति लहर की बदौलत कांग्रेस को लोकसभा में 400 से भी अधिक सीटें प्राप्त हुईं, जो आज भी एक रिकार्ड है। उसके बाद 1989 से 2014 तक केन्द्र में गठबन्धन सरकारें या बाहर से समर्थन प्राप्त अल्पमत सरकारें ही अस्तित्व में थीं।

रोजर स्क्रूटन ने अपनी पुस्तक A dictionary of Political Thought में लिखा है कि ''विभिन्न दलों या राजनीतिक पहचान रखने वालों के बीच आपसी समझौता गठबन्धन कहलाता है''[7]। श्रद्धेय सुभाष कश्यप के अनुसार, ''गठबन्धन राजनीतिक समुदायों या शक्तियों का गठजोड़ है, जो अस्थाई एवं कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए होता है। इसका प्रयोग सामान्यतः उन राजनीतिक दलों के लिए होता है, जो संसदीय या निर्वाचकीय प्रयोजनों के लिए आपस में मिल जाते हैं''[8]। ''गठबन्धन सरकार साझा कार्यक्रम बनाती है और उसका सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। इस सरकार द्वारा लिए गए निर्णय उसमें शामिल सभी दलों के निर्णय माने जाएंगे, अतः सभी दल मिल कर ही महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते हैं। गठबंधन सरकार का निर्माण कुछ हद तक समान विचारधारा वाले दलों द्वारा किया जाना चाहिए, यह सिर्फ सत्ता सुख भोगने के लिए बेमेल गठजोड़ नहीं होना चाहिए।

2014 में लोकसभा के सोलहवें चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ फिर भी उसने अपने सहयोगी दलों को साथ में लेकर प्रचण्ड बहुमत की गठबन्धन सरकार का निर्माण किया। अनेक राज्यों में भी गठबन्धन सरकारें अस्तित्व में हैं। वैसे, प्रतियोगिता दर्पण, दिसम्बर, 2018 के पृष्ठ 169-172 में प्रकाशित अपने आलेख में डॉ. जगदीश प्रसाद ने निष्कर्ष निकाला है कि केन्द्र में गठबन्धन सरकारों का प्रयोग प्रायः असफल ही रहा है।

भारत में सैद्धांतिक अन्तर के आधार पर तीन ही दल हैं– दक्षिणपंथी दल के रूप में भारतीय जनता पार्टी, साम्यवादी विचारधारा के आधार पर भारतीय साम्यवादी दल, भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) इत्यादि और कांग्रेस को मध्यममार्गी राजनीतिक दल कहा जा सकता है। वैसे, 1991 से सभी राजनीतिक दल न्यूनाधिक उदारीकरण के प्रभाव में हैं।

भारत में बड़ी संख्या में छोटे-छोटे दल भी हैं। तकनीकी आधार पर कुछ छोटे दल भी कभी-कभी राष्ट्रीय दल की मान्यता प्राप्त कर लेते हैं। कुछ राजनीतिक दल क्षेत्रीय दल या राज्य-स्तर के दल के रूप में मान्यता प्राप्त हैं। इनके अलावा भी अनेक राजनीतिक दल अस्तित्व में हैं।

भारत में अनेक धर्मों को मानने वाले लोग निवास करते हैं। यहाँ कई दर्जन भाषाएँ-बोलियाँ भी हैं। 22 भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी को संवैधानिक मान्यता भी प्राप्त है। लगभग तीन दर्जन भाषाएँ संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने की

प्रतीक्षा में हैं। भारत में 700 से अधिक बोलियाँ हैं। इसके अलावा, भारतीय समाज सैकड़ों जातियों-उपजातियों में बँटा हुआ है। इसके साथ ही, भारत के विभिन्न भागों में रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, वेश-भूषा, जलवायु, खान-पान इत्यादि में भी भिन्नताएँ देखी जाती हैं।

बड़ी संख्या में राजनीतिक दल होने से स्थिर सरकार के गठन में बाधा आती है। भारत के विभिन्न क्षेत्रीय दलों के नेताओं के अपने-अपने अहंकार हैं, अपने-अपने स्वार्थ हैं। राष्ट्रीय दलों के पास भी भारत की स्थिति में आमूल-चूल सुधार के लिए कोई स्पष्ट एवं ठोस योजना नहीं है। भारत के अधिकांश नेता पेशेवर राजनीतिज्ञ या अधिक-से-अधिक राजनेता हैं, ये जननेता नहीं हैं। ये जनता से स्वाभाविक रूप से नहीं जुड़े हुए हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश राजनीतिज्ञों का उद्देश्य सत्ता-सुख प्राप्त करना है, इनके पास नीति और नैतिकता का अभाव है, यह स्वतंत्रता-प्राप्ति के लगभग 72 वर्षों में भी भारत के विकसित राष्ट्र नहीं बन पाने का प्रमुख कारण है।

लोक प्रशासन (नौकरशाही) प्रत्यक्ष रूप से मंत्रियों के नियंत्रण में कार्य करता है, मंत्री संसद के नियंत्रण में होते हैं और संसद अन्ततः जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। व्यवहार में शासन-प्रशासन सम्बन्धी सभी कार्य प्रायः नौकरशाही के सदस्य ही करते हैं, यद्यपि सैद्धांतिक दृष्टि से सारे अधिकार मंत्रियों के पास होते हैं। सैद्धांतिक दृष्टि से नौकरशाही का कार्य तथ्यों का संकलन करना और उन्हें अपने परामर्श के साथ मंत्रियों के समक्ष प्रस्तुत करना और फिर मंत्रियों द्वारा लिए गए निर्णयों को उनके निर्देशों के अनुसार लागू करना होता है। गठबन्धन सरकार में नौकरशाही की भूमिका और प्रभावी हो जाती है, क्योंकि गठबन्धन सरकारें प्रायः सबल नहीं होती हैं।

नौकरशाही की संस्थागत रूप-रचना तथा सांगठनिक एवं सरंचनात्मक पहलू को कार्मिक प्रशासन के नाम से जाना जाता है। नौकरशाही को अंग्रेजी में Bureaucracy कहा जाता है। Bureaucracy शब्द फ्रांसीसी भाषा के 'ब्यूरो' शब्द से बना है। इसका अर्थ एक विभागीय उपसंभाग या विभाग से है। यह प्रायः सरकारी विभाग का परिचायक है।

Encyclopaedia Britanica के अनुसार, ''जिस प्रकार तानाशाही का अर्थ तानाशाह का शासन तथा प्रजातंत्र का अर्थ जनता का शासन है, उसी प्रकार ब्यूरोक्रेसी का अर्थ ब्यूरो का शासन है''।

रॉबर्ट सी. स्टोन के अनुसार, ''इस पद का शाब्दिक अर्थ कार्यालय द्वारा शासन या अधिकारियों द्वारा शासन है। सामान्यतः इसका प्रयोग दोषपूर्ण प्रशासनिक संस्थाओं के संदर्भ में किया जाता है''[12]। ''नौकरशाही संगठनों में लालफीताशाही, कठोर नियम और कार्य विधि पर जोर दिया जाता है''[13]।

प्रख्यात समाजशास्त्री मैक्स वेबर को नौकरशाही पर विधिवत चिन्तन प्रस्तुत करने वाला पहला विद्वान माना जाता है। बाद के लगभग सभी विद्वानों ने मैक्स वेबर के

सिद्धान्त को ही आधार बनाया है। वैसे, मैक्स वेबर ने नौकरशाही के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया है, जबकि आज नौकरशाही में अनेक विकृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, लेकिन इसके लिए मैक्स वेबर को दोषी नहीं माना जा सकता।

नौकरशाही के कई प्रकार हैं, यथा– अभिभावक नौकरशाही, जातीय नौकरशाही, संरक्षक नौकरशाही एवं योग्यता नौकरशाही। वर्तमान समय में लगभग सभी लोकतांत्रिक राष्ट्रों में योग्यता नौकरशाही ही विद्यमान है। इसके अन्तर्गत लोकसेवा आयोग द्वारा तुलनात्मक (सापेक्षिक) योग्यता के आधार पर नौकरशाही के सदस्यों का चयन किया जाता है। फिर उन्हें उनके कार्य के अनुसार प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है।

नौकरशाही, पद सोपान के रूप में गठित होती है और इसमें श्रम विभाजन, आदेश की एकता, संगठनात्मक एवं कार्यात्मक समन्वय, कार्यकुशलता, निर्वैयक्तिकता एवं कागजी कार्यवाही को विशेष महत्त्व दिया जाता है। नौकरशाही के सदस्य वेतनभोगी होते हैं, इनकी सेवा स्थाई होती है और राजनीतिक रूप से तटस्थ होते हैं। इनका प्रमुख कार्य तथ्य एवं आँकड़े एकत्र करना तथा नीति-निर्माण एवं नीति-कार्यान्वयन तथा लगभग सभी महत्त्वपूर्ण मामलों में मंत्रियों को सहायता एवं परामर्श देना है। लेकिन व्यवहार में मंत्रियों के नाम पर नौकरशाही के सदस्य ही विधि-निर्माण हेतु विधेयक तैयार करते हैं। संसद से स्वीकृत कराने हेतु वित्त मंत्रालय के नाम पर बजट और सम्बन्धित विधेयक भी नौकरशाही के सदस्य ही तैयार करते हैं। मंत्रियों से संसद में पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर भी नौकरशाही के सदस्य ही तैयार करते हैं।

इस तरह, सरकार किसी भी दल या गठबन्धन की हो, व्यवहार में शासन-प्रशासन का कार्य लोक प्रशासन के सदस्य ही करते हैं। अतः नौकरशाही शासन-व्यवस्था का सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न भाग है, यद्यपि सैद्धांतिक दृष्टि से यह मंत्रिमण्डल का अधीनस्थ अंग है।

''लोकनीति राज्य की इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है। लोकनीति को क्रियान्वित करने का प्रमुख कार्य लोक सेवाओं द्वारा किया जाता है। वस्तुतः आधुनिक राज्य के कार्य-संचालन का साधन लोकसेवा ही है, अर्थात् कार्मिक वर्ग, सरकारी तंत्र का संचालन करता है। इसी कारण अधिकारियों और कर्मचारियों का योग्य एवं कुशल होना आवश्यक माना जाता है। राज्य के कार्यों में वृद्धि के चलते कार्मिक वर्ग का आकार एवं महत्त्व बढ़ता जा रहा है। वास्तव में, राज्य, कार्मिक वर्ग के माध्यम से ही नागरिकों तक पहुँचता है। कार्मिक वर्ग लोक-सेवा के लिए ही होता है''[14]।

वैसे, तकनीकी प्रगति के चलते, या यों कहें कि इलेक्ट्रोनिक गवर्नेंस के चलते अब लोकसेवा का आकार पहले की तरह नहीं बढ़ रहा है लेकिन आज भी उसके महत्त्व में कोई कमी नहीं आई है।

भारत में शासन-प्रशासन, दोनों, अभी विकास के क्रम में हैं। इनका विकास हुआ है लेकिन स्वतंत्रता के लगभग 72 वर्षों के लिहाज से यह विकास अपर्याप्त है। हमें

हमेशा आगे बढ़े हुए राष्ट्रों से अपनी तुलना करनी चाहिए। नेपाल और पाकिस्तान जैसे पिछड़े राष्ट्रों से तुलना करके स्वयं को गर्वान्वित महसूस करने का कोई अर्थ नहीं है। पिछले लगभग 72 वर्षों में शासन-प्रशासन द्वारा बहुत-से अच्छे कार्य किए गए हैं, लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना शेष है। शासन-प्रशासन, दोनो में सुधार की अपार सम्भावनाएँ हैं।

दोष एवं सुधार हेतु सुझाव

- भारत में जाति-व्यवस्था बहुत गहराई तक पैठी है, इसे समाप्त करना आवश्यक है। संविधान में जाति का नहीं, बल्कि 'वर्ग' का उल्लेख है लेकिन उसे यहाँ जाति ही मान लिया गया है। जाति-व्यवस्था जन्म आधारित है, कोई चाहकर भी अपनी जाति नहीं बदल सकता। लोगों में जातीय अहंकार एवं कट्टरता बहुत अधिक है। राजनेता इसे और हवा देते हैं। जन्म पर आधारित जाति-व्यवस्था, प्राचीन काल में विद्यमान गुणों पर आधारित वर्ण-व्यवस्था का विकृत स्वरूप है। जब तक जातियाँ रहेंगी, तब तक जातीयता की भावना पैदा होगी ही। इसके अलावा, दलितों और पिछड़ों को मिलने वाले लाभ उनमें आगे बढ़े हुए परिवार प्राप्त कर लेते हैं। निर्धन सवर्णों को आरक्षण की व्यवस्था समस्या को और जटिल बनाएगी। जाति-सम्प्रदाय इत्यादि के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त करके अधिकतम दस वर्षों के लिए निर्धनता के आधार पर आरक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। महिलाओं और विकलांगों के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। सभी 29 राज्यों तथा दिल्ली और पाण्डिचेरी में लोकसभा एवं राज्य सभा की एक-एक सीट बढ़ाई जानी चाहिए और उन्हें महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाना चाहिए। प्रत्येक विधानसभा में भी एक सीट बढ़ाकर उसे महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाना चाहिए। सभी प्रकार के दस्तावेजों में जाति-सम्प्रदाय के कॉलम हटा दिए जाने चाहिए। धीरे-धीरे भारतीय दल-व्यवस्था पर इसका असर पड़ेगा और राजनीतिक दलों की संख्या कम होगी।
- हिन्दी भाषी क्षेत्र में विभिन्न दक्षिण भारतीय भाषाओं की शिक्षा की व्यापक स्तर पर व्यवस्था की जानी चाहिए। इससे हिन्दी स्वतः सर्व स्वीकार्य हो जाएगी तथा अंग्रेजी का वर्चस्व घटेगा। इसके अलावा, सभी भाषाओं की प्रमुख पुस्तकों का हिन्दी में और हिन्दी की प्रमुख पुस्तकों का अन्य भाषाओं में व्यापक स्तर पर अनुवाद कराया जाना चाहिए, इससे लोगों में क्षेत्रीयता की भावना घटेगी और राष्ट्रीयता की भावना बढ़ेगी। इसके अलावा, सभी भाषाओं के एम.ए. अन्तिम वर्ष के पाठ्यक्रम में 'भारतीय भाषाओं का इतिहास' नाम से एक प्रश्न पत्र होना चाहिए। भारत के सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास भी अनिवार्य है।

- भारत में अभी कुछ समय तक गठबन्धन सरकारों का अस्तित्व रहेगा। गठबन्धन सरकार में भी नौकरशाही से वही अपेक्षा की जाती है, जो एक राजनीतिक दल की सरकार में। नौकरशाही को गठबन्धन सरकार को कमजोर समझकर उस पर हावी होने का प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे राष्ट्र कमजोर होगा और विकास की प्रक्रिया बाधित होगी। नौकरशाही का कार्य है तथ्यों और आँकड़ों का ईमानदारी से संग्रह करना और उनके आधार पर मंत्रियों को उचित परामर्श देना। मंत्री-गण जो भी निर्णय लें, नौकरशाही को उसे पूरी ईमानदारी से लागू करना चाहिए, एक राजनीतिक दल की सरकार होने या गठबन्धन की सरकार होने से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। नौकरशाही के अधिकार और कर्तव्य समान रहेंगे। यदि किसी मंत्री के निर्णय से कोई प्रशासनिक अधिकारी असहमत है तो उसे अपनी असहमति अवश्य दर्ज करा देनी चाहिए लेकिन नीति-निर्माण एवं नीति-क्रियान्वयन में बाधा नहीं बनना चाहिए। नौकरशाही के सदस्यों को अपनी राजिनीतिक विचारधारा को अपने दिल में ही रखना चाहिए, उसे उजागर नहीं करना चाहिए।
- पिछले लगभग 72 वर्षों में नौकरशाही का बहुत हद तक लोकतंत्रीकरण हुआ है लेकिन अभी भी इस दिशा में बहुत कुछ किया जाना शेष है। ''नौकरशाही के सदस्य अभी भी अपने को लोक सेवक नहीं मानकर जनता का स्वामी मानते हैं। इनकी इस मान्यता को बदलने के लिए बेहतर प्रशिक्षण-व्यवस्था आवश्यक है, ताकि भारतीय नौकरशाही को जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा बनाया जा सके। नौकरशाही को जन सहयोग के बल पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाना आवश्यक है। दोषपूर्ण नौकरशाही के लिए राजनेता भी जिम्मेदार हैं। प्रशासन में राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। इससे नौकरशाही का मनोबल गिरता है। कभी-कभी नौकरशाहों को मौखिक आदेश दिया जाता है और पालन नहीं करने पर दण्डित भी किया जाता है। यह बन्द होना चाहिए। बहुत-से नौकरशाह भी प्रलोभन में आकर गैर कानूनी कार्य कर बैठते हैं, जिसके लिए उन्हें भविष्य में दण्डित होना पड़ता है। नौकरशाहों को दबाव और प्रलोभन से बचना होगा। संविधान ने सरकार के सभी अंगों के अधिकार और कर्तव्य निर्धारित कर दिये हैं, सबको इस बात का ध्यान रखकर कार्य करना होगा।''[15]
- ''भारत में चुनाव में कम मतदान होना भी एक समस्या है''[16]। चुनाव-परिणाम को संकीर्ण स्वार्थों से मुक्त रखने के लिए मतदान प्रतिशत का बढ़ना आवश्यक है। इसके लिए जन-जागरूकता के साथ ही मौसम का ध्यान रखना भी आवश्यक है। अधिक गर्मी, अधिक बरसात या अत्यधिक जाड़े में मतदान का प्रतिशत कम होगा। अतः अक्टूबर-नवम्बर में या मार्च-अप्रैल में चुनाव की प्रक्रिया सम्पन्न करा ली जानी चाहिए। सम्पूर्ण राष्ट्र में एक दिन

में ही चुनाव कराना उचित होगा। इसके लिए सी.आर.पी.एफ. के जवानों और अन्य सरकारी कर्मचारियों की संख्या में आवश्यक वृद्धि कर दी जानी चाहिए। हमारे देश में सबसे बड़ी समस्या है योग्य एवं ईमानदार व्यक्तियों को महत्त्वपूर्ण पदों पर पहुँचाना। मतदान-प्रतिशत बढ़ने से यह कुछ हद तक सम्भव हो सकेगा। हमारे देश के बारे में ऐसा कहा जाता है कि यहाँ पर पैसे और पैरवी के बल पर गलत कार्य भी कराया जा सकता है और अच्छे कार्य को भी होने से रोका जा सकता है। हमें अपने देश की इस बदरंग छवि को बदलना होगा।

- सरकार को स्थिरता प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा दल-बदल रोकने हेतु संविधान में संशोधन किया गया और दसवीं अनुसूची जोड़ी गई। लेकिन विद्वानों का कहना है कि दल बदल विरोधी कानून बहुत कठोर है और यह सांसदों-विधायकों-विधानपार्षदों को उनके दल के नेता का अनुचर बना देता है। विद्वानों का सुझाव है कि इसे कठोरता से तभी लागू किया जाए, जब सरकार के विरूद्ध लाए गए अविश्वास प्रस्ताव या सरकार द्वारा रखे गए विश्वास प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में मतदान करने की बात हो। शेष अवसरों पर सांसदों-विधायकों-विधान पार्षदों को अपने विवेक के आधार पर निर्णय करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इससे लोकतंत्र का विकास और विस्तार होगा।
- राजनेताओं और नौकरशाहों, दोनो को अपना दृष्टिकोण व्यापक करना होगा।[16] उन्हें मानना होगा कि राष्ट्र सबसे बड़ा है और सभी उसी के उत्थान के लिए हैं। इसके लिए दोनो में दृढ़ इच्छा-शक्ति उत्पन्न करने की आवश्यकता है और यह जनजागरूकता तथा राष्ट्र और समाज के प्रति समर्पण की भावना से ही संभव है।
- भारत में उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया पारदर्शी नहीं है। इसके लिए संघ लोक सेवा आयोग द्वारा उच्च न्यायालय में न्यायाधीश बनने के लिए अर्ह प्रत्याशियों की एक संक्षिप्त लिखित एवं मौखिक परीक्षा करा दी जानी चाहिए और उसके आधार पर मेरिट लिस्ट तैयार करके नियुक्ति के लिए अधिकृत लोगों के पास भेज देना चाहिए। न्यायाधीशों की नियुक्ति मेरिट और अनुभव को ध्यान में रखकर होनी चाहिए।
- लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास आवश्यक है। इससे भारत की तीनो ज्वलन्त समस्याओं- जनसंख्या-वृद्धि, पर्यावरण-प्रदूषण और भ्रष्टाचार से मुक्ति पाई जा सकती है। ऐसा होने पर एक दल की सरकार हो या गठबन्धन की सरकार हो, शासन-प्रशासन में तालमेल स्थापित करना सरल हो जाएगा।

- 1920 के दशक में गांधीजी ने सार्वजनिक जीवन के सात दोषों की चर्चा की। वे हैं– सिद्धांत विहीन राजनीति, बिना परिश्रम के धन की प्राप्ति, सदाचार रहित सुख, चरित्र विहीन ज्ञान, नैतिकता विहीन वाणिज्य, मानवता से विमुख विज्ञान और त्याग रहित पूजा। गांधीजी की यह शिक्षा आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी महत्त्वपूर्ण एक शताब्दी पहले थी।

यह सुखद है कि जनता में जागरूकता बढ़ रही है और राजनेता और नौकरशाह भी अपनी जिम्मेवारी निभाने का प्रयास कर रहे हैं। अब गठबंधन सरकारें भी सफल हो रही हैं और नौकरशाही यथा सम्भव तटस्थ रहने के लिए प्रयासरत् है।

सन्दर्भ

1. नौकरशाही एवं सुशासन, द्वारा– प्रो. एस.एन. सिंह।
2. राजनीति विज्ञान, द्वारा– डॉ. पुखराज जैन, प्र.– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ- 349.
3. गेटेल।
4. गिलक्राइस्ट।
5. राजनीति विज्ञान, द्वारा– डॉ. पुखराज जैन, प्र.– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ- 349.
6. भारत का संविधान, दसवीं अनुसूची।
7. A Dictionary of Political Thought: द्वारा– रोजर स्क्रूटन।
8. प्रख्यात संविधानविद् सुभाष कश्यप।
9. निबंध बोध, सं.–कल्पना राजा राम, प्रं.– स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2015 ई., पृष्ठ- 47.
10. प्रतियोगिता दर्पण, दिसम्बर, 2018, पृष्ठ- 169-172.
11. Encyclopaedia Britanica
12. रॉबर्ट, सी. स्टोन।
13. राजनीति विज्ञान, द्वारा– डॉ. पुखराज जैन एवं बी.एल. फड़िया, प्र.– साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ- 133.
14. लोक प्रशासन, द्वारा– डॉ0 आर के सिंह, प्र.– मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, पृष्ठ- 132 एवं 134.
15. प्रतियोगिता दर्पण (अतिरिक्तांक) सामान्य अध्ययन, भारतीय राज व्यस्था एवं शासन, प्र.– उपकार प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ- 151–152.
16. भारतीय शासन एवं राजनीति, द्वारा– डॉ0 आर के सिंह, प्र.- मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, पृ.- 247.
17. उपकार हिन्दी निबन्ध, द्वारा–जैन एवं कुलश्रेष्ठ, प्र.- उपकार प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ- 102.

भारत में दलीय प्रणाली की गठबंधन सरकार में भूमिका एवं चुनौतियाँ

उमेश कुमार

lkjk'k *भारत जैसे देश में विशेष रूप से 1990 के बाद से लोकतांत्रिक राजनीति का तकाजा गठबंधन है। गठबंधन की राजनीति ने भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। यहाँ स्पष्ट होना चाहिए कि एक राजनीतिक दल की सरकार और विभिन्न राजनीतिक दलों के सहयोग से निर्मित गठबंधन की सरकार की कार्यशैली में आकाश -पाताल का अंतर होता है। यदि किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक दलीय सरकार है तो आम चुनाव के पूर्व संबंधित राजनीतिक दल के चुनाव घोषणा -पत्र और उसके द्वारा निर्मित सरकार की कार्यशैली में समानताएँ होती हैं। एक दलीय सरकार अपनी कार्यावधि में अपने द्वारा उद्घोषित कार्यक्रमों को पूरा कर जनता के प्रति अपने दायित्व से मुक्त होती है। परिणामस्वरूप, आनेवाले दिनों में उस विशेष राजनीतिक दल की साख जनता के बीच जमती है और एक उद्देश्य एवं दिशा से वह राजनीतिक दल उत्प्रेरित रहता है। ठीक इससे भिन्न स्थिति गठबंधन सरकार की होती है। चूँकि गठबंधन सरकार में अनेक दल सम्मिलित होते हैं इसलिए उनके द्वारा जनता के बीच उद्घोषित कार्यक्रमों को लागू कर पाना संभव नहीं होता है। गठबंधन सरकार में सम्मिलित बड़ा राजनीतिक दल भी अपने द्वारा उद्घोषित नीतियों को कार्यान्वित करने में काफी कठिनाई अनुभव करता है। कभी -कभी तो गठबंधन सरकार की साख भी प्रभावित होने लगती है। यदि पिछले दो दशकों की राजनीतिक परिघटनाओं का विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीतिक प्रति में महत्वपूर्ण बदलाव दृष्टिगोचर हुए हैं। दलीय व्यवस्था एक दलीय प्रधान व्यवस्था से बहुलवादी दलीय व्यवस्था में बिल्कुल परिवर्तित हो गई है जिसके परिणामस्वरूप राज्य एवं क्षेत्र स्तरीय दलों की भूमिका में काफी वृद्धि हुई।*

प्रस्तावना

गठबन्धन की सरकारों के वे राजनीतिक दल जो सरकार को स्थापित करने में

सहायक होते हैं वे अपने निहित स्वार्थ के तहत सरकार से मनमाने रूप से कार्य करवाते हैं क्योंकि सरकार को सदैव यह भय बना रहता है कि यदि इन्होंने अपना समर्थन सरकार से वापस लिया तो सरकार गिर सकती है। अतएव निम्नलिखित कारणों से गठबन्धन की सरकारें लोकतंत्र के लिए चुनौती बनती जा रही हैं।

प्रथमतः, गठबंधन की राजनीति मुख्यतः चुनावी राजनीति एवं जनादेश प्राप्त करने के लिए तथा राजनीति के खेल में विजयी होने के लिए की जाती है।

द्वितीय, गठबंधन की राजनीति मतभेदों के बीच एकता को प्रदर्शित करती है। गठबंधन चाहे कितना भी सुदृढ़ दिखे सहयोगी दलों के बीच मतभेद व्याप्त रहते हैं क्योंकि उनके जनाधर में एकरूपता नहीं होती।

कश्यप तथा गुप्त ने गठबंधन सरकार की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''मिली-जुली सरकार राजनीतिक समुदायों तथा शक्तियों का गठजोड़ है जो अस्थायी और कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए होता है। राजनीतिक दलों का यह गठजोड़ सरकारों के निर्माण या उनकी रक्षा करने के लिए बनाया जाता है। जिन दलों के सहयोग के फलस्वरूप संयुक्त सरकारों का निर्माण होता है, वे सभी एक बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रमों पर एकमत होते हैं''।[1]

प्रो. ऑग (Prof. Ogg) ने गठबंधन सरकार को इस प्रकार परिभाषित किया है, ''मिली-जुली सरकार एक ऐसी सहयोगी प्रबंध का नाम है, जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमण्डल के निर्माण के लिए एक हो जाते हैं''।[2]

इसका मुख्य उद्देश्य एक समान संकट पर काबू पाते हुए उपस्थित खास मौके का लाभ उठाना होता है। इसी कारण से प्रायः गठबंधन की प्रकृति अस्थायी होती है क्योंकि जो संकट या विद्यमान अवसर उन्हें गठजोड़ करने के लिए प्रेरित करते हैं, वही उन्हें इसे तोड़ने की भी प्रेरणा देते हैं।

प्रायः गठबंधन सरकार का गठन उन देशों में होता है जहाँ संसद में आनुपातिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था है और बहुदलीय पार्टी प्रति विद्यमान है। प्रायः यह उन देशों में देखने को नहीं मिलती जहाँ मंत्रिमण्डल का चुनाव कार्यपालिका के द्वारा होता है न कि निम्न सभा द्वारा, उदाहरणस्वरूपः अमेरिका। ब्राजील इसका अपवाद है, जहाँ साधारणतः संविदा सरकार ही बनती है।

भारत में गठबंधन सरकार के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे– 'संविदा', 'संयुक्त मंत्रिमण्डल', 'मोर्चा सरकार', 'मिली-जुली सरकार' आदि। संयुक्त सरकार से अभिप्राय है कि कई दलों की मिली-जुली मिश्रित सरकार का बनना। आम चुनावों से पूर्व कुछ दल मिलकर एक कार्यक्रम बना लेते हैं, उस निश्चित कार्यक्रम के आधार पर चुनाव लड़ते हैं, चुनावों में आपसी सामंजस्य तथा तालमेल स्थापित करते हैं, एक-दूसरे के विरूद्ध प्रत्याशी खड़ा नहीं करते हैं और यदि चुनावों के बाद इन

संयुक्त दलों को बहुमत प्राप्त हो जाता है तो सर्वसम्मति से वे अपने नेता का चुनाव कर लेते हैं और नेता द्वारा निर्मित मन्त्रिमण्डल में सभी दलों को यथोचित प्रतिनिधित्व दिया जाता है। यदि विधानसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ और दो से अधिक दल हैं तो ऐसी स्थिति में दो या कुछ दल मिलकर के एक संयुक्त कार्यक्रम तैयार कर लेते हैं और गठबंधन सरकार बना लेते हैं। वस्तुतः गठबंधन सरकार मिली-जुली सरकार है जिसमें दलीय सिद्धान्तों और कार्यक्रमों की अतिवादिता को त्यागते हुए विभिन्न दल या गुट निश्चित कार्यक्रम पर समझौता कर लेते हैं और इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु सरकार में शामिल होते हैं।

xBc/ku ljdkj dh fuEufyf[kr fo'k"krk,¡ gkrh g%&

प्रथम– संयुक्त मंत्रिमण्डल का समझौतावादी कार्यक्रम होता है।

द्वितीय– संयुक्त सरकार के विभिन्न घटक मिल-जुलकर कार्य करते हैं।

तृतीय– विभिन्न दलों के अलग नेता और अस्तित्व होते हुए भी उनका एक सर्वसम्मत नेता होता है।

चतुर्थ– महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्या का हल संयुक्त दलों की स्वीकृति से ही किया जाता है।

भारतीय संविधान और गठबंधन सरकार

भारत विश्व का विशालतम लोकतंत्र है। साथ ही इसका संविधान विश्व का विस्तृत एवं लिखित दस्तावेज है। भारतीय संविधन निर्माताओं ने इस देश में शासन हेतु जिस पद्धति को चुना वो ब्रिटिश शासन से प्रभावित होकर चुना। यहाँ ब्रिटेन की तरह संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। भारतीय संसदीय लोकतंत्र में आम लोग अपनी प्रभुता का प्रयोग केन्द्र में संसद और प्रत्येक राज्य में विधानमण्डल के माध्यम से करते हैं। कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद् इसी के प्रति उत्तरदायी होती है। मंत्रिपरिषद् का प्रमुख केन्द्र और राज्यों में क्रमशः प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री होता है। मंत्रिपरिषद् अपने-अपने विधानमण्डलों में जनता के प्रतिनिधियों के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है। सत्ता बहुमत के हाथ में होती है और विपक्ष में अल्पमत समूह बैठता है। समस्या तब आती है जब किसी पार्टी को चुनावों में बहुमत नहीं मिलता ताकि वो एक दल की सरकार बना सके। तो इन परिस्थितियों में परिणाम के रूप में सामने आती है, 'गठबंधन सरकार'।

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक विविधतापूर्ण एवं बहुदलीय प्रणाली वाले देश के संदर्भ में यह और भी रोचक हो जाता है। इससे यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि गठजोड़ सरकार के बीज कहीं न कहीं हमारे संसदीय लोकतंत्रा की जड़ों में ही छिपे हुए थे, जिन्हें अनुकूल परिस्थिति रूपी नमी ने जीवन का अंकुरण प्रदान किया है।

गठबंधन की अवधरणा कोई नवीन दृष्टिकोण नहीं है बल्कि इसकी जड़ें वर्तमान

राजनीति में अतीत से आई हुई हैं। वस्तुतः प्राचीन समय से कभी-कभी युद्धरत राज्यों द्वारा आपस में संधि करके शत्रुओं को पराजित किया जाता था। उदाहरणस्वरूपः वैदिक सभ्यता का दसराज युद्ध तथा ब्रिटिश भारत में निजाम एवं ब्रिटिश गठबंधन जो मराठों के विपरीत बनाया गया था।

मिली-जुली सरकारों के निर्माण का प्रयास भारत में पूर्व में भी हुआ है। अंग्रेज सरकार के रहते पं. जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में जब अन्तरिम सरकार की स्थापना का प्रयत्न किया गया तो कांग्रेस के साथ ही मुस्लिम लीग को भी सम्मिलित करने की व्यवस्था की गयी थी। यह केन्द्र में मिली-जुली सरकार बनाने की योजना थी। यद्यपि लीग ने पहले असहयोग की नीति अपनायी और बाद में मंत्रिमण्डल में अड़ंगा लगाने के लिए ही लीग के नेता मंत्रिमण्डल में शामिल हुए। लियाकत अली खाँ को वित्त विभाग दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप अन्य विभागों का काम चलाना भी मुश्किल हो गया था। सन् 1954 में ट्रावनकोर-कोचीन में मध्यावधि चुनाव के बाद कांग्रेस अपना मंत्रिमण्डल नहीं बना सकी थी क्योंकि 148–सदस्यीय विधानसभा में कांग्रेस को केवल 44 स्थान प्राप्त हो सके थे। कांग्रेस के समर्थन से प्रजा समाजवादी दल ने पटम थानु पिल्लई नेतृत्व में अपना मंत्रिमण्डल बनाया था।

भारतीय राजनीति एवं भारतीय दलों के विशद् विवेचन एवं बहुपक्षीय मूल्यांकन हेतु विख्यात् विद्वान रजनी कोठारी ने 'भारत में राजनीति' नामक पुस्तक में, जो 1972 में प्रकाशित हुई थी, गठबंधन सरकार के प्रार्दुभाव, राजनीतिक दलों की मानसिकता एवं उससे जुड़े उनके व्यवहार, चुनावी आँकड़े, गठबंधन के पीछे उत्तरदायी मूलभूत कारणों, संविद सरकार के विविध आयाम आदि सभी की व्याख्या करते हुए 'संविद सरकारों का दौर' नामक शीर्षक के अन्तर्गत यह लिखा है कि ''जरूरी नहीं कि संविद या संयुक्त सरकारें एक दल की सरकारों से कम कारगर और सोद्देश्य हो। केरल की साझी सरकार आंध्र की एकदलीय सरकार से, उड़ीसा की असम से या पंजाब की हरियाणा से कम कारगर नहीं रही। बहुत कुछ सरकार में शामिल गुटों या तत्वों पर निर्भर होता है, हो सकता है कि एक बार जब संयुक्त सरकार की प्रति स्थापित हो जाए और विभिन्न दलों को उसमें काम करने का अनुभव हो जाए, तो सरकारें विदेशी नमूनों की नकल करने की बजाय देश की जनता की जरूरतों को समझने और उन्हें पूरा करने पर अधिक ध्यान देने लगें और ठोस काम करने लगें।[3]

इस पुस्तक में कोठारी जी ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि व्यस्क मताधिकार की प्रणाली एवं जनता की राजनीतिक सक्रियता एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण से सरकारी नीतियाँ अधिक यथार्थवादी और जनता की इच्छा और जरूरतों के अनुकूल बनेंगी। इसी प्रकार का विचार ब्रास (1968) ने *अमेरिकन पोलिटिकल रिव्यू* में प्रकाशित अपने शोध आलेख में भी व्यक्त किया है।[4] 1967 और 1969 के चुनाव इसी दिशा में कदम हैं, इससे संविद सरकारों के महत्व का आभास होता है।

प्रख्यात राजनीतिक वैज्ञानिक एवं महान विचारक के.पी. करूणाकरण द्वारा संपादित '*कोलिशन गवर्नमेंटस इन इंडियाः प्रॉब्लमस ऐण्ड प्रोसपैक्ट्स,* 1975' में गठबंधन होने हेतु कुछ सिद्धान्तों एवं अवधारणाओं का वर्णन तथा विश्लेषण है।[5] इसके अलावा इस रचना में कुछ भारतीय राज्यों (पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, पंजाब, यू.पी., तमिलनाडु, केरल एवं मद्रास) की राजनीति से संबंधित संक्षिप्त रिपोर्ट भी प्रस्तुत की गई है।

लॉरेंस सी. डॉड ने गठजोड़ सरकारों के संसदीय सरकारों में अवतरण की भूमिका एवं महत्व को देखते हुए एक पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक है *'कोलिशन्स इन पार्लियामेन्टरी गवर्नमेंट'* 1976, इसमें उन्होंने वर्षों पुराने सिद्धान्त का खण्डन किया कि मंत्रिमण्डल को एक बहुमत प्राप्त पार्टी की आवश्यकता है और वर्तमान अवधारणाओं में आधारभूत बदलावों की वकालत की।[6] वे तत्कालीन समय की आवश्यकता एवं हालात को देखकर यह महसूस कर चुके थे कि जो दौर राजनीति में आ रहा है वो संविद सरकारों का ही है।

भारतीय संविधान के महान ज्ञाता एवं विशेषज्ञ, प्रतिष्ठित विद्वान एवं एक सफल राजनीतिक विचारक एवं वैज्ञानिक 'सुभाष कश्यप' ने भारतीय शासन प्रणाली में केन्द्रीय स्तर पर बने संयुक्त मोर्चे की गठजोड़ का विशद् एवं विस्तृत विवेचन किया और राष्ट्रीय स्तर पर बने संविद सरकार की दूरगामी प्रभावकारिता को भली-भाँति रेखांकित भी किया।[7]

'कोलिशन पोलिटिक्सः द इंडियन एक्सपीरियन्स, 2004' पुस्तक में एन. जोश ने चर्चा की है कि गठजोड़ सरकार संसदीय लोकतंत्र में कई बदलाव लेकर आई। मंत्रिमण्डल के संघटक, इसकी कार्य पद्धति, प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री की कार्य-शैली, चुनावी राजनीति एवं दलीय प्रणाली, यदा-कदा तो विधानसभा के गठन को भी संविद सरकारें कई प्रकार से प्रभावित करती है।[8] उनके मतानुसार भारतीय संविद संगठन अपने आधार को मजबूत करने और सत्ता में बने रहने हेतु ज्यादा राजनीतिक दलों को अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। दूसरे शब्दों में गठबंधन भारतीय चुनावी परिपाटी में एक आकर्षण की वस्तु रही है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बहुत से छोटे-छोटे दलों एवं हित समूहों से समझौता कर एक महागठबंधन बनने को प्रेरित रही है ताकि वो चुनावों में अधिकतम सीटें जीत सकें और विपक्ष को मुँह की खानी पड़े।

डॉ. सुन्दर राम का कार्य इस क्षेत्र में अपनी अलग प्रासंगिकता रखता है।[9] उन्होंने '*इंडियन पार्लियामेन्टरी ऑपोजिशन*', 1996 में दो लेखों जो *'कोलिशन पालिटिक्स इन इंडिया'* पर इकबाल नारायण एवं रामकृष्ण हेज द्वारा केन्द्र में गठबंधन सरकारों के आगमन के काफी पहले लिखे जा चुके थे, उनका पुनः प्रकाशन किया। इसमें उन्होंने व्यापक जमीन तैयार होने से लेकर इसके भारतीय संसद के विभिन्न पक्षों पर पड़ने वाले असर का वर्णन किया है। जेम्स (1997) ने केरल के संदर्भ में अपने

शोध आलेख में *गठबंधन की राजनीति को भारत* के अनेकता में एकता के दर्शन का प्रतीक कहा है।[10]

अन्य विचारक प्रणय ठाकुर एवं रघुरमन शंकर ने *'ए टाईम ऑफ कोलिशन्सः डिवाईडेड वी स्टैण्ड'* 2004 में संविद सरकार के सकारात्मक पक्षों को उजागर करते हुए, एक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि भले ही गठजोड़ सरकारें कई राजनीतिक दलों, जो अलग-अलग हितों, छोटे सामाजिक एवं नैतिक समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं, से मिलकर बनी होती है फिर भी उनके हृदय में भारतीय संघ से एक जुट रहने की उच्च भावना एवं अपनी विशिष्ट पहचान दोनों को संजोए रहते हैं, जो भारतीय विविधता में एकता का पर्याय है।[11]

इस पुस्तक में यह चर्चा की गई है कि गठजोड़ सरकारें, अपनी अस्थिर प्रकृति के कारण, चुनाव प्रचारों में होने वाले काले धन की मात्रा को कम कर सकते हैं।

अहमद तथा निलोफर (2009) ने अपने शोध आलेख में भारत में संविद सरकार के विभिन्न आयामों का विस्तृत उल्लेख किया है।[12] इस संदर्भ में हरि शंकर व्यास (2014) ने दी *पायोनियर* में प्रकाशित अपने आलेख में भारत में संविद सरकार के दुष्प्रभावों तथा इसके अंधकारमय भविष्य के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।[13]

श्रीधरण (2014) द्वारा संपादित पुस्तक *'कोलिशन पोलिटिक्स इन इंडिया'* में विभिन्न विद्वानों के द्वारा भारत में गठबंधन राजनीति के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है।[14] श्री विद्या शास्त्री (2017) ने अपने आलेख में गठबंधन सरकार की विशेषताओं के साथ ही भारतीय संघात्मक शासन व्यवस्था पर इसके प्रभावों के सम्बन्ध में विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत किया है।[15]

मनोज कुमार (2017) ने अपनी पुस्तक *'कोलिशन पोलिटिक्स इन इंडियाः हिस्ट्री एण्ड एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल एलाएंसेज'* में भारत में गठबंधन की राजनीति के ऐतिहासिक घटनाक्रमों का सिलसिलेवार विवरण प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में श्री कुमार ने राजनीतिक गठबंधन के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण भी तार्किक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।[28]

आरिफ खान (2017) ने अपने आलेख में भारत में गठबंधन राजनीति के भविष्य पर बिहार की राजनीतिक स्थिति के प्रभावकारी आयामों को रेखांकित किया है।[17]

भारत में दलीय व्यवस्था की विशेषताएँ

1947 से लेकर 1999 तक के काल में कम से कम दो बार (1967, 1977) ऐसा प्रतीत हुआ है कि भारत की दलीय व्यवस्था नवीन दिशा ग्रहण करने जा रही है, लेकिन दोनों ही बार ऐसा नहीं हो पाया और स्थिति में थोड़े-बहुत परिवर्तन के बाद दलीय व्यवस्था अपने मूल स्वरूप पर आकर टिक गयी। 1967 के चतुर्थ आम चुनाव में

भारतीय संघ के लगभग आधे राज्यों की विधानसभाओं में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी और इन राज्यों में विरोधी दलों की मिली-जुली सरकारों 'संविद सरकारों' की स्थापना हुई। इस स्थिति के सन्दर्भ में भारतीय राजनीति के अनेक समीक्षकों द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया कि अब भारतीय राजनीति में एक दल की प्रधानता का युग समाप्त हो चुका है और भारत में केन्द्र तथा राज्यों के स्तर पर एकदलीय सरकारों के स्थान पर मिली-जुली सरकारों की स्थापना होगी। *रजनी कोठारी* के शब्दों में, ''भारतीय राजनीति ने एक दल की प्रधानता वाली स्थिति से निकलकर उस स्थिति में प्रवेश किया, जिसमें विभिन्न दलों में प्रधानता प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गयी''।[18] लेकिन 1971 ई. के लोकसभा चुनावों और 1972 के विधानसभा चुनावों में दलीय स्थिति इस रूप में सामने नहीं आयी और दलीय व्यवस्था ने पुनः अपने पुराने स्वरूप *'एक दल की प्रधानता वाली बहुदलीय प्रति'* को ग्रहण कर लिया।

1977 के लोकसभा चुनावों के परिणामस्वरूप भारत में पहली बार केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ और कांग्रेस के स्थान पर जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई। पाँच राजनीतिक इकाईयों-संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, समाजवादी दल और चन्द्रशेखर के नेतृत्व वाली 'लोकतंत्रीय कांग्रेस' का भी इसमें विधिवत् रूप से विलय हो गया तब इस स्थिति को दृष्टि में रखते हुए आशा की जाने लगी कि बहुत शीघ्र ही भारतीय राजनीति में 'राजनीतिक ध्रुवीकरण' की स्थिति आ जायेगी अर्थात् बहुत कुछ सीमा तक भारत में 'द्विदलीय व्यवस्था' स्थापित हो जायेगी, लेकिन 1977 के अन्तिम दिनों में ही इस बात के संकेत मिलने लगे और 1978 के प्रारम्भ से यह नितान्त स्पष्ट हो गया कि हम 'राजनीतिक ध्रुवीकरण' की दिशा में आगे बढ़ने के बजाय राजनीतिक दलों के विघटन और बिखराव की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। 1977-79 के काल में राज्य स्तर पर तथा बहुत कुछ सीमा तक केन्द्रीय स्तर पर अनेक अर्थों में केन्द्र में सत्तारूढ़ जनता पार्टी सरकार एक मिली-जुली सरकार ही थी और जुलाई 1979 में वस्तुतः जनता (एस), कांग्रेस (अर्स) और अन्ना डी. एम. के. की मिली-जुली सरकार स्थापित हुई। मिली-जुली सरकार का आशय राजनीतिक अस्थायित्व और दिशाहीन शासन के रूप में सामने आया। अतः भारतीय जनता एक ही राजनीतिक दल को शासन सत्ता सौंपने के पक्ष में थी। इस स्थिति के परिणामस्वरूप 1980 में लोकसभा के लगभग दो-तिहाई स्थान 'इन्दिरा कांग्रेस' के द्वारा प्राप्त किये गये और शेष स्थान विभिन्न विपक्षी दलों में बँट गये। इस प्रकार भारतीय दलीय व्यवस्था की मूल प्रवृत्ति *'एक दल की प्रधानता वाली बहुदलीय पद्धति' या 'बहुदलीय पद्धति में एक दल की प्रधानता'* पुनः स्थापित हो गयी। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों के बाद हम पुनः अल्पमत (मिली-जुली सरकार) सरकार की तरफ बढ़ने लगे। 1991 के चुनावों के बाद राजनीतिक शक्तियों का धुवीकरण होने लगा।

1990 का दशक भारतीय राजनीति में एक नए बदलाव का परिचायक है। 31 अक्टूबर 1984 की इंदिरा गाँधी की हत्या के परिणामस्वरूप देश में हुए आम चुनाव में कांग्रेस को भारी विजय मिली थी और *राजीव गाँधी* प्रधानमंत्री के रूप में सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी का नेतृत्व कर रहे थे। उल्लेखनीय है कि 1984 के इस आम चुनाव में कांग्रेस को 415 स्थान लोकसभा में मिले थे। यह भारतीय राजनीति में हो रहे परिवर्तनों का ही परिणाम था। भारतीय जनता कभी कांग्रेस तो कभी कांग्रेस-विरोधी गठबंधन के पक्ष में मतदान करते हुए लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सुदृढ़ करना चाहती थी। 1980 के दशक के आखिर के सालों मे वैसे बहुत सारे बदलाव आए जिसने भारतीय राजनीति की दिशा को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया।

आधुनिक भारत में संविदा सरकार का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम राज्य स्तर पर 1967 में हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से 1967 तक केन्द्र तथा राज्य दोनों ही स्तरों पर कांग्रेस का शासन था। 1967 में पांच राज्यों के विधानसभा चुनावों के परिणामस्वरूप गैर-कांग्रेसी संयुक्त मंत्रिमण्डल सरकारें कायम हुई। संघीय स्तर पर 1977 में पहली बार मिली-जुली सरकार का गठन मोरारजी देसाई के प्रधनमंत्रित्व में हुआ था।

स्वाधीनता के बाद लगातार 20 वर्षों तक कांग्रेस का ही भारतीय राजनीति में एकछत्र शासन था। जैसे-जैसे सामाजिक और राजनीतिक चेतना विकसित होती गई, भारत जैसा विशाल देश एकल राजनीतिक वर्णाक्रम में समा नहीं सका, क्योंकि इसके पास धर्मों और क्षेत्रों, जातियों और जाति समूहों एवं भाषाई और सांस्कृतिक एवं नृजातीय पहचानों की विविध असमानताऐं मौजूद थीं। इन्हीं उदीयमान जातियों और दलित वर्गों के हितों के लिए आवाज बुलंद करने, उनका प्रतिनिधित्व करने, उनकी हिमायत करने और क्षेत्रीय पहचानों की माँग करने के लिए राजनीतिक संगठन एवं इकाइयाँ विकसित हुई। धीरे-धीरे इन्होंने शक्ति हासिल कर ली और मिल-जुल कर हमला बोलने का फैसला किया। विपक्ष में डॉ. लोहिया जैसे नेताओं ने कांग्रेसी कुशासन एवं प्राधिकारवाद के खिलाफ जेहाद बोलना शुरू किया तथा इंदिरा गाँधी के ढुलमुल शासन ने इसे और आसान कर दिया। इन तमाम घटनाओं का मिला जुला असर यह हुआ कि गठबंधन की राजनीति का प्रस्फुटन हुआ और इसने धमाके के साथ 1967 में कामयाबी हासिल की।

इस कामयाबी ने गैर कांग्रेसी ताकतों को निडर बना दिया, उनकी महत्वकांक्षा बढ़ी और वे दिल्ली की सत्ता पर कब्जा करने की राजनीति में लग गए। 1967 में कांग्रेस का सिंडिकेट-इंडिकेट में बंटना और अन्य कारणों से कांग्रेस सरकार अल्पमत में आई तब इसने अपना अस्तित्व माकपा और अकालियों की मद्द से बचाया। तत्कालीन परिदृश्य में तमिलनाडु के मुख्यमंत्री ने यह नारा दिया ''राज्यों में स्वशासन एवं केन्द्र में मिला-जुला शासन''।

1971 में जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी, संगठन कांग्रेस एवं सलोपा ने मिलकर एक महागठबंधन बनाया परंतु 1971 में बांग्लादेश की मुक्ति में श्रीमती गांधी की भूमिका ने उन्हें लोकसभा चुनावों में जीत दिलायी और इस महागठबंधन की हार हुई। जे.पी. आन्दोलन ने जब 1975 में जोर पकड़ा तो इंदिरा जी ने आपातकाल की घोषणा की और यही उनके लिए काल हो गया। 1977 में लोकसभा चुनाव के मौके पर बना गठजोड़ ''जनता पार्टी'' ने पूर्ण बहुमत हासिल किया। संयुक्त मोर्चा की 1967 में शुरू हुई विजय यात्रा को केन्द्र में कांग्रेस को हटाने में सिर्फ दस साल लगे। हाँलाकि संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोक दल, सोशलिस्ट पार्टी और कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी ने जनता पार्टी बनाने में हाथ मिला लिया था, फिर भी एक सुसम्बद्ध दल के समन्वय का उनमें अभाव था। उन्होंने संयुक्त मोर्चा सरकार के विभिन्न घटकों के रूप में कार्य किया और परिणाम यह हुआ कि 1979 में जनता पार्टी बिखर गई परंतु इससे साफ संकेत मिले कि भविष्य में केन्द्र में फिर से संयुक्त मोर्चा की सरकार बन सकती है।

1977 के लोकसभा चुनावों के परिणामस्वरूप भारत में पहली बार केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ और कांग्रेस के स्थान पर जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई। जनता पार्टी की स्थापना पाँच राजनीतिक इकाईयों-संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, समाजवादी दल और चन्द्रशेखर के नेतृत्व में विद्रोही कांग्रेसियों के सम्मिलन से हुई थी और मई 1977 के प्रथम सप्ताह में जब जगजीवन राम के नेतृत्व वाली 'लोकतन्त्रीय कांग्रेस' का भी इसमें विधिवत् रूप से विलय हो गया तब इस स्थिति को दृष्टि में रखते हुए आशा की जाने लगी कि बहुत शीघ्र ही भारतीय राजनीतिक दल 'ध्रुवीकरण' की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। 1979 में स्थिति पूर्णतया इसी रूप में सामने आ गयी और यह शंका व्यक्त की जाने लगी कि जनवरी 1980 के लोकसभा चुनाव-केन्द्र में मिली-जुली सरकार को जन्म देंगे, लेकिन 1967-70 के काल में राज्य स्तर पर और पुनः 1977-79 के काल में राज्य स्तर पर तथा बहुत कुछ सीमा तक केन्द्रीय स्तर पर (अनेक अर्थों में केन्द्र में सत्तारूढ़ जनता पार्टी सरकार एक मिली-जुली सरकार स्थापित हुई थी) मिली-जुली सरकारों का आशय राजनीतिक अस्थायित्व और दिशाहीन शासन के रूप में सामने आया।

1980 में इंदिरा गाँधी की शानदार विजय एवं 1984 में राजीव गाँधी का प्रबल बहुमत उन ताकतों को खत्म नहीं कर सकी जो 1977 में बंधनयुक्त हो गई थीं। वस्तुतः 1984 का चुनाव ऐसा आखिरी चुनाव था जब किसी एक पार्टी को सुस्पष्ट बहुमत मिला हो। 1989 में 1977 के परिदृश्य फिर दिखे। एक बार फिर गैर-कांग्रेसी मोर्चा (जनता पार्टी + भाजपा का समर्थन) की सरकार वी.पी. सिंह के नेतृत्व में सत्ता पर काबिज हुई। इस मोड़ पर भारत ने वास्तविक रूप से गठबंधन सरकारों के युग में प्रवेश किया।

एक समय था जब कांग्रेस प्रभाव की समाप्ति के परिणामस्वरूप देश में बहुदलीय शासन-प्रणाली के युग का प्रारंभ हुआ था। यह सर्वविदित है कि प्रारंभ से ही जब देश स्वतंत्र हुआ, देश में अनेक राजनीतिक दल आम चुनावों में भाग लेते आए हैं। 1989 के आम चुनाव के बाद भारतीय राजनीति में कई ऐसे दल आए जिसके चलते 1989 के बाद लोकसभा के चुनावों में किसी को भी पूर्ण बहुमत नहीं मिला। यही कारण था कि केन्द्र में विवशतावश गठबंधन सरकारों का सिलसिला प्रारंभ हुआ। ऐसे गठबंधन सरकार के निर्माण में देश के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय दलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गठबंधन की राजनीति

भारतीय राजनीति का 1990 का दशक कुछ शक्तिशाली राजनीतिक दलों और आंदोलन के उभार तथा उनके कार्यक्रमों का प्रमाण रहा है। विशेष रूप से राजनीतिक दल और उनके आंदोलन *दलित* तथा *पिछड़े वर्ग* के समर्थक रहे हैं। ऐसे राजनीतिक दलों में से अनेक ने अपनी क्षेत्रीय आकांक्षाओं का भी व्यापक रूप से प्रकटीकरण किया। उदाहरण के लिए 1996 में निर्मित *संयुक्त मोर्चे* की सरकार में ऐसे दलों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1996 में निर्मित *संयुक्त मोर्चा* की सरकार को भारतीय जनता पार्टी का समर्थन प्राप्त नहीं था। भाजपा की जगह कांग्रेस का इसे समर्थन प्राप्त था। इससे स्पष्ट है कि सत्ता की होड़ में राजनीतिक समीकरण कैसे कभी-कभी अपनी सीमाओं को लाँघ जाता है। 1989 में *भाजपा* और *वाम मोर्चा* दोनों ने *राष्ट्रीय मोर्चा* की सरकार को इसलिए समर्थन दिया था कि ये दोनों उस समय कांग्रेस को नहीं चाहते थे। बाद में आम चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की स्थिति बेहतर होती गई। 1991 तथा 1996 के आम चुनावों में यह सुदृढ़ हो गई *भारतीय जनता पार्टी* सभी राजनीतिक दलों से आगे निकल कर सबसे बड़ी पार्टी हो गई। यही कारण था कि भारतीय जनता पार्टी को सरकार बनाने का न्यौता मिला। चूँकि देश में अधिकांशतः राजनीतिक दल *भारतीय जनता पार्टी* की नीतियों के आलोचक थे इसलिए *अटल बिहारी वाजपेयी* के नेतृत्व में भाजपा की सरकार लोकसभा में विश्वासमत प्राप्त नहीं कर सकी। बाद में एक गठबंधन, जिसे हम राजग (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) कहते हैं, के अगुआ के रूप में भारतीय जनता पार्टी सत्ता में आई थी। मार्च 1998 से अक्टूबर 1999 तक वह केन्द्र में सत्ता में रही। यह सर्वविदित है कि 1999 में निर्मित राजग सरकार ने अपना निर्धरित कार्यकाल पूरा किया।

संसदीय प्रणाली की यह प्रमुख विशेषता है कि इसमें कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है। संसदीय शासन प्रणाली में उसी दल का नेता प्रधानमंत्री बन सकता है जिसे प्रतिनिधि सभा (लोकसभा) में बहुमत प्राप्त हो। गठबंधन सरकार

1989 के बाद निर्मित गठबंधन केन्द्र सरकारों में शामिल अन्य दलों की विवरण

Øe	in vofèk	ièkkue=h	lfEefyr ny
1.	दिस. 1989 - नव. 1990 तक	वी.पी. सिंह	राष्ट्रीय, मोर्चा, वाम मोर्चा तथा भारतीय जनता पार्टी का समर्थन
2.	नव. 1990 - जून 1991 तक	चंद्रशेखर	राष्ट्रीय, मोर्चा का एक तबका समाजवादी जनता पार्टी के नेतृत्व में, कांग्रेस का समर्थन
3.	जून 1991 - 1996 तक	पी.वी. नरसिम्हा राव	कांग्रेस, एआईडीएमके तथा कुछ अन्य क्षेत्रीय दलों का समर्थन
4.	मई 1996 - जून 1996 तक	अटल बिहारी वाजपेयी	भाजपा, अल्पमत सरकार
5.	जून 1996 - अप्रैल 1997 तक	एच.दी. देवगौड़ा	कांग्रेस के समर्थन पर संयुक्त मोर्चा की सरकार
6.	अप्रैल 1997 - मार्च तक	इंद्र कुमार गुजराल	कांग्रेस समर्थन पर संयुक्त मोर्चा की सरकार
7.	मार्च 1998 - अक्तू. 1999 तक	अटल बिहारी वाजपेयी	राजग गठबंध्न
8.	अक्तू. 1999 - मई 2004 तक	अटल बिहारी वाजपेयी	राजग गठबंध्न
9.	मई 2004 - 2014 तक	डॉ. मनमोहन सिंह	संप्रग गठबंध्न
10.	2014 से अब तक	नरेन्द्र मोदी	राजग गठबंध्न

की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में दलीय गठबंधन बनते हैं और उसके नेता लोक सभा में अपना बहुमत साबित करने का दावा पेश करते हैं। ऐसे गठबंधन में दो या दो से अधिक राजनीतिक दल शामिल होते हैं जो मिल-जुल कर सरकार का निर्माण करते हैं।

पिछले दशकों में भारतीय राजनीति के अंतर्गत दो गत्यात्मक बदलाव हुए हैं, उसने न सिर्फ दलीय व्यवस्था की प्रकृति को बिल्कुल बदल दिया है बल्कि मिली-जुली सरकारों की निरंतरता को एक राजनीतिक तथ्य भी बना दिया है। 1989 के पश्चात् भारतीय राजनीति में भारी संख्या में छोटे बड़े दलों का उदभ्व एवं विकास हुआ। इसके परिणामस्वरूप ''कांग्रेस सिस्टम'' का प्रभाव समाप्त हो गया।

वस्तुतः गठबंधन सरकारों ने भारतीय शासन प्रणाली के संघीय स्वरूप को कई तरह से प्रभावित किया है। बहुदलीय व्यवस्था के विकास एवं गठबंधन सरकार के दौर में संसदीय स्वायत्तता बढ़ती जा रही है तथा संघ एवं राज्यों के संवैधानिक प्रधानों की भूमिका बढ़ गई है क्योंकि प्रधनमंत्री एवं मुख्यमंत्री की भूमिका सहयोगी पार्टियों के दबाव के कारण कम हुई है। *दूसरे*, लोक नीतियों में निरंतर बदलाव एवं फेरबदल गठबंधन सरकार का एक प्रमुख लक्षण बन चुका है। *तीसरे*, क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय पार्टियों (टीडीपी, डीएमके, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल (यू.) समता पार्टी आदि।) ने भारतीय राजनीति में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली है और नीति निर्धारण की प्रक्रिया को भी इन पार्टियों ने प्रभावित करना शुरू किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि राष्ट्रीय दलों का आधार सिमट गया है। चौथे, संविदा

सरकारों का बार-बार बनना एवं गिरना भी इसकी एक नकारात्मक विशेषता रही है। 1990 के दशक में हमें इस तरह के कई अनुभव भी हुए हैं। संक्षेप में संविद सरकारों के अंतर्गत चूँकि संघीय स्तर पर सत्ता में व्यापक दृष्टि से छोटे-बड़े दलों की सहभागिता होती है इसलिए इससे राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को भी बल मिला है।

इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार (1980) से जो उम्मीदें थीं वह पूरी नहीं हुई। भाजपा गठबंधन (अब एनडीए) ने 1996 एवं 1998-99 के तमाम उठापटक के बावजूद 1999 से 2004 के काल खण्ड में देश को एक स्थिर सरकार देने की कोशिश की। इसके बाद एन.डी.ए. की सरकार भी पिछले एक दशक के राजनीतिक संकट से निकलकर राष्ट्रहित में सशक्त सरकार स्थापित करने की दिशा में अग्रसर है।

अप्रैल-मई 2004 में सम्पन्न 14वीं लोकसभा के चुनाव मोटे रूप से दो नेता, दो दलों एवं दो गठबंधनों के बीच आमने-सामने की टक्कर के रूप में सम्पन्न हुए। दो नेता थे– अटल बिहारी वाजपेयी और सोनिया गाँधी, दो दल थे– भाजपा और कांग्रेस और दो गठबंधन थे– राष्ट्रीय जनतान्त्रिाक गठबंधन एवं कांग्रेस व सहयोगी दल। 2004 एवं 2009 के चुनावों में कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू.पी.ए. ने लगातार दो बार मनमोहन सिंह के नेतृत्व में तथा 2014 तथा 2019 में भाजपा के नेतृत्व वाली एन.डी.ए. सरकार नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में अपनी सरकार बनाई थी। इसमे संदेह नहीं कि भारत में तमाम झंझावतों के साथ जिस बहुदलीय व्यवस्था के प्रारूप का विकास हुआ है उसने एक ऐसी व्यवस्था दी है कि आने वाले समय में भी गठबंधन की सरकार ही बनेंगी, क्योंकि दल का आधर एवं आकार सिकुड़ गया है। फिर भी भारतीय दलीय व्यवस्था के अन्तर्गत एक विशेष प्रवृत्ति देखी गई है– वह है राजनीतिक दलों के बीच ध्रुवीकरण की प्रवृत्ति। इसकों ध्रुवीकृत बहुदलीय पद्धति' के प्रारूप को देखा जा सकता है। इसे 'बहुद्विध्रुवीयता' के रूप में भी परिभाषित किया गया है। यदि एक समग्र दृष्टि डाले तो केन्द्र ही नहीं बल्कि राज्य भी दो ध्रुवीय राजनीति की ओर प्रवृत्त दिखने लगे हैं।

आधुनिक भारतीय राजनीति में प्रमुख स्थान रखने वाली दोनों पार्टियाँ 'कांग्रेस' व 'भाजपा' अच्छी तरह से इस बात को समझ और स्वीकार चुकी है कि एक दल के स्पष्ट बहुमत वाली सरकार भारतीय राजनीति के पटल में बीते दिनों की बात हो चुकी है और गठबंधन की राजनीति अपरिहार्य हो चुकी है। कम से कम निकट भविष्य में ऐसा नहीं लगता है कि भारत में एक दल की सरकार केन्द्र में बनने जा रही है। वहीं दूसरी ओर खंडित जनादेश का सम्मान करते हुए राजनीतिक दलों का परस्पर मिल कर काम करना वास्तविक लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की राह दिखा रहा है।

गठबंधन सरकार की निम्नलिखित चुनौतियाँ हैंः–

1. गठबंधन सरकार आपसी खींचतान का शिकार होती है। इसके चलते प्रारंभ से ही इसके घटक दलों में वैमनस्य एवं वैचारिक विभिन्नता बनी रहती है।

2. गठबंधन सरकार विभिन्न राजनीतिक दलों के सहयोग से निर्मित होने के चलते किसी निश्चित कार्यक्रम को लेकर नहीं चलती। इसमें सम्मिलित सभी दलों के कार्यक्रमों के अनुकूल चलना इसकी विवशता हो जाती है।
3. अधिकतर गठबंधन सरकारों के उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि वे अस्थिर होती हैं। निर्धारित अवधि के पूर्व ही ये टूट जाती हैं या टूटने की स्थिति में आ जाती हैं।
4. चूँकि विभिन्न हितों और समूहों की यह प्रतिनिधि होती है इसलिए ऐसी गठबंधन सरकार से जनता को कोई विशेष लाभ नहीं होता।
5. विवश होकर गठबंधन सरकार को ज्यादा समझौते करने पड़ते हैं।
6. चूँकि विभिन्न हितों के प्रतिनिधि समूह गठबंधन सरकार में सम्मिलित होते हैं इसलिए ऐसी सरकार साहसी नीतियाँ अंगीकार नहीं कर सकती है।
7. जनता के प्रति अपनी जवाबदेही और सामूहिक नेत्तत्व की भावना की ऐसी सरकार में कमी आ जाती है।

देश के अंदर गठबंधन की राजनीति के इस दौर में विभिन्न राजनीतिक दल विचारधारागत मतभेद के बावजूद सत्ता में भागीदारी की बातों पर बल दे रहे हैं। आधुनिक भारतीय राजनीतिक दलीय व्यवस्था की प्रबल प्रवृत्ति बहुल द्विध्रुवीता की ओर दिखाई पड़ती है जिसमें संयुक्त प्रगतिशील मोर्चा एवं राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सशक्त मंच के रूप में उभरे हैं। आगे के दिनों में दलीय व्यवस्था की यह बहुल द्विध्रुवीकरण क्या स्वरूप धारण करेगी, यह आने वाला वक्त ही बताएगा।

संदर्भ

1. सिंहल, एस.सी., 2005, *भारतीय शासन एवं राजनीति,* लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ.– 312
2. वही
3. कोठारी रजनी, *भारत में राजनीति,* ओरिएंट ब्लैकस्वान, 1972
4. ब्रास, पी. आर., *कोलिशन पोलिटिक्स इन नार्थ इंडिया, अमेरिकन पोलिटिकल रिव्यू,* 1968.
5. करूणाकरण के.पी., *कोलिशन, गवर्नमेंट इन इंडियाः प्राब्लम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स,* भाग– 18, इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवान्स स्टडी, दि यूनिवर्सिटी ऑफ मिसीगनी, 1975
6. लॉरेन्स सी.डॉ, *कोलिशन्स इन पार्लियामेन्टरी गर्वमेंट,* 1976
7. कश्यप सुभाष, सी., *भारत मे गठबंधन सरकार,* उप्पल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1991
8. जोश एन., *कोलिशन पोलिटिक्स, द इंडियन एक्सपीरियन्स,* 2004
9. राम सुन्दर, *इंडियन पार्लियामेंटरी अपोजीशन,* 1986

10. जेम्स, सी., *यूनिटी इन डायवरसीटीः कोलिशन पोलिटिक्स इन इंडिया विथ स्पेशल रेफरेंस टु केरला, डेमोक्रेटाइजेशन,* पृ.– 4,197.
11. ठाकुर प्रणय तथा रघुरमन शंकर, *ए टाइम ऑफ कोलिशन्सः डिवाइडेडः,* डिवाइडेड स्टैंड, 2004
12. वसीम, एस., अहमद तथा निलोफर, *कोलिशन गवर्नमेंट इन इंडिया, द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साईंस,* जुलाई–सितम्बर, 2009, पृ.–751–759.
13. हरिशंकर व्यास, *इंड ऑफ कोलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया, द पायोनियर,* 18 मई, 2014
14. श्रीधरण, ई. (सं.), *कोलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया,* एकेडेमिक फाउण्डेशन, 2014
15. श्रीविद्या शास्त्री, *कोलिशन गवर्नमेंट एण्ड इट्स इंपैक्ट ऑन इंडियन फेडरल स्ट्रक्चर,* 2017
16. कुमार मनोज, *कोलिशन पोलिटिक्स इन इंडियाः हिस्ट्री एण्ड एनालिसिस ऑफ पॉलिटिकल एलाएन्सेज़,* 2017
17. खान, आरिफ, *हैज बिहार चेंजड् इ फ्यूचर ऑफ कोलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया,* 2017
18. कोठारी, रजनी, *पॉलिटिक्स इन इण्डिया, पृ.–* 200.

गठबन्धन की राजनीति की उपादेयता

सत्यप्रकाश मणि त्रिपाठी

lkjk'k *प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य 'गठबन्धन की राजनीति की उपादेयता' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना हैं। वर्तमान भारतीय परिदृश्य में गठबन्धन सरकारें विशद् विमर्श के विषय के साथ अपरिहार्य बन चुकी हैं। आगामी वर्षों की प्रत्याशा है कि आने वाले दिनों में सम्भावना है कि गठबन्धन सरकारों का अस्तित्व किसी न किसी रूप में बना रहेगा। यद्यपि केन्द्र में विगत् दो आम निर्वाचनों से एक दल के स्पष्ट बहुमत की सरकार है। फिर भी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी गठबन्धन के सहयोगियों को सम्यक् सम्मान देते हैं और उन्हें साथ लेकर चलते हैं। यद्यपि भारत सदृश वृहद् वैविध्यपूर्ण सामाजिक व सांस्कृतिक ढाँचे वाले राष्ट्र में किसी भी राष्ट्रीय राजनीतिक दल के प्रभुत्व एवं वर्चस्व की उम्मीद नहीं की जा सकती है। आज ऐसी स्थिति है कि राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के विचारधारात्मक प्रतिबद्धता का अभाव, सशक्त विकल्प की खोज, भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक अवमूल्यन, सन्तुलित विकास का अभाव तथा क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति पोषकता के कारण भारतीय राजनीति में गठबन्धन सरकारों का चलन हुआ। परन्तु गठबन्धन में शामिल घटक दलों के क्षेत्रीय हितों पर आधारित स्वार्थपूर्ण माँगें, समर्थन वापस की चेतावनी, अवसरवादिता, अनुत्तरदायित्वपूर्ण बर्ताव ने राजनीतिक अस्थिरता, अमर्यादित संघर्ष, अन्तर्विरोधों तथा कमजोर केन्द्रीय सरकार सदृश समस्याओं को उत्पन्न कर दिया है। दुर्भाग्यवश भारतीय राजनीति में अभी तक उस स्वस्थ लोकतांत्रिक संस्कृति का आविर्भाव नहीं हो सका, जिसकी मजबूत नींव पर गठबन्धन सरकारों का अस्तित्व बना रह सकता है।*

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जहाँ गठबन्धन राजनीति की चुनावी राजनीति में हलचल पैदा करने की सम्भावनाओं के साथ-साथ इसे भयावह विरोधाभासों की जन्मस्थली की संज्ञा भी प्रदान करती है। किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था में जब जनता को ऐसा आभास होने लगता है कि एक ही राजनीतिक दल द्वारा उसकी हित साधना नहीं हो पा रही है तथा उनके दायित्वों का

निर्वाह करने में वह समर्थ नहीं है, तब वह विकल्पों की तलाश करती है। ऐसी स्थिति में किसी दल विशेष के प्रति विश्वास नहीं टिक पाता, जिससे राजनीतिक व्यवस्था में अन्य दलों का विकल्प स्वरूप प्रादुर्भाव और गठबन्धन की प्रक्रिया का आरम्भ होता है।

वस्तुतः गठबन्धन की राजनीति का अस्तित्व बहुदलीय प्रणाली में ही प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है। यद्यपि संविद शब्द लैटिन भाषा के कोएलिशियो (Coalitio) से लिया गया है जो कोएलिशियर (Coalisceare) का सार है, जिसका शाब्दिक अर्थ *'एक साथ मिलकर विकास करना'* होता है। यह गठबन्धन का ही पर्याय है। जिसका आशय एक ऐसे संगठन से है, जो किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न पक्षों द्वारा बनाया जाता है। *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज़* (Encyclopidia of social science) के अनुसार, 'यह किसी विशेष उद्देश्य के लिए विभिन्न पक्षों द्वारा बनाया गया एक संगठन है''।[1]

रोज़रस्क्रटन के अनुसार, ''विभिन्न दलों या राजनीतिक पहचान रखने वाले प्रमुख व्यक्तियों का आपसी समझौता गठबन्धन कहलाता है''।[2]

विलियम गैमसम के अनुसार, ''गठबन्धन संसाधनों का संयुक्त प्रयोग है, जहाँ दो या दो से अधिक इकाईयों के मिश्रित उद्देश्य हेतु निर्णय के प्रतिफल को निर्धारित किया जाता है''।[3]

चुनावी राजनीति में जब किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत की प्राप्ति नहीं होती, तो राजनीतिक दलों और दलीय नेताओं के मध्य गठबन्धन को जन्म देने वाली प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। गठबन्धन में सम्मिलित घटक दल दीर्घकालीन या अल्पकालीन उद्देश्य पूर्ति हेतु गठबन्धन का निर्माण करते हैं क्योंकि इनके मध्य मित्रता एवं शत्रुता अधिक समय तक नहीं रहती। यद्यपि जनचेतना ही सामाजिक परिवर्तन का आधार होती है, जिससे गठबन्धन की प्रक्रिया गतिमान होती है। जब कोई समाज संक्रमणकालीन स्थिति से गुजर रहा होता है तो वहाँ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत की प्राप्ति सम्भव नहीं होती और गठबन्धन ऐसी स्थिति में अपरिहार्य हो जाता है। किसी भी देश की राजनीति वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों की ऊपज होती है। जहाँ तक भारतीय सामाजिक विन्यास का प्रश्न है। यह न केवल जातिगत, धर्मगत एवं अमीर-गरीब के मध्य विभाजित है वरन् वर्ग, जीवनशैली एवं व्यवसाय आधार पर विभक्त है।

यद्यपि गठबन्धन सरकार की व्यवस्था विश्व के विभिन्न देशों में दृष्टिगत होती है, किन्तु उसकी प्रकृति, कारक तत्व एवं स्थिरता प्रत्येक देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर अवलम्बित है। प्रत्येक देश में संविद सरकारों की उत्पत्ति के कारक चाहे वे लघु या वृहद् स्तर पर ही क्यों न हो, सामान्तया समान ही होते हैं। किसी भी देश में लोकतंत्र के जीवन्तता का सर्वप्रमुख पहचान वहाँ की प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति की निरंतरता एवं

गतिशीलता से ही होती है। भारतीय लोकतंत्र प्रगति पथ पर उत्तरोत्तर उन्नयन कर रहा है। यहाँ का लोकतांत्रिक परिणाम निरंतर उपलब्धियों का रहा है। अधिकांश अवरोधों एवं झंझावातों के मध्य आज भारत में महामहोत्सव (चुनाव) सम्पन्न हुआ है, जिसकी उपलब्धि से भारतीय लोकतंत्र गौरवान्वित हुआ है।

वस्तुतः गठबन्धन सरकार 'मतभेदों के बावजूद एक सम्वेत स्वर' होती है। बाह्य स्वरूप में देखने पर संविद सरकार चाहे कितनी ही ठोस व मजबूत क्यों न प्रतीत हो, उसके आंतरिक स्वरूप में मतभेदों के स्वर, अवश्य ही विद्यमान होते हैं। साझेदार दलों के मध्य विद्यमान ये राजनीतिक मतभेद ही दलों को अपना अलग-अलग राजनीतिक अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देते हैं।[4] राजनीतिक दलों के मध्य बनने वाले गठबन्धन का कोई स्पष्ट आधार व प्रकृति नहीं होती। गठबन्धन अमूर्त, सामान्य अथवा स्पष्ट किसी भी स्वरूप में हो सकता है। एक अमूर्त गठबन्धन दूसरे समूह के साथ बिना आपस में मिले कुछ समझौते के उपरान्त निर्मित हो सकता है। सामान्यतः गठबन्धन में सत्ता का बंटवारा वास्तविक और पुष्ट होता है। संविद सरकारें 'सम्मिलन की राजनीति' का परिणाम होती हैं। राजनीतिक दलों द्वारा इसे चुनाव पूर्व या चुनाव पश्चात् अपनाया जा सकता है। सम्मिलन की इस राजनीति को अपनाने का विशिष्ट प्रयोजन तब और अधिक हो जाता है, जब चुनाव पूर्व इसे अपनाया जाता है। तब इसका प्रमुख लक्ष्य चुनाव में बहुमत प्राप्त कर सरकार का गठन करना होता है। बहुतायत ऐसा होता है कि राजनीतिक दल चुनाव में स्वयं के ही बलबूते पर बहुमत प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है, किन्तु जब ऐसा कर पाना सम्भव नहीं हो पाता, तब वह दूसरे दल से गठबन्धन कर बहुमत प्राप्त कर सरकार बनाने का दावा प्रस्तुत करता है। जो गठबन्धन चुनाव पूर्व होता है उनमें अवसरवादिता का तत्व कम होता है और साथ-साथ काम करने के स्वभाव का सृजन होता है।[5] चुनाव पश्चात् या चुनाव से उत्पन्न परिस्थिति के उपरान्त जो गठबन्धन बनाये जाते हैं उनमें अवसरवादिता अधिक पायी जाती है, जो इन गठबन्धनों को कमजोर कर देती है।

विविध परिवेश में गठबन्धन की राजनीति, कार्यक्रम एवं कार्यकरण के आधार पर इनकी विविध उपादेयता परिलक्षित होती है :

1. गठबन्धन की राजनीति में कम-से-कम दो भागीदार (घटक दल) सम्मिलित होते हैं, किन्तु इनकी संख्या इससे अधिक भी हो सकती है।
2. गठबन्धन एक अस्थायी प्रबन्ध होता है। सामान्यतः इसके प्रत्येक प्रमुख भागीदार अपनी राजनीतिक शक्ति में अभिवृद्धि करके स्वयं ही सत्ता प्राप्ति की प्रबल इच्छा रखता है।
3. गठबन्धन की राजनीति को भागीदार दल स्वार्थसिद्धि हेतु अपनाते हैं। गठबन्धन में जब तक इनकी स्वार्थ की पूर्ति होती रहती है, तब तक ये इसमें भागीदार बने रहते हैं।

4. उन देशों में गठबन्धन की राजनीति का प्रश्रय लेकर गठबन्धन सरकार का गठन होता है, जहाँ छोटे-छोटे अनेक दल हों और ऐसा प्रभावशाली बहुमत प्राप्त कर सकें।
5. समझौते के आधार पर गठबन्धन सरकार का गठन होता है, इसमें कलिष्ट सिद्धान्तवादी राजनीति हेतु कोई स्थान नहीं होता। संविद सरकार ऐसे न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर कार्य करती है, जिसे सत्ता में भागीदार दल अपनी विचारधारा की दृष्टि से आदर्श मानकर नहीं, वरन् समझौते की दृष्टि से अपनाते हैं। इस दृष्टि से संविद सरकारें यथार्थवाद पर अवलम्बित होती हैं।
6. गठबन्धन की राजनीति की संकल्पना और प्रबन्धन में मूलभूत विकासशीलता पायी जाती है। जिसके अनेक स्वरूप हो सकते हैं। यह सरकार नूतन और चुनौतीपूर्ण स्थिति का सामना करने के लिये किसी विशेष राजनीतिक तकनीक को आत्मसात् कर सकती है। इसके अतिरिक्त सम्मिलिन की राजनीति में एक राजनीतिक दल आज जिसका सबसे प्रबल विरोध कर रहा है, कल उसे अपना प्रबल सहयोगी समझ सकता है।

भारतीय राजनीति में गठबन्धन की राजनीति का अब तक का अनुभव विसंगतियों एवं असफलताओं से परिपूर्ण रहा है, परन्तु गठबन्धन सरकारों की वर्तमान राजनीति में अपरिहार्य के कारण इसके उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान परिस्थितियों में गठबन्धन सरकारों की विसंगतियों और असफलताओं के मध्य ही इनकी सफलताओं की सम्भाव्यता ढूढ़ना आधुनिक समय की माँग है। अतः गठबन्धन की राजनीति की सफलताओं हेतु निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :

1. चुनाव पश्चात् गठबन्धन की प्रणाली को समाप्त कर राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव पूर्व गठबन्धन को प्रोत्साहित कर सरकारों के गठन पर बल दिया जाए।
2. गठबन्धन में भागीदार दलों में समान विचारधारा, समान उद्देश्य, समान सिद्धान्त का अभाव नहीं होना चाहिए। परस्पर विरोधी विचारधाराओं वाले दलों के सहयोग से निर्मित गठबन्धन देश की राजनीति को अस्थिर कर देते हैं।
3. गठबन्धन में भागीदार सभी दलों के मध्य एक 'न्यूनतम साझा कार्यक्रम' पर सहयोग एवं सहमति के आधार पर कार्य संचालित करना चाहिए तथा गठबन्धन द्वारा राष्ट्रीय हित साधना के आधार पर संविद सरकार के स्थायित्व हेतु प्रबल प्रयास किया जाए।
4. गठबन्धन में भागीदार दलों के मध्य एक स्वस्थ समन्वय का विचार विकसित कर अवसरवादिता का त्याग एवं नैतिकता को विकसित किया जाए।

5. गठबन्धन का राष्ट्रीय मुद्दों के आधार पर एक मानक तय कर व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं, पूर्वाग्रहों, सत्तालोलुपता, स्वार्थपरता सदृश संकीर्ण मानसिक स्थिति से उच्चस्थ होकर राष्ट्रीय हित में कार्य किया जाए।
6. गठबन्धन में भागीदार सबसे बड़े दल को ही नेतृत्व प्रदान करने की स्वस्थ परम्परा की सृजन के घटक दलों की संख्यानुपात मंत्रिमण्डल में शामिल होने का अवसर प्रदान किया जाए।
7. राजनीतिक दलों द्वारा अपनायी जाने वाली दल-बदल की प्रवृत्ति पर रोक लगाते हुए दल-बदल कानून का सख्ती से पालन किया जाए।[6]

गठबन्धन सरकारों का अस्तित्व भविष्य में भी किसी-न-किसी रूप में बना रहेगा। इनमें गठबन्धन की राजनीति की वैचारिकता एवं कार्यक्रम की असमानता ही परिलक्षित होगी। अतेव गठबन्धन की सरकारों की सफलता हेतु राजनैतिक दलों के नेत्तृत्व कर्त्ताओं में विवेकशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा, परिपक्वता, नैतिकता एवं ईमानदारी के गुणों का समावेश वर्तमान समय की माँग है। राजनीति में शुचिता, पारदर्शिता एवं नैतिकता की पुर्नस्थापना हेतु राजनीतिक दलों को ही पहल करनी होगी। गठबन्धन की सफलता हेतु मतदाताओं को जागरूक होना भी अत्यन्त आवश्यक है। जनता को अपने मताधिकार का सदुपयोग पूरी तरह समझबूझ व दूरदर्शिता के साथ करना चाहिए।

इस प्रकार गठबन्धन सरकार एक ऐसे सहयोगी प्रबन्धन का नाम है, जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमण्डल के निर्माण हेतु एकरस हो जाते हैं। मिले-जुले मंत्रिमण्डल में जो घटक राजनीतिक दल होते हैं, वह सरकार बनाने के उद्देश्य से संगठित होने के बाद भी अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखते है। वे किसी भी समय सरकार से अपना समर्थन वापस लेकर मंत्रिमण्डल के अन्त का कारण हो सकते हैं। बहुत से दल मंत्रिमण्डल में शामिल न होकर सरकार को बाह्य समर्थन करते हैं।[7]

गठबन्धन सरकार की सफलता का ध्येय सूत्र है – समन्वयवादिता। यह प्रकृति किसी भी सरकार को लोकतंत्र के अधिक सन्निकट एवं ग्राह्य बनाती है। गठबन्धन सरकारों से यह अपेक्षित है कि वे विविधता में एकता की भावना को साकार करें तथा राष्ट्रीय स्मिता को संरक्षित करते हुए क्षेत्रीय समस्याओं का राष्ट्रीय समाधान प्रस्तुत कर भारतीय राजनीति को क्षेत्रीय दलों द्वारा उत्पन्न संकीर्णता से मुक्त करें। अतेव गठबन्धन की राजनीति ने अपनी उपादेयता सिद्धि हेतु स्वयं को समयानुरूप ढाला है। प्रारम्भ में गठबन्धन सरकारें केवल इसलिए बनीं क्योकिं या तो किसी दल को स्वयं सत्ता प्राप्त करनी थी या विपक्षी दलों को सत्ता प्राप्ति से रोकना था। किन्तु वर्तमान समय में गठबन्धन विविध साझेदारों में मतभेद होते हुए भी वे एक साथ सम्मिलित होकर चुनाव लड़ते हैं। सीटों का स्पष्ट बँटवारा कर साझा चुनाव अभियान चलाते हैं और सरकार

संचालन हेतु विभिन्न साझेदार एक सामान्य न्यूनतम कार्यक्रमों पर एकमत होकर सरकार चलाने का सफलतम प्रयास कर रहे हैं।

सन्दर्भ सूची

1. Ogg, F.A. : Coliation Encyclopedia of Social Sciences, Volume-II, The MacMillan, New Yark, 1963, P.600.
2. रोजरस्कस : ए डिक्शनरी ऑफ पोलिटिकल थॉट, कल्पना राजाराम (सं.) भारतीय राजव्यवस्था, स्पैक्ट्रम बुक्स प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2001, पृ0–381.
3. Gaimsan, William : Experimental Studies of coliation formation Liyonoi Vorcovitz (E), Experimental Social Psychology, Academy Press, New Yark, 1964, P.85.
4. अवस्थी, एस.पी. : इण्डियन गवर्नमेण्ट्स एण्ड पॉलीटिक्स, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, एजुकेशनल पब्लिशर्स, आगरा 2001, पृ0–625.
5. वही, पृ0–24.
6. मिश्रा, डॉ. वीणा गोपाल : भारतीय राजनीति में गठबन्धन सरकार – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, गठबन्धन की राजनीति, डॉ. वीणा गोपाल मिश्रा (सं.) ए.एस.आर. पब्लिकेशन, गाजियाबाद, (लोनी), 2013, पृ0–62.
7. सईद, एस.एम. : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 2002, पृ0–292.

गठबन्धन का भारतीय राजनीति पर प्रभाव

मो० ताहिर अंसारी

Ikjk'k% भारत में संसदात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। इस व्यवस्था में बहुमत प्राप्त करने वाला दल ही सत्ता प्राप्त करता है और यह सत्ता चुनाव-प्रणाली से मिलती है। चुनाव-प्रणाली भारतीय लोकतन्त्र का स्तम्भ है। भारतीय राजनीतिक दल लोकतन्त्र का अनिवार्य अंग है। राजनीतिक दलों के द्वारा सरकार बनाने के लिए प्रतिस्पर्धा चलती रहती है। यह प्रतिस्पर्धा भारत में आजादी के पश्चात् आरम्भिक दो दशकों में नहीं थी। अगर थी भी तो उसका प्रभाव मामूली था। 1980 दशक के आखिरी वर्षों में यह प्रतिस्पर्धा तेज हो गयी और यहीं से केन्द्र में गठबन्धन का वर्चस्व शुरू हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में गठबन्धन की राजनीति का राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में जब संविधान सभा का गठन हुआ तो उसी समय अन्तरिम सरकार का भी गठन हुआ। यह सरकार गठबन्धन पर आधारित थी। इसमें हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग और कांग्रेस तथा अन्य दल भी शामिल थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् कांग्रेस का लगभग दो दशकों तक वर्चस्व रहा। इसीलिए इस काल को 'कांग्रेस सिस्टम' नाम दिया गया (कोठारी 1964)। 1967 तक आते-आते कांग्रेस का वर्चस्व टूटने लगा और नौ राज्यों में कांग्रेस की ऐसी स्थिति हो गयी थी कि वह अकेले सरकार नहीं बना सकती थी। यहीं से सर्वमान्य रूप से राज्यों में गठबन्धन की सरकारों का दौर शुरू हुआ।

1977 में कांग्रेस से ही अलग हुए लोगों ने जनता पार्टी की सरकार बनाई। यह केन्द्र में बनने वाली पहली गठबन्धन सरकार थी। क्षेत्रीय दलों का अभ्युदय यहीं से आरम्भ हुआ। 1989 से भारतीय राजनीति पूरी तरह से गठबन्धन की तरफ बढ़ने लगी। 1991 से 1996 तक के कार्यकाल को छोड़कर 1999 तक लगातार अस्थिर सरकारें बनीं। लेकिन ये सभी सरकारें गठबन्धन पर आधारित थीं। 1999 के बाद गठबन्धन

आधारित स्थिर सरकारों का युग प्रारम्भ हुआ जो 2019 के आम चुनावों तक यथावत है।

भारतीय लोकतन्त्र में जब से गठबन्धन की स्थिति बननी शुरू हुई तब से लेकर आज तक के संगोपांग विश्लेषण से यह विदित होता है कि भारतीय राजनीति पर गठबन्धन सरकारों ने नकारात्मक और सकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव डाला है। भारतीय राजनीति पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करने पर निम्नांकित बिन्दु परिलक्षित होते हैं :–

1- nyk dk foyxko rFkk ny-cny

भारत में बहुदलीय प्रणाली स्वन्त्रता के पहले से ही रही है। कांग्रेस, जिसने पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन में नेतृत्व सम्भाला, के साथ ही हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग और वामपंथी दलों ने भी अपनी भूमिका निभाई। 1952 के आम चुनाव के पश्चात् दलों की संख्या निरन्तर बढ़ती रही। 1960 के दशक के अन्त से लेकर 1980 दशक के अन्त तक के दौरान प्रमुख दलों में दरारें भी पड़ी। यह स्थिति आज भी बनी हुई है। व्यक्तिगत महत्वकांक्षा और सत्तागत स्वार्थ के कारण दलों में विखण्डन हुआ। फलतः अनेक क्षेत्रीय और पंजीकृत दलों की संख्या बढ़ी। यहीं से भारतीय राजनीति में गठबन्धन की भूमिका बढ़ गई। भारत जैसे विविधतापूर्ण बहुसंस्कृति और बहुजातीय वाले लोकतान्त्रिक देश में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों का अभ्युदय स्वाभाविक है। गठबन्धन के दौर में क्षेत्रीय दलों की भूमिका बढ़ी है। भारतीय राजनीति का विश्लेषण करने वाले कतिपय विद्वान यह प्रश्न उठाते रहे हैं कि भारत में दलों की एक निश्चित संख्या होनी चाहिए (वरनी, 2003, पृ0 156)। किन्तु ऐसा संभव नहीं है कि दलों की संख्या को निश्चित किया जा सके क्योंकि राजनीतिक दल अपने स्थानीय मुद्दों को लेकर भी उत्पन्न होते हैं। 1989 से लेकर के 2014 तक लगातार राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि होती रही है, जिसे इस तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

rkfydk&1

ykdlHkk dk fy, Hkkx yus okys nyk dh l[;k ¼1980 l 2014 rd½

nyk dk idkj	1980	1989	1991	1996	1998	1999	2004	2009	2014	2014 esa thrh xbZ lhVs
राष्ट्रीय दल	6	8	9	8	7	7	6	7	6	342
राज्यस्तरीय दल	19	20	27	30	30	40	36	34	49	145
पंजीकृत दल	11	93	109	171	139	122	173	322	1706	53
कुल दल	36	113	145	209	176	169	215	363	1761	—
स्वतंत्र	2826	3713	5514	10635	1900	1945	2385	3831	—	03

lkr% चुनाव आयोग के आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी का विश्लेषण

तालिका से स्पष्ट है कि 1980 में जहाँ दलों की संख्या 36 थी वहीं 2014 में दलों की संख्या बढ़कर 1761 हो गई। दलों की बढ़ती हुई संख्या ने निश्चित तौर पर भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है। किन्तु दलों की बढ़ती हुई संख्या के सन्दर्भ पर चिन्ता जताते हुए कतिपय विश्लेषक यह प्रश्न उठाते हैं कि भारत में यदि सभी सामाजिक, आर्थिक और भाषायी तथा अन्य समूहों के पास अपना दल बनाने का अधिकार होना चाहिए तो क्या इससे संसदीय लोकतन्त्र अपने सम्पूर्ण रूप में कार्य कर पाएगा (प्राण चोपड़ा, 2002)। इसका उत्तर देते हुए डगलस वरनी ने कहा है कि क्षेत्रीय दलों का विकास अच्छी बात है इससे न केवल पारम्परिक राष्ट्रीय दलीय व्यवस्था को चुनौती मिली है वरन् इस नये विचार से अर्द्धसंघीय व्यवस्था को समाप्त कर वास्तविक संघवाद की स्थापना को बल मिला है (वरनी, 2003, पृ0 158)।

यद्यपि यह वरनी की अपनी धारणा है तथापि भारतीय शासन प्रणाली में राजनीतिक दलों की संख्या भले ही निश्चित नहीं है, फिर भी इसने राजनीति व्यवस्था को व्यापक तौर पर प्रभावित किया है और इससे गठबन्धन की राजनीति को बढ़ावा मिला है और इसने भारतीय राजनीति को सौदेबाजी संघवाद की तरफ ले जाने में भूमिका निभाई है। यद्यपि दलों के विलगाव को रोकने के लिए 1989 में 'दल-बदल' कानून आया लेकिन इस कानून का बहुत अधिक व्यावहारिक प्रभाव दिखता नजर नहीं आ रहा है। गोवा और कर्नाटक (13 जुलाई 2019 तक की स्थिति) को देखकर ऐसा ही लगता है।

2- eY;foghu lLÑfr dk fodkl

गठबन्धन सरकारों ने मूल्यविहीन विचारधारा को बढ़ावा दिया है यद्यपि यह दौर गठबन्धन राजनीति का है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 2019 के आम-चुनाव में भारतीय जनता पार्टी, प्रचण्ड बहुमत प्राप्त करने के बाद भी गठबन्धन धर्म को निभा रही है। 1999 के आम चुनाव से लेकर 2019 तक मूल्यविहीनता की स्थिति कम ही देखने को मिली है, किन्तु 1999 के पूर्व विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार से लेकर अटल बिहारी वाजपेयी सरकार तक भारतीय राजनीति में मूल्य, विचारधारा और राजनीतिक संस्कृति का लोप होता दिखायी देता है।

स्वार्थपरक प्रवृत्तियाँ भारतीय राजनीति को भटकाने में महत्वपूर्ण कारक रहीं हैं। इसने क्षेत्रवाद, अलगाव जैसी प्रवृत्तियों को जन्म दिया है, जबकि भारतीय राष्ट्र का मूल आधार एक जन, एक संस्कृति और एक राष्ट्र रहा है (दैनिक जागरण)।

3- Hk"Vkpkj vkj jktuhfrd lkaidkth

गठबन्धन की राजनीति ने राजनीतिक सौदेबाजी और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। गठबन्धन के दौरान सत्ता की प्राप्ति प्रत्येक दल का लक्ष्य होता है और यह लक्ष्य किसी भी कीमत पर प्रत्येक दल प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इसमें लोकतान्त्रिक

मूल्यों और आदर्शों की तिलांजलि दी जाती है। इसके बहुत से उदाहरण भारतीय राजनीति में रहे हैं। 1996 में संयुक्त मोर्चा की सरकार में अनेक घोटालों में फंसे लालू प्रसाद यादव और आपराधिक प्रवृत्ति वाले तस्लीमुद्दीन को मंत्री बनाया गया। इसी तरह से 1998 की राजग सरकार में जयललिता को भ्रष्टाचार में आरोपित होने के बावजूद गठबन्धन में शामिल किया गया। इसी तरह से 2004 में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार ने पुनः आरोपित व्यक्तियों लालू प्रसाद यादव, तस्लीमुद्दीन और शिबू सोरेन को मंत्री बनाया गया। यही स्थिति 2009 के आम चुनाव के बाद भी रही। 2010 में हुए राष्ट्रमण्डल खेल के घोटालों में फंसे सुरेश कलमाड़ी संप्रग से ही थे। इसी तरह 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला, कोयला घोटाला से जुड़ें लोग संप्रग में मंत्री रहे हैं।

कुल मिलाकर गठबन्धन की कोई भी सरकार रही हों, हमेशा सत्ता की प्राप्ति के लिए नैतिकता, आदर्शों और राजनीतिक मूल्यों को ताक पे रखती रही हैं। 2019 के चुनाव में विपक्ष के द्वारा राफेल घोटाले का मुद्दा जोर-शोर से उठाया गया लेकिन सरकार ने इस मुद्दें से अपने आप को पाक-साफ किया।

इससे यह विदित होता है कि गठबन्धन की राजनीति ने राजनीतिक उठा-पटक को जन्म दिया है। इससे भारतीय राजनीति में एक अलग तरीके से प्रवृत्ति का जन्म हुआ है। भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है। मंत्री-परिषद का आकार बढ़ा है। मंत्री बनने के लिए सौदेबाजी भी बढ़ी है। यह किसी भी स्थिति में भारतीय राजनीति के लिए उचित नहीं हैं।

गठबन्धन की राजनीति के सिर्फ नकारात्मक पक्ष ही नहीं रहे हैं, बल्कि इसके कुछ सकारात्मक पहलू भी हैं। अगर इसके सकारात्मक पहलू नहीं होते तो वर्तमान मोदी सरकार अपार बहुमत के बावजूद गठबन्धन नहीं करते। यद्यपि शुरूआती दिनों में केन्द्र में गठबन्धन की राजनीति ने व्यापक रूप से भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है किन्तु हाल के वर्षों में यह स्थिति बदली है। 1984 से लेकर के 2004 तक कि 20 वर्षों में छः बार लोकसभा चुनाव हुए किन्तु इन चुनावों में कभी भी एक दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। 1991 में कांग्रेस की सरकार अवश्य बनी रही परन्तु वह भी पूर्ण बहुमत की सरकार नहीं थी। उसे विभिन्न मुद्दों पर बहुमत के लिए दूसरे दलों अथवा निर्दलीय सांसदों पर निर्भर रहना पड़ा। 1996 से 1999 के मध्य चार वर्षों में तीन बार लोकसभा चुनाव हुए। किन्तु किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल सका। अस्थिरता और अनिश्चितता के इस महौल में भारतीय लोकतन्त्र में अनवरत प्रयोग होते रहे। अन्ततः 1999 के बाद स्थिरता देखने को मिली जो आज भी जारी है। केन्द्र में ही नहीं बल्कि राज्यों में भी गठबन्धन सरकारों ने सफलतापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए अपने कार्यकाल को पूरा किया। बिहार में भाजपा और जनता दल यू0 लगभग दो दशकों से गठबन्धन को बनाए हुए हैं, सिवाय 2015 में हुए आरजेडी और जेडीयू गठबन्धन को छोड़कर।

भारतीय राजनीति पर गठबन्धन के सकारात्मक प्रभावों को निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :–

1- jk"Vifr 'kklu dh jktuhfr esa deh

गठबन्धन की सरकार के अस्तित्व में आने के पश्चात् राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के निर्णय में 90 के दशक पश्चात् कमी आई है। 1950 से 1989 के बीच 39 वर्षों में राष्ट्रपति शासन की 79 घटनाएँ हुई थीं (एम0पी0 सिंह, 2006, पृ0 71)। नेहरू के शासन काल में जहाँ पांच बार राष्ट्रपति शासन लगा, वहीं इन्दिरा गाँधी के 15 वर्षों के कार्यकाल में 58 बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया (जेम्स विजोर्कमान 1987)। जनता पार्टी के छोटे से कार्यकाल में 16 बार राज्यों में आपातकाल का प्रयोग किया गया। सरकारिया आयोग ने अपनी रिपोर्ट में इस पर चिन्ता जताई है और बताया है कि 1956 से 1969 के बीच आठ बार, 1970 से 1974 के बीच 19 बार, 1975 से 1979 के बीच 21 बार तथा 1980 से 1987 के बीच 18 बार आपात काल को प्रयोग में लाया गया (सरकारिया आयोग रिपोर्ट, खण्ड–1)।

गठबन्धन की राजनीति ने क्षेत्रीय दलों को जन्म दिया है। दलीय व्यवस्था विखण्डित हुई है और इसका प्रभाव संवैधानिक संरचनाओं पर पड़ा है। चाहे वह राष्ट्रपति हो, राज्यपाल हो, प्रधानमंत्री हो, अथवा मुख्यमंत्री हो। वर्तमान स्थिति कांग्रेस के कार्यकाल से अलग है। इसने न केवल प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री की नियुक्ति में बदलाव हुआ है, वरन् राष्ट्रपति के निर्वाचन पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। सम्प्रति राष्ट्रपति का निर्वाचक मण्डल बहुदलीय हो गया है और केन्द्र तथा राज्य सरकारों की दलीय पृष्ठभूमि बदल गयी है। इसका उदाहरण उत्तर प्रदेश में 1997 के भाजपा की सरकार के बर्खास्तगी के मामले में देखने को मिलता है। जब राष्ट्रपति के0आर0 नारायणन ने कांग्रेस की पृष्ठभूमि के होने के बावजूद दलगत राजनीति से ऊपर उठते हुए भाजपा सरकार को बर्खास्त नहीं किया (एम0पी0 सिंह, 2005, पृ0 71)।

इस परिवर्तन ने जहाँ गठबन्धन की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है वहीं न्यायपालिका ने भी एस0आर0 बोम्मई वाद में अनु0 356 के दुरूपयोग पर अंकुश लगाया है।

2- l?kokn dk cnyrk Lo:i

गठबन्धन की राजनीति ने भारत के संघीय ढाँचे पर व्यापक रूप से प्रभाव डाला है। जब तक कांग्रेस का वर्चस्व रहा, तब तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एकात्मक शासन की तरफ जाती हुई दिखलाई पड़ती है, लेकिन 1989 के बाद स्थितियाँ थोड़ी सी बदलीं। यह कांग्रेस के लिए संक्रमण का काल था। इसमें जहाँ एक तरफ कांग्रेस पार्टी कमजोर हुई और दूसरे दल तेजी से उभरे, भले ही वह कांग्रेस के अन्दर से ही पनपें हों वहीं दूसरी तरफ कांग्रेस का वर्चस्व कम होने लगा और क्षेत्रीय दलों की भूमिका निर्णायक हो गई।

यदि यह स्थिति नहीं होती तो कदाचित रा.ज.ग. और स.प्र.ग. का निर्माण नहीं होता। आज भी यह सिद्धान्त व्यवहार में लागू होता दिख रहा है। भाजपा ने 2019 के आम चुनाव में भले ही 300 सीटें (निर्वाचन आयोग रिर्पोट) पाई हों फिर भी वह क्षेत्रीय दलों शिवसेना, जदयू और अकाली दल के साथ गठबन्धन को बनाए हुए है।

1989 में कांग्रेस के कमजोर होने के बाद क्षेत्र, जाति, सम्प्रदाय और वर्ग के आधार पर दलों का उभार हुआ। साथ ही भारतीय राजनीति में तीन व्यापक मुद्दों का प्रादुर्भाव हुआ जिसे योगेन्द्र यादव ने '3-M' नाम दिया (योगेन्द्र यादव व अन्य, 2006)। *पहला* मन्दिर, *दूसरा* मण्डल और *तीसरा* मार्केट। मन्दिर जैसे मुद्दे ने भारतीय जनता पार्टी को ऊपर उठाया। मण्डल ने राजनीति का 'मण्डलीकरण' कर दिया। इससे एस.पी., बी.एस.पी., आर.जे.डी., एल.जे.पी., जैसे दलों का अभ्युदय हुआ। इसी युग में मार्केट भी उभरा। उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण ने भारतीय पूँजीपतियों और मध्यम वर्ग के लिए रास्ते खोल दिए। इस प्रकार 'कांग्रेस सिस्टम' इन तीन मुद्दों के आगे बौना साबित हुआ। इसी बीच सरकारिया आयोग की सिफारिश पर 1990 में अन्तर्राज्य परिषद् की स्थापना हुई।

ये क्षेत्रीय दल ही थे जिन्होंने भारतीय राजव्यवस्था को एकात्मक प्रवृत्तियों से संघात्मक प्रवृत्तियों की ओर अग्रसरित किया, क्योंकि जब भारत की राष्ट्रीय राजनीति अत्यधिक केन्द्रीकृत थी, तब क्षेत्रवाद अधिक उग्र था लेकिन जैसे ही क्षेत्रीय दलों के मुद्दें राष्ट्रीय स्तर पर आने लगे, वैसे ही संघवाद की प्रवृत्ति बढ़ी। इस प्रकार से गठबन्धन की राजनीति ने भारतीय शासन व्यवस्था को मजबूती प्रदान की है।

3- *ljdkj dh fu.kZ; {kerk ij izHkko*

गठबन्धन की राजनीति ने सरकार की निर्णय क्षमता को भी प्रभावित किया है। कांग्रेस जब पूर्ण बहुमत में थी तो उसके द्वारा लिये गये निर्णय एक तरफा हुआ करते थे। गठबन्धन के अस्तित्व में आने के बाद परिस्थितियाँ बदली हैं। गठबन्धन की राजनीति के भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय लेने वाले पहलू पर विचार करने पर यह विदित होता है कि गठबन्धन की राजनीति ने इस पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव डाला है। नकारात्मक प्रभाव यह रहा है कि राष्ट्रीय मुददों से सम्बन्धित विषय के सन्दर्भ में निर्णय करने में अनावश्यक रूप से देरी होती है। जहाँ तक सकारात्मकता का प्रश्न है तो गठबन्धन की राजनीति ने ऐसे मुद्दों को जनसामान्य तक को समझाने में सफलता पाई है। स.प्र.ग. सरकार के पहले कार्यकाल में हुए '123 एग्रीमेण्ट', जो भारत और अमेरिका के बीच होने वाले असैन्य परमाणु संधि से सम्बन्धित था, को लेकर के उत्पन्न होने वाले मतभेद के कारण ही यह मुद्दा व्यापक परिचर्चा के लिए जन-जन तक पहुँचा। रजनी कोठारी ने कहा है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में शुरूआती वर्षों में यद्यपि कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व था लेकिन इसके बाद भी एक दलीय व्यवस्था का निर्माण नहीं हो सका। यह दौर भी प्रतिस्पार्धात्मक

दलीय व्यवस्था का था जिसमें अन्य दलों ने 'दबाव के दल' और 'सहमति के दल' के रूप में कार्य किया (कोठारी, 1964)।

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि गठबन्धन की राजनीति ने कुछ परिस्थितियों को छोड़कर सरकार की निर्णय क्षमता पर व्यापक रूप से सकारात्मक प्रभाव डाला है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गठबन्धन की राजनीति ने भारतीय शासन व्यवस्था को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरीके से प्रभावित किया है। समकालीन राजनीति में गठबन्धन इस प्रकार से घुल-मिल गया है कि गठबन्धन को अलग करके भारतीय राजनीति के विषय में सोच पाना असंभव है। गठबन्धन की राजनीति के महत्व को ध्यान में रखते हुए ही प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 2019 के आम चुनाव में प्राप्त बहुमत के बाद भी गठबन्धन को यथावत रखा है। गठबन्धन की राजनीति ने संघवाद को मजबूत किया है और इससे क्षेत्रवाद तथा अलगाववाद के मुद्दें कमजोर पड़े हैं। अगर गठबन्धन की राजनीति भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण नहीं होती तो भारतीय राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बहुत पहले ही इससे पीछा छुड़ा लिया गया होता।

सन्दर्भ

1. एम.पी. सिंह, 'संसदीय संघवादी व्यवस्था में संघात्मकता का बढ़ता प्रभाव' समयान्तर, वर्ष 37 अंक–3, फरवरी, 2006
2. जेम्स विजोर्कमान, ''पार्टी, पर्सनेलिटी एण्ड डायनैस्टी'', वैर एल्सन (सं0) *पोलिटिकल, पार्टीज : एलेक्टोरल चेन्ज एण्ड स्ट्रक्चरल ऐसपॉस*, बेसिल ब्लैकवेल पब्लिकेशन, 1987, पृ0 51–71
3. दैनिक जागरण 6 सितम्बर 2003
4. निर्वाचन आयोग 2019 की रिपोर्ट पर आधारित
5. प्राण चोपड़ा, ''हाऊ मेनी पार्टीज आर टू मेनी'', अजय कुमार मेहरा (सं0), पोलिटिकल पार्टीज़ एण्ड पार्टी सिस्टम, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन, 2002, पृ0 162–180
6. योगेन्द्र यादव और सुहास पॉलिसकर, ''पार्टी सिस्टम एण्ड एलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन द इण्डियन स्टेट्स'' 1952–2002 : फ्रॉम हेजिमोनी टू कनवर्जेन्स, ई. श्रीधरन एण्ड पीटर रोनाल्ड डिसूज़ा (सं0) इण्डियाज़ पोलिटिकल पार्टीज़, नई दिल्ली : सेज प्रकाशन 2006, पृ0 98–101
7. रजनी कोठारी, द कांग्रेस सिस्टम इन इण्डिया, एशियन सर्वे वा0–IV नं0–12, दिसम्बर 1964, पृ0 1161 से 1173
8. वरनी, ''फ्राम क्वेजार्ड फेडरलिज्म टू क्वेजाई कन्फेडरेसी? द ट्रॉन्सफारमेशन ऑफ इण्डियाज़ पार्टी सिस्टम'' पब्लिक : द जर्नल ऑफ फेडरलिज्म, 2003
9. सरकारिया आयोग रिपोर्ट खण्ड एक, पृ0 166

गठबंधन सरकार में नौकरशाही की भूमिका

निलांजना जैन

Ikjk'k% ब्रिटिश और भारतीय सिविल सर्विस का निर्माण सार्वजनिक पदाधिकारियों की तटस्थता के नियम पर हुआ है। इसका अर्थ है कि सार्वजनिक पदाधिकारी नियमानुसार सरकार के आदेशों का पालन करते हैं। सरकार में परिवर्तन होने से इन अधिकारियों की निष्ठा में कोई अन्तर नहीं आता चाहे नयी सरकार की राजनीतिक विचारधारा पूर्वगामी सरकार की विचारधारा से भिन्न क्यों न हो। सरकार के अधीन होने का यह अर्थ नहीं है कि वे सरकार की पार्टी या उसकी राजनीति के पक्षधर हो। राजनीतिक दृष्टि से उन्हें राजनीति से परे (a political) माना जाता है। किन्तु तटस्थता का अर्थ विचार शून्यता या कार्यक्रम के प्रति उदासीनता नहीं हो सकता। तटस्थता की व्याख्या सकारात्मक ढंग से की जानी चाहिए और यह प्रतिबद्धता की सकारात्मक अवधारणा के प्रतिकूल नहीं है। जनपदाधिकारी सार्वजनिक नीति के सामाजिक उद्देश्यों या लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रति उदासीन नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि जनपदाधिकारी का राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित होना आवश्यक है, भले ही वह दलगत राजनीति से अलग हो। कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में उसका व्यक्तिगत लगाव और प्रतिबद्धता कार्यक्रम की सफलता की एक आवश्यक दशा है।

प्रणव मुखर्जी के शब्दों में "तटस्थता कानूनी तरीके से चुनी गयी किसी सरकार के प्रति निष्ठा रखने के लिए आवश्यक होती है, तो दूसरी ओर यह किसी राजनीतिक झुकाव को हतोत्साहित करती है।

गठबंधन की सरकार में प्रशासन/नौकरशाही की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि ऐसी स्थिति में नौकरशाही की तानाशाही प्रवृत्तियों और बढ़ जाती हैं जो सरकार के स्थायित्व के लिए हानिकारक हो सकती हैं। इंग्लैण्ड में अनेक लेखक सार्वजनिक अधिकारियों के निरंकुश होने की चर्चा करते आए हैं। लार्ड हेबर्ट की पुस्तक "The New Despotism" और सी.के. एलन की पुस्तक "Bureaucracy Triumphant" इसी तथ्य को उजागर करती है। प्रायः भारत में भी यही स्थिति है।

प्रस्तावना

संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री व मंत्रि परिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। प्रत्येक मंत्री अपने मंत्रालय का राजनीतिक अध्यक्ष होता है। मंत्रालय का प्रशासकीय अध्यक्ष सचिव होता है। उसके अधीन संयुक्त सचिव, विशेष सचिव, उपसचिव तथा अन्य उच्चाधिकारी होते हैं जो भारतीय प्रशासनिक सेवा के अंग होते हैं। मंत्री वरिष्ठ राजनीतिक नेता होता है, मंत्रालय में उसका कार्यकाल निश्चित नहीं होता। वे आज मंत्री हैं, कल नहीं, आज एक मंत्रालय में हैं, कल दूसरे में। प्रायः उन्हें मंत्रालय का ज्ञान अथवा अनुभव भी नहीं होता।

परन्तु अधिकारीगण योग्यता के आधार पर प्रतियोगी परीक्षाओं के द्वारा प्रशासनिक सेवा में भर्ती होते हैं और निर्धारित आयु तक स्थायी रूप से प्रशासकीय सेवा में बने रहते हैं। उनका राजनीति या राजनीतिक दलों से कोई सरोकार नहीं होता। राजनीतिक दृष्टि से उन्हें तटस्थ माना जाता है। दीर्घकालीन अनुभव के कारण वे प्रशासनिक विशेषज्ञ बन जाते हैं। इनकी ये विशेषताएं राजनीतिक व्यवस्था में इनके प्रभाव का कारण है।

नीति-निर्माण और उसके प्रशासन का अन्तिम निर्णय मंत्री का होता है। प्रत्येक मंत्री सफलता, कुशलता, लोकप्रियता, प्रशंसा चाहता है। इनके लिए मंत्रालय के उच्चाधिकारियों का सहयोग, सहायता, सलाह आवश्यक है। प्रायः मंत्री प्रशासनिक समस्याओं से अनभिज्ञ होते हैं। उन्हें विभागीय प्रथाओं, परम्पराओं का भी ज्ञान नहीं होता। किसी नीति या कार्यक्रम के सम्भावित परिणामों या प्रतिक्रियाओं का उन्हें पूर्वाभास नहीं हो सकता। इन अभावों की पूर्ति प्रशासनिक अधिकारी भलीभांति कर सकते हैं। वे ज्ञान और अनुभव के पुंज होते हैं। अतः नीति-निर्माण में जो अनन्य रूप से मंत्री का क्षेत्राधिकार है, प्रशासनिक अधिकारियों से परामर्श करना वांछनीय होता है। यदि मंत्री बिलकुल नौसिखिया या अशिक्षित हैं तो सचिवों पर और भी अधिक आश्रित हो जाता है।

प्रशासकीय सुधार आयेाग[1] की स्टडी टीम के सुझाव थे कि –

(1) प्रायः मंत्रीगण प्रशासकीय प्रक्रियाओं से अनभिज्ञ होते हैं। अतः सार्वजनिक अधिकारीगण की भूमिका यह होनी चाहिए कि अपने संचित अनुभव से इस अभाव (gap) की पूर्ति करे।

(2) नीति-निर्माण में मंत्री को अपने सचिव से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना चाहिए। मंत्री के मांगने पर परामर्श देना सचिव का कर्तव्य है। जब वह स्वयं आवश्यक समझे वह अपने आप भी परामर्श दे सकता है। यह उसका अधिकार है। एक लेखक के अनुसार ''जिस सीमा तक सार्वजनिक अधिकारी प्रपत्रों व अनुभव के आधार पर आवश्यक तथ्य सामग्री उपलब्ध कराते हैं जिनके आधार पर

नीति सम्बन्धी विचार विमर्श और निर्णय किए जाते हें, उस सीमा तक वे भी नीति निर्माता समझे जाने चाहिए''।

गोरवाला रिपोर्ट[2] के अनुसार ''मंत्रियों का कार्य है, नीति निर्माण और उसके कार्यान्वयन का अधीक्षण। नीति निर्माण वह अपने राजनीतिक साथियों एवं सचिव की सहायता से करता है। दूसरा कार्य वह अधिकांशतः अपने सचिव और विभागाध्यक्ष पर छोड़ देता है।

सचिव का कार्य है नीति निर्माण में सहायता करना, अनुपूरक (subsidiary) का निरूपण करना और अपने मंत्री को नीति या कार्यक्रमों के पालन व अधीक्षण में सहायता करना''। किसी भी नीति या कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं की कानूनी, संवैधानिक, तकनीकी, व्यावहारिक दृष्टियों से जांच किया जाना आवश्यक होता है जो केवल विभागीय अधिकारी ही कर सकते हैं। अतः मंत्री अपने चुनावी वायदों व व्यक्तिगत विश्वासों के आधार पर विचार या सिद्धान्त अपने अधिकारियों के समक्ष रखते हें जिसे नीति या कार्यक्रम का औपचारिक रूप देने का कार्य ये अधिकारी करते हैं। अनेक ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जबकि मंत्री या सत्तारूढ़ दल को व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण नीति के कार्यान्वयन को स्थगित या नीति का त्याग करना पड़ा। प्रायः सार्वजनिक अधिकारीगण मंत्रियों के उग्र उत्साह और आकांक्षाओं व राजनीतिक प्रतिबद्धता पर अंकुश लगाने का कार्य करते हैं।

प्रशासन में अधिकारीगण की भूमिका

नीति तय होने के उपरांत उसका कार्यान्वयन सार्वजनिक अधिकारियों का दायित्व व कार्यक्षेत्र है। इस प्रक्रिया में अधिकारियों की भूमिका बहुँमुखी हैः –

(i) वे आवश्यक अनुपूरक (Subsidiary Policy) का निरूपण करते हैं।

(ii) वे नीति को कार्यान्वयन करने के लिए आवश्यक नियम, अधिनियम, आदेश निर्मित करते हैं, जिसे प्रत्यायुक्त विधि निर्माण कहा जाता है।

(iii) नीति को वैधिक आवरण प्रदान करने अर्थात् उसे विधेयक में रूपान्तरण करने का कार्य भी सार्वजनिक अधिकारीगण ही करते हैं।

(iv) नीति या कार्यक्रम को कार्यान्वयन करने हेतु आवश्यक आदेश, निर्देश भी मंत्री की ओर से विभागीय सचिव या विभागाध्यक्ष द्वारा जारी किये जाते हैं।

(v) प्रायः विधि के अन्तर्गत विवादों का निर्णय करने का अधिकार भी विभागीय निकायों या अधिकारियों को सौंप दिया जाता है, जिसे प्रशासकीय न्याय (Administrative adjudication) कहते हैं।[3]

रैम्अे म्योर का विचार था कि आधुनिक काल में व्यावसायिक, स्थायी, अनुभवी, विशेषज्ञ सार्वजनिक अधिकारी, राजनीतिक, अस्थायी सामान्यज्ञ

(amateurs) मंत्रियों पर सहज में ही हावी हो जाते हैं। प्रत्येक कार्य अथवा नीति अथवा निर्णय का दायित्व मंत्री का होता है। यद्यपि उसके निरूपण और प्रशासन के सार्वजनिक अधिकारियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अतः यह कहा जा सकता है रैम्जे म्योर के शब्दों में "Bureaucracy Thrives under the cloak of Ministerial responsibility"[4]. ''ब्यूरोक्रेसी की शक्ति केवल प्रशासन में ही नहीं वरन् विधि निर्माण और वित्त व्यवस्था में भी परिलक्षित होती है। यह न केवल विधियों को लागू करते हैं बल्कि उनके निर्माण में भी उनकी प्रचुर भूमिका होती है, ये न केवल करारोपण से प्राप्त राजस्व का व्यय करते हैं, बल्कि यह भी तय करते हैं कि कितना धन लिया जाये और कैसे''।

नौकरशाही की जिम्मेदारी का दायरा प्रतिबद्धता एवं तटस्थता के रूप में दो विकल्प (Committed and Neutral Bureaucracy)

जर्मन विद्वान मैक्स वेबर ने नौकरशाही का जो मॉडल प्रेषित किया उसमें सार्वजनिक पदाधिकारियों की तटस्थता (Neutrality) का भाव निहित है। इसका अर्थ है कि सार्वजनिक पदाधिकारी नियमानुसार सरकार के आदेशों का पालन करते हैं। सरकार में परिवर्तन होने से इन अधिकारियों की निष्ठा में कोई अन्तर नहीं आता चाहे नयी सरकार की राजनीतिक विचारधारा पूर्वगामी सरकार की विचारधारा से भिन्न क्यों न हो। इनका कर्तव्य सत्तारूढ़ सरकार के आदेशों का अपनी पूरी क्षमता से पालन करना व उसकी नीतियों का कार्यान्वयन करना है।

इसी अवधारणा पर ब्रिटिश और भारतीय सिविल सर्विस का निर्माण हुआ है। संक्षेप में, सिविल सर्विस की तटस्थता के मूलभूत तत्व यह है –

1. सार्वजनिक पदाधिकारी स्थाई रूप से अपने पदों पर बने रहते हैं। उनका चयन योग्यता के आधार पर होता है। उनकी सेवा शर्तें विधि द्वारा निर्धारित होती है।
2. वे दलगत राजनीति से अलग रहते हैं न केवल अपने सार्वजनिक कर्तव्यों के पालन में बल्कि व्यक्तिगत जीवन में भी। उनके राजनीतिक अधिकारों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं।
3. उनकी भूमिका मात्र सहायक या फिर विशेषज्ञ या तकनीक के रूप में परामर्शदाता की है। उनका कार्य सत्तारूढ़ सरकार की सेवा करना है, चाहे वह किसी भी दल या राजनीतिक विचारधारा की हो।

   वे सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों, आदेशों, अनुदेशों को कार्यान्वित करने के लिए वचनबद्ध है, एक मात्र शर्त यह है कि ये संविधान और कानून की सीमा में हो। नीति या कार्यक्रम तय होने से पूर्व वह अपने विचार और सुझाव निडर

और निःसंकोच दे सकता है। परन्तु नीति या कार्यक्रम तय हो जाने के पश्चात् जनपदाधिकारी का कर्तव्य है कि पूरी निष्ठा और लगन से उसे कार्यान्वित करे चाहे व्यक्तिगत रूप से उसके वांछनीय उपयोगी या व्यावहारिक होने से वह संदिग्ध हो।

उनके कार्यान्वयन में उसे अपने व्यक्तिगत विचारों व मनोभावनाओं के बीच में नहीं आने देना चाहिए।

4. सरकार के अधीन होने का यह अर्थ नहीं है कि वे सरकार की पार्टी या उसकी राजनीति के पक्षधर हो। राजनीतिक दृष्टि से उन्हें राजनीति से परे (a Political) माना जाता है।

इसी स्थिति का दूसरा पहलू यह है –

(i) किसी जनपदाधिकारी का मूल्यांकन उसकी कार्यकुशलता व उसकी उपलब्धियों के आधार पर किया जाना चाहिए न कि राजनीतिक आधार पर।

(ii) उनके कार्यों का पूर्ण दायित्व मंत्री को ग्रहण करना चाहिए। भूतपूर्व गृहमंत्री गुलजारी लाल नन्दा की भांति उसे यह कहने का अधिकार नहीं है कि ''क्या मुझे उस सचिव (एल.पी. सिंह) की भूलों के लिए उत्तरदायी माना जाये जिसे मैं बदलना चाहता था''?[5]

यही कारण है कि मुद्रा कांड में छागला आयोग ने वित्तमंत्री टी.टी. कृष्णमाचारी को अन्ततः उत्तरदायी माना था। अर्थात् प्रशासन में सिविल सर्विस की भूमिका मात्र सहायक, परामर्शदाता, विशेषज्ञ की है, अन्तिम निर्णय के लिए मंत्री ही उत्तरदायी हैं।

एक दलीय या अधिनायकवादी राज्य और पदाधिकारी वर्ग/प्रतिबद्धता का मॉडल।

एक दलीय राज्यों में जहां सरकार और दल का भेद नहीं रहता और दल अपनी विचारधारा पूरे समाज पर बलात् थोपने का प्रयत्न करता है, सिविल सर्विस भी सत्तारूढ़ दल का कार्यकारिणी अंग बनकर रह जाती है और वह अपनी स्वायत्तता व तटस्थता खो देती है। इसे प्रतिबद्ध सिविल सर्विस का मॉडल कहा जा सकता है। इसके लक्षण निम्न है–

(1) इनका चयन योग्यता या गुणों के आधार पर ही न किया जाकर इनके राजनीतिक विचारों व विश्वासों के आधार पर होता है।

(2) इनकी कार्यविधि और अन्य सेवा शर्तें सरकार के विवेकाधीन होती है।

(3) इन्हें हर दशा में सरकार की आज्ञा व अनुदेशों का पालन करना होता है, चाहे ये स्पष्टतः संविधान व कानून के प्रतिकूल हों।

(4) इनके लिए सत्तारूढ़ दल का हित ही सार्वजनिक हित है।

सिविल सर्विस तटस्थता की आलोचना

जनपदाधिकारियों की तटस्थता को लेकर अनेक प्रश्न उठाये गये हैं:

1. यह एक भ्रामक अवधारणा है। इसके फलस्वरूप जनपदाधिकारियों में वैचारिक उदासीनता उत्पन्न होती है। विशेषकर विकास प्रशासन के सन्दर्भ में जनपदाधिकारियों का विकास कार्यक्रमों के राजनैतिक, दार्शनिक, सामाजिक पक्ष के प्रति उदासीन रहना उनकी कार्यकुशलता और कार्यक्रम की सफलता को प्रभावित कर सकता है।
2. नीति-निर्माण में उच्च पदाधिकारियों की निर्णायक भूमिका होती है। नीति निर्माण एक राजनीतिक संक्रिया है। इसमें भागीदार होने के कारण क्या उच्चाधिकारियों को ''तटस्थ'' माना जा सकता है?

क्या उनका तटस्थ होना सम्भव है?

3. क्या तटस्थता का अर्थ यह है कि जन पदाधिकारी समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं के प्रति उदासीन हो? क्या यह अनैतिक नहीं होगा? क्या जनपदाधिकारियों का लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, सामुदायिक विकास, मानवाधिकारों के प्रति उदासीन होना, उनकी तटस्थता के लिए आवश्यक है? अर्थात् क्या वे तटस्थ रहते हुए सरकार की नीति व कार्यक्रमों के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पक्ष के प्रति सहानुभूति नहीं रख सकते?
4. सरकार के विकास कार्यक्रमों व नीतियों के प्रति तटस्थता या उदासीनता क्या उनके असहयोग का संकेत नहीं देता? क्या यह सरकार और प्रशासन के मध्य तनाव उत्पन्न नहीं करेगा?

इसी विडम्बना को व्यक्त करते हुए स्व. प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने कहा था।

''वे ऐसे जनपदाधिकारी नहीं चाहती जो राजनीतिक दृष्टि से सुविधाजनक हो या दुम हिलाने वाले कुत्ते हों। वे ऐसे पदाधिकारी चाहती हैं, जो राज्य के उद्देश्यों के प्रति, जिन्हें संसद का अनुमोदन भी प्राप्त है, अपने को प्रतिबद्ध अनुभव करें''। उन्होंने आगे कहा –

''देश के विकास के लिए हमें प्रतिबद्ध होना चाहिए और जन कल्याण में हमारा व्यक्तिगत लगाव होना चाहिए''।

एन.आर. पिल्लेय जो स्वयं एक उच्चाधिकारी थे, ने स्वीकार किया कि ''जनपदाधिकारी में मानवीय सहानुभूति और जागरूक सामाजिक चेतना होनी चाहिए। अपने काम में वह न केवल दक्ष हो वरन् उसके औचित्य और महत्व में उसको विश्वास हो, उसकी सफलता में वह अपने को प्रतिबद्ध महसूस करे। श्री टी. एन.

चतुर्वेदी[6] के अनुसार ''आज कार्यकुशलता का व्यापक अर्थ लगाया जाना चाहिए जिसमें व्यावसायिक नैतिकता, सामाजिक संवेदना, दोनों शामिल हों। जनपदाधिकारी सार्वजनिक कर्मचारी होने के साथ-साथ नागरिक भी है।

तटस्थता का अर्थ विचार शून्यता या कार्यक्रम के प्रति उदासीनता नहीं हो सकता। तटस्थता की व्याख्या सकारात्मक ढंग से की जानी चाहिए और यह प्रतिबद्धता की सकारात्मक अवधारणा के प्रतिकूल नहीं है। जनपदाधिकारी सार्वजनिक नीति के सामाजिक उद्देश्यों या लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रति उदासीन नहीं हो सकता''।

विकासशील राज्यों के लिए उपयुक्त प्रतिमान

अतः तटस्थता का यह परिवर्तित स्वरूप ही आज की आवश्यकता है। जनपदाधिकारी भले ही दलगत राजनीति से अलग रहे, परन्तु वे विकास व जन कल्याणकारी कार्यक्रमों में निहित सामाजिक नीति, आर्थिक उद्देश्य, राजनीतिक शर्त के प्रति उदासीन नहीं होने चाहिए। इनमें इनके प्रति प्रतिबद्धता आज के विकास-प्रशासन की अनिवार्यता है। इसे तटस्थता का खण्डन नहीं माना जा सकता।

श्री टी. एन. चतुर्वेदी के शब्दों में – ''प्रतिबद्धता की अवधारणा संकीर्ण न होकर सृजनात्मक एवं उदार होनी चाहिए। इसे प्रशासकीय प्रभावकारिता में सहायक होना चाहिए। इस रूप में प्रतिबद्धता समाज, राजनीतिक कार्यकारिणी और जनपदाधिकारियों के मध्य पारस्परिक सामंजस्यता व समर्थन का त्रिपक्षीय सम्बन्ध है''।

राजनीतिक शून्यता तटस्थता का अभिप्राय नहीं। इससे जनपदाधिकारी में उत्तरदायित्व की भावना और उपक्रम करने की इच्छा का ह्रास होता है।

तटस्थता का अर्थ सार्वजनिक हित के प्रति उदासीनता नहीं। आर्थिक विकास के सन्दर्भ में तटस्थता का पारम्परिक स्वरूप प्रासंगिक नहीं रह गया है। आज तटस्थता का अर्थ लोकतांत्रिक मूल्यों के परिपेक्ष्य में जन कल्याण में भागीदारी से है। इसे सीमित तटस्थता या सृजनात्मक प्रतिबद्धता भी कह सकते हैं।

इस विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आज विकास प्रशासन के सन्दर्भ में तटस्थ सिविल सर्विस की अवधारणा प्रासंगिक नहीं रह गयी हैं। विकास कार्यक्रमों व जन कल्याणकारी और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों में जनपदाधिकारियों की सक्रिय भागीदारी और भावात्मक समर्थन भी आवश्यक है। इसे सीमित तटस्थता या सकारात्मक प्रतिबद्धता भी कह सकते हैं परन्तु यह पारम्परिक तटस्थता का खण्डन नहीं है, उसका विकास है।

इसका अर्थ यह हुआ कि जनपदाधिकारी का राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित होना आवश्यक है, भले ही वह दलगत राजनीति से अलग हों। कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में

उसका व्यक्तिगत लगाव और प्रतिबद्धता कार्यक्रम की सफलता की एक आवश्यक दशा है। उसका कर्तव्य केवल नियमों, अधिनियमों के पालन तक सीमित नहीं है।

वास्तव में प्रत्येक सरकार सत्तारूढ़ होने पर उच्च पदाधिकारियों को, स्थानान्तरित करके यही प्रयास करती है कि मार्मिक, संवेदनशील पदों पर वही अधिकारी रहे जिनमें उसका विश्वास है। यह भी प्रतिबद्धता लाने का एक साधन है।

नौकरशाही को सफल बनाने वाले घटक :

(i) प्रशासन का कल्याणकारी राज्य के परिपेक्ष्य में सर्वांगीण प्रसार,

(ii) विकास मूलक प्रशासन का अभ्युदय,

(iii) समय-समय पर अस्थिर सरकारों या अल्पसंख्यक सरकारों का पदारूढ़ होना या प्रधानमंत्री का व्यक्तिगत रूप से दुर्बल होना।

राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम गठबंधन सरकार की शुरूआत 1977 में मोरार जी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार के गठन के साथ मानी जाती है। राजीव गांधी की मृत्यु के बाद 10वीं लोकसभा चुनाव के पश्चात सबसे बड़े दल के रूप में उभरी कांग्रेस के नेता पी0वी0 नरसिम्हा रॉव ने छोट-छोटे राजनीतिक दलों एवं निर्दलीय सांसदों का समर्थन लेकर गठबन्धन सरकार का गठन किया। बाद में दल परिवर्तन कराकर कांग्रेस ने अपनी अल्पमत की सरकार को बहुमत की सरकार बना लिया। 28 जुलाई 1979, 1989, 1990 और 1991 तक कई बार गठबन्धन सरकारों की स्थापना हुई और वे अपना कार्यकाल पूरा करने से पहले ही गिर गयी। 1996 व 1997 में क्रमशः वाजपेयी व देवगौड़ा की गठबन्धन की सरकार बनीं जो कार्यकाल पूरा करने के पूर्व ही गिर गयी। ग्यारहवीं लोकसभा चुनाव के बाद भाजपा के नेता अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठन (NDA) की सरकार मात्र 13 दिन चलीं। बारहवीं लोकसभा (1998) चुनाव के पश्चात् भारतीय जनता पार्टी, जिसे सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुए थे, कुछ अन्य दलों के साथ मिलकर साझा सरकार बनाने में सफल हुई, परन्तु यह साझा सरकार भी पिछली दो सरकारों की भांति विविध सहयोगी दलों के बाह्य समर्थन पर आश्रित थी और 13 महीने में ही (17 अप्रैल, 1999) को गिर गयी।[7]

गठबंधन के सहयोगी दल अपने मुनाफे के लिए लगातार सरकार में खींचतान और मोलभाव करते रहे, जिसका परिणाम यह था कि प्रधानमंत्री दबाव में रहते थे और प्रधानमंत्री का पद कमजोर होता चला गया। नतीजा यह हुआ कि सत्ता में एक शून्य उभरा, जिसे भरने के लिए होड़ मच गयी। गठबंधन सरकारों को चलाने के लिए प्रधानमंत्रियों ने समझौते किए व विरोधाभास में सन्तुलन बैठाने की कोशिश की। इसका परिणाम यह हुआ कि मनमोहन सिंह जैसे प्रधानमंत्री को ये दिन भी देखना पड़ा

कि राजीव गांधी के सुपुत्र राहुल गाँधी ने सन् 2013 में एक अध्यादेश को सरेआम फाड़ दिया। इस अध्यादेश को मनमोहन सिंह की कैबिनेट ने मंजूरी दी थी। राहुल गांधी ने उस वक्त न केवल अध्यादेश को फाड़ा बल्कि प्रधानमंत्री के पद की गरिमा को तार-तार कर दिया।

पिछले तीन दशकों में नौकरशाही को कमजोर राजनीतिक नेतृत्व के साथ काम करने का परिणाम यह था कि अफसर हमेशा दबाव में रहते थे। केन्द्रीय मंत्रियों ने ऐसे अफसरों को निजी सचिव नियुक्त किया जो ''जी मंत्री जी'' कहने के बजाय उद्योगपतियों से वसूली करने के उस्ताद माने जाते थे।

वर्तमान में बी.जे.पी. सरकार (2014 से) के पास बहुमत है व गठबंधन के सहयोगियों के दबाव से आजाद हैं। अफसरों की जिम्मेदारी और रोल बदल गये। नौकरशाही और कार्यपालिका में आए बदलाव को आई.ए.एस. अफसर स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। नौकरशाही का रोल जो पहले राजनीतिक नेतृत्व को सलाह देने का हुआ करता था, उसे अगुवाई करने की आदत पड़ चुकी है।

इसी सन्दर्भ में सरकार के तमाम अंगों जैसे प्रवर्तन निदेशालय, सी.बी.आई., रॉ, आई.बी के बीच छिड़ी जंग और इसी दौरान रिजर्व बैंक और सरकार के बीच टकराव, नई राजनीतिक संस्कृति के पनपने का संकेत देता है।

सी.बी.आई. निदेशक आलोक वर्मा का ही उदाहरण लें तो उन्होंने शपथ लेकर यह दावा किया है कि उनके साथी राकेश अस्थाना (सी.बी.आई. निदेशक नं. 2) और बिहार के डिप्टी सी.एम. सुशील मोदी ने पी.एम.ओ. के एक अधिकारी के साथ मिलकर चारा घोटाले में लालू प्रसाद यादव को फंसाने की साजिश रची ताकि वो इसका लाभ ले सकें।

जांच एजेन्सी के प्रमुख का ऐसा दावा करना अनुचित व अवैध है। जांच एजेन्सी का काम अपराध की तफतीश करना होता है न कि उसके सियासी असर को जांचना। पूरे मामले में आलोक वर्मा ने जिस तरह का बर्ताव किया है वो एक जांच अधिकारी के बजाय राजनेता का ज्यादा लगता है। राफेल घोटाले की जांच की मांग को लेकर पहुंचे अरूण शौरी और प्रशांत भूषण ने सी.बी.आई. प्रमुख वर्मा की मुलाकात उनके राजनीतिक बर्ताव को साफ उजागर करती है। सी.बी.आई. के इतिहास में ऐसा पहली बार ही हुआ कि एजेन्सी के निदेशक किसी राजनीतिक पार्टी के दांव पेंच का इस्तेमाल सरकार में करें।

इस काम में आलोक वर्मा अकेले नहीं थे उनके साथ काम कर रहे कई अफसरों ने इस सियासी एजेण्डे में उनका साथ दिया जैसे कि प्रवर्तन निदेशालय के प्रमुख करनाल सिंह व दागी छवि वाले प्रवर्तन निदेशालय का एक जूनियर अफसर। इस जूनियर अफसर ने वित्त सचिव हंसमुख अधिया पर चालबाजी व

हेराफेरी का आरोप लगाया। जबकि हंसमुख अधिया बेदाग और भरोसेमंद अफसर के लिए जाने जाते हैं।

डिप्टी सी.बी.आई. निदेशक राकेश अस्थाना के आलोक वर्मा के खिलाफ कार्यवाही करने पर सरकार ने सख्त निर्णय लिये। भारतीय पुलिस सेवा (आई.पी.एस.) में 1979 बैच के कैंडर के अधिकारी वर्मा का कार्यकाल 31 जनवरी, 2019 को पूरा होने वाला था, लेकिन इससे 21 दिन पहले ही प्रधानमंत्री मोदी, लोकसभा में कांग्रेस नेता मल्लिकार्जुन खड़गे और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति ए.के. सीकरी की समिति ने 2-1 के बहुमत से वर्मा को सी.बी.आई. प्रमुख पद से हटाने का फैसला किया।[8]

सी.बी.आई. विवाद एक व्यापक समस्या का लक्षण है। इस धारणा को पूर्व राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है नौकरशाही विकास में सबसे बड़ी बाधा है। इसे फिलहाल छोड़ भी दिया जाए तो भी विचार करना वांछित होगा कि क्या नौकरशाही का भयंकर पैमाने पर राजनीतिकरण हो चुका है? सी.बी.आई. के मौजूदा विवाद पर जैसी राजनीति हुई उससे संदेश गया कि नौकरशाही राजनीतिक दृष्टि से बुरी तरह विभाजित है। इसके पहले भारतीय नौकरशाही के बारे में सामान्यतः यही माना जाता रहा है कि सरकार बदलने के बावजूद यह तटस्थ भाव से काम करती रहती है। दरअसल यह तटस्थता कानूनी तरीके से चुनी गयी किसी सरकार के प्रति निष्ठा रखने के लिए आवश्यक होती है, तो दूसरी ओर यह किसी राजनीतिक झुकाव को हतोत्साहित करती है।[9]

गठबंधन की सरकार में प्रशासन/नौकरशाही की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसी स्थिति में नौकरशाही की तानाशाही प्रवृत्तियाँ और बढ़ जाती हैं जो कि सरकार के स्थायित्व के लिए हानिकारक हो सकती है।

राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार श्री अजित डोभाल ने नई दिल्ली में सरदार पटेल स्मृति व्याख्यान में कहा कि देश को अगले कुछ वर्षों तक स्थिर और मजबूत सरकार की जरूरत है और कोई गठबंधन सरकार राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने में सक्षम नहीं होगी। उन्होंने कहा कि देश को ऐसी मजबूत सरकार चाहिए जो लोकतंत्र और बहुलवाद जैसी हमारी ताकत की रक्षा कर सके। अस्थिर तथा गठबंधन सरकार देश की सामूहिक इच्छा शक्ति की सुरक्षा नहीं कर सकती। देश के व्यापक हित के बजाए लुभावने उपायों को अपनाना उचित नहीं है। अगर कड़े फैसले लेने की जरूरत पड़े तो लेने चाहिए और एक मजबूत सरकार ही ऐसा कर सकती हैं।[10]

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने व नौकरशाही पर नियंत्रण रखने के लिए वर्तमान समय में चल रहे लोकसभा चुनावों में पूर्ण बहुमत वाली सरकार बनाना नितांत आवश्यक है तभी नया भारत बनेगा और सबको न्याय तथा विकास का लाभ मिलेगा।

सन्दर्भ

1. प्रशासकीय सुधार आयोग रिपोर्ट, 1966, 2005
2. लोक प्रशासन पर ए.डी. गोरवाला रिपोर्ट, 1951
3. शासनतंत्र सिद्धान्त एवं व्यवहार, पंत, गुप्ता, जैन और निलांजना जैन, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, 2017
4. ''दि यूनियन इक्जीक्यूटिव, प्रो. एच.एम. जैन, चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद 1969, पृ. 275, 293
5. वही, पृष्ठ 296
6. त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी (2000–2007 तक) कर्नाटक प्रान्त के राज्यपाल रह चुके हैं। अवकाश प्राप्त भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी चतुर्वेदी 1984 सं. 1990 तक भारत के नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक पद पर भी रहे। देखें पुस्तक ''गवर्निंग इण्डियाः सार्वजनिक नीति, संस्थानों और प्रशासन से सम्बन्धित मुद्दे'', 1998, संपादक ओ.पी. द्विवेदी।
7. एक साथ चुनाव : नये विकल्प की खोज, निलांजना जैन, लोक प्रशासन, नई दिल्ली, वर्ष 10, अंक-1, जनवरी- जून 2019, पृष्ठ 58, 59
8. https://khabarndtv.com/news/india/sacked-cbi- director alokverma - resigns from service 1976316
9. नौकरशाही बदलाव की जरूरत, 22.11.2018, सत्येन्द्र प्रसाद सिंह, समय लाइव।
10. गठबंधन सरकार राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने में सक्षम नहीं, नौकरशाही com, 26.10.2018.

भारतीय लोकतंत्र और गठबंधन सरकारें

ममता मणि त्रिपाठी

Ikjk'k *भारत में संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली है हमारे यहाँ संघ तथा राज्य दोनों स्तरों पर संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। संसदीय लोकतंत्र में संसद सर्वोच्च होती है और जनता का प्रतिनिधित्व करती है। संसदीय लोकतंत्र में आम चुनावों का विशेष महत्व होता है क्योंकि इन्हीं के जरिए जनता अपने प्रतिनिधियों का चयन करती है चुनाव में जब किसी राजनीतिक दल को बहुमत मिल जाता है तो वह अपनी सरकार का गठन कर लेता है। केन्द्र में राष्ट्रपति और राज्य में राज्यपाल बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री के रूप में मनोनीत करता है। मंत्रिमंडल के गठन के साथ एक दलीय सरकार अस्तित्व में आ जाती है। ऐसी सरकारें प्रायः बगैर गठबंधन के चलती हैं। गठबंधन के जरिए सरकार के गठन की नौबत तब आती है जब किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नही मिलता है, इस स्थिति में दलीय नेताओं के साथ तालमेल बैठाया जाता है और गठबंधन दल का नेता बहुमत के प्रति राष्ट्रपति या राज्यपाल को विश्वास में ले लेता है तो उसे सरकार बनाने का अवसर प्रदान किया जाता है।*

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध पत्र में गठबंधन सरकार के विविध पक्षों का प्रकाश डाला जाएगा–

- गठबंधन सरकार से क्या अभिप्राय है?
- क्या गठबंधन सरकार भारतीय लोकतंत्र के अनुकूल है?
- अब तक की गठबंधन सरकारें कहाँ तक सफल रही हैं?
- गठबंधन सरकारों से कितना नुकसान हुआ है?
- गठबंधन सरकारों की सफलता के लिए क्या सुझाव है?

तत्पश्चात हम निष्कर्ष पर पहुँचेगें।

गठबंधन के लिए अंग्रेजी शब्द *कोअलिशन* लैटिन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ साथ चलना या बढ़ना होता है। राजनीतिक सत्ता पर नियंत्रण हासिल करने के लिए विभिन्न राजनीतिक समूहों के बीच अस्थायी गठबंधन के लिए किया जाता है। *इनसाइक्लोपिडिया ऑफ सोशल साइंस* में प्रोफेसर ऑग के अनुसार "गठबंधन ऐसी सहकारी व्यवस्था है जिसमें अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ या ऐसी पार्टियों के सभी सदस्य सरकार बनाने के लिए एकजुट हो जाते हैं"। भारत में गठबंधन सरकार का एक इतिहास रहा है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भारतीय लोकतंत्र में गठबंधन सरकारों का भविष्य क्या है? वैसे भारतीय राजनीति में अब तक की गठबंधन सरकारों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतीय लोकतंत्र सहमिलन की ऐसी सरकारों के सर्वथा अनुकूल नही है। गठबंधन सरकारों के गठन और जीवन तथा कार्यकरण के जिस संस्कृति की आवश्यकता होती है भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में अभी तक वस्तुतः उसका अभाव रहा है। अल्पमत की सरकारों में राज्य के लिए संकट ही पैदा किया है।

राष्ट्रीय संदर्भ में गठबंधन राजनीति का सूत्रपात प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय हुआ जब भारत के हिन्दू एवं मुस्लिम सिपाहियों ने कारतूस में गाय एवं सुअर की चर्बी के विरूद्ध प्रयोग के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध संयुक्त रूप से संघर्ष का शंखनाद किया था। भारत भूमि पर अलग-अलग दो ध्रुव के लागों का एक ऐसा गठजोड़ था जो राष्ट्र को विदेशी आधिपत्य से मुक्त करने के लिए किया गया था। पं0 नेहरु के नेतृत्व में 1946 में गठित अन्तरिम सरकार गठबंधन राजनीति की कोख में पैदा हुई सरकार थी जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा जैसे राजनीतिक दलों ने मिलकर जन्म दिया था। भारत में गठबंधन की स्थापना 1953 में शुरु हो गयी। 1953 में आंध्र प्रदेश में संयुक्त मत्रिमंडल का गठन हुआ लेकिन 13 माह बाद ही मंत्रिमंडल विघटित हो गया। इसी तरह उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, पं0 बंगाल और कुछ अन्य राज्यों में मिली-जुली सरकार का निर्माण किया गया।

राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम गठबंधन सरकार की शुरुआत 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार के गठन के साथ मानी जाती है। संघीय स्तर पर कांग्रेस के एकछत्र शासन को पहली बार 1977 में जनता पार्टी की सरकार से पहली बार चुनौती मिली। 1977 में राम मनोहर लोहिया के द्वारा दिये गए गैर कांग्रेसवाद के नारे को स्वीकार करते हुए आम भारतीय मतदाता ने निर्वाचन के माध्यम से जनता पार्टी को शासन की बागडोर सौंप दी। परन्तु जनता पार्टी के घटक दल जनसाधारण के विकास एवं स्वयं को दलीय आधार पर सुदृढ़ करने के बजाय अपने महत्व को लेकर संघर्षरत् रहे जिससे जनता की आकाँक्षाओं की पूर्ति नही हो सकी। देश में संघीय स्तर पर इस तरह के अवसरवादी गठबंधन के प्रयोग को 2 दिसम्बर 1989 की राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार के गठन के रूप में पुनः दोहराया गया। इसमें

प्रमुख रूप से जनता दल, तेलगुदेशम, असम गण परिषद, कांग्रेस जैसे क्षेत्रीय दल भागीदार थे पर इनमें आपस में व्यापक मतभेद था। प्रधानमंत्री पद के लिए वी0पी0 सिंह के नाम को अस्वीकार करते हुए चन्द्रशेखर द्वारा स्वयं को प्रधानमंत्री घोषित करना तथा देवीलाल द्वारा वी0पी0 सिंह का खुलकर समर्थन करना इस प्रकार के घटनाक्रम से गठबंधन असमय बिखर गया। राजीव गाँधी के मृत्यु के उपरांत उपजी राष्ट्रव्यापी सहानुभूति के सहारे 10वीं लोकसभा चुनाव के पश्चात् सबसे बड़े दल के रूप में उभरी कांग्रेस के नेता पी0वी0 नरसिम्हा राव द्वारा छोटे-छोटे राजनीतिक दलों एवं कुछ निर्दलीय सांसदों का समर्थन लेकर गठबंधन सरकार की स्थापना हुई। 1996 व 1997 में क्रमशः वाजपेयी एवं देवगौड़ा की गठबंधन सरकार बनी जो कार्यकाल के पूरा होने के पूर्व गिर गयी। आज भारतीय राजनीति में छोटे-छोटे क्षेत्रीय दलों की भरमार ने देश को राजनैतिक अस्थिरता के दौर में पहुँचा दिया है क्योंकि ये दल राष्ट्रीय हित नही अपितु अपना हित देखते हैं। भाजपा के नेता अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार मात्र 13 दिन चली। 12वीं लोकसभा चुनाव के पश्चात् भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 253 स्थान प्राप्त कर सरकार का गठन किया। गठबंधन में सम्मिलित विभिन्न राजनीतिक दलों के पूर्वाग्रह व्यक्तिगत रूझान 13 माह बाद ही वाजपेयी सरकार को ले डूबी। 13वीं लोकसभा चुनाव में एकबार पुनः त्रिशंकु लोकसभा का गठन हुआ जिसमें भाजपा को 182 स्थान, कांग्रेस को 114 स्थान तथा क्षेत्रीय दलों को 162 स्थान प्राप्त हुए। केन्द्र में एक बार फिर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 24 दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया। 14वीं लोकसभा चुनाव में कांग्रेस ने अपनी पूर्व की एकाधिकारवादी राजनीतिक दल की धारणा को छोड़कर गठबंधन राजनीति की आवश्यकता को गंभीरता से लिया और राष्ट्रीय स्तर पर छोटे-छोटे राजनीतिक दलों का गठबंधन करके डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार बनायी और पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया।

16वीं लोकसभा चुनाव 2014 में भारतीय जनता पार्टी ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का नेतृत्व करिश्माई नेता नरेन्द्र मोदी को सौंपा और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन ने सोनिया गाँधी और राहुल गाँधी को आगे रखा। श्री नरेन्द्र मोदी ने कांग्रेस के पिछले कार्यकाल में हुए बड़े घोटालों कोयला घोटाला, 2जी स्पैक्ट्रम स्कैम, राष्ट्रमंडल खेल, रॉबर्ट वडेरा लैण्ड डील को जनता के सामने रखा और साथ ही मोदी जी ने अपने विज़न में जनता के दिल को छू देने वाली बातों को रखा। भारतीय जनता पार्टी को 282 स्थान प्राप्त हुए। इस चुनाव में कांग्रेस की सबसे बड़ी हार हुई और वह 44 सीटों पर सिमट गयी। यू0पी0ए0 को सिर्फ 59 सीटों पर विजय मिली। 17वीं लोकसभा चुनाव में 542 सीटों पर हुए मतदान के बाद परिणाम के आधार पर भाजपा ने 303 सीटें जीत कर पूर्ण बहुमत हासिल कर लिया। कांग्रेस ने 52 सीटें, द्रमुक को 23, तृणमूल कांग्रेस तथा वाईएसआर कांग्रेस को 22–22 सीटें मिली हैं। वर्ष 2014 के

लोकसभा चुनाव में भाजपा को 282 और कांग्रेस को 44 सीटें मिली थीं। भाजपा की सीटों की संख्या 303 होने के साथ ही उसके सहयोगी दलों के साथ राजग गठबंधन 350 सीटो के पार पहुँच गया। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरु तथा इंदिरा गाँधी के बाद मोदी देश के तीसरे और पहले गैर-कांग्रेसी प्रधानमंत्री हैं जो लोकसभा में लगातार दूसरी बार पूर्णबहुमत के साथ सरकार बनाये हैं।

देश में प्रायः दो गठबंधन का स्वरूप देखने को मिलता है *प्रथम* वे गठबंधन जो कुछ विशेष राजनीतिक दलों के द्वारा निश्चित कार्यक्रमों के आधार पर आम चुनाव के पूर्व बना लिए जाते हैं *द्वितीय* वे गठबंधन जो चुनाव के पश्चात बनता है और परिस्थितिजन्य होता है। चुनाव के पूर्व जो गठबंधन बनते हैं उनमें अवसरवादिता के तत्व कम होते हैं और साथ ही साथ कार्य करने का आधार बन जाता है लेकिन चुनाव के बाद तथा चुनाव से उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए जो गठबंधन बनाये जाते हैं उनमें इस प्रकार की अवसरवादिता के तत्व अधिकता अंशों में विद्यमान रहते हैं तथा यही बात इस गठबंधन को कमजोर कर देती है। गठबंधन की राजनीति से सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं।

गठबंधन की राजनीति ने सहमति की राजनीति को जन्म दिया है यह सहमति कई मुद्दों पर देश के वर्तमान विकास के लिए लाभकारी रही इन मुद्दों में आर्थिक नीतियों के प्रति तालमेल व समन्वय महत्वपूर्ण रहा है। कई दल यह मानते हैं कि नई आर्थिक नीतियाँ देश में पहले की अपेक्षा आज विकास को लाने की प्रमुख कारक रही हैं।

जहां गठबंधन की राजनीति की वजह से क्षेत्रीय पार्टियाँ अस्तित्व में आयीं वहीं कई राष्ट्रीय पार्टियों ने कालान्तर से दबी, सामाजिक समस्याओं की जड़े खोदीं। बसपा ने दलित उत्थान, अन्य पार्टियों ने पिछड़ी जातियों के राजनीतिक सामाजिक दावे की बात की। कई पार्टियों ने महिला घरेलू हिंसा, बाल अधिकार, शिक्षा के अधिकार जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर अपनी बात उठायी।

गठबंधन सरकार में छोटे दलों का विशेष महत्व है जो क्षेत्रीय व स्थानीय मुद्दों पर लड़कर आते हैं। इस प्रकार एक दलीय शासन में उपेक्षित पड़ी क्षेत्रीय समस्याएँ गठबंधन सरकार में प्रधानता पर पाई जाती हैं तथा उनका सर्वमान्य समाधान भी संभव हो पाता है। गठबंधन सरकार में साझा कार्यक्रम के जरिए सामूहिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाता है। गठबंधन सरकार में किसी प्रकार की राजनीतिक तानाशाही का कोई स्थान नही होता, तथा लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं और मान्यताओं को विशेष महत्व दिया जाता है साथ ही गठबंधन सरकार में आम चुनावों के बगैर भी अलोकप्रिय नेत्तृत्व में परिवर्तन संभव हो पाता है।

गठबंधन सरकार के पहले एक दल के ही मुद्दे राष्ट्रीय मुद्दे पर हावी होते थे लेकिन अब कई महत्वपूर्ण मुद्दे राष्ट्र के समक्ष न केवल लाये जाते हैं अपितु उस पर विचार विमर्श भी होता है। भ्रष्टाचार को लेकर, अल्पसंख्यकों से जुड़े मुद्दे तथा कई

परमाणु परियोजनाओं पर वाद-विवाद होते रहते हैं। भारतीय लोकतंत्र में अब तक गठबंधन सरकारें जिस अंजाम को प्राप्त हुईं उसे देखते हुए भवानी सेन गुप्ता का कथन सटीक प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने कहा कि मिली-जुली सरकारों के गठन और जीवन तथा कार्यकरण के लिए जिस प्रतिभा तथा संस्कृति की आवश्यकता होती है। भारतीय लोकतांत्रिक राजनीति में वस्तुतः उसका अभाव है। यही कारण है कि पहले तो गठबंधन सरकारें अपना कार्यकाल पूरा ही नहीं कर पातीं और यदि कर भी लेती हैं तो अपने कार्यकाल में राज धर्म का निर्वहन दबाव मुक्त रहकर पारदर्शिता के साथ नहीं कर पाती हैं। सुशासन और विकास के बजाय इनका पूरा ध्यान सहयोगी दलों को साधकर सत्ता संतुलन बनाए रखने में लगा रहता है। यह स्थिति स्वस्थ लोकतंत्र की सूचक कदापि नही हो सकती क्योंकि इसमें जन एंव राष्ट्र दोनों के हित प्रतिकूल रूप से प्रभावित होते हैं।

गठबंधन सरकार के समक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यह सफल कैसे होगा। गठबंधन की स्थिति में मंत्रिमण्डल बहुँमुखी हो जाता है और मंत्रिमण्डल अपने दलों के पोषण पर अधिक ध्यान देते हैं। गठबंधन सरकार के अनुभव बताते हैं कि भारत जैसे देश के लिए गठबंधन सरकारें उपयुक्त नहीं हैं। गठबंधन सरकारों के लिए कुछ दिशा-निर्देश इस प्रकार हैं–

- गठबंधन चुनाव के पूर्व हो तथा इसमें शामिल होने वाले सभी राजनीतिक दल संयुक्त नीति तथा संयुक्त कार्यक्रम की घोषणा करें।
- गठबंधन में किसी एक दल की तानाशाही न हो इसके लिए निर्णय सभी दलों द्वारा सम्मिलित रूप से किये जानें चाहिए।
- गठबंधन के नेता को प्रत्येक संघटक दल के साथ तालमेल रखना चाहिए, उसे हमेशा गठबंधन की एकता, अखण्डता को बनाए रखने की कोशिश करनी चाहिए।
- गठबंधन सरकार से समर्थन वापस लेने की स्थिति में यदि सरकार गिरने का डर हो तो समर्थन वापस लेने के बाद दल पर यह बाध्यता हो कि वह साथ में वैकल्पिक नेता का नाम सुझाये। संविधान समीक्षा आयोग ने भी इसी तरह की सिफारिश की है।
- राष्ट्रीय मुद्दों के आधार पर गठबंधन को कोई न कोई मानक बनाना होगा तथा राजनीतिक दलों को व्यक्तिगत महत्वाकाँक्षाओं, पूर्वाग्रहों, सत्तालोलुपता, अवसरवादिता एवं सौदेबाजी की संकीर्ण मानसिकताओं से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में विचार एवं कार्य करना होगा।
- गठबंधन में शामिल सभी दलों को एक न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर सहमति तथा सहयोग के आधार पर कार्य करना चाहिए तथा गठबंधन धर्म का निर्वाह

करते हुए राष्ट्रीय हितों के आधार पर गठबंधन सरकार के स्थायित्व का प्रयास करना होगा।

आज के दौर में भारतीय संसदीय व्यवस्था में लोकतंत्र को अत्यधिक उत्तरदायित्व पारदर्शितापूर्ण, विश्वसनीय सुशासन की जरूरत है जो कि गठबंधन सरकारों में असंभव सा प्रतीत हो रहा है। गठबंधन सरकारों के लिए काफी हद तक मतदान प्रतिशत में कमी, क्षेत्रीय मुद्दे, जातिगत मुद्दे, भाषावाद, जातिवाद तथा सबसे महत्वपूर्ण कारण किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होना है। तथ्यगत विचार यह है कि गठबंधन सरकारों का निर्माण कुछ ऐसी शर्तों के साथ हो जिससे एक स्वस्थ विचार एवं लोकतांत्रिक सरकार मिले। अरस्तू ने भी स्थिर लोकतांत्रिक सरकार की बात की है किसी भी शासन संचालन की आवश्यक शर्त है– एक स्थिर सरकार। यदि गठबंधन बनाने वाले दल राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में समान विचारधारा रखते हों तो उनका गठबंधन अपेक्षाकृत स्थायी होगा। यदि केवल सत्ता के लोभ में अवसरवादी उपकरण के रूप में गठबंधन का निर्माण होता है तो वह स्वभावतः अस्थायी होगा।

संदर्भ सूची

1. S.K. Khanna 'Colition Politics in India' Commonwealth Publication New Delhi 1999.
2. N. Jose Chander 'Coalition Politics: The India Experience- concept publishing company New Delhi 59 2004.
3. एम0एस0 सईद (भारतीय राजनीतिक व्यवस्था) सुलभ प्रकाशन, लखनऊ 2002.
4. जोशी आर0पी0 'भारतीय राजनीतिक व्यवसाय पुर्नरचना के नये आयाम, आर. एस. रावत पब्लिकेशन जयपुर 2002.
5. नीता बोरा शर्मा– गठबंधन सरकारें और भारतीय राजनीति, क्वैस्ट नवम्बर 2009.
6. मनोरमा ईयर बुक आवरण कथा– लोकतंत्र गठबंधन सरकार एवं नई चुनौतियाँ 2010.
7. Ranjan Raj, Subhendu (Coalition Politics in India Dimension of federal power sharing, Monak Publication New Delhi 2004.
8. Ed. Singh Hozhair Singh Mathur PC and Singh Pankaj (Coalition Govt. and Good Governence) Jaipur Aalok Publishers 2007.

भारत में गठबन्धन सरकारों की राजनीति : नूतन परिपेक्ष्य

अम्बुजेश कुमार मिश्र

Ikjk'k *प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य ''भारत में गठबन्धन सरकारों की राजनीति : नूतन परिपेक्ष्य'' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। लोकतंत्र वह शासन प्रणाली है जिसमें जनता का शासन हो। किसी भी देश में जीवंत लोकतंत्र की प्रथम दृष्टया मुख्य पहचान यह होती है कि वहाँ प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति निरंतर गतिशील रहे। राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता प्राप्ति का माध्यम चुनाव होता है। चुनाव में बहुमत प्राप्त दल सरकार का निर्माण करता है। परन्तु जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता है तो सरकार बनाने का संकट उत्पन्न हो जाता है ऐसे में राजनीतिक दलों द्वारा गठबन्धन सरकार बनाने की विवशता उत्पन्न हो जाती है। गठबन्धन निर्वाचन से पहले या बाद में ऐसे दलों के मध्य होता है जो कार्यक्रम एवं नीतियों में समानता रखते हैं। प्रत्येक देश में इसकी प्रकृति छोटे अथवा बड़े स्तर पर लगभग एक समान होती है। आज सियासत की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि हम गठबन्धन के जमाने में चल रहे हैं। हमारे यहाँ गठबन्धन हमेशा कमजोर रहे हैं उनका वजूद हमेशा खतरे में दिखाई पड़ता है। सत्ता में साझेदारी को लेकर तनाव पैदा होते रहते हैं और समर्थन के नाम पर सियासी ब्लैकमेलिंग का बोल बाला रहता है। समस्या तब पैदा होती है जब कोई दल गठबन्धन राजनीति के धर्म का उल्लंघन करने लगता है। समस्या गठबन्धन की राजनीति में नहीं होती है बल्कि समस्या अपने को लोकतांत्रिक सरकारों से परे रखकर चलाने में होती है। भारत में सैकड़ों भाषाएँ, हजारों जातियों और अनेक समुदाय व राज्य हैं। एक राष्ट्रीय आकांक्षा के साथ-साथ सबकी अपनी-अपनी अलग आकांक्षाएँ भी हैं। इन सबकी पूर्ति गठबन्धन राजनीति से ही सम्भव है। उचित यही होगा कि राजनीतिक दल इस हकीकत को स्वीकार कर लें।*

प्रस्तावना

गठबन्धन सरकार लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का जाना पहचाना रूप है तथा विभिन्न राजनीतिक दलों के मध्य सहकारी प्रबन्धन है। यह प्रायः बहुदलीय शासन व्यवस्था में पायी जाती है। इसका निर्माण उस समय आवश्यक हो जाता है जब किसी भी राजनीतिक दल को चुनाव के बाद व्यवस्थापिका में स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता है। उस समय दो या अधिक दलों की मिली-जुली सरकारें बनती हैं, इसे ही गठबन्धन सरकार के नाम से जाना जाता है। गठबन्धन सरकार में शामिल दल साझा न्यूनतम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक कार्यक्रम पर सहमत हो जाते हैं और वे सम्मिलित सरकार से निकलने के लिये स्वतंत्र होते हैं। 'गठबन्धन' शब्द अंग्रेजी भाषा के *'कोयलिशन'* का हिन्दी रूपान्तर है जो लैटिन भाषा के *'कोएलिशियो'* शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'एक साथ जाना', 'एक साथ उगना या मिलना'। जिसका आशय हैं कि – एक ऐसा संगठन जो किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये विभिन्न पक्षों द्वारा बनाया गया हो। अंग्रेजी शब्दकोश में इसे विभिन्न दलों, व्यक्तियों या राज्यों का स्थायी रूप एक में विलीन हुए बिना किसी संयुक्त कार्य के लिये किया गया समझौता कहा गया है।[1] प्रो. ऑग के अनुसार –''मिली-जुली सरकार ऐसे सहयोगी प्रबन्ध का नाम है जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमण्डल के निर्माण के लिये एक हो जाते हैं''।[2]

कश्यप तथा गुप्त ने लिखा है – ''मिली-जुली सरकार राजनीतिक समुदायों तथा शक्तियों का गठजोड़ है जो अस्थायी और कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिये होता है। राजनीतिक दलों का यह मिलन सरकारों के निर्माण या उनकी रक्षा करने के लिये बनाया जाता है। जिन दलों के सहयोग के फल स्वरूप संयुक्त सरकारों का निर्माण होता है वे एक बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रम पर एकमत होते हैं''।[3] विलियन एच. रिकर ने अपनी पुस्तक में इसका विशद् वर्णन करते हुए लिखा है कि – ''स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्तर पर गठबन्धन को 'गेम थ्योरी' के आधार पर समझाते हुए बताया है कि इस खेल में राजनीति खिलाड़ी एक व्यक्ति, वर्ग या समूह हो सकता है। प्रत्येक राजनेता को एक बौद्धिक घटक कहा जाता है''।[4]

इस प्रकार राजनीतिक लाभ के उद्देश्य से जब कुछ राजनीतिक दल एक सामान्य कार्यक्रम के आधार पर मिल जाते हैं और गठबन्धन का निर्माण कर सरकार की स्थापना करते हैं तो उसे मिली-जुली सरकारों अथवा गठबन्धन सरकारों की राजनीति कहा जाता है। गठबन्धन सरकार 'मतभेदों के बावजूद एक समवेत स्वर' होती है।[5] ऊपर से देखने पर गठबन्धन सरकार चाहे कितनी ही ठोस प्रतीत हो उसके अन्दर मतभेद के स्वर विद्यमान होते हैं। भागीदार दलों के बीच विद्यमान ये राजनीतिक मतभेद ही तो दलों को अपना अलग-अलग राजनीतिक अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देते हैं।

संसदीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक दलों का संगठन सरकारों का निर्माण करने के लिये बनाया जाता है, जिनमें सम्मिलित दल एक राजनीतिक बुनियादी कार्यक्रम पर एकमत होते हैं। जो दल बड़ा होता है वह एक से अधिक छोटे-छोटे दलों को मिलाकर बहुमत प्राप्त करने के लिये संगठन का निर्माण कर लेता हैं। कभी-कभी छोटे-छोटे दल बड़े दल को सत्तारूढ़ होने से रोकने के लिये गठबन्धन को निर्माण कर लेते हैं।[6]

Hkkjrh; jktuhfr vkj xBcU/ku ljdkj

भवानी सेन गुप्ता ने कहा है कि –''गठबन्धन सरकारों के गठन और जीवन तथा कार्यकरण के लिये जिस प्रतिभा और संस्कृति की आवश्यकता होती है, भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में अभी तक वस्तुतः उसका अभाव रहा है। अस्थायी गठबन्धन सरकारों या अल्पमत सरकारों के क्रम ने राज्य के संकट में योगदान किया है, क्योंकि राज्य, सरकार के साथ गुँथा हुआ है''।[7] भारत में सामान्यतया 'एक दल की प्रधानता वाली बहुदलीय व्यवस्था' रही है। दलीय व्यवस्था के इस स्वरूप के कारण लोकसभा में सामान्यतया एक राजनीति दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता था और केन्द्रीय स्तर पर एक दल की सरकार का गठन होता था। 1952 से 1967 तक केन्द्र में कांग्रेस पार्टी का एकाधिकार रहा परन्तु 1967 के आम चुनाव से स्थिति बदल गयी। यद्यपि केन्द्र में कांग्रेस पार्टी को बहुमत मिला, परन्तु उससे पहले चुनावों की अपेक्षा कम स्थान प्राप्त हुए और 16 में से आठ राज्यों में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। भारत के संविधान के इतिहास में पहली बार इन आठ राज्यों में गठबन्धन की सरकारें बनीं।

भारतीय संघ में केन्द्र के स्तर पर अब तक 12 गठबन्धन की सरकारें स्थापित हुई हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है – 1952 से 1977 तक केन्द्र में कांग्रेस पार्टी की सरकार चली। यद्यपि 1969 में कांग्रेस पार्टी को साम्यवादी दल और डी.एम.के. से समर्थन लेना पड़ा क्योंकि कांग्रेस पार्टी का विभाजन हो गया था जिससे कांग्रेस को लोकसभा में 281 सीटें ही प्राप्त हो सकीं। ई.पी.डब्ल्यू.डी. कोस्टा के अनुसार–''चतुर्थ आम चुनाव में भारतीय जनता द्वारा मतदान के आधार पर क्रांति लाने का कार्य किया गया''।[8] आपातकाल के पश्चात् 1977 के लोक सभा चुनाव में विपक्षी दलों द्वारा पहली बार सत्ता प्राप्त करने के लिये तथा सत्ता से कांग्रेस को हटाने के लिये चुनाव लड़ा गया। भारतीय राजनीति के पाँच घटकों : संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, संयुक्त समाजवादी दल और चन्द्रशेखर के नेतृत्व में विद्रोही कांग्रेस ने मिलकर 'जनता पार्टी' के नाम से एक नये राजनीतिक दल का गठन किया। (जगजीवन राम के नेतृत्व में 'कांग्रेस फार डेमोक्रेसी' इसमें बाद में सम्मिलित हुई) यह गठबन्धन चुनाव पूर्व गठबन्धन था। इसे चुनाव में अभूतपूर्व सफलता मिली। मोरारजी देसाई के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ। परन्तु आपसी कलह के कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और

चरण सिंह प्रधानमंत्री बने परन्तु गठबन्धन में शामिल दलों के अन्तर्विरोध उजागर होने लगे फलस्वरूप 23 दिन बाद सरकार गिर गयी।[9] 'यह तथ्य है कि चरण सिंह मंत्रिमण्डल अपने सदस्यों के आपसी मतभेदों से देसाई मंत्रिमण्डल की तुलना में भी अधिक पीड़ित था।[10] कुलदीप नायर ने लिखा है –''केन्द्र में जनता पार्टी सरकार की स्थिति एक गठबन्धन सरकार जैसी रही, और सत्ता में भागीदार सभी गुट इस बात के प्रति सजग रहे'' ।[11]

1980 के आम चुनाव में श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने मोरार जी देसाई और चौधरी चरण सिंह के मतभेद का पूरा–पूरा लाभ उठाया और केन्द्रीय सत्ता पर कांग्रेस का पुनः अधिकार हो गया।[12] लेकिन अक्टूबर 1984 ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या हो गयी।[13] 1984 के आम चुनाव में राजीव गाँधी को सहानुभूति लहर के आधार पर तीन-चौथाई बहुमत प्राप्त हो गया। परन्तु 1989 पुनः वी0पी0 सिंह के नेतृत्व में 'राष्ट्रीय मोर्चे' की गठबन्धन की 'अल्मतीय सरकार' बनी, जिसे भाजपा तथा वामपंथी दलों ने बाहर से समर्थन दिया। परन्तु उप प्रधानमंत्री देवी लाल के असंतुष्ट होने एवं बाबरी मस्जिद, रामजन्म भूमि मुद्दे को लेकर भाजपा द्वारा समर्थन वापस लिये जाने के कारण 11 महीने में ही यह सरकार गिर गयी। 10 नवम्बर 1990 को कांग्रेस के बाह्य समर्थन से जनता दल से अलग होने वाले गुट जनता दल (सोशलिस्ट) के नेता चन्द्रशेखर ने एक अल्पमतीय गठबन्धन सरकार का गठन किया। परन्तु मतभेद के कारण 6 मार्च 1991 को इन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

10वीं लोकसभा के लिये मई-जून 1991 में चुनाव हुए जिसमें किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। कांग्रेस को सबसे बड़े दल के रूप में 220 सीटें मिले। कांग्रेस ने पी.वी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व में अन्य दलों से समर्थन लेकर सरकार का निर्माण किया तथा अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। 11वीं लोकसभा चुनाव 1996 में भाजपा–161 सीटें प्राप्त कर सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने पहली बार 12 अन्य दलों के समर्थन से मिश्रित सरकार का गठन किया जिसका 13 दिन बाद विघटन हो गया। इसके बाद 1 जून 1996 में एच.डी. देवगौड़ा सरकार पदारूढ़ हुई, लगभग 10 महीने बाद कांग्रेस की समर्थन वापसी के कारण इसका पतन हो गया। 21 अप्रैल 1997 में इन्द्र कुमार गुजराल सरकार नेतृत्व में आयी। जिसे 'एक ही सरकार का दो रूप' कहा गया। पुनः कांग्रेस के समर्थन वापसी के कारण 28 नवम्बर 1997 को गुजराल ने त्यागपत्र दे दिया।

12वीं लोकसभा चुनाव में खण्डित जनादेश उजागर हुए और किसी भी दल अथवा गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। भाजपा को सर्वाधिक 179 सीटें प्राप्त हुई। अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने 18 दलों के समर्थन से गठबन्धन सरकार का गठन किया। यह चुनाव पूर्व गठबन्धन था। परन्तु ए.डी.एम.के. के समर्थन वापस ले लेने के कारण 17 अप्रैल 1999 को केवल 13 महीने बाद भाजपा की सरकार गिर गयी।

13वीं लोकसभा चुनाव 1999 में भाजपा के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (राजग) 305 सीटें जीतकर सर्वाधिक शक्तिशाली गुट के रूप में उभरा और अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार गठित कर अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। मई 2004 में 14वीं लोकसभा चुनाव के बाद 343 सीटें प्राप्त कर कांग्रेस के नेतृत्व में गठित संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (यू.पी.ए.) ने डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार बनायी जो पाँच साल सरकार चलाने में कामयाब रही। इस गठबन्धन में 15 राजनीतिक दल शामिल थे।

15वीं लोकसभा चुनाव 2009 में पुनः कांग्रेस और मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली की यू.पी.ए. की सरकार बनी और अपना पाँच वर्ष कार्यकाल पूरा किया। 16वीं लोकसभा चुनाव अप्रैल-मई 2014 में हुए जिसमें 336 सीटों के साथ राजग सबसे बड़ा दल और 282 सीटों के साथ भाजपा सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। भारतीय जनता पाटी के राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन का नेतृत्व करिश्माई नेता श्री नरेन्द्र मोदी को सौंपा और सरकार का गठन किया। श्री नरेन्द्र मोदी ने पिछली यू.पी.ए. सरकार के कार्यकाल में हुए बड़े-बड़े घोटालों को जनता के समक्ष रखा। इसके साथ ही अपने विज़न में जनता के दिलों को छू लेने वाली बातों को रखा जिसका जनता ने पूरा-पूरा समर्थन किया। मोदी सरकार ने अपना कार्यकाल पूर्ण किया।

17वीं लोकसभा चुनाव अप्रैल-मई 2019 में सम्पन्न हुए जिनमें नरेन्द्र मोदी को शासन सत्ता से दूर करने के लिये महागठबन्धन का राजनीतिक दौर चला। इस चुनाव में मुख्य मुकाबला रा.ज.ग., यू.पी.ए. तथा महागठबन्धन के बीच था। एक बार पुनः इस चुनाव में 353 सीटों के साथ रा.ज.ग. सबसे बड़ा दल तथा 303 सीटों के साथ भाजपा सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी, और पुनः 30 मई 2019 को श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकार का गठन हुआ। वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन की सरकार कार्य कर रही है।

गठबन्धन सरकारों के प्रसंग में एक प्रश्न यह पैदा होता है कि भारतीय जनता केन्द्र में गठबन्धन सरकार चाहती है या एक दल की सरकार। यह तथ्य है कि भारतीय जनता गठबन्धन सरकार नहीं चाहती और केन्द्र के स्तर पर तो पूर्णतया नापसन्द करती है।[14] अभी तक केन्द्र स्तर पर जितनी भी सरकारें गठित हुई हैं उनमें अधिकांश गठबन्धन सरकारों के बारे में यह कहा जा सकता है कि – ये सरकारें जनादेश नहीं अपितु राजनीतिक परिस्थितियों और राजनीतिक विवशताओं का परिणाम रही हैं। इस बात ने इन सरकारों की वैधता को आघात पहुँचाया है। लोकतंत्र में 'जनादेश के बिना शासन' एक विडम्बना ही है। ये सभी सरकारें अपने कार्यात्मक दृष्टिकोण से दिशाहीन रहीं जिसने सामान्य जनता के मनोबल को आघात पहुँचाया। इनके अन्दर सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना का भी अभाव रहा। कभी प्रधानमंत्री व उप प्रधानमंत्री के बीच 'शह और मात का खेल' देखा गया। इन गठबन्धन सरकारों ने राजनीतिक अस्थायित्व

को जन्म दिया। व्यवहार में इन सरकारों ने केन्द्र सरकार और प्रधानमंत्री की स्थिति को कमजोर किया। परन्तु 2014 के बाद गठित एन.डी.ए. की सरकार के बाद सरकार के कार्य करने की तस्वीर पूर्ववर्ती सरकारों से अलग दिखाई दी। इसने अपने धटक दलों के साथ मिलकर अवसरवादिता की राजनीति, भ्रष्टाचार एवं गठबन्धन के अपने निजी स्वार्थ से अलग हटकर राजनीतिक, नैतिकता पर आधारित कार्य करने का प्रयास किया। मोदी सरकार के द्वारा किये गये कार्यों, निर्णयों ने केन्द्र सरकार एवं प्रधानमंत्री की स्थिति को सशक्त किया और एक गठबन्धन सरकार की सफलता के लिये जिस समझ, सूझ-बूझ, राजनीतिक परिपवक्ता और संस्कृति की आवश्यकता होती है उसे अपनाया। जिसका पूरा-पूरा लाभ उन्हें 2019 के लोकसभा चुनाव में मिला, जिसमें जनता ने उन्हें सम्मानजनक बहुमत प्रदान किया। यह निश्चित ही गठबन्धन सरकार की प्रासंगिक सफलता के लिये एक सकारात्मक संकेत है।

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। विश्व के किसी भी देश में इतनी सामाजिक, सांस्कृतिक, जातीय, धार्मिक, विविधता विद्यमान नहीं है। बहुदलीय व्यवस्था के लिये गठबन्धन स्वाभाविक है। 2019 का लोकसभा चुनाव गठबन्धन राजनीति एवं भारतीय लोकतंत्र के लिये एक सुखद संदेश है। छोटे-मोटे विवादों को नजरअंदाज कर मोदी सरकार ने अपेक्षाकृत विकास का कार्य किया। जिसके परिणामस्वरूप जनता ने सम्मान जनक बहुमत प्रदान किया। इस गठबन्धन सरकार ने एक तरफ वंशवाद पर कठोर प्रहार किया तो दूसरी तरफ जातीय सामाजिक समीकरणों को ध्वस्त कर दिया।

भारत में क्रमशः गठबन्धन का राजनीतिक संस्कृति का विकास हो रहा है। गठबन्धन सरकारों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो 1989 से लेकर 2019 के चुनाव एवं सरकार की कार्यशीलता की दृष्टि से गठबन्धन परिपक्व दिख रहा है। इसकी सफलता के लिये यह आवश्यक है कि गठबन्धन की संस्कृति को अपनाते हुए छोटी-छोटी बातों के लिये गठबन्धन तोड़ने या छोड़ने की प्रवृत्ति बन्द करनी होगी, व्यक्तित्व की जगह विचारधारा को प्रतिष्ठित करना होगा। 'नेताओं के दल के स्थान पर दलों के नेताओं' की प्रवृत्ति को अपनाना होगा। गठबन्धन में अवसरवादिता की प्रवृत्ति एवं किसी एक दल की तानाशाही की प्रवृत्ति रोकनी होगी। *'दायित्व के बिना सत्ता''* की स्थिति को रोकने के लिये गठबन्धन चुनाव पूर्ण करना चाहिए। क्योंकि ''बाहरी समर्थन के आधार पर कार्यरत् अल्पमतीय और सूक्ष्मतीय सरकारों का प्रयोग पूर्णतया असफल सिद्ध हुआ है'' ।[15] गठबन्धन की सरकार को उसके स्वाभाविक रूप से अपनाते हुए सरकार का नेतृत्व उस राजनीतिक दल द्वारा किया जाना चाहिए जिसने चुनाव मे ंप्रथम या द्वितीय स्थान प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त लोकसभा में संख्या के आधार पर घटक दलों को सरकार में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।[16] गठबन्धन में शामिल क्षेत्रीय राजनीतिक दलों नीतियों और विचारों के मामलों में होने वाले सम्भावित टकरावों से निपटने के लिये एक सर्वमान्य तरीका पहले से ही तय कर लेना चाहिए, क्योंकि क्षेत्रीय आकांक्षाओं

की पूर्ति गठबन्धन सरकार के दौर में ही होती है।[17] साथ ही सभी नेताओं के बीच गठबन्धन सरकारों के निर्माण और कार्यकारण सम्बन्धी समस्त प्रक्रिया पर गम्भीर विचार विमर्श किया जाना चाहिए। प्रत्येक दल को दूसरे दल का सम्मान करना चाहिए तथा व्यक्तिगत आक्षेपों से बचा जाना चाहिए। साथ ही साथ इस बात पर गम्भीरता से विचार करना होगा कि केन्द्र में गठबन्धन की राजनीति से उत्पन्न राजनीतिक अस्थायित्व को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है। इनके साथ-साथ मतदाताओं को भी जागरुक होना अत्यन्त आवश्यक है उन्हें अपने मताधिकार का प्रयोग पूरी सूझबूझ और दूरदर्शिता के साथ करना चाहिए तथा मतदान करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि यदि किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत न भी प्राप्त हो किन्तु कम से कम इतनी सीटें अवश्य प्राप्त हो जायें कि वह एक मजबूत एवं स्थायी सरकार का गठन हो सके। अंततः दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति के आधार पर ही हमें अपने देश की राजनीतिक परिस्थितियों और राजनीतिक संस्कृतियों के अनुरूप मार्ग खोजना होगा। वर्तमान समय में तो यह बात निर्मूल सिद्ध हुई है कि गठबन्धन की सरकार टिकाऊ नहीं होती है तथा विकास नहीं करती है।

उपरोक्त सुझावों के आधार पर ही भारतीय राजनीति में स्वस्थ एवं स्थायी लक्षणों का समावेश सम्भव हो सकता है तथा गठबन्धन सरकारें भारतीय राजनीति में, अनेकता में एकता की भावना को साकार कर, राष्ट्रीय अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए क्षेत्रीय समस्याओं का राष्ट्रीय समाधान प्रस्तुत कर, क्षेत्रीय दलों द्वारा उपजी संकीर्णता से राजनीति को मुक्त कर गठबन्धन सरकार की सफलता का नया इतिहास लिख सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. दि आक्सफोर्ड डिक्शनरी – द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड, पृ. 382
2. सिंहल, डॉ. सुरेश चन्द्र : भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2009–10, पृ. 332
3. कश्यप, सुभाष एवं विश्व प्रकाश गुप्त : राजनीति कोश, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2009, पृ. 57
4. रिकर, विलियम एच. : द थ्योरी ऑफ पोलिटिकल कोलिशंस, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1962, पृ. 12
5. फड़िया, डॉ. बी.एल. एवं डॉ. कुलदीप फड़िया : भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन आगरा, 2018, पृ. 670
6. जोशी, पी.आर. : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था : पुनर्रचना के नये आयाम, आर.एस. रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2000, पृ. 210
7. गुप्ता, भवानी सेन : इण्डिया–प्रॉबलम्स ऑफ गवर्नेन्स; कोणार्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1996, पृ. 104

8. कोस्टा, ई.पी. डब्ल्यू.डी. : रुट ऑफ चेन्ज इन पापुलर वोट : द हिन्दु; 17 मार्च 1967
9. जोशी, पी.आर. : पूर्वोद्धृत, पृ. 211
10. Moraes, Dom : Smt. Gandhi, Vikash Publishing House, New Delhi, 1980, P.321
11. नायर कुलदीप : चरन सिंह मई स्ट्रइस एट सेन्टर; इण्डियन एक्सप्रेस, 21 अप्रैल, 1979, पृ. 1
12. प्रसाद, डॉ. गणेश एवं आनन्द कुमार : भारतीय राजनीति मे संविद सरकारों का उद्भव व विकास एक मूल्यांकन, द यू.पी. जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइन्स, नवम्बर–1-II 2003–2009, (जनवरी–दिसम्बर), पृ. 86
13. कोठारी, रजनी : भारत में राजनीति कल और आज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 214
14. आई.सी.एस.एस.आर.–सी.एस.डी.एस. इण्डिया टुडे विशेष जनमत सर्वेक्षण, इण्डिया टुडे, 31 अगस्त, 1996, पृ. 26
15. Sathe, Vasant : Restructuring of Indian Political System and Agenda' in D. Sundar Ram (ed.) : Indian Demoeracy : Prospects and Retroshpect, 1996, P. 161
16. The Times of India, (Editorial), Lucknow, 10th Sep. 2004, P. 17
17. जायसवाल, डॉ. रामकृष्ण : भारतीय राज्यों में शासन एवं राजनीति, शांति प्रकाशन, फैजाबाद, 1994, पृ. 213–214

गठबंधन की राजनीति : स्वरूप एवं संभावनाएँ (जनादेश 2019 के संदर्भ में)

jtuhdkr frokjh

Ikjk'k% भारत जैसे विशाल, विविधतापूर्ण, बहुलवादी, सामाजिक व सांस्कृतिक ढांचे वाले राष्ट्र में किसी एक राष्ट्रीय दल के प्रभुत्व एवं वर्चस्व की उम्मीद नहीं की जा सकती। हालांकि स्वतंत्र भारत के पहले चार दशकों में ऐसा नहीं था। लेकिन 1967 के पश्चात् एक दलीय प्रभुत्व के दौर का अवसान होने लगा और देश की राजनीति पर गठबंधनों का वर्चस्व कायम होने लगा जिसकी सर्वोच्च परिणति 70 के दशक से वर्तमान काल तक दिखती है। पिछले 25 वर्षों में हमारे यहाँ 10 सरकारें केन्द्र की सत्ता में आयीं जिनका औसत कार्यकाल ढाई वर्ष रहा। इनमें से केवल चार बहुदलीय गठबंधन सरकारें ही अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा कर सकीं और उन्हें भीतर एवं बाहर से समर्थन दे रही पार्टियों के बदलते रूप के कारण उतार चढ़ाव का सामना करना पड़ा। ऐसा कहा जाता है कि राजनीति में कुछ भी स्थायी नही होता। वर्ष 2014 एवं 2019 के लोकसभा चुनाव में मिले भाजपा को पूर्ण बहुमत से गठबंधन की संभावना क्षीण होने लगी किन्तु 2015 के बिहार विधानसभा चुनाव में महागठबंधन के सफल प्रयोग एवं 2019 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की ऐतिहासिक जीत के बावजूद संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) को भी तमिलनाडु एवं उसके नेतृत्व वाले यूडीएफ को केरल में मिली भारी कामयाबी से गठबंधन की राजनीति की प्रासंगिकता बनी हुई है क्योंकि गठबंधन की राजनीति से लोकतंत्र की अभी भी अपनी आकांक्षाएं हैं। राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर चुनाव पूर्व एवं चुनाव पश्चात् बने गठबंधन का उद्देश्य यदि राज्य एवं देश का विकास है तो यह लोकतंत्र के मूल भावना को तराशने जैसा होता है लेकिन केवल अपनी कुर्सी बचाने, समुदाय विशेष का वोट पाने और दल विशेष को जीतने से रोकने के उद्देश्य से गठबंधन कर नकारात्मक राजनीति का सबूत दिया जाता है तो यह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नहीं है।

प्रस्तावना

सत्राहवीं लोकसभा के लिए 2019 का जनादेश क्या वास्तव में गठबंधन-महागठबंधन के राजनीति की अवसान है या इसके मूल में कुछ और ही है। उत्तरप्रदेश में सपा,

बसपा, राष्ट्रीय लोकदल, बिहार में कांग्रेस, राजद, वीआईपी, रालोसपा और कर्नाटक में कांग्रेस, जनता दल (एस) को मिली करारी हार के मद्देनजर यह बात असानी से कहीं जा सकती है। 16वीं लोकसभा 2014 के जनादेश ने भी गठबंधन राजनीति की प्रकृति को परिवर्त्तित किया था और गठबंधन के युग में एकदलीय प्रधानता को स्थापित किया था। ऐसी स्थिति में गठबंधनीय राजनीति के अवसान का प्रारंभ एवं उसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न उठना स्वभाविक है? इस प्रश्न का सम्पूर्ण विश्लेषण करने से पहले यह जानने की आवश्यकता है कि गठबंधन की राजनीति क्या है? तथा विगत् वर्षों में इसका स्वरूप कैसा रहा है?

गठबंधन का अर्थ

भारत जैसे विशाल, विविधतापूर्ण, बहुलवादी, सामाजिक व सांस्कृतिक ढांचे वाले राष्ट्र में किसी एक राष्ट्रीय दल के प्रभुत्व एवं वर्चस्व की उम्मीद नहीं की जा सकती। बहुदलीय व्यवस्था वाले संसदीय लोकतंत्र में (जैसे भारत) में तो यह और भी मुश्किल रहा है। जब राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करने के लिए निर्वाचन प्रक्रिया में भाग लेते हैं और किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो सरकार बनाने का संकट उत्पन्न हो जाता है। ऐसे में राजनीतिक दलों द्वारा गठबंधन सरकार के गठन की आवश्यकता एवं विवशता उत्पन्न होती है और मिले-जुले मंत्रिमंडल का निर्माण किया जाता है। छोटे-छोटे समूह अथवा समान विचारधारा के दल जब एक मंच पर अपने व्यापक मतभेदों को भुलाकर न्यूनतम साझा कार्यक्रम के लिए एक साथ जुड़ते हैं, और इस प्रकार बहुमत का सृजन करते हैं तो इसे ही गठबंधन कहा जाता है। ऐसी सरकार संयुक्त सरकार, गठबंधन सरकार, साझा सरकार, संविद सरकार जैसे नामों से जानी जाती है। प्रो. ऑग के अनुसार, मिली-जुली सरकार एक ऐसी सहयोगी प्रबंध का नाम है जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमंडल के निर्माण के लिए एक हो जाते हैं।[1] संविद शब्द लैटिन भाषा के *कोएलिशियों* से लिया गया है जो *कोएलिशियर* का शाब्दिक सार है, जिसका अर्थ एक साथ मिलकर विकास करना होता है।[2] संविद शब्द गठबंधन का ही पर्याय है जो विशेष उद्देश्य के प्राप्ति हेतु बनाया जाता है। गठबंधन राजनीति अथवा सरकार की प्रकृति भी अजीब होती है। गठबंधन सरकारों में, 'मतभेद के बावजूद एक समवेत स्वर' होता है। ऊपर से देखने पर गठबंधन सरकारें चाहे कितनी ही ठोस प्रतीत हो, उसके अंदर मतभेद के स्वर विद्यमान रहते हैं। भागीदार दलों के बीच ये राजनीतिक मतभेद ही तो दलों को अपना अलग-अलग राजनीतिक अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देते हैं। गठबंधन की सरकारें, सम्मिलन की राजनीति (Coliation Politics) का परिणाम होती है और विभिन्न राजनीतिक दल सम्मिलन की इस राजनीति को चुनाव के पूर्व या चुनाव के पश्चात अपनाते हैं। सम्मिलन की इस राजनीति को अपनाने का विशिष्ट निहितार्थ होता है। जब कोई राजनीतिक दल अकेले बहुमत प्राप्त कर सरकार निर्माण में विफल होता है तो वह

चुनाव पूर्व गठबंधन करती है ताकि बहुमत प्राप्त कर सरकार बनाए। इस प्रक्रिया में अवसरवादिता का तत्व कम होता है तथा समान विचार एवं साझे कार्यक्रम पर गठबंधन बनते हैं लेकिन जब निर्वाचन में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता हैं तो सरकार निर्माण के लिए गठबंधन बनता है। जिसमें अवसरवादिता के तत्व अथवा सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष दृष्टिगोचर होता है। यह संघर्ष अंततः गठबंधन को ही कमजोर कर देता है। परिणाम स्वरूप सरकारों के अस्थायी हो जाने की संभावना बढ़ जाती है। इससे हार्स ट्रेडिंग की घटनाएँ घटित होने लगती हैं, छोटे-छोटे राजनीतिक दलों द्वारा ब्लैकमेलिंग एवं बारगेनिंग की राजनीति बढ़ जाती है जो अंततः लोकतंत्र के आदर्श एवं मूल्यों को कमजोर करने का ही कार्य करती है।

गठबंधन के प्रतिमान

भारत जैसे विशाल विविधता वाले देश में गठबंधन या मिली-जुली या संयुक्त सरकारों के कई स्वरूप या प्रतिमान प्रचलन में रहे हैं। सर्वप्रथम, एक दल की प्रधानता वाला गठबंधन-जिसमें एक राजनीतिक दल की प्रधानता होती है जबकि अन्य छोटे-छोटे राजनीतिक दल उस दल के साथ जुड़ जाते है। यह छोटे राजनीतिक दल सरकार के जीवन तथा कार्यकरण को प्रभावित तो करते है, लेकिन नियंत्रित नहीं कर पाते हैं। यदि यह छोटे दल सरकार या गठबंधन से बाहर भी निकल जायें तो सरकार बनी रहती है। 1981-2000 के वर्षों में ज्योति बसु के नेतृत्व में पश्चिम बंगाल की मिली-जुली सरकार इस प्रतिमान के उदाहरण है।[3] वर्तमान में 2014 एवं 2019 की एनडीए की सरकार भी इसका उदाहरण है जिसमें यदि सहयोगी दल बाहर भी चले जाये तो भाजपा की बहुमत वाली सरकार की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ता है।

गठबंधन का दूसरा प्रतिमान तब दिखता है जब परस्पर दो समान शक्तिशाली दलों का आपस में गठबंधन होता है। यह गठबंधन चुनाव पूर्व ही बना लिया जाता है। केरल की राजनीति इसका उदाहरण है। केरल में मुख्यतः दो गठबंध्न ही दिखते हैं– संयुक्त लोकतांत्रिक गठबंधन जिसका नेतृत्व कांग्रेस द्वारा किया जाता है और दूसरा संयुक्त वाम मोर्चा गठबंधन जिसका नेतृत्व मार्क्सवादी दल के द्वारा किया जाता है।[4]

गठबंधन का एक तीसरा प्रतिमान या स्वरूप भी दिखता है जो निषेधात्मक आधार पर गठित होता है। यह अनेक राजनीतिक दलों का ऐसा गठबंधन होता है जिसमें भागीदार दल किसी अन्य राजनीतिक दल को अपने समान और शक्तिशाली शत्रु मानते हैं तथा उस शक्तिशाली शत्रु को सत्ता से दूर रखने के लिए गठबंधन की राजनीति को अपनाते हैं। इस प्रकार के गठबंधन में शामिल दलों के बीच समान राजनीतिक विचारधारा का तत्व नहीं होता। 1967-70 के वर्षों में भारतीय संघ के कुछ राज्यों में गैर कांग्रेसवाद या कांग्रेस विरोध को आधार बनाकर गठबंधन सरकारों का गठन हुआ था। भारत में अबतक जब कभी केन्द्र में गठबंधन सरकारों का गठन हुआ तो उसका आधार निषेधात्मक था। 1996 के पूर्व कांग्रेस विरोध के आधर पर गठबंधन बने थे जबकि

ग्यारहवीं लोकसभा निर्वाचन के बाद भाजपा विरोध के आधार पर गठबंधन बना। बिहार में वर्ष 2015 में बना भाजपा विरोध के आधार पर महागठबंधन (जदयू, राजद, कांग्रेस) एवं 2019 के आम चुनाव में उत्तरप्रदेश में बना सपा-बसपा गठबंधन ने राजनीतिक विचारधारा को तिलांजलि दे दी। इन गठबंधनों में अवसरवादिता का तत्व अधिक था।[5]

गठबंधन का चौथा स्वरूप या प्रतिमान राष्ट्रीय सरकार के रूप में होता है। इस राष्ट्रीय सरकार का गठन तब होता है जब देश पर कोई बाहरी आक्रमण या अन्य गंभीर चुनौती की समस्या खड़ी हो जाती है तब सभी प्रमुख राजनीतिक दल मिल-जुल कर सरकार का गठन करते हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय ब्रिटेन में राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ था। इस सरकार में प्रधानमंत्री थे अनुदार दल के नेता विन्स्टन चर्चिल और उप प्रधानमंत्री थे मजदूर दल के नेता क्लिमेंट एटली। भारत में राष्ट्रीय सरकार के गठन की बात कुछ परिस्थितियों में (1979, 1996 और 1997) विभिन्न स्तरों पर चलीं लेकिन अब तक कभी राष्ट्रीय सरकार का गठन नहीं हुआ।[6]

भारत में गठबंधन राजनीति का स्वरूप

समान्यतः ऐसा माना जाता है कि द्विदलीय व्यवस्था में एकदलीय सरकारों का गठन होता है जबकि बहुदलीय व्यवस्था में किसी भी राजनीतिक दलों को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने के कारण गठबंधन सरकारों का गठन होता है। जहाँ तक भारत में गठबंधन सरकारों की गठन की बात है तो यहां सबसे पहले गठबंधन सरकार स्वतंत्रता के ठीक बाद 1947 में बनी थी, जब सत्ता का हस्तांतरण हुआ था और देश में अंतरिम सरकार गठित हुई थी। उसके बाद देश में हुई चुनावी राजनीति में विभिन्न दलों की भागीदारी कहीं पीछे छूट गयीं और चाहे संसदीय चुनाव हो या विधानसभा चुनाव हर जगह कांग्रेस ने अपने बल पर सरकार बनायी। 1971-76 के वर्षों में और पुनः 1980-88 के काल में केन्द्र तथा अधिकांश राज्यों में कांग्रेस की प्रधनता का युग रहा जहाँ गठबंधन राजनीति की कोई संभावना नही थी।[7]

परंतु 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में कांग्रेस के विरूद्ध बगावत के स्वर उभरे जिसके पफलस्वरूप 1967 में कई राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें बनीं जो गठबंधन सरकारें थीं। 1962 में चीन के हाथों भारत की पराजय, निरंतर बढ़ती हुई महंगाई, नेहरू के बाद कांग्रेस में करिश्माई नेतृत्व का अभाव एवं डॉ. लोहिया के गैर कांग्रेसवाद की नीति के कारण कांग्रेस पार्टी केन्द्र में कमजोर होती चली गयी परिणामस्वरूप 1967-70 के काल में हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, बिहार, केरल और पंजाब में गठबंधन सरकारों का गठन हुआ।[8] यह वह काल था जब कांग्रेस के प्रभुत्व का अवसान हुआ तथा राज्यों की राजनीति में गठबंधन सरकारों के नवीन युग का श्रीगणेश हुआ।

राज्यों की गठबंधन राजनीति के बाद केन्द्र भी गठबंधन की राजनीति से अछूता नहीं रहा। 1977 में जनता पार्टी की सरकार से गठबंधन राजनीति का सिलसिला केन्द्र

में शुरू हुआ था क्योंकि इस पार्टी के निर्माण में जनसंघ, भारतीय क्रांतिदल, समाजवादी पार्टी, बागी कांग्रेसी नेताओं सहित भॉति-भॉति के रंगों वाली इंदिरा विरोधी शक्तियों ने भूमिका निभाई थी।[9] परंतु व्यवहार में घटक दलों के बीच परस्पर मतभेद और खींचतान की स्थिति बनी रही तथा संसदीय मानकों की प्रतिष्ठा की गंभीर क्षति देखी गयी। प्रथम बार गैर-कांग्रेसी गठबंधन सरकार का यह अल्पकालीन कार्यकाल था। पुनः 1979 में कांग्रेस पार्टी का बाहर से समर्थन प्राप्त कर श्री चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में गैर-कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ किन्तु मात्रा 23 दिन में ही इस सरकार का भी पतन हो गया। दलीय स्वार्थ, आपसी मतभेद तथा सहयोगी दलों की महत्वकांक्षा इस गठबंधन सरकार के अंत का कारण बना।

राष्ट्रीय मोर्चा (नेशनल फ्रंट) (1989-91) की सरकार न केवल गठबंधन बल्कि एक अल्पमत सरकार थी। गैर कांग्रेसवाद के आधार पर गठित यह सरकार जनता दल के नेतृत्व में बना गठबंधन था जिसके अध्यक्ष एन.टी.रामाराव एवं संयोजक वी.पी.सिंह थे। अन्य सहयोगी दल थे– तेलगूदेशम पार्टी, दविड़ मुनेत्रा कड़गम, असम गण परिषद्, इंडियन कांग्रेस (सोशलिस्ट)। वी.पी.सिंह के नेतृत्व में इस सरकार को बाहर से भाजपा एवं लेफ्ट फ्रंट का समर्थन प्राप्त था। यह सरकार स्वयं अपने आंतरिक गुटबंदी का शिकार हो गयी, बाद में भाजपा द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण यह सरकार गिर गयी। वी.पी. सिंह मंत्रिामंडल के त्याग के बाद जनता दल से अलग होने वाले गुट जनता दल (सोशलिस्ट) के नेता श्री चंद्रशेखर ने नवम्बर 1990 में कांग्रेस के बाहर से समर्थन के बल पर अति अल्पमत सरकार का गठन किया। इंका नेतृत्व के साथ मतभेद हो जाने के कारण चंद्रशेखर सरकार ने त्यागपत्र दे दिया किन्तु दसवीं लोकसभा चुनाव सम्पन्न होने (जून 91 के मध्य) तक यह सरकार पदारूढ़ रही। जून 1991 में अल्पमत होने के बावजूद कांग्रेस ने अन्य दलों के सहयोग से अपने सरकार का नरसिम्हा राव के नेतृत्व में पांच साल कार्यकाल पूरा किया।[10]

ग्यारहवीं लोकसभा चुनाव (अप्रैल-मई 1996) ने सम्पूर्ण अर्थो में खंडित जनादेश तथा त्रिशंकु लोकसभा को जन्म दिया। भाजपा को सबसे बड़े दल की स्थिति प्राप्त थी। भाजपा ने अपने सहयोगी दलों शिवसेना, समता पार्टी, अकाली दल और हरियाणा विकास पार्टी को लेकर एक गठबंधन की सरकार बनायी लेकिन लोकसभा में बहुमत सिद्ध न कर पाने के कारण 13 दिन में सरकार गिर गयी। वाजपेयी सरकार के पतन के बाद, संयुक्त मोर्चे (यूनाइटेड फ्रंट) की सरकार बनी। 1996 के चुनाव के बाद 13 दलों को मिलाकर संयुक्त मोर्चा नामक गठबंधन बना जिसमें जनता दल, समाजवादी पार्टी, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, तेलगू देशम पार्टी, असोम गंग परिषद् ऑल इंडिया इंदिरा कांग्रेस (तिवारी) वाम मोर्चा (4 दल), तमिल मनीला कांग्रेस, नेशनल कांफ्रेंस एवं महाराष्ट्रवादी गोमतांक पार्टी। यह गठबंधन 1996-98 के बीच दो सरकारों का गठन किया जिसमें जनता दल के एच. डी. देवगौड़ा (अप्रैल 1996) पहले प्रधनमंत्री बने जबकि आई. के. गुजराल दूसरे प्रधानमंत्री बने। दोनों सरकारों को बाहर से कांग्रेस एवं तेलगूदेशम पार्टी का समर्थन प्राप्त था।[11] दोनों सरकार अल्पमत सरकारें थीं जिनका

कांग्रेस एवं मार्क्सवादी दलों ने बाहर से समर्थन दे रखा था। इसके गठबंधन का आधार निषेधात्मक था अर्थात सरकारों के गठन का मूल आधार भाजपा विरोध था जिसका घोषित उद्देश्य सांप्रदायिकता का विरोध और पंथ निरपेक्षता की रक्षा बताया गया। यह गठबंधन बेमेल था। दोनों सरकारों में वामपंथी, दक्षिणपंथी और मध्यममार्गी सभी विद्यमान थे जिसके कारण इनमें वैचारिक एकता एवं साम्य जैसी स्थिति नहीं थी। सरकार गठन का आधार न्यूनतम साझा कार्यक्रम था लेकिन स्वार्थलोलुप राजनीति एवं अवसरवादिता ने सरकारों को स्थायी नहीं रहने दिया।

12वीं लोकसभा चुनाव मार्च 1998 में हुआ परिणाम खंडित जनादेश एवं त्रिशंकु संसद की स्थिति उत्पन्न हुई। चुनाव पश्चात 19 दलों का सबसे बड़ा गठबंधन एन. डी.ए. बना जिसमें प्रमुख घटक दल थे– शिवसेना, शिरोमणी अकाली दल, हरियाणा लोकदल, एआईएडीएमके, बीजू जनता दल, हरियाणा लोकदल, एआईएडीएमके, तृणमूल कांग्रेस, पीएमके, एमडीएमके, नेशनल कॉनप्रेंफस, समतापार्टी, जनतापार्टी, तेलगूदेशम पार्टी। लेकिन 18 सीटों वाली एआईएमडीएमके की नेता जयललिता समर्थन वापसी के कारण यह सरकार भी 13 महीनें बाद अप्रैल 1999 में गिर गयी।[12] विभिन्न मांगों को लेकर जयललिता ने प्रारंभ से ही दबाव बनाना शुरू कर दिया था जो सरकार के लिए पूर्ण न करना एक मजबूरी थी। यह सरकार क्षेत्रीय आकांक्षा वाली स्वार्थलोलुप राजनीति को भेंट चढ़ गयी।

13वीं लोकसभा का चुनाव 1999 में भाजपा ने 24 सहयोगी दलों के सामान्य मेनिफिस्टों पर लड़ा जिसमें एन.डी.ए. को पूर्ण बहुमत (543 में 305) मिला। भाजपा सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी और वाजपेयी एक बार पुनः देश के प्रधानमंत्री बने। वाजपेयी के नेतृत्व में एनडीए सरकार ने कुशलतापूर्वक अपना कार्यकाल पूरा करते हुए लगभग आठ माह पूर्व लोकसभा चुनाव कराने का फैसला लिया । इससे पूर्व 24 घटक दलों के इस गठबंधन को नेशनल कॉन्फ्रेंस, लोकजनशक्ति पार्टी, द्रमुक, पीएमके, भारतीय राष्ट्रीय लोकदल जैसे घटक छोड़कर चले गए फिर भी वाजपेयी सरकार का बहुमत बना रहा। वाजपेयी ने गठबंधन, अर्थव्यवस्था और देश में नयी जान फूंकी। राजनीतिक प्रबंधन में उनकी सहनशीलता ने देश में स्थिरता और समृद्धि का संचार किया। एकता के इस सूत्रधार ने भारत में गठबंधन का नया धर्म स्थापित किया। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सैद्धांतिक विविधता में एकता का पहला सक्रिय प्रयोग साबित हुआ। घटक दलों को खुश करने के लिए खजाने की चतुराई भरे प्रयोग ने संघीय व्यवस्था को नई परिभाषा दी।[13]

14वीं लोकसभा चुनाव (2004) में कांग्रेस ने एक वैकल्पिक गठबंधन का निर्माण किया। कांग्रेस के सहयोगी 15 दलों के प्रमुख थे– द्रमुक, राजद, तेलंगाना राष्ट्र समिति, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, पीएमके, एडीएमके, झारखंड मुक्ति मोर्चा पीडीपी, लोकतांत्रिक जनशक्तिपार्टी आदि।[14] कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) (222 सीटें) ने बहुमत के साथ सरकार बनायी। मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने।

पुनः अप्रैल मई 2009 में 15वीं लोकसभा चुनावों में जनादेश गठबंधन सरकार के पक्ष में गयीं और यूपीए सरकार की वापसी हुई। चुनावों मे यूपीए को 262 सीटें प्राप्त हुईं और कांग्रेस, द्रमुक, तृणमूल कांग्रेस, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, जम्मू-काश्मीर नेशनल कांफ्रेंस तथा मुस्लिम लीग की साझा सरकार बनी जिसे समाजवादी पार्टी का बाहर से समर्थन प्राप्त था। यूपीए प्रथम में वामपंथी दलों ने बाहर से समर्थन दिया था किन्तु प्रारंभ से ही सरकार पर दबाव बनाए रखा जिसकी सबसे अच्छी परिणति मनरेगा जैसे गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रम की शुरूआत रही तथापि परामाणु मुद्दे के समझौते पर वामपंथी दलों ने 2008 में सरकार से समर्थन वापस ले लिया। हालांकि इससे सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जबकि यूपीए के द्वितीय कार्यकाल में घटक दल सौदेबाजी की राजनीति में लिप्त रहे जो गठबंधन के बुनियादी सिद्धांत के विरूद्ध रहा। अपने दूसरे कार्यकाल में सरकार घोटालों में उलझी रही जो गठबंधन को मिले जनादेश को तेजी से कमजोर करता रहा। अंततः 2014 के आम चुनाव में गठबंधन राजनीति को इसकी कीमत चुकानी पड़ी।

केन्द्र में क्षेत्रीय पार्टियों के सहयोग के बिना सरकार बने 25 वर्ष से अधिक हो गए थे और इन 25 वर्षो के उपरांत मई 2014 में 16वीं लोकसभा का निर्वाचन हुआ जिसमें श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार बनीं जिसमें पहली बार एक दल (भाजपा) को स्पष्ट बहुमत (282 सीटें) प्राप्त हुआ। 2019 के आम चुनाव में भाजपा ने अपने सहयोगी दलों के साथ पुनः एक बार प्रचंड बहुमत के साथ सत्ता में आई है जिसमें भाजपा को 303 सीटों सहित गठबंधन को 353 सीटें प्राप्त हुई हैं। 2014 में एनडीए के सहयोगी दल थे–शिवसेना, जदयू, एलजेपी, अकालीदल, आरएलएसपी, एनपीपी, अन्नाद्रमुक जबकि यूपीए के सहयोगी थे– रांकापा, राजद, आईयूएमएल, झारखंड मुक्तिमोर्चा, केसीएम, जेडीएस। अन्नाद्रमुक और जेडी (एस) 2014 में अलग थे लेकिन 2019 के चुनाव में अन्नाद्रमुक एनडीए में तो जेडी (एस) यूपीए में शामिल रहीं। वहीं टीडीपी 2014 में एनडीए के साथ थी। आरएलएसपी 2014 में एनडीए के साथ थी लेकिन 2019 में यूपीए के गठबंधन में शामिल हो गयी।[15]

ऐसा नहीं था कि 2014 के आमचुनाव में भाजपा को पूर्ण बहुमत मिलने के बावजूद गठबंधन की राजनीति पर अंकुश लग गयी। वर्ष 2018 आते-आते एनडीए के घटक दलों में भाजपा के रूख को लेकर नाराजगी बढ़ने लगी। तीन तलाक के मुद्दे को लेकर तेलगुदेशम पार्टी ने सरकार की जगह विपक्ष में जाना मुनासिब समझा। आंध्रप्रदेश को विशेष राज्य का दर्जा देने की मांग टीडीपी ने केन्द्र से माँगी जो पूरी न हो सकी। महाराष्ट्र में भाजपा के सबसे भरोसेमंद सहयोगी रही शिवसेना ने तो खुले तौर पर भाजपा के खिलाफ नियमित अंतराल पर आग उगलती रही। महाराष्ट्र से ही एनडीए के सहयोगी रामदास आठवाले केन्द्रीय मंत्री बनने हेतु दबाव बनाते रहे। बिहार में नीतीश कुमार ने भाजपा में मोदी विरोधी के रूप में नजर आयें और 2015 के विधानसभा चुनाव में भाजपा के विरोध में राजद के साथ महागठबंधन का निर्माण करते हुए बहुमत प्राप्त किया। हालांकि 2017 में जेदयू ने एनडीए में पुर्नवापसी की तथापि बिहार में

लोकजनशक्ति पार्टी एवं आरएलएसपी की मौजूदगी से एनडीए गठबंधन में भीतरघाती राजनीति चरम पर दृष्टिगोचर होती रही।

जनादेश 2019 एवं गठबंधन की राजनीति

17वीं लोकसभा के लिए 2019 का जनादेश क्या वास्तव में गठबंधन-महागठबंधन की राजनीति के विरूद्ध रही? उत्तरप्रदेश में सपा-बसपा राष्ट्रीय लोकदल, बिहार में कांग्रेस राजद-वीआईपी-रालोसपा और कर्नाटक में कांग्रेस जनता दल (एस) गठबंधन को मिली करारी हार एवं भाजपा को अकेले अपने बलबूते मिली 303 सीटों से यह बात असानी से कही जा सकती है तथापि कांग्रेस नीति यूपीए को भी तमिलनाडु और उसके नेतृत्व वाले यूडीएपफ को केरल में भारी कामयाबी मिली। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि गठबंधन की राजनीति अपना महत्व खो चुकी है। आज भाजपा को संसद में प्रचंड बहुमत (लोस में 353 सीटें) मिलने का कारण गठबंधन की महत्ता ही है। इस प्रचंड बहुमत में विभिन्न राज्यों (महाराष्ट्र, बिहार, उ.प्र. झारखंड आदि) में हुए चुनाव पूर्व गठबंधन का बहुत बड़ा योगदान रहा है। चुनावपूर्व गठबंधन का ही परिणाम है कि संसद में विपक्ष के रूप में यूपीए (लोस में 92 सीटें) सशक्त रूप से खड़ा है। भाजपा के विपरीत कांग्रेस रणनीतिक गठबंधन में काफी पीछे रही जो उ.प्रदेश, दिल्ली तथा अन्य राज्यों में सहयोगी दलों के साथ गठबंधन न कर सकी। यूपीए के नेता भूल गए कि उनके सामने एक सशक्त संगठनकर्ता एवं रणनीतिकार युक्त पार्टी है जिसके विरूद्ध सामाजिक समीकरण खड़ा करने में वे चुक गए। भाजपा ने गठबंधन की राजनीति में सवर्णों के साथ ही गैर यादव ओबीसी और गैर जाटव दलित जातियों को लामबंद करने की रणनीति में सफल रहे। राष्ट्रवाद एवं सुरक्षा की राजनीति ने एनडीए के प्रचंड बहुमत में चार चाँद लगा दिये। इसका खामियाजा यूपीए गठबंधन को हार के रूप में भुगतना पड़ा।

निष्कर्ष

तथापि निष्कर्षतया यह कहा जा सकता है कि राजनीति की प्रयोगशाला में गठबंधन की राजनीति अभी भी जारी है। हालांकि इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ हैं। राष्ट्रीय फलक पर नब्बे का वह दौर नहीं रहा जब राष्ट्रीय सरकारें गठबंधन की राजनीति से बनती बिगड़ती थी। विगत् दो आम चुनावों (2014 एवं 2019) में जनता ने एक राष्ट्रीय दल को सशक्त जनादेश देकर यह संदेश दे दिया कि देश के विकास के लिए स्थायी सरकार का होना आवश्यक है। तथापि चुनाव पूर्व राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों के बीच हुए गठबंधन से यह बात सिद्ध होती है कि निषेधात्मक ही सही, सत्ता प्राप्ति हेतु गठबंधन की राजनीति जारी रहेगी। भारतीय राजनीति की यह विडंबना है कि दो अलग विचारधारा वाली पार्टियाँ भी एक साथ आने से गुरेज नही करती चाहे वह बंगाल में कांग्रेस-कम्युनिस्ट पार्टी की बात हो या बिहार में महागठबंधन के जदयू-राजद की। 2019 के आम चुनाव में तो उत्तरप्रदेश में सपा-बसपा गले मिल गए। यह अवसरवादी राजनीति की पराकाष्ठा

थी। अगर ये दल राज्य एवं देश में विकास के उद्देश्य से गठबंधन करें तो यह लोकतंत्र की मूल भावना को तराशने जैसा होता लेकिन केवल अपनी कुर्सी बचाने, समुदाय विशेष का वोट पाने और दल विशेष को जीतने से रोकने के उद्देश्य से गठबंधन कर नकारात्मक राजनीति का सबूत दिया जाता है तो यह लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नही है। तथापि हमें इस सच्चाई को स्वीकार करना होगा कि देश की राजनीति गठबंधन के ऐसे दौर में पहुंच गयी है, जहां से इसकी वापसी आने वाले कुछ दशकों में संभव नहीं लगती। यही नही प्रत्येक निर्वाचन के पश्चात केन्द्र एवं राज्य में गठबंधन की राजनीति और भी जटिल होती जायेगी। इसलिए इस जटिलता को भगाने के बजाय यदि हम इसके चुनौतियों को स्वीकार करें, तो देश के लोकतंत्र को ज्यादा लाभ होगा।

संदर्भ सूची

1. डॉ. फाड़िया, बी.एल. एवं डॉ. कुलदीप फाड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्यभवन आगरा, 2019, पृ. 674
2. डॉ. मिश्रा, वीणा गोपाल, गठबंधन की राजनीति, एस. आर. पब्लिकेशन, गाजियाबाद, 2013, पृ. 10
3. डॉ. फाड़िया वी.एल.एवं डॉ. कुलदीप फाड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन आगरा, 2019, पृ. 675
4. यथोक्त पृ. 676
5. यथोक्त पृ. 676
6. यथोक्त पृ. 676
7. करूणाकरन, के.पी., कोलेशन गवर्नमेंट इन इंडिया, 1975, इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज, शिमला पृ.-22
8. डॉ. मिश्रा, वीणा गोपाल, गठबंध्न की राजनीति, एस.आर. पब्लिकेशन, गाजियाबाद, 2013, पृ. 55
9. यथोक्तः
10. आहूजा, एम.एल., इलेक्टोरल पॉलिटिक्स एंड जनरल इलेक्शन इन इंडिया, 1952-1998, शिमला पब्लिकेशन, 1998, पृ.-9
11. यथोक्त पृ.10-11
12. द टाइम्स ऑफ इंडिया, वीजेपी वन वोट डिपिफट इन 1999 वाज नेरोवेस्ट इन हिस्ट्री, 22 जूलाई, 2008
13. डॉ. फाड़िया बी.एल. एवं डॉ. कुलदीप फाड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, 2019, पृ. 691
14. देखें इंडिया टुडे, मोदीमय भारत, विशेषांक, 5 जून 2019
15. देखें आउटलुक, सरकार 2.0, 17 जून 2019
16. यथोक्तः

गठबंधन राजनीति में भारतीय प्रशासन का बदलता स्वरूप

प्रवीण कुमार झा

Ikjk'k% गठबंधन राजनीति का आशय 'एक दलीय प्रभुत्व' वाली दलीय प्रणाली से पृथक विभिन्न दलों के सहयोग व भागीदारी से राजनीति को गतिमान बनाना है। भारतीय राजनीति की गहरी पड़ताल करें तो स्पष्ट होता है कि यहाँ बहुत सारी चुनौतियों के बावजूद गठबंधन राजनीति ने सफलतापूर्वक कार्य किया है। बहरहाल वर्तमान में स्थित एनडीए सरकार गठबंधन राजनीति का एक नायाब उदाहरण प्रस्तुत कर रही है। 17वीं लोकसभा में प्रचंड बहुमत के बाद भी सत्ताधारी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) द्वारा अपने सहयोगियों को साथ लेकर चलने की रणनीति ने गठबंधन धर्म की पवित्रता को कायम रखा है। लेख के पहले भाग में भारत में दलीय प्रणाली के विकास को इंगित किया गया है। दूसरे हिस्से में नब्बे के बाद के उसके विकास को देखा गया है। तीसरे हिस्से में समाजवैज्ञानिक सुहास पलष्किर द्वारा प्रस्तुत 'सेकेंड डोमिनेंट पार्टी सिस्टम' की संकल्पना को प्रस्तुत करते हुए गठबंधन राजनीति में उभर रहे इस प्रतिमान पर विचार किया है। लेख का चौथा हिस्सा वर्तमान सरकार की मैक्सिमम गवर्नेंस मिनिमम गवरमेंट व भारतीय प्रशासन के प्रति अपनाये गये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है।

प्रस्तावना

भाग- I

भारतीय दलीय राजनीति : एक सफरनामा

भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारतीय राष्ट्र व शक्तिशाली संपन्न राज्य के कार्यात्मक उपकरण के रूप में संघवाद को शुमार किया। इसके साथ-साथ आजादी के बाद के भारतीय नेताओं के समक्ष बाहरी व आंतरिक सुरक्षा के कवच के रूप में भी भारतीय शासन व्यवस्था में एक मजबूत संघवाद के संस्थानीकरण पर बल दिया गया। इन दोनों ही स्थितियों ने भारत में संघीय व्यवस्था को व्यावहारिक पटरी पर लाने में

योग दिया। इस रूप में भारत में दलीय प्रणाली के सफर व कार्य गतिकी को मोटेतौर पर दो भाग में बांट कर देखा जा सकता है। पहले हिस्से में 1952 से 1990 तक की दलीय राजनीति व दूसरे हिस्से में नब्बे के बाद से अब तक के दलीय राजनीति व उससे जुड़ी प्रवृत्तियों को रेखांकित किया जायेगा।

प्रथम चरण-1952–1990, इस चरण के अंतर्गत भारतीय दलीय प्रणाली में 1952 से 1967 तक के काल को देखा जा सकता है। जिसे समाजशास्त्री रजनी कोठारी ने 'कांग्रेस सिस्टम' व मोरिस जोंस ने 'एक दलीय प्रभुत्व' तथा इसी को समकालीन राजनीति वैज्ञानिक ई. श्रीधरन 'कांग्रेस हेजोमॉनी' कहते हैं। इसके अंतर्गत निश्चित तौर पर सर्वशक्तिमान अभिजन के हाथ में ही सत्ता की कमान थी। कांग्रेस पार्टी 1950 व 1960 के चुनावी क्षीतिज में शीर्ष पर थी। इसने सभी राष्ट्रीय व तकरीबन सभी राज्य स्तरीय चुनाव भी जीते। इस दौरान कांग्रेस पार्टी के संदर्भ में कांग्रेस सिस्टम[1] शब्द भी इजाद किया गया था। इस दौरान नेहरू का रवैया स्कूल के उस मास्टर जैसा था जो राज्य के मुख्यमंत्री से प्रत्येक महीने राज्यों के संदर्भ में सूचनाएँ मांगते थे व राष्ट्रीय सहमति बनाने के संदर्भ में उनके मत व सहयोग की अपेक्षा करते थे।[2] इसके माध्यम से नेहरू स्थानीय व क्षेत्रीय नेताओं को राष्ट्रीय शक्ति संरचना में सहयोजन के रूप में देखते थे। इस रूप में कांग्रेस की भूमिका एक पर्यवेक्षक के रूप में थी।[3]

1967 के बाद भारतीय दलीय प्रणाली में कांग्रेस पार्टी की बहुमत में तेजी से गिरावट हुई। कांग्रेस पार्टी केन्द्र में जहाँ साधारण बहुमत पर सिमट गई वहीं 1967 के ग्रीष्म तक 17 राज्यों में से आठ महत्वपूर्ण राज्यों में कांग्रेस की सरकार को पराजय का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय राजनीति में इस काल में केंद्र व राज्यों के बीच विवादों के उपरांत भी आपसी सहयोग बना रहा और सहयोगी संघवाद की गुंजाईश को कलांतर में महसूस किया जाने लगा था। चौथे आम चुनाव के पश्चात् प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को जिस तरह से क्षेत्रीय नेताओं ने समर्थन दिया वह सहयोगी संघवाद की नजीर पेश करती थी।

1971 के पाँचवे लोकसभा के उपरांत भारतीय दलीय राजनीति में एकात्मक संघवाद के रूपक भी दिखाई पड़ते हैं। कांग्रेस पार्टी के भीतर ऊपर से नीचे तक केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति व्यापक रूप से देखी गई। चुनाव में मिले बहुमत के उपरांत, गरीबी हटाओ, 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण, महाराजा के प्रीवीपर्स की समाप्ति की घोषणा करके भारतीय दलीय प्रणाली फिर से एकात्मकता की ओर प्रवृत्त हो रही थी। महत्वपूर्ण रूप से इस दौर में राजनीतिक संस्थाएँ चरमराने लगी थीं। कांग्रेस पार्टी के भीतर आंतरिक संघीयकरण की प्रवृत्ति का लोप हो चुका था। नौकरशाहीकरण की बढ़ती शक्ति, अव्यवस्था, कांग्रेस पार्टी के साख में पतन की स्थिति, राजनीति व सिविल सेवा में भ्रष्टाचार ने इंदिरा गाँधी की असुरक्षा को नैसर्गिक रूप से बढ़ाया था।[4] जून 1975 में 19 महीने के लिये किया गया आंतरिक आपात की घोषणा के समय भारतीय

दलीय प्रवृत्ति भुरभुराने लगी थी, ऐसा प्रतीत होने लगा था कि हमारी सांस्थानिक भित्ति कितनी कमजोर है। गौरतलब है कि सीमित अर्थों में ही आपातकाल ने यह दिखा दिया कि भारतीय लोकतंत्र में संघीय व्यवस्था ने अपना आत्म-शोधन का स्वयं का तंत्र विकसित कर लिया है। यही कारण है कि वह संकट के समय अपने रक्षा के औजारों का अपने ढंग से इस्तेमाल करती है।

छठे आम चुनाव के उपरांत भारतीय दलीय राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन देखा गया। केन्द्र में आसीन जनता पार्टी की सरकार के साथ राज्यों की सरकारों ने सौदेबाजी करने का प्रयास किया। वित्तीय मामलों को लेकर पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने सदैव केन्द्रीय सरकार को घेरने की कोशिश की। इस प्रकार इस वक्त सौदेबाजी संघवादी प्रवृत्तियों के उभार को देखा जा सकता है।

1980 के दशक में कांग्रेस की सरकार के गठन के बाद हुए परिवर्तनों के गाह-बगाहे भारतीय दलीय प्रणाली में सहयोगी संघवाद की प्रवृत्ति देखी गई। 1980 में पंजाब में अकाली दल जैसी क्षेत्रीय पार्टी का उभार, 1983 में केन्द्र व राज्य सरकार के बीच कटुता निपटाने के लिये सरकारिया आयोग का गठन संघीयकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं। इस दौरान 1985 में पंजाब, 1986 में असम, मिज़ोरम, 1987 में त्रिपुरा के साथ समझौते की प्रवृत्ति मील का पत्थर माना जाता है। महत्वपूर्ण है कि इस संघीयकरण की प्रवृत्ति के बावजूद इंदिरा गाँधी की तरह राजीव गाँधी के शासन में भी शासन तंत्र में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति व हेमोजिनीटी देखी गई।[5]

भाग- II

नब्बे के बाद दलीय राजनीति

1990 के बाद के काल में भारतीय दलीय राजनीति में गठबंधन युग की क्रमिक शुरुआत हो चुकी थी। गठबंधन की राजनीति की परिधि में *मंदिर, मंडल* व *मार्केट*[6] की राजनीति भी घूर्णन कर रही थी। इस बदलती फिजा में संघीय राजनीति में पनपी प्रवृत्ति देखी गई। *पहला,* जैसा कि डगलस वर्णी ने कहा है भारतीय राजनीतिक प्रणाली अर्ध-संघीय (Quasi & federal)[7] की स्थिति से आज अर्ध-परिसंघीय (Quasi & confederal)[8] स्थिति में आ गई है। गौरतलब है कि अर्ध-संघीय स्थिति में केन्द्र सरकार ज्यादा शक्तिशाली थी, जबकि आज अर्ध-परिसंघीय स्थिति में राज्य सरकारों का पलड़ा ज्यादा भारी हो गया लगता है। यह बात यहाँ महत्वपूर्ण है कि जैसे ही राज्य सरकारों का कद बढ़ता है। वह केन्द्र सरकार से प्रत्येक मुद्दे पर सौदेबाजी करती हुई प्रतीत होती है। इसी कारण इस चरण को संघीय सौदेबाजी[9] के प्रमुख रूपक के रूप में वर्णित किया जा सकता है। 1989 से 2009 तक केन्द्र में बनी सरकारें मसलन वी. पी. सिंह सरकार (1989), चंद्रशेखर (1990), पी.वी. नरसिम्हाराव (1991), एच.डी. देवगौड़ा (1996), इंद्र कुमार गुजराल (1997), अटल बिहारी वाजपेयी (1998 व 1999)

तथा मनमोहन सिंह (2004, 2009) की सरकारें जो गठबंधन की सरकारें ही थीं, सबमें संघीय सौदेबाजी देखी गई। इसके साथ ही साथ इन गठबंधन की सरकारों के कारण भ्रष्टाचार के मामले में भी बढ़ोतरी देखी गई। नरसिम्हाराव सरकार में झामुमो (झारखंड मुक्ति मोर्चा) रिश्वत कांड, मनमोहन सिंह सरकार में नोट के बदले वोट, 2 जी घोटाला जैसे बड़े मामले देखे गये। दूसरी तरफ क्षेत्रीय दलों की बढ़ती शक्ति ने पूरी राष्ट्रीय राजनीति को एक नया आयाम प्रदान किया है। उत्तर प्रदेश में बसपा, सपा, बिहार में जद (यू), राजद, तमिलनाडु में डी.एम.के, अन्नाद्रमुक, पंजाब में अकाली दल, हरियाणा में हरियाणा विकास पार्टी, महाराष्ट्र में शिवसेना, उड़ीसा में बीजू जनता दल और बंगाल में तृणमूल कांग्रेस जैसी क्षेत्रीय पार्टियों ने दो राष्ट्रीय दल कांग्रेस और भाजपा के साथ अपने-अपने हितों के अनुसार गठबंधन करके यूपीए और एनडीए का निर्माण किया। ये सभी क्षेत्रीय पार्टियाँ अपनी विशिष्ट क्षेत्रीय हित, राज्य के लिये विशेष पैकेज की मांग की, विशेष राज्य का दर्जा (बिहार) पर लगातार राष्ट्रीय दलों पर दबाव बनाती रही हैं। इन पार्टियों ने अपनी क्षेत्रीय अस्मिता को विसर्जित करते हुए गठबंधन में किसी प्रकार के *मेल्टिंग पॉट* का शिकार नहीं हुई वरन् सलाद के प्याले की धारणा को जीवंत बनाये हुई है। एन.सी.टी.सी के मामले में यूपीए के गठबंधन सहयोगी तृणमूल के विरोध को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

बहरहाल संघवादी प्रणाली के विशेषज्ञ प्रो. एम.पी सिंह 1990 के बाद की भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में बढ़ते संघीयकरण की प्रवृत्ति को प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, राज्यपाल, निर्वाचन आयोग के साथ-साथ वित्तीय संघवाद में बढ़ रही राज्यों की हिस्सेदारी के गाहे-बगाहे काफी महत्वपूर्ण मानते हैं। परंतु हमें साथ-साथ इस दौर में संघीयकरण व सहयोग के साथ-साथ तनाव व सौदेबाजी वाली प्रवृत्तियाँ भी देखी जा सकती हैं। गोरखालैंड पर्वतीय प्रशासन के लिये गठित गोरखालैंड क्षेत्रीय प्रशासन (GAT) के समय जहाँ संघीयकरण की प्रवृत्ति देखी गई वहीं बंग्लादेश से पानी के बंटवारे को लेकर केन्द्र बनाम पश्चिम बंगाल सरकार, आंतकरोधी ट्रिब्यूनल यानि एनसीटी का विवाद व मुल्लापेरियार बांध का विवाद विवादित व सौदेबाजी युक्त संघवादी राजनीति को बहाल करती है।

भाग- III

भारतीय द्वितीय प्रभुत्वशाली दलीय प्रणाली (India's Second Dominant Party System)

उत्तर प्रदेश में हुए 2017 में विधान सभा चुनाव के परिणाम में भारतीय जनता पार्टी को प्रचंड बहुमत के आलोक में भारतीय राजनीति व दलीय प्रणाली में हो रहे परिवर्तन को सुहास पलष्किर ने द्वितीय प्रभुत्वशाली दलीय प्रणाली कहा है। इस नवीन द्वितीय प्रभुत्वशाली दलीय प्रणाली का उदय 1952-67 के बीच के भारतीय राजनीति

के एक दलीय प्रभुत्वशाली दलीय प्रणाली के उपरांत एक नवीन प्रवृति के रुप में हुआ है। गौरतलब है कि इस 'द्वितीय प्रभुत्वशाली दलीय प्रणाली' के अंतर्गत भाजपा भारतीय राजनीति के केन्द्र में स्थापित हो चुकी है। इसे 2019 के चुनाव में मिले जबरदस्त बहुमत ने और मजबूती प्रदान की है। गौरतलब है कि भाजपा की इस हेजोमोनी या प्रधान्य के पीछे राष्ट्रवाद व हिन्दुत्वाद महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित है। राष्ट्रवाद को विकास के साथ संयोजित करके मोदी ने भारतीय राजनीति में एक नया विमर्श स्थापित किया है।

दिलचस्प बात है कि एक दलीय प्रभुत्व प्रणाली से अलग इस नवीन प्रणाली में क्षेत्रीय दलों व गठबंधन राजनीति के साथ एक प्रकार से सामंजस्य का भाव है जो 1952–67 के समय काल में नहीं था। हालांकि इस नवीन प्रणाली में कई बार इंदिरा गाँधी के समय के समान ही केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति भी देखी गई है।

संप्रग एनडीए सरकार गठबंधन राजनीति व भारतीय प्रशासन

17वें लोक सभा चुनाव के परिणाम कई कारणों से एक अलग नजीर प्रस्तुत करता है। एनडीए ने कुल 353 सीटें प्राप्त की जबकि विपक्षी गठबंधन यूपीए को 92 सीटें मिली। तथा अन्य को 97 सीटें प्राप्त हुईं। इन आंकड़ों को देखें तो एनडीए को 2014 के चुनाव के 354 लोकसभा सीटें मिली थीं। वहीं यूपीए को पिछली लोकसभा में 66 सीटें मिली थी जबकि इस बार 92 सीटें मिलीं। यह परिणाम कई कारणों से बहुत नवीन था। एनडीए में सर्वाधिक सीटें भाजपा को मिलीं। भाजपा को 303 सीटें मिली जबकि उनके साथ गठबंधन के लिए 11 छोटी पार्टियाँ भी शामिल हुईं। एक दलीय प्रभुत्व वाली भाजपा को अपने साथी दलों शिवसेना व जद(यू) के आगे सीटों के बंटवारे में खूब मान मनौवल करना पड़ा। यह परिदृश्य भारतीय राजनीति में एकदलीय प्रभुत्व के साथ गठबंधन के प्रति घोर आग्रह की भावना को भी प्रकट करता है।

17oh yksdlHkk dk ifj.kke

Øe l[;k	xBc/ku	lhV
1.	एनडीए	353
2.	भाजपा	303
3.	शिवसेना	18
4.	जद(यू)	16
5.	एलजेपी	6
6.	शिरोमणि अकाली दल	2
7.	एडी(एस)	2
8.	आजसू	1
9.	एमएनएफ	1
10.	आरएलटीपी	1

11.	अन्नाद्रमुक	1
12.	एनडीपीपी	1
13.	एनपीपी	1
14.	यूपीए	92
15.	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	52
16.	डीएमके	23
17.	एनसीपी	5
18.	आईयूएमएल	3
19.	जेकेएनसी	3
20.	केसीएम	1
21.	आरएसपी	1
22.	आईएनडी	1
23.	जेएमएम	1
24.	वीसीके	1
25.	जेडीएस	1
26.	अन्य	97
27.	टीएमसी	22
28	व्हाईएसआरसीपी	22
29	बीजेडी	12
30.	बीएसपी	10
31.	टीआरएस	9
32.	एसपी	5
33.	आईएनडी	3
34	टीडीपी	3
35.	सीपीएम	3
36.	एआईएमआईएम	2
37.	सीपीआई	2
38.	एनपीएफ	1
39.	एआईयूडीएफ	1
40.	आप	1
41	एसकेएम	1

स्रोत– भारत का निर्वाचन आयोग

गौरतलब है कि यूपीए की सरकार में शासन काल से ही गवर्नेंस के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन देखा जा सकता है। विशेष रूप से वीरप्पा मोइल्ली रिपोर्ट में भारतीय प्रशासन के बदलते स्वरूप पर खूब चर्चा की गई है।

मिनिमम गवर्नमेंट मैक्सिमम गवर्नेंस

नरेन्द्र मोदी की सरकार ने शुरुआती दिनों से ही *मिनिमम गवर्नमेंट व मैक्सिमम गवर्नेंस* का नारा देते हुए सरकार के आकार को छोटा करने व कार्यकुशलता लाने पर

विशेष बल दिया। (इकोनॉमिक्स टाइम्स 2014)। बहरहाल गवर्नेंस की इस शब्दावली के सैद्धांतिक पक्ष को देखना बहुत महत्वपूर्ण व रोचक होगा। आखिर क्या कारण है कि वैश्विक रूप से सभी सरकारों ने गवर्नेंस की कार्यशैली को अधिक बल दिया है।

गर्वनेंस की संकल्पना

गर्वनेंस की संकल्पना समाज में शासन, सत्ता व व्यवस्था के बदलते संदर्भ की ओर इंगित करता है। इसके अंतर्गत राज्य, सिविल सोसाईटी और बाजार एक साथ मिलकर नागरिकों को सुविधा मुहैया कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गर्वनेंस की संकल्पना को परिभाषित करते हुए कुइमन जैसे विद्वान का मानना है कि – 'अनेक देशों में हाल के वर्षों में यह प्रवृत्ति देखने को मिल रही है कि सरकार और समाज के बीच एक संबंध संतुलन को सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभाव से मुक्त करके निजी क्षेत्र के प्रभाव में ढाला जा रहा है। आंशिक रूप से इसने निजीकरण तथा यदा-कदा विनियमन की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। इसके साथ ही साथ सहभागिता, समाज कल्याण, पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा व भौतिक नियोजन जैसे क्षेत्रों में नई संभावनाओं को मूर्त रूप देने के लिये वैकल्पिक तरीका तलाशा जा रहा है'। बहरहाल इतना तो तय है कि उदारीकरण के बाद की राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था में गर्वमेंट के स्थान पर गर्नवेंस की संकल्पना मजबूती से विकसित हुई है। आज सरकार का आशय ऐसी स्वायत्तशासी नेटवर्क से है जो जनता के प्रति जवाबदेह, प्रतिबद्ध हो व जनता की समूल भागीदारी सरकारी कार्यों में देखने को मिले। यही कारण है कि रोड्स जैसे विचारकों ने सरकार के अभाव में भी गर्वनेंस *(गर्वनेंस विदाउट गर्वमेंट)* की बात की है।

बहरहाल जब भी गर्वनेंस की बात होती है राष्ट्रीय सरकार का मुख्य उद्देश्य व गंतव्य स्थान गुड गर्वनेंस ही होता है। आज हिन्दुस्तान जैसे देश में गुड गर्वनेंस को एक मॉडल के रूप में काफी वरीयता दी जा रही है।

गुड गर्वनेंस या सुशासन

शासन व्यवस्था में जब भी सुचिता लाने, उसे व्यवस्थित व कार्यकुशल करने की मंशा होती है वैसी स्थिति में गर्वनेंस का आशय गुड गर्वनेंस यानि सुशासन से ही होता है। गौरतलब है कि सर्वप्रथम सुशासन की अवधारणा को वैश्विक पटल पर 1989 में उप-सहारा अफ्रीका के मामले में लाया गया। इसके अंतर्गत सुशासन को ठोस विकासात्मक प्रबंधन के रूप में परिभाषित करते हुए यह बताया गया कि इसके अंर्तगत शक्ति का प्रयोग देश की सामाजिक-आर्थिक संसाधनों के विकास के प्रबंधन के रूप में किया गया है (विश्व बैंक, 1992 : 2)। इस दस्तावेज में सुशासन की निम्न विशेषताओं का वर्णन किया गया है :

क) सार्वजनिक क्षेत्र प्रबंधन

ख) जवाबदेही

ग) विकास संबंधी कानूनी ढांचा

घ) सूचना और पारदर्शिता

गौरतलब है कि कलांतर में इस संकल्पना में सहभागी विकास, मानव अधिकार और लोकतंत्रीकरण को भी जोड़ा गया।

हालांकि विश्व बैंक ने गर्वनेंस की संकल्पना को किसी राष्ट्र को दी जाने वाले ऋण प्रदान करने संबंधी कसौटी के रूप में भी देखा। इसे निम्न सारणी के द्वारा समझा जा सकता है।

सारणी 1-1

oxhdj.k	xoul d fy;s mi;qDr rRo dk vuqikr
1. कानूनी ढांचा	6%
2. भागीदारी	30%
3. राज्य का निजी उद्यम संबंधी सुधार	33%
4. आर्थिक प्रबंधन	49%
5. सक्षमता निर्माण	68%
6. लोकतंत्रीकरण	68%

स्त्रोत : विश्व बैंक (1994) XV

स्पष्ट है कि विश्व बैंक के उपरोक्त सारणी में भागीदारी एक महत्वपूर्ण अवयव के रूप में रही है तथा यह निर्देशित किया गया है कि अगर कोई देश भागीदारी अर्थात् सार्वजनिक– निजी भागीदारी को तवज्ज़ो देता है तो उसे ऋण के मामले में विशेष तवज्ज़ो दी जायेगी।

भारतीय प्रशासन में पाशर्व भर्ती

मोदी सरकार की भारतीय लोकसेवा में पाशर्व भर्ती ने भारतीय प्रशासन को एक नया चेहरा प्रदान किया है। मोदी सरकार ने बाबू मुक्त भारत की संकल्पना को मजबूत करने के लिए पेशेवर व्यवसायी जगत से नौ उद्यमियों को सरकार में सचिव के पद पर प्रत्यक्ष भर्ती करने का ऐलान किया है (इकोनॉमिक्स टाइम्स 2019)। इसने बेवरवादी नौकरशाही की संकल्पना को नागरिक अभिमुखी नौकरशाही में तब्दील किया है।

समग्र रूप से भारतीय दलीय प्रणाली के विकास की विकसित संदर्भ को देखा जा सकता है। पहला चरण कांग्रेस प्रभुत्व का काल था, फिर उसके पतन का काल आया। 70 के दशक में फिर से इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने अपनी स्थिति को और मजबूत किया। इंदिरा गाँधी के उपरांत राजीव के नेतृत्व में दलीय प्रणाली का स्वरूप अलग तरह से विकसित हुआ। नब्बे के दशक में दलीय प्रणाली में तीन प्रमुख मकारों मंदिर, मंडल व मार्केट का प्रभाव देखा जा सकता है। नरेन्द्र मोदी के शासन काल में *सेकेंड पार्टी डोमिनेंट सिस्टम* का उद्‌भव साफ देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. कोहली (1991), क्राइसिस ऑफ गवर्नमेंटेबलिटी, न्यूयार्क कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. यादव योगेन्द्र (1999). इलोक्टोरल पॉलिटिक्स इन द टाइम ऑफ चेंजइंग इंडियाज' थर्ड इलेक्ट्रोरल सिस्टम, 1989-99. इकोनामिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली, XXIV (34-5), पृ.2393-9.
3. यादव योगेन्द्र (2002). *'कायापलट की कहानी नया प्रयोग, नई संभावनाएँ, नये अंदेशे'*. अभय कुमार दुबे (संपादित). लोकतंत्र के सात अध्याय, लोकग्रंथ माला, सीएसडीएस वाणी प्रकाशन.
4. श्रीधरन ई. (2010). पार्टी सिस्टम. संग्रहित है जयाल नीरजा गोपाल, प्रताप भानु मेहता (संपादित) द ऑक्सफोर्ड कंपेनियन टू द पॉलिटिक्स इन इंडिया. दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
5. सुहास पलष्किर (2017). इंडियाज सेकेंड डोमिनेंट पार्टी सिस्टम, इकोनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली, LII No- 12.,
6. पलष्किर सुहास (2014). ए न्यू फेज ऑफ द पॉलिटी, हिन्दू, 23 मई.
7. नायडू, एम वी (2017). मैशेज इन द वर्डिक्ट, द हिन्दू, 13 मार्च
8. के.सी व्हीयर (1964), फेडरेल गवर्नमेंट, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 9. डगलस वी. वर्नी (2003), 'फ्रॉम क्वेजाई फेडरेशन टु क्वेजाई कॉनफेडरेसी द द्रांसफॉर्मेशन ऑफ इंडियाज पार्टी सिस्टम', पब्लिशर्स द जर्नल ऑफ फेडेरलिज्म, वॉल्यूम.33, नं.4.

भारत में गठबंधन सरकारें : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

शीला कुमारी

Ikjk'k देश की बहुधर्मी और जातीय विविधताएँ जहाँ एक तरफ सदियों से भारत की पहचान बनकर अनेकता में एकता का संदेश दे रही हैं, वहाँ दूसरी तरफ ये विविधताएँ भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में गठबंधन के रूप में अभिव्यक्त होकर आज उसे बड़े पैमाने पर प्रभावित भी कर रही हैं। सदन में किसी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने, भारतीय समाज की विविधता, छोटे-छोटे राजनीतिक दलों के अस्तित्व में आने, करिश्माई नेताओं की कमी और 1967 के बाद कांग्रेस की आंतरिक कलह के चलते विभाजन आदि के चलते भारतीय लोकतंत्र में गठबंधन सरकारों की उत्पति हुई है। 1970 के दशक में क्रमशः मार्च 1977 एवं जुलाई 1979 में गठित मोरारजी देसाई और चौधरी चरण सिंह की गठबंधन सरकारें तथा 1989 की वी. पी. सिंह सरकार के साथ-साथ 90 के दशक की सभी अल्पमत सरकारें गठबंधन में सम्मिलित विभिन्न दलों के आंतरिक कलह और मतभेद का शिकार होकर गिर गईं। 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी ने ,uMh, का गठन कर गठबंधन की अवधारणा को सशक्त किया जिसे 2004 के आम चुनाव में कांग्रेस ने भी ;wih, के द्वारा गठबंधन में विश्वास किया। 2014 एवं 2019 में नरेंद्र मोदी की ,uMh, ljdkj के प्रदर्शनों से स्पष्ट है कि 1989-90 के दशक से भारत में गठबंधन की राजनीति ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर अपने आंतरिक अंतर्विरोधों से सरकारों को अस्थिर बनाए रखने के बावजूद 21वीं सदी के प्रथम दशक में इसने परपिक्वता प्राप्त कर ली है। आज भारतीय राजनीति में गठबंधन को लोकतंत्र के लिए खतरा नहीं समझा जाता, बल्कि उसे देश की परिस्थितियों में लोकतंत्र के स्वाभाविक बदलाव के रूप में देखा जा रहा है। गठबंधन सरकारों में नए सामाजिक वर्गों तथा क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका भारतीय लोकतंत्र के लिए अभिशाप न होकर उनकी etcrh और jk"Vªh; ,drk के लिए आवश्यक है।

प्रस्तावना

भारतीय समाज की विविधता भरी प्रकृति और उनके सामने आने वाली समस्याओं की पेचीदगी ने राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर अनेक दलों को जन्म दिया है। क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय समस्याओं के आलोक में राष्ट्रीय राजनीति में दिलचस्पी लेने लगते हैं। अतः सामाजिक एवं राजनीतिक आधार पर विभिन्न दलों में इच्छाओं, अपेक्षाओं, आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के टकराव से आम चुनावों में किसी भी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना कठिन हो गया है। ऐसी स्थिति में केंद्र एवं राज्यों में सरकार के निर्माण एवं उसकी संभावना के लिए भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकार की शुरुआत होती है। गठबंधन की इस राजनीति के चलते राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर निर्मित विभिन्न सरकारों के सम्मुख चुनौतियों ने भारतीय संसदीय प्रणाली को काफी प्रभावित किया है। देश में 1970 के उथल-पुथल के दौर के बाद गठबंधन की जिस राजनीति की शुरुआत हुई, वह आज का बड़ा सच है। प्रत्येक चुनाव के साथ विभिन्न घटक दलों में होने वाले गठजोड़ भले ही राजनीतिक मजबूरी को दिखाते हों, लेकिन हकीकत है कि उनके बिना आज कोई राजनीतिक दल सत्ता में रहने की सोच भी नहीं सकता। अतः भारत की बदलती हुई दलीय राजनीति में गठबंधन सरकार राजनीतिक व्यवस्था की एक आवश्यकता है। यह सच है कि पिछले कुछ वर्षों में भारत में यह राजनीतिक तंत्र के रूप में एक नए धर्म की तरह विकसित हुआ है।

गठबंधन सरकार की उत्पत्ति के कारण

गठबंधन सरकार की उत्पत्ति के जिम्मेवार कारण निम्नलिखित हैं–

1- lnu esa fdlh jktuhfrd ny dk Li"V cgqer gkfly ugha gkuk& संसदीय शासन प्रणाली में उसी राजनीतिक दल को सरकार के गठन का अधिकार मिलता है जिसके पास विधायिका के निचले सदन में आधे से अधिक सदस्यों का समर्थन प्राप्त होता है। यदि आम चुनावों के बाद सदन में किसी राजनीतिक दल या गुट को साधारण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ तो परिस्थिति गठबंधन सरकार के निर्माण का आधार बनती है।

2- Hkkjrh; lekt dh fofo/krk& एक बहुधर्मी, बहुभाषी और बहुजातीय समाज होने से भारत में छोटे-छोटे जातीय और क्षेत्रीय समूह अपनी पहचान बनाए रखने के इच्छुक रहते हैं। इन विविधताओं का अक्सर राजनीतिक क्षेत्रों में अभिव्यक्त होने से गठबंधन की अवधारणा का विकास हुआ है।

3- NksVs-NksVs jktuhfrd nyksa dk vfLrRo esa vkuk& आज देशांतर्गत किसी भी राजनीतिक दल का वैचारिकता के धरातल पर ईमानदार नहीं होने से देश में छोटे-छोटे राजनीतिक दल अस्तित्व में आकर दिन प्रतिदिन मजबूत हो रहे हैं। ऐसे दल क्षेत्रीय या प्रादेशिक स्तर पर इसलिए सुदृढ़ हो रहे कि वे क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक

समस्याओं को निपटाने में राजनीतिक ईमानदारी बरत रहे हैं। राष्ट्रीय या प्रादेशिक स्तर पर निर्मित होने वाली सरकारों में उनका समर्थन **lfon ljdkj** की अवधारणा को मजबूत करता है।

4- dfj'ekbZ urkvksa dh deh vkSj vn:nh pukSfr;k& कांग्रेस पार्टी ने देश के प्रथम **rhu** आम चुनाव (1952, 1957 एवं 1962) देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में लड़कर विजय प्राप्त की। बाद में नेहरू का करिश्माई व्यक्तित्व शिथिल होता गया और उनकी इच्छा के विरुद्ध कांगेस अध्यक्ष के रूप में **VMu** की नियुक्ति ने उन्हें अंदर से कमजोर कर दिया।[1] दूसरी ओर देश के विभिन्न राजनीतिक दलों में सत्ता प्राप्ति की होड़ के चलते उनमें राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा गहन हो चली। विपक्ष की बढ़ती हुई एकता और लोकप्रियता के साथ-साथ कांग्रेस अंदरूनी चुनौतियों से परेशान होकर अपने अंदर की विभिन्नता को एक साथ थामकर चलने में असमर्थ हो गई थी।

5- ug: dh eR;q dk ckn dkaxzsl esa jktuhfrd mÙkjkf/kdkj dh pqukSrh& 27 मई 1964 को जवाहरलाल नेहरू के देहावसान के बाद उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी का ही प्रश्न खड़ा नहीं हुआ, वरन् यह भी सवाल खड़ा हुआ कि उनके बाद आखिरकार इस नए विकासशील भारत का क्या होगा ? अतः नेहरू के बाद भारत में राजनीतिक उत्तराधिकार संबंधी समस्या का समाधान नहीं होने की स्थिति में उत्पन्न कई सवाल देश की राजनीति के लिए चुनौतीपूर्ण थे। इसने भारतीय राजनीति को एक नई दिशा देते हुए राजनीतिक दलों में नई विचारधारा को संचालित किया और वे परस्पर विरोधी हितों में तालमेल बैठाने की बात सोचने लगे।

6- dkaxzsl dk foHkktu& नेहरू के बाद शास्त्रीजी का प्रधानमंत्री के रूप में चयन जिस लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत हुआ, वह लोकतांत्रिक प्रक्रिया लाल बहादुर शास्त्री के निधन (11 जनवरी 1966) के बाद **bfnjk xk/kh** को प्रधानमंत्री बनाते समय नहीं अपनाई गई। कांग्रेस ने वरिष्ठ कांग्रेसी नेता मोरारजी देसाई के बदले इंदिरा गाँधी को तवज्जों देते हुए उन्हें प्रधानमंत्री नियुक्त किया। परिणामस्वरूप, कांग्रेस पार्टी में असंतोष के चलते **VV ,oa fo?kVu** की प्रक्रिया का बीजारोपण हुआ और वह अंदर से कमजोर होती गई। 1967 में कांग्रेस के वर्चस्व को तब पहली चुनौती मिली जब विपक्ष संयुक्त विधायक दल के बैनर तले एक जुट हो गया और अनेक हिंदी भाषी राज्यों में कांग्रेस की पराजय हुई। कांग्रेस का यह ऐसा दौर था जब पार्टी के अंदर इंदिरा गाँधी की क्षमता पर भी सवाल उठना प्रारंभ हुआ। इसके बाद कांग्रेस के दो **QkM** हो गए। **d- dkejkt** के नेतृत्व वाले धड़े को **dkaxzsl ¼vk½** या पुरानी कांग्रेस जबकि इंदिरा की अगुवाई वाले दल को असली कांग्रेस कहा गया। **puko vk;ksx** ने भी इंदिरा गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस को असली कांग्रेस पार्टी के रूप में मान्यता दी।[2]

1997 के आम चुनाव के बाद गठबंधन राजनीति की शुरुआत

लाल बहादुर शास्त्री के उत्तराधिकारी के रूप में 24 जनवरी 1966 को इंदिरा गाँधी की नियुक्ति प्रधानमंत्री के रूप में हो चुकी थी। देश-विदेश के अधिकांश लोग उन्हें राजनीति एवं प्रशासनिक लिहाज से कम अनुभवी मान रहे थे। इसके अलावा, देश में गंभीर आर्थिक संकट के चलते आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में तेजी से इजाफा हुआ। सूखे के चलते खाद्यान्न की कमी और देश में बढ़ती बेरोजगारी ने देश के लोगों को सड़कों पर उतरने के लिए विवश किया। 'बंद' और 'हड़ताल' के चलते देश का अर्थतंत्र लड़खड़ाने लगा। इंदिरा सरकार ने इसे देश की जनता की बदहाली की अभिव्यक्ति न मानकर कानून और व्यवस्था की समस्या मानने की भूल की। परिणामस्वरूप, लोगों की नाराजगी बढ़ी और जन विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया। विभिन्न राजनीतिक दल सरकार के खिलाफ जनता को उकसाने लगे और स्वयं प्रदर्शनों का नेतृत्व करने लगे। इस प्रकार, इंदिरा सरकार के समक्ष **pkFk vke puko** (1967) के समय गंभीर चुनौती के आलोक में क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक स्तरों पर विभिन्न राजनीतिक दलों में गलमिलौवल की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।

xj-dkaxsl jktuhfrd nyksa dk ,dtqVrk& विरोधी दलों के लोग प्रदर्शनों एवं अन्य कार्यक्रमों से सरकार पर दबाव डाल रहे थे। 1967 के पूर्व जो राजनीतिक दल अपने कार्यक्रम या विचारधारा के चलते अन्य राजनीतिक दलों से एकदम अलग थे, 1967 में आम चुनावों के दौरान ऐसे सभी राजनीतिक दल एकजुट हुए और कांग्रेस विरोधी मोर्चा बनाकर विभिन्न राज्यों में सीटों के संबंध में चुनावी तालमेल किए।[3] कांग्रेस विरोधी मोर्चा को ही राम मनोहर लोहिया ने '**xj-dkaxsl okn**' का नाम दिया और तमाम गैर-कांग्रेसी राजनीतिक दलों को एकजुट होने का आह्वान किया।[4]

1967 dk puko dk tukn'k& ऐसे जन असंतोष के माहौल में 1967 के फरवरी माह में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए हुए **pkFk** आम चुनाव के परिणामों से राष्ट्रीय एवं प्रांतीय स्तर पर कांग्रेस को गहरा धक्का पहुँचा। लोकसभा में किसी तरह कांग्रेस को बहुमत तो मिल गया, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर उसे प्राप्त मतों के प्रतिशत तथा सीटों की संख्या में काफी कमी आई। इसके पूर्व कांग्रेस की कभी भी ऐसी स्थिति नहीं हुई थी। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि इंदिरा मंत्रिमंडल के आधे से अधिक मंत्री चुनाव में पराजित हो गए। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के **,l-d- ikfVy**, तमिलनाडु के **d- dkejkt**, पश्चिम बंगाल के **vrqY; ?kks"k** और बिहार के **d- ch- lgk;** जैसे कांग्रेसी दिग्गज 1967 में चुनाव हार गए थे।[5]

1967 के आम चुनाव के बाद पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, चेन्नई और केरल में गैर-कांग्रेसी राजनीतिक दलों की सरकारें बनीं। चेन्नई (तमिलनाडु) में **nfoM eqUussa dMxe** नामक एक क्षेत्रीय दल को विधानसभा में पूर्ण बहुमत मिला और वहाँ **lh- uVjkt u vUukn jb** के नेतृत्व में सरकार का गठन

हुआ।[6] Hkkjrh; Økfr ny के egkek;k iklkn fl Ugk बिहार से मुख्यमंत्री बने। इस सरकार में nk समाजवादी पार्टियाँ– l;qDr lk'kfyLV ikVh और ikt k lk'kfyLV ikVh शामिल थीं। इनके साथ okeiFkh Hkkjrh; dE;qfuLV ikVh और दक्षिणपंथी tul?k भी शामिल थे। प्रश्न है कि वामपंथी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और दक्षिणपंथी Hkkjrh; tul?k का विचारधारा के लिहाज से एक-दूसरे से भिन्न होने के बावजूद अपनी विचारधारा से समझौता पर गठबंधन की सरकारों में शामिल होना क्या lÙkk-lq[k नहीं था ? यदि सत्ता-सुख नहीं था, तो किस विवशता के चलते उन्होंने अपनी राजनीतिक विचारधारा से समझौता किया ?

jkT;k e xBc/ku ljdkjk dk ikjHk& चाहे कारण कुछ भी हो, उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के बाद यह एहसास हो गया कि 'गठबंधन' का किसी भी देश की राजनीति में कितना जबरदस्त हाथ होता है। यदि 1967 के आम चनावों में गैर-कांग्रेसी राजनीतिक दलों में एकजुटता नहीं आती तो शायद ऐसा चुनाव परिणाम भी नहीं रहता। राज्य विधानसभाओं में किसी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने के चलते ये गैर-कांग्रेसी दल एकजुट होकर संयुक्त विधायक दल का गठन किए और गैर-कांग्रेसी सरकारों को समर्थन दिया। इनके ऐसा करने के चलते ही इन राज्यों की सरकारों को l;qDr fo/kk;d ny की सरकार के नाम से पुकारा गया। बिहार में Hkkjrh; Økfr ny के नेतृत्व में निर्मित सरकार में वामपंथी एवं दक्षिणपंथी राजनीतिक दलों के साथ-साथ समाजवादी दलों का भी सम्मिलित होना कांग्रेस के विरोध में इनकी एकजुटता यदि सत्ता-सुख नहीं थी, तो स्पष्टतः भारत में xBc/ku dh jktuhfr की शुरुआत थी जिसमें विचारधाओं में सामंजस्य समय की माँग के रूप में प्रस्फुटित हुई। इसी प्रकार, पंजाब में बनी संयुक्त विधायक दल की सरकार में उस समय के दो परस्पर प्रतिस्पर्द्धी vdkyh ny के lr xi और ekLVj rkjk fl g xi दोनों शामिल थे। इनके साथ सरकार में Hkkjrh; tul?k के साथ-साथ ,l- ,l- ih-] दोनों वामपंथी दल तथा fjifCydu ikVh भी शामिल थी। गठबंधन के आधार पर विभिन्न राज्यों में निर्मित सरकारों में गैर-कांग्रेसी राजनीतिक दलों का सम्मिलित होना इस तथ्य को उजागर करता है कि 1952 से कांग्रेस के प्रभुत्व के चलते सभी राजनीतिक दल किसी-न-किसी रूप में या तो सत्ता का आनंद लेना चाहते थे या कांग्रेस के प्रभुत्व से इतना तंग हो चुके थे कि ऐसा करने की उनकी विवशता थी।[7]

ny-cny dh jktuhfr& 1967 के आम चुनाव के बाद दल-बदल की राजनीति ने भी राजनीतिक दलों को परेशान कर दिया। विभिन्न राज्यों में इसने सरकारों के बनने-बिगड़ने में बड़ी भूमिका निभाई। इससे सरकारें अस्थिर हुईं और सत्ता प्राप्ति का लोभ राजनीति का हिस्सा बन गया। राजनीतिक दलों ने भी सरकार बनाने में कुछ कम हो रहे विधायकों को प्रलोभन देकर दल-बदल को प्रोत्साहित किया। इसके चलते गद्दी की लालच ने मंत्री पद पाने के लिए राजनेताओं में होड़–सी लग गई। इसका दुष्प्रभाव

यह भी हुआ कि इसने भारत में एक अस्थिर राजनीति को जन्म देकर अप्रत्यक्ष ढंग से गठबंधन को प्रोत्साहित किया।

bfnjk xk/kh cuke flfMdsV& 1967 के चुनावों के बाद केंद्र में किसी तरह कांग्रेस की सत्ता स्थापित रही, जबकि अनेक राज्यों में इसे सत्ता से अलग होना पड़ा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि चुनाव परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया था कि कांग्रेस को पराजित किया जा सकता है। विभिन्न राज्यों में गठित अधिकतर गैर-कांग्रेसी सरकारें अधिक दिनों तक नहीं टिक सकीं। बहुमत खोने पर इन सरकारों ने या तो नए सिरे से गठबंधन बनाया या उन प्रदेशों में राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा। केंद्र में प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को असली चुनौती खुद अपनी पार्टी के भीतर से मिली। कांग्रेस के अंदर 'सिंडिकेट' के प्रभावशाली और ताकतवर नेता ही उसकी नीतियों को प्रभावित करते थे। सिंडिकेट के नेताओं को विश्वास था कि प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा गाँधी उनकी सलाहों पर अमल करेंगी। किंतु, इंदिरा गाँधी ने सरकार और दल के अंदर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की रणनीति अपनाई। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि उन्होंने अपने सलाहकारों और विश्वस्तों के समूह में पार्टी के बाहर के लोगों को रखा। बाद में बड़ी सावधानी से उन्होंने सिंडिकेट के नेताओं को हाशिए पर खड़ा कर दिया।[8]

bfnjk xk/kh dk oSpkfjd fopkj/kkjk l xBtkM– इंदिरा गाँधी के समक्ष दो चुनौतियाँ थीं– एक 'सिंडिकेट' के प्रभाव से स्वतंत्र अपना मुकाम बनाने की और दूसरी 1967 के आम चुनाव में जो जमीन कांग्रेस ने खोई थी, उसे पुनः प्राप्त करने की। इन दोनों चुनौतियों पर विजय प्राप्त करने के लिए इंदिरा गाँधी ने असाधारण साहसिक रणनीति अपनाई। एक मामूली सत्ता-संघर्ष को विचारधारात्मक संघर्ष में बदलकर उन्होंने सरकार की नीतियों को वामपंथी रंग देने के लिए अनेक कदम उठाए। इसके अंतर्गत मई 1967 में कांग्रेस कार्य समिति ने **nl lw=h dk;ZØe** अपनाकर बैंकों पर राजनीतिक नियंत्रण, आम बीमा के राष्ट्रीयकरण, शहरी संपदा और आय के परिसीमन, खाद्यान का सरकारी वितरण, भूमि सुधार तथा ग्रामीण गरीब जनता को आवासीय भूखंड प्रदान करने के विविध प्रावधानों को प्रारंभ किया। इंदिरा गाँधी द्वारा चौदह अग्रणी बैंकों का राष्ट्रीयकरण और पूर्व राजा महाराजाओं को प्राप्त **fiohh il** जैसे विशेषाधिकार को समाप्त करने जैसी जनप्रिय नीतियों से वह ताकतवर होती गईं। 1969 के राष्ट्रपति चुनाव में सिंडिकेट उम्मीदवार **,u- lathoa jsM~Mh** के खिलाफ उपराष्ट्रपति **oh- oh- fxfj** को विजयी बनाकर इंदिरा गाँधी ने पार्टी पर अपने बढ़ते वर्चस्व को स्थापित किया। बौखलाकर कांग्रेस अध्यक्ष **,l- futfyxIik** ने नवंबर 1969 में जब इंदिरा गाँधी को कांग्रेस पार्टी से निष्कासित कर दिया तब इंदिरा गाँधी ने अपनी पार्टी को ही **vly dkxl** कह कर अपनी शक्ति का एहसास कराया।

1971 का आम चुनाव और राजनीतिक दलों में चुनावी गठबंधन

काँग्रेस में बिखराव और टूट के चलते केंद्र में इंदिरा गाँधी की सरकार अल्पमत में आ गई। इसके बावजूद Hkkjrh; lkE;oknh ny और Mh,ed जैसे दलों से मुद्दा–आधारित समर्थन के सहारे सरकार सत्ता में बनी रही। इस दौरान सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी ने अपनी छवि को समाजवादी रंग में प्रस्तुत करते हुए भूमि सुधार संबंधी मौजूदा कानूनों के क्रियान्वयन के लिए अभियान चलाया और भू–परिसीमन संबंधी कुछ और भी कानून बनाया। संसद में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने, अन्य राजनीतिक दलों पर अपनी निर्भरता समाप्त करने तथा अपने दल के कार्यक्रमों के पक्ष में कार्य करने की उम्मीद से इंदिरा सरकार ने दिसंबर 1970 में लोकसभा भंग करने की सिफारिश की और इस प्रकार 1971 में लोकसभा का ikpok आम चुनाव हुआ। उल्लेखनीय है कि 1971 के आम चुनाव में सभी बड़े गैर-साम्यवादी और गैर-कांग्रेसी विपक्षी दलों ने एक puksh xBc/ku बना लिया था जिसे 'शानदार समझौता' (Grand Alliance) कहा गया।[9] विपक्षी दलों के चुनावी xBc/ku ने इंदिरा गाँधी की स्थिति को और कठिन बना दिया। 1971 के आम चुनाव में इंदिरा गाँधी के विरोध में l;qDr lekt okn h ikVh, iztk lekt okn h ikVh तथा Hkkjrh; Økafr ny एक छतरी के नीचे आ गए। दूसरी तरफ सत्तारूढ़ कांग्रेस ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ xBtkM किया। इस चुनाव में सबसे आश्चर्य की यह बात थी कि जहाँ विपक्षी गठबंधन 'इंदिरा हटाओ' के नारे तक ही अपने को सीमित किया, वहाँ इंदिरा गाँधी ने जनता के सामने एक सकारात्मक कार्यक्रम रखकर अपने प्रसिद्ध नारे *'गरीबी हटाओ'* के माध्यम से इस कार्यक्रम को साकार किया। इंदिरा गाँधी के *'गरीबी हटाओ'* नारे ने भूमिहीनों, किसानों, दलितों, आदिवासियों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों और देश के होनहार बेरोजगार नौजवानों को आकर्षित किया और इंदिरा गाँधी की जीत हुई। 1971 के लोकसभा चुनावों के शीघ्र बाद पूर्वी पाकिस्तान में जब न्याय का गला घोटा जाने लगा और बड़े पैमाने पर मानवाधिकार का हनन प्रारंभ हुआ[10] तब इंदिरा गाँधी ने पूर्वी पाकिस्तान में मानवाधिकार और लोकतंत्र की रक्षा के लिए हस्तक्षेप किया जिसके चलते भारत और पाकिस्तान के बीच बड़े पैमाने पर युद्ध हुआ। युद्ध में भारत की शानदार विजय हुई और विश्व के मानचित्र पर बांग्लादेश का नए राष्ट्र के रूप में जन्म हुआ। अटल बिहारी वाजपेयी ने इंदिरा गाँधी के राज्यकौशल की प्रशंसा करते हुए उन्हें 'दुर्गा का अवतार' कहा।[11]

bfnjk xk/kh dh c<+rh 'kfDr vkj vkikr fLFkfr dh mn?kks"k.kk& 1972 में हुए राज्य विधानसभाओं के चुनाव में इंदिरा कांगेस की व्यापक सफलता ने देश-विदेश में उनके बढ़ते प्रभाव और लोकप्रियता को स्थापित कर दिया। उनका कांग्रेस पर इतना जबर्दस्त वर्चस्व था कि पार्टी के अंदर और बाहर किसी की हिम्मत नहीं थी कि वह शिकायत कर सके। यह एक ऐसा समय था जब कांग्रेस लगभग सभी

प्रदेशों में सत्ता में थी। 1971 के बाद केंद्र में इंदिरा गाँधी की लोकप्रियता स्थापित होते ही पहले की तुलना में वे अधिक सख्त हो गईं। 1976 में संविधान में **42 oa l'kks/ku vf/kfu;e** द्वारा जब उन्होंने अपने प्रशासन को सख्त बनाया तब देश के विभिन्न भागों में उनके खिलाफ आवाज उठने लगी। एक अर्थ में इंदिरा गाँधी तानाशाह की भूमिका में दिखने लगी।[12] 25 जून 1975 को इंदिरा गाँधी ने देश में आपात स्थिति की उद्घोषणा करते हुए अपने प्रशासन के खिलाफ आवाज उठाने वाले जय प्रकाश नारायण सहित देश के सभी राजनीतिक दलों के नेताओं को कारागार में बंद कर दिया।[13] इसके बाद राजनीतिक दलों की आँखें खुलीं और वे एकजुट होकर श्रीमती इंदिरा गाँधी की तानाशाही का विरोध करने के लिए कटिबद्ध हो गए।[14] इसी संदर्भ में 29 अगस्त 1974 को **lkr** विरोधी दलों ने कांगेस को अपदस्थ करने के उद्देश्य से **Hkkjrh; yksdny** का निर्माण किया[15] जिसे **Hkkyksn** कहा गया। इस दल ने 1977 में **turk ikVh** में शामिल होकर अपना अस्तित्व समाप्त कर दिया।

1977 के बाद केंद्र की गठबंधन सरकारें

ekjkjth nslkbZ dh turk ikVh ljdkj ¼24 ekpZ 1977&28 tqykbZ 1979½& मार्च 1977 के आम चुनाव में **turk ikVh** के प्रत्याशियों को इंदिरा विरुद्ध अभियान में अप्रत्याशित सफलता मिली। 24 मार्च 1977 को मोरारजी देसाई के नेतृत्व में केंद्र में **turk ikVh** की गठबंधन सरकार बनी। विभिन्न दलों से निर्मित **turk ikVh** की सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी। 23 जून 1979 को राजनारायण ने **turk ikVh** से त्यागपत्र देते हुए कहा कि उनका उद्देश्य ऐसे मत जनता पार्टी को छोड़कर एक वास्तविक जनता दल, जो उनकी आकांक्षाओं के अनुकूल हो, की स्थापना करना है।[16] परिणामस्वरूप, मोरारजी देसाई की **turk ikVh** सरकार से राजनारायण तथा चौधरी चरण सिंह अलग होते गए। 11 जुलाई 1979 तक राजनारायण के समर्थकों की संख्या 45 हो जाने और मोरारजी देसाई सरकार के अल्पमत में आ जाने से उन्होंने 15 जुलाई 1979 को अपना तथा अपने मंत्रिमंडल का त्यागपत्र राष्ट्रपति को सौंप दिया।

pkS/kjh pj.k fl ag dh xBc/ku ljdkj ¼28 tqykbZ 1979&14 tuojh 1980½& बाहर से समर्थन देते हुए इंदिरा गाँधी ने चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री बनाने में सहायता की। इंदिरा कांग्रेस, रेड्डी कांग्रेस, जनता (एस) तथा अन्य दलों के सहयोग से चौधरी चरण सिंह को 262 समर्थक मिले। 26 जुलाई 1979 को राष्ट्रपति ने चौधरी चरण सिंह को सरकार बनाने के लिए सशर्त आमंत्रित किया कि वे 20 अगस्त तक लोक सभा का विश्वास प्राप्त कर लें। चौधरी चरण सिंह ने 28 जुलाई 1979 को प्रधानमंत्री पद तथा गोपनीयता की शपथ ली। वे 20 अगस्त 1979 को लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त करने वाले थे, लेकिन 19 अगस्त को ही इंदिरा गाँधी द्वारा चौधरी चरण सिंह सरकार से समर्थन वापसी के चलते चौधरी चरण सिंह ने बिना संसद का

मुँह देखे 20 अगस्त 1979 को अपने तथा अपने मंत्रिमंडल का त्यागपत्र राष्ट्रपति को सौंप दिया।[17] इस प्रकार इंदिरा गाँधी की वैशाखी पर खड़ी चौधरी चरण सिंह की **xBc/ku ljdkj** गिर गई। 22 अगस्त 1979 को राष्ट्रपति ने चौधरी चरण सिंह को लोकसभा भंग कर मध्यावधि चुनाव कराने की सिफारिश को स्वीकार कर लिया। जनवरी 1980 के आम लोकसभा चुनाव में इंदिरा कांग्रेस को दो–तिहाई बहुमत मिलते ही श्रीमती इंदिरा गाँधी पुनः भारत की प्रधानमंत्री बनीं।

oh-ih- flag vkj pUnz'ks[kj dh xBc/ku ljdkj ¼8 fnlacj 1989&21 tu 1991½& इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद 1984 के आम चुनाव में सहानुभूति लहर के चलते राजीव गाँधी को अप्रत्याशित सफलता मिली। 1987 में जब वी.पी. सिंह को राजीव गाँधी सरकार से रक्षा मंत्री के पद से हटाया गया तब उन्होंने **tu ekspk** बनाया। **tu ekspk** में अरुण नेहरू, आरिफ मोहम्मद खान और मुफ्ती मोहम्मद सईद भी थे। जन मोर्चा राजीव गाँधी सरकार में हुए बोर्फोस भ्रष्टाचार के खिलाफ मोर्चा खोले हुए था।[18] 1989 के आम चुनाव से पहले जन मोर्चा, जनता पार्टी, लोक दल और कांग्रेस (एस) को एक साथ मिलाकर **turk ny** का निर्माण हुआ। इसके बाद वी.पी. सिंह ने कुछ वाम और दक्षिणपंथी दलों को मिलाकर **u'kuy ÝaV** बनाया और उनकी अगुवाई में सरकार बनी, लेकिन 1990 में वी.पी. सिंह सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद भाजपा के समर्थन वापस लेने के चलते उनकी सरकार 11 महीने में ही गिर जाने से कांग्रेस के बाहरी समर्थन से चंद्रशेखर की **vYier ljdkj** (10 नवंबर 1990–21 जून 1991) का गठन हुआ।[19]

1990 के दशक में त्रिशंकु लोकसभा में गठबंधन सरकारें

ih-oh- ujflEgkjko dh lfon ljdkj ¼21 tu 1991&16 eb 1996½& राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद उपजी राष्ट्रव्यापी सहानुभूति के सहारे 10वीं लोकसभा चुनावों के पश्चात् सबसे बड़े दल के रूप में उभरी कांग्रेस के नेता पी. वी. नरसिम्हा राव ने छोटे-छोटे राजनीतिक दलों एवं कुछ निर्दलीय सांसदों के समर्थन से **xBc/ku** सरकार (21 जून 1991–16 मई 1996) का गठन किया। बाद में व्यापक पैमाने पर दल बदल कराकर कांग्रेस ने अपनी अल्पमत की सरकार को बहुमत की सरकार बना लिया।[20] इस प्रकार राव की सरकार भी पूर्ण बहुमत सरकार न होकर कुछ छोट-छोटे दलों पर आश्रित थी।

f='kadq yksdlHkk& मई 1996 में 11वीं लोकसभा चुनाव के बाद केंद्र में त्रिशंकु लोकसभा का गठन हुआ। इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी और सहयोगी दलों को 194, कांग्रेस को 140 तथा अन्य क्षेत्रीय दलों को 150 स्थान प्राप्त हुए। **Hkkjrh; turk ikVh** के नेता अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठित **jk"Vªh; turkf=d xBc/ku** (राजग) की सरकार मात्र 13 दिन (16 मई–1 जून 1996) ही रह पाई। इसके बाद 1996 एवं 1997 में केंद्र में क्रमशः **l;qDr ekspk** की **,p- Mh- nsoxkSMk** (1 जून

1996–21 अप्रैल 1997) और **bnd ekj xqtjky** (21 अप्रैल 1997–18 मार्च 1998) की अल्पमत सरकारों का गठन हुआ। ये दोनों सरकारें गठबंधन राजनीति के विरोधाभासों व जटिलताओं में लगातार उलझी रहीं और एक-एक कर दोनों सरकारें कार्यकाल पूरा करने से पूर्व ही गिर गईं।

vVy fcgkjh okti;h dh jktx ljdkj ¼18 ekp 1998&22 eb 2004½& 1998 में संपन्न मध्यावधि चुनावों के बाद **Hkkjrh; turk ikVh** ने अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में अकाली दल, शिव सेना, तेलगू देशम् पार्टी, जेडीयू, तृणमूल कांग्रेस और एआईएडीएमके जैसे सहयोगी दलों के साथ सरकार का गठन किया। **jktx** में शामिल घटक दलों के दबाव के कारण भाजपा को अपने विवादास्पद राजनीतिक मुद्दे गोबद्ध निषेध, अनुच्छेद 370 को हटाना, समान नागरिक संहिता तथा राम मंदिर निर्माण आदि को सरकार की कार्यसूची से बाहर रखना पड़ा।[21] पूर्ववर्ती गठबंधन सरकारों की भाँति यह सरकार भी सहयोगी दलों की महत्वाकांक्षाओं और स्वार्थों की टकराहट के बीच फँसकर रह गई और **13** माहों में ही जयललिता की नाराजगी के कारण गिर गई।[22] 1999 में **13oh** लोकसभा चुनावों के बाद एक बार पुनः त्रिशंकु लोकसभा का गठन हुआ जिसमें भारतीय जनता पार्टी को सर्वाधिक 182, कांग्रेस को 114 तथा क्षेत्रीय दलों को 162 स्थान प्राप्त हुए। अटल बिहारी वाजपेयी **jk"Vh; turkf=d xBc/ku** (राजग) सरकार के पहले प्रधानमंत्री थे, जिन्होंने गैर-कांग्रेस प्रधानमंत्री पद के 5 साल बिना किसी समस्या के पूरा किए। उन्होंने 24 दलों के गठबंधन से सरकार बनाई जिसमें 81 मंत्री थे।[23] इस चुनाव में **jk"Vh; turkf=d xBc/ku** (राजग) के चुनाव पूर्व गठबंधन को न केवल सफलता प्राप्त हुई, बल्कि इसने पहली बार गठबंधन की सरकार को पूरे पाँच साल चला कर इसके प्रति एक नई उम्मीद जगाई।

euekgu fl ag dh ;wih, ljdkj ¼22 eb 2004&26 eb 2014½& 14वीं लोकसभा चुनाव में कांग्रेस ने अपने पूर्व की एकाधिकारवादी राजनीतिक दल की अवधारणा को छोड़कर गठबंधन राजनीति की आवश्यकता को गंभीरता से महसूस किया और राष्ट्रीय स्तर पर छोटे-छोटे **20** राजनीतिक दलों से गठबंधन करके डॉ मनमोहन सिंह के नेतृत्व में **l;wDr izxfr'khy xBc/ku** (संप्रग) की सरकार बनाकर पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। **lizx ljdkj** में कांग्रेस के साथ-साथ लालू प्रसाद यादव की राष्ट्रीय जनता दल (राजद), शिबू सोरेन की झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो), रामविलास पासवान की लोकतंत्रिक जनता पार्टी (एलजेपी) और शरद पवार की नेशनल कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) जैसे राजनीतिक दल शामिल थे। इसके साथ ही वामपंथी दल इसे बाहर से समर्थन दे रहा था। 2009 में 15वीं लोकसभा चुनाव पहली बार **nks** प्रमुख राजनीतिक गठबंधनों– **jk"Vh; turkf=d xBc/ku** (राजग) एवं **l;wDr izxfr'khy xBc/ku** (संप्रग) के बीच लड़ा गया। इस आम चुनाव के बाद एक बार पुनः डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में **;wih,&2** की सरकार बनी।

16oh ykdlHkk puko vkj ujsUnz ekneh dh ,uMh, ljdkj& 2014 की 16वीं लोकसभा चुनाव में जहाँ **Hkkjrh; turk ikVhZ** ने **jk"Vªh; turkf=d xBc/ku** का नेतृत्व करिश्माई नेता **ujsUnz ekneh** को सौंपा, वहाँ दूसरी तरफ **l;Dr izxfr'khy xBc/ku** ने सोनिया और राहुल गाँधी के नेतृत्व में चुनावी अभियान में अपनी भागीदारी दर्ज की। नरेंद्र मोदी ने कांग्रेस के पिछले कार्यकाल में हुए बड़े घोटालों जैसे– कोयला घोटाला, 2 जी स्पैक्ट्रम घोटाला, राष्ट्रमंडल खेल घोटाला, रॉबर्ट वाड्रा लैंड डील घोटाला आदि को जनता के दिल को छूने वाली बात कहकर लोकसभा चुनावों में **Hkkjrh; turk ikVhZ** के लिए अकेले 282 स्थान प्राप्त किया। उल्लेखनीय है कि 2014 में **Hkkjrh; turk ikVhZ** ने कई नए गठबंधन किए, जिनमें अधिकांश गठबंधन पिछले गठबंधन की तुलना में अधिक अनुकूल शर्तों के आधार पर किए गए। **f'koluk** एवं **vdkyh ny** जैसे प्रमुख गठबंधनों की यथास्थिति बरकरार रखी गई। भाजपा ने 2014 में 10 राज्यों में चुनाव पूर्व गठबंधन कर न सिर्फ लोकसभा की कुल 543 सीटों में से अकेले 282 सीटें जीत लीं, वरन् अपने चुनाव पूर्व गठबंधन के सहयोगी दलों के साथ **,uMh,** सरकार भी गठित कर ली। लोकसभा में **,uMh,** की सीटों की संख्या जहाँ 334 तक पहुँच गई वहाँ कांग्रेस को सिर्फ 44 स्थान ही मिले। **vUuk nfoM+ eqUus=a dM+xe] r.kewy dkaxzsl] cht+sMh turk ny** और **f'koluk** को छोड़कर प्रायः सभी क्षेत्रीय दलों का सफाया हो गया। इस प्रकार, लंबे समय के बाद केंद्र में किसी एक राजनीतिक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। उस समय ऐसा लगा कि खींचतान व लूटपाट वाली गठबंधन का दौर समाप्त हो गया। यह भारतीय राजनीति के लिए शुभ संकेत था।

२०१४ के चुनाव में एनडीए के घटक दल

Ø- l-	?kVd ny	vkofVr lhV
1.	भारतीय जनता पार्टी	427
2.	तेलुगू देशम् पार्टी	30
3.	शिवसेना	20
4.	देशीया मुरपोक्कु द्रविड़ कड़गम	14
5.	शिरोमणि अकाली दल	10
6.	पट्टाली मक्कल कच्ची	8
7.	मरुमलार्ची द्रविड़ मुनेत्र कड़गम	7
8.	लोक जनशक्ति पार्टी	7
9.	राष्ट्रीय लोक समता पार्टी	3
10.	अपना दल	2
11.	हरियाणा जनहित कांग्रेस	2
12.	स्वाभिमानी पक्ष	2
13.	इंधिया जननयागा काची	1
14.	कोनगुनाडु मक्कल देसिया काची	1

15.	ऑल इंडिया एन. आर. कांग्रेस	1
16.	रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (अठवले)	1
17.	राष्ट्रीय समाज पक्ष	1
18.	रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी (बोल्शेविक)	1
19.	केरल कांग्रेस (राष्ट्रवादी)	1
20.	नेशनल पीपुल्स पार्टी	1
21.	नागा पीपुल्स पार्टी	1
22.	मिजो नेशनल फ्रंट	1
	राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन	542

इसी प्रकार 2014 के चुनाव में **l;Dr ixfr'khy xBc/ku** को 2004 और 2009 के आम चुनावों की तुलना में बहुत कम स्थान मिले। **l;Dr ixfr'khy xBc/ku** के 59 सीटों में कांग्रेस को मात्र 44 स्थान मिले।[24]

17oh ykdlHkk puko vkj ujsUnz eksnh dh vi;kflr thr& 17वीं लोकसभा चुनाव (2019) में जहाँ भाजपा के नेतृत्व वाले **,uMh,** में 38 छोटे–बड़े दलों में करीब 20 चुनाव मैदान में रहे, वहाँ दूसरी तरफ **l;Dr ixfr'khy xBc/ku** (यूपीए) में 16 दल शामिल हुए। भाजपा ने **jk"Vªh; turkf=d xBc/ku** (राजग) में देश के 17 राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों से संबंध रखने वाले 38 दलों को जोड़कर अपने सहयोगी दलों के लिए करीब 110 सीटें छोड़ीं और कुछ सीटों पर निर्दलियों का भी समर्थन किया। तमिलनाडु में सत्तारूढ़ **vUukeqd** के साथ **Hkktik** को तीन प्रमुख क्षेत्रीय दलों का समर्थन प्राप्त रहा। केरल में **vkB** स्थानीय दल भाजपा के साथ रहे और वे सब मिलकर कांग्रेस और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (माकपा) के नेतृत्व वाले गठबंधन को कड़ी चुनौती दिए। इसके साथ ही बिहार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और पंजाब जैसे राज्यों में भाजपा को मजबूत सहयोगी प्राप्त हुए। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, असम, गोवा और झारखंड जैसे राज्यों में भी कई छोटे दल भाजपा के साथ चुनाव में रहे। बिहार में **tn;w** और **ykstik** के साथ भाजपा का गठबंधन हुआ।

कांग्रेस के नेतृत्व वाले **l;Dr ixfr'khy xBc/ku** के अंतर्गत बिहार के **egkxBc/ku** में **jk"Vªh; turk ny** (राजद) और **dkxzl** के अलावा उपेंद्र कुशवाहा की पार्टी **vkj,y,lih**, जीतनराम माँझी की पार्टी **ge**, मुकेश सहनी की **ohvkbZih** और शरद यादव की पार्टियाँ सम्मिलित रहीं। उत्तर प्रदेश में अखिलेश यादव की **lekotknh ikVhZ** और मायावती की **cgqtu lekt ikVhZ** में गठबंधन हुआ। इसी प्रकार महाराष्ट्र में कांग्रेस और शरद पवार की **u'kuy dkxzl ikVhZ** (एनसीपी) में सीटों का बँटवारा हुआ। महाराष्ट्र की 48 सीटों में से कांग्रेस ने 26 और **,ulhih** ने 22 सीटों पर चुनाव लड़ा। महाराष्ट्र की 48 लोकसभा सीटों में जहाँ **,uMh,** ने 41 सीटें जीतीं थीं, वहाँ कांग्रेस–एनसीपी गठबंधन को सिर्फ 6 सीटें मिली थी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के करश्माई व्यक्तित्व तथा पिछले पाँच वर्षों के उनके कामकाज से

प्रभावित होकर इस आम चुनाव में देश ने अकेले Hkkjrh; turk ikVh को 303 और पूरे ,uMh, को लोकसभा में 355 सीटों पर अप्रत्याशित विजय दिलाकर उनके नेतृत्व में आस्था व्यक्त किया।

गठबंधन सरकार की चुनौतियाँ

विविधता से पूर्ण भारतीय राजनीति में गठबंधन सरकारें भले आज एक आवश्यक विकल्प के रूप में उभरी हों, इनकी गंभीर निम्नलिखित चुनौतियाँ भी हैं–

1- lÙkk-l[k d fy,& ऐतिहासिक विश्लेषण से स्पष्ट है कि गठबंधन में शामिल घटक दलों में सत्ता-सुख प्रमुख कारण रहा है। मार्च 1977 के आम चुनाव में turk ikVh के प्रत्याशियों को इंदिरा–विरुद्ध अभियान में प्राप्त अप्रत्याशित सफलता से बनी turk ikVh ljdkj में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई तथा चौधरी चरण सिंह में खिंचतान प्रारंभ हो गई जिसके चलते 1978 में चौधरी चरण सिंह को वित्त मंत्रालय सहित उप-प्रधानमंत्री का ओहदा दिया गया। इसके बावजूद 23 जून 1979 को चौधरी साहब के इशारे पर राजनारायण का turk ikVh से त्यागपत्र देना और चौधरी चरण सिंह द्वारा देसाई सरकार से अलग होकर 28 जुलाई 1989 को अल्पमत सरकार का गठन करना, उनके सत्ता-सुख के चलते ही हुआ। इसी प्रकार 10 नवंबर 1990 को चंद्रशेखर का वी. पी. सिंह की turk ny ljdkj से निकल कर कांग्रेस के बाहरी समर्थन पर प्रधानमंत्री बनना सत्ता-सुख के संदर्भ में ही देखा जा सकता है।

2- jk"Vh; pfj= dh deh& गठबंधन सरकारें राष्ट्रीय और राजनीतिक दायित्वों के प्रति गैर जिम्मेदार और गैर जबावदेह होती हैं। ऐसे गठबंधन सरकारों का कोई राष्ट्रीय चरित्र नहीं होता। उदाहरण के लिए 1998 में संपन्न मध्यावधि चुनाव के बाद अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनी गठबंधन सरकार में घटक दलों के नेताओं में राष्ट्रीय चरित्र की कमी, जयललिता की नाराजगी और क्षेत्रीय आकांक्षाओं के चलते सिर्फ एकमत से 13 माहों में ही गिर गई।

3- vLokHkkfod xBc/ku& अस्वाभाविक गठबंधन भारतीय राजनीति की व्यावहारिक सच्चाई रही है। ऐसी गठबंधन सरकारें वैचारिक मतभेदों के बावजूद भले ही गठित हो जाएँ, वे स्थायी नहीं हो सकतीं। उदाहरण के लिए 1989 के चुनावों के बाद वीपी सिंह के नेतृत्व में u'kuy ÝªV की सरकार okeny और Hkktik के सहयोग से तो बनी, लेकिन 1990 में वीपी सिंह सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद भाजपा द्वारा समर्थन वापस लेने से 11 महीने में ही गिर गई। इसी प्रकार 14वीं लोकसभा चुनाव के बाद 2004 में गठित मनमोहन सिंह की सरकार ने जब 2005 में अमेरिका से vlSU; ijek.kq le>kSrk किया तब वामपंथी दलों ने मनमोहन सरकार से अपना समर्थन वापस लेकर सरकार के समक्ष बड़ी चुनौती उत्पन्न कर दी।

4- e=h in d fy, ?kVd nyk e erHkn& अनुभव बताते हैं कि गठबंधन के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों में नेता पद और मंत्री पद के लिए होड़ हो जाती है। ऐसी स्थिति में क्षुब्ध राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा गठबंधन से समर्थन वापस लेकर सरकार गिरा देने से गंभीर और भयानक राजनीतिक परिणाम होते हैं। **turk ikVh** सरकार के विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने मोरारजी देसाई सरकार की पराजय का एकमात्र कारण आपसी मतभेदों को बताते हुए 22 जनवरी 1980 को पटना के गाँधी मैदान में चौधरी चरण सिंह को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया।[25]

5- LFkkf;Ro dk [krjk& गठबंधन सरकार बनने से स्थायित्व को खतरा है और इससे राजनीति में नकारात्मक स्थिति का जन्म होता है। 1996 में अटल बिहारी वाजपेयी की **13** दिन चली सरकार और उसके बाद जून 1996 से अप्रैल 1997 के बाद अल्पावधि तक चली एच. डी. देवेगौड़ा और इंद्र कुमार गुजराल की सरकारों का आना और अल्पावधि में चले जाना इसकी संपुष्टि करते हैं। पुनः 1998 के मध्यावधि चुनाव के बाद अटल बिहारी वाजपेयी की **13** महीने की सरकार ने भी गठबंधन राजनीति की इस दुर्बलता को देश के सामने रखकर गठबंधन सरकारों के समीकरणों में 'स्थायी अस्तित्व के संकट' की झलक को उजागर किया।[26]

6- uhfr;k e cnyko d fy, ncko dh yxkrkj ck/;rk& गठबंधन सरकार के समक्ष यह भी चुनौती रही है कि सरकार में शामिल घटक दलों के बीच आम सहमति कैसे बनाई जाए। उदाहरण के लिए मनमोहन सिंह के नेतृत्व में **;ih,** सरकार के समय **Hkkjr vesfjdk ukxfjd ijek.k le>kSrk** को लेकर वामपंथी दलों ने सरकार पर लगातार दबाव बनाया। इसी प्रकार 1999 में **jk"Vh; turkf=d xBc/ku** में सम्मिलित घटक दलों के दबाव के कारण ही भाजपा को अपने विवादास्पद राजनीतिक मुद्दे गोबध निषेध, अनुच्छेद 370, समान नागरिक संहिता एवं राम मंदिर निर्माण आदि मसलों को सरकार की कार्यसूची से बाहर रखना पड़ा।[27]

7- ?kVd nyk d chp l)kfrd vkn'kZ e erHkn& विभिन्न घटक दलों से मिलकर बनी गठबंधन सरकार को विभिन्न सिद्धांतों के मध्य उत्पन्न मतभेद को पाटने के लिए एक समन्वय बनाकर असंतुलन की स्थिति से बचना पड़ता है। अतः आदर्शों पर मतभेद गठबंधन राजनीति की बड़ी चुनौती है।

8- i/kkuea=h d fo'k"kkf/kdkj dk guu& संसदीय शासन व्यवस्था में मंत्रिमंडल के लिए सहयोगियों का चयन हमेशा प्रधानमंत्री का विशेषाधिकार माना जाता है। लेकिन, गठबंधन सरकार में प्रधानमंत्री का यह विशेषाधिकार बुरी तरह प्रभावित होता है, क्योंकि क्षेत्रीय दलों के नेता यह तय करते हैं कि मंत्रिमंडल में उनके दल का नेतृत्व कौन करेगा और उन्हें कौन–कौन विभाग दिए जाएँगे। गठबंधन सरकार में सम्मिलित कई नेता तो पहले से ही मंशा पाले रखते हैं कि उन्हें कौन–सा पद लेना है और इस मजबूरी के चलते प्रधानमंत्री को उनकी बात माननी पड़ती है।

9- jk"Vªh; fgrksa dk foifjr& गठबंधन सरकार की एक मुख्य चुनौती उसमें सम्मिलित दलों की आपसी खींचतान भी है जिसके चलते घटक दल अपने क्षेत्रीय हितों के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। क्षेत्रीय हितों का राष्ट्रीय हितों पर हावी हो जाने से राष्ट्रीय स्तर पर विविध तरह की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

10- jktuhfrd ltkrh;rk fl)kar dk fojks/kh& राजनीतिक सजातीयता का आदर्श है कि एक ही दल और विचारधारा के लोग सरकार का निर्माण करें। इससे लोकहित की पूर्ति होती है। गठबंधन सरकारों में विभिन्न परस्परविरोधी घटक दलों के सम्मिलित होने से राजनीतिक सजातीयता के सिद्धांत का अनुपालन नहीं हो पाता।

11- lkefgd mÙkjnkf;Ro dk fl)kar dk guu& गठबंधन सरकारों में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का पालन नहीं हो पाता है, क्योंकि मंत्रिमंडल में सम्मिलित मंत्री विभिन्न राजनीतिक दलों के होते हैं जो दलीय प्रमुखों के निर्देश पर काम करते हैं।

गठबंधन सरकार की संभावनाएँ

1990 के बाद भारतीय राजनीति की उभरती प्रवृत्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत की राजनीति में इस समय नए वर्गों तथा समूहों की भागीदारी में वृद्धि हुई है जो भारतीय लोकतंत्र की मजबूती तथा देश की एकता और अखंडता के लिए आवश्यक है। गठबंधन सरकारों के सकारात्मक पक्ष निम्नलिखित हैं–

1- n'k dh cnyrh jktuhfr esa lokZÙke fodYi& गठबंधन सरकार का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि देश की बदलती हुई राजनीति में आज यह सर्वोत्तम विकल्प है। 1999 के **13ö** लोकसभा चुनावों के बाद भारत में गठबंधन सरकारें काफी हद तक स्थिर सरकारें रही हैं। 1999, 2004, 2009 तथा 2014 में गठित गठबंधन सरकारें अपना कार्यकाल पूरा कर अपने सर्वोत्तम विकल्प होने को प्रमाणित करते हुए आज प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी है।

2- fojks/kh fopkj/kkjk okyh nyksa esa lkeatL; ,oa leUo; dh LFkkiuk& U;wure lk>k dk;ZØe द्वारा गठबंधन में सम्मिलित विरोधी विचारधारा वाले घटक दलों के बीच **lkeatL;** तथा **leUo;** स्थापित करने का प्रयास किया गया है। ऐसा करने से गठबंधन सरकारों में इन उपायों द्वारा नीतिगत मामलों में एकरूपता स्थापित करने में सहायता मिली है।

3- jktuhfrd la?kokn dh lqn<rk& भारत क्षेत्रीय विविधता वाला देश है जहाँ संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया है। केंद्रीय स्तर पर गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी सही अर्थ में **jktuhfrd la?kokn** को सुदृढ़ कर रही है।

4- {k=h; vkdk{kkvksa dh ykdrkf=d vfHkO;fDr dk ek/;e& राष्ट्रीय गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी उनकी क्षेत्रीय आकांक्षाओं की लोकतांत्रिक

अभिव्यक्ति का माध्यम है। ,uMh, और ;ih, गठबंधन सरकारों में सम्मिलित विभिन्न ?kVd दलों से भारत की लोकतांत्रिक प्रक्रिया मजबूत हुई है।

5- lrrfyr {k=h; fodkl& केंद्रीय सरकारों में क्षेत्रीय दलों की प्रभावी भागीदारी से lrrfyr {k=h; fodkl के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिल रही है। विरोधी विचारधाराओं वाले दलों के सरकार में शामिल होने के बावजूद गठबंधन सरकारों में विगत वर्षों में jktuhfrd fLFkjrk आई है। गठबंधन सरकारों की इस परिपक्वता तथा स्थिरता का मुख्य कारण विभिन्न राजनीतिक दलों के मध्य प्रमुख निम्नलिखित मौलिक मुद्दों पर अग्रलिखित vke lgefr का विकास है– **1. mnkjokn vkfFkd uhfr;k ij lgefr&** 1991 में जब नरसिम्हा राव सरकार द्वारा वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के साथ समायोजन हेतु नई उदारवादी आर्थिक नीतियाँ अपनायी गईं तब विभिन्न समूहों और दलों ने इनका विरोध किया था, लेकिन 21वीं सदी के प्रथम दशक में सभी दलों में यह आम सहमति बन गई है कि उदारवादी नीतियाँ देश की संपन्नता तथा विश्व में भारत को एक आर्थिक शक्ति का दर्जा दिलाने के लिए आवश्यक है, **2. lkekftd U;k; ij lgefr&** 1990 में जब केंद्र सरकार ने अन्य पिछड़ों कें लिए आरक्षण की व्यवस्था लागू की थी तब यह विभिन्न दलों के बीच विवाद का विषय बन गया था। वर्तमान में सभी राजनीतिक दल सभी श्रेणियों की पिछड़ी एवं गरीब जातियों के लिए आरक्षण तथा अन्य विशेष सुविधाओं के लिए सहमत हैं, **3- {k=h; nyksa dh jktuhfrd Hkkfedk ij lgefr&** पहले यह मान्यता थी कि क्षेत्रीय दलों का सिर्फ क्षेत्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करने से राष्ट्रीय राजनीति में उनकी कोई भूमिका नहीं है। आज सभी राजनीतिक दलों ने राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका को स्वीकार किया है। आt dkxzsl तथा Hkktik के नेतृत्व में गठित सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका बढ़ी है, **4- o|kfjd ifrc)rkvksa dh ctk; 0;kogkfjd jktuhfr ij lgefr&** आज प्रायः सभी दल अपनी वैचारिक भिन्नताओं को नजरअंदाज करते हुए व्यावहारिक दृष्टि से आपस में सहयोग के लिए सहमत हैं। यही कारण था कि okeiFkh nyksa तथा Hkktik दोनों ने 1989 में कांग्रेस का विरोध करते हुए jk"Vªh; ekspk सरकार का समर्थन किया था।

निष्कर्ष

गठबंधन राजनीति की उभरती प्रवृत्तियों के उपरोक्त अध्ययन के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 1989–90 के दशक से भारतीय राजनीति में गठबंधन की राजनीति ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर भारतीय राजनीति को प्रभावित करते हुए अपने आंतरिक अंतर्विरोधों एवं आकांक्षाओं से गठबंधन सरकारों को अस्थिर बनाए रखा। लेकिन, 21वीं शताब्दी के प्रथम दशक में गठबंधन की राजनीति ने ifjiDork प्राप्त कर ली है। आज भारतीय राजनीति में गठबंधन को लोकतंत्र के लिए खतरा नहीं समझा जाता, बल्कि उसे देश की परिस्थितियों में लोकतंत्र के स्वाभाविक बदलाव के रूप में देखा जा रहा

है। भारतीय राजनीति की उभरती प्रवृत्तियाँ बताती हैं कि आज भारत की राजनीति में नए वर्गों तथा समूहों की भागीदारी बढ़ी है। 1970 के दशक में इंदिरा गाँधी की तानाशाही रवैये के आलोक में गठबंधन की जिस राजनीति की शुरुआत हुई, 1990 के दशक में कांग्रेस के वर्चस्व में आई कमी के चलते वह पल्लवित एवं पुष्पित होकर आज सर्वोत्तम विकल्प के रूप में उपस्थित है। गठबंधन सरकारों में नए सामाजिक वर्गों तथा क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका भारतीय लोकतंत्र के लिए अभिशाप न होकर उसकी मजबूती और राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक है। यह नरेंद्र मोदी सरकार की '*सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास* ' अवधारणा को सुदृढ़ करती है।

संदर्भ-ग्रंथ

1. गाँधीजी राय : *स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति,* तृतीय संस्करण (पटना, भारती भवन, 2018), पृ. 156
2. गठबंधन राजनीति के महायोद्धा अटल, ऐसे साथी 24 दलों की सरकार, aajtak.intoday.in
3. गाँधीजी राय, पूर्वोक्त, पृ. 160
4. सी. नटराजन अन्ना दुरई 1967 से मद्रास (तमिलनाडु) के मुख्यमंत्री थे और मद्रास राज्य में **tfLVl ikVh** से संबद्ध थे। उन्होंने भी सत्तारूढ़ कांग्रेस को पराजित करने की मुहिम में अपनी भागीदारी सुनिश्चित की थी।
5. उपरोक्त, पृ. 181
6. **Mh- ,e- d** ने हिंदी विरोधी आंदोलन का नेतृत्व करके सत्ता पर कब्जा किया। इस प्रांत के छात्र हिंदी को राजभाषा के रूप में केंद्र की सत्तारूढ़ कांग्रेस सरकार द्वारा अपने ऊपर थोपने का विरोध कर रहे थे।
7. गाँधीजी राय, पूर्वोक्त, पृ. 161–62
8. सिंडिकेट के प्रमुख सदस्य मद्रास प्रांत के पूर्व मुख्यमंत्री और कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष रह चुके **d- dkejkt**, बंबई (अब मुंबई) के **,l- d- ikfVy** आंध्र प्रदेश के **,u- latho jsÏh]** पश्चिम बंगाल के **vrqY; ?kks"k**, मैसूर (अब कर्नाटक) **d ,l. futfyxlik** थे। कांग्रेस के विभाजित होने के बाद **flfMdsV** के नेताओं और उनके प्रति निष्ठावान कांग्रेसी **lxBu dkaxsl** में रहे। उपरोक्त, पृ. 163
9. उपरोक्त, पृ. 166
10. पूर्वी पाकिस्तान उस समय पाकिस्तान का एक भाग था जहाँ बड़े पैमाने पर बंगालियों का कत्लेआम हो रहा था और लाखों की संख्या में बंगाली भारत में शरण लिए हुए थे।
11. उपरोक्त, पृ. 167
12. See 42nd Constitutional Amendment, 1 April, 1977
13. गठबंधन का दौर, www.livehindustan.com
14. गाँधीजी राय, *भारतीय संविधान और शासन,* द्वितीय संस्करण (पटना, भारती भवन, 1980), पृ. 474

15. सात राजनीतिक दल थे– स्वतंत्र पार्टी (पीलू मोदी गुट), भारतीय क्रांति दल (चौधरी चरण सिंह), उत्कल कांग्रेस (बीजू पटनायक), किसान–मजदूर पार्टी (चाँद राम), राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल (बलराम मधोक), संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी (राजनारायण) तथा पंजाब खेती-बाड़ी मजदूर यूनियन (बाबा महेंद्र सिंह)– उपरोक्त, पृ. 346
16. "My object to leave this non existent party is to build a real Janta Party of our dreams."- *The Indian Express* (New Delhi : Monday, 25 June, 1979)
17. *Indian Express*, vol. XLVII, No. 250 (New Delhi : 22 August, 1979), p. 9
18. गठबंधन का दौर, www.livehindustan.com
19. उपरोक्त
20. पी. वी. नरसिम्हा राव द्वारा अपनी सरकार बचाने के लिए अपनाए गए हथकंडे और झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) के सांसदों को रिश्वत दिए जाने का प्रकरण उजागर होने के बाद उनकी काफी फजीहत हुई।– गठबंधन की राजनीति का पड़ाव, https://navbharattimes.indiatimes.com...
21. गठबंधन की राजनीति में किस प्रकार की दिक्कतें आती हैं ?, https://hi.quora.com
22. गठबंधन की राजनीति का पड़ाव, https://navbharattimes.indiatimes.com...
23. https://hi.m.wikipedia.org>wiki...
24. भारतीय आम चुनाव, 2014, https://hi.m.wikipedia.org>wiki...
25. *दिनमान* (13–19 जनवरी, 1980), पृ. 19
26. गठबंधन की राजनीति में किस प्रकार की दिक्कतें आती हैं ?, https://hi.quora.com
27. उपरोक्त

भारतीय गठबंधन राजनीति का विकासात्मक स्वरूप

सच्चिदानन्द मिश्र

Ikjk'k *भारत की गठबन्धन राजनीति भारत की बहुलवादी समाज की प्रतिनिधियात्मक अभिव्यक्ति है। गठबन्धन राजनीति के विकास की प्रक्रिया तब प्रारम्भ हुई जब स्वतंत्रता आन्दोलन के सन्दर्भ में राष्ट्रीय कांग्रेस ने गाँधी जी के नेतृत्व में एक राजनीतिक दल के रूप में अपने को संगठित कर ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित थी। भारतीय संविधान के अन्तर्गत जब प्रथम आम निर्वाचन के पश्चात पं. नेहरू के नेतृत्व में केन्द्रीय सरकार बनी तो उसमें गठबन्धन राजनीति को विकसित करने वाले तत्वों को प्राथमिकता दी गयी। पं. नेहरू के कार्यकाल में कांग्रेस पार्टी का संगठनात्मक स्वरूप भी विकेन्द्रीकृत, संघीय एव व्यापक जन सहभागिता पर आधारित रहा। 1989 के संसदीय निर्वाचन में दलीय गठबन्धन का जो स्वरूप विकसित हुआ, दलीय गठबन्धन हेतु जिस प्रकार राष्ट्रीय पार्टियों के साथ ही क्षेत्रीय पार्टियों ने भी पहल करना प्रारम्भ किया, उससे स्पष्ट होने लगा कि सभी राजनीतिक दल चाहें वे क्षेत्रीय हों या राष्ट्रीय किसी भी कीमत पर गठबन्धन को आवश्यक मानने लगे हैं। 1989 से 1999 तक पाँच संसदीय निर्वाचन हुये, जिसमें दलीय नेताओं का महत्व क्रमशः घटता गया और गठबन्धन के घटकों का महत्व बढ़ता रहा। 2014 के संसदीय निर्वाचन में भाजपा को 280 सीटों पर विजय हासिल हुई। 2019 के संसदीय निवार्चन में भाजपा को 303 सीटें प्राप्त हुईं। मोदी चाहते तो दोनों बार अकेले भाजपा की सरकार बना सकते थे किन्तु उन्होंने गठबन्धन की ही सरकार बनायी।*

भारत की गठबंधन राजनीति भारत की बहुलवादी समाज की प्रतिनिधियात्मक अभिव्यक्ति है। भारत राष्ट्र स्वयं में एक जनतांत्रिक गठबंधन है। इसके विकास का बीजारोपण सर्वप्रथम 1857 में सिपाही विद्रोह में हुआ, जब पहली बार हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों ने ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध संयुक्त रूप से बगावत की थी। इस गठबन्धन राजनीति के विकास की प्रक्रिया तब प्रारम्भ हुई जब स्वतंत्रता आन्दोलन के सन्दर्भ में राष्ट्रीय कांग्रेस ने गांधी जी के नेतृत्व में एक राजनीतिक दल के रूप में

अपने को संगठित कर ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने की प्रतिबद्धता प्रदर्शित की। ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करने वाले सभी राजनीतिक समुदायों के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक सार्वदेशिक मंच प्रदान किया। कभी दूसरे राजनीतिक संगठनों के बुनियादी मुद्दों एवं कार्यक्रमों का समर्थन करके तो कभी अपने मुद्दों एवं कार्यक्रमों के प्रति दूसरे समुदायों एवं संगठनों को आश्वस्त करके, समायोजन एवं गठबंधन के माध्यम से, अनवरत रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करते हुये भारत राष्ट्र के निर्माण की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कांग्रेस सम्पूर्ण देश में ऐसे राजनीतिक दल के रूप में कार्य करती रही, जिससे संगठन या ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करने वाले राजनीतिक समुदायों का संगठन कहना उपयुक्त होगा। स्वतंत्रता आन्दोलन के संदर्भ में गठबंधन राजनीति के विकास का बीज कांग्रेस पार्टी के संगठनात्मक स्वरूप एवं कार्यप्रणाली में पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा।

1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत जब प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में चुनाव हुये तो जहां किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला, वहां संविद सरकारों का गठन किया गया। 1946 के निर्वाचन के पश्चात् भी भारत में संविद सरकारों का गठन हुआ। 1946 में जब पं. नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार बनी तो उसमें विभिन्न दलों एवं समुदायों के नेताओं को सम्मिलित किया गया।[1]

संविधान निर्माण करते समय संविधान निर्माताओं ने यदि संसदीय शासन प्रणाली अपनाने का निश्चय किया तो उसका भी प्रायोजन रहा– गठबंधन राजनीति के माध्यम से संघीय सरकार का निर्माण कर भारत के विभिन्न समुदायों एवं क्षेत्रों को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व प्रदान कर राष्ट्रीय संदर्भ में विकास के मार्ग को प्रशस्त करते रहना।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत जब प्रथम आम निर्वाचन के पश्चात पं. नेहरू के नेतृत्व में केन्द्रीय सरकार बनी तो उसमें भी गठबन्धन राजनीति को विकसित करने वाले तत्वों को प्राथमिकता प्रदान की गयी। नेहरू जी की सरकार में वामपंथी और दक्षिणपंथी कांग्रेस टीमभावना से नेहरू जी के सहयोग में देश का विकास करते रहें। डॉ. अम्बेडकर तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे वैचारिक मतभेद रखने वाले व्यक्तियों के साथ भी नेहरू जी समायोजन स्थापित करने की पहल करते रहें। विभिन्नता में एकता स्थापित करने की पहल करते रहना उनकी कार्यप्रणाली का अभिन्न अंग रहा। आम सहमति को वे अपने निर्णय का आधार बनाये रखते थे।

श्री योगेन्द्र यादव का मानना है कि नेहरू जी के समय भी एक दल के प्रभुत्व वाली व्यवस्था ने बहुदलीय व्यवस्था की नर्सरी के रूप में कार्य किया। इसमें सरकार और विपक्ष दोनों की भूमिका में कांग्रेस के ही विभिन्न गुट सक्रिय रहते थे। विचारधारात्मक ध्रुवीकरण बहुत कम थे और जो थे वे हाशिये पर पड़े हुये थे। हाशियों के बीच के विशाल राजनीति के दायरे में लगभग हर मुकाम पर कांग्रेस का वर्चस्व था। विभिन्न हित उसके जरिये ही मुखरित होते थें।[2]

पं. नेहरू के कार्यकाल में कांग्रेस पार्टी का संगठनात्मक स्वरूप भी विकेन्द्रीकृत, संघीय एवं व्यापक जन सहभागिता पर आधारित रहा। कांग्रेस का विविधता मूलक चरित्र समाज के विभिन्न वर्गों एवं क्षेत्रों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को मुखर करता रहा।

पं. नेहरू एवं शास्त्रीजी के अवसान के बाद क्रमशः कांग्रेस पार्टी का समायोजनवादी स्वरूप क्षीण होने लगा। उसके अन्दर नयी और पुरानी पीढ़ी के वामपंथी एवं दक्षिणपंथी मानसिकता वाले नेताओं के बीच मतभेद मुखर होने लगे। वंशवाद, जातिवाद, धनबल एवं भ्रष्टाचार विकसित होने लगा। भारतीय राजनीति में विकसित इन प्रवृत्तियों के चलते ही लोहियाजी ने लिखा कि भारत में प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के विकास के लिए कांग्रेस का पराजित होना आवश्यक है। 1966 के चतुर्थ आम निर्वाचन में श्री राम मनोहर लोहिया ने गैर कांग्रेसवाद का अभियान चलाकर सभी गैर कांग्रेसी पार्टियों को गठबंधन के आधार पर एक मंच पर लाने की पहल प्रारम्भ की जिसके चलते कांग्रेस पार्टी स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने में असमर्थ हो गयी। इन्दिरा जी के नेतृत्व में केन्द्र में कांग्रेस की सरकार बनी, तो उसे भी साम्यवादियों के समर्थन पर निर्भर होना पड़ा तथा जिन राज्यों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सका था, उन राज्यों में न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर गठित मोर्चे की सरकारे बनी। आगे चलकर 1969 के मिनी आम निर्वाचन में पश्चिम बंगाल और पंजाब में सक्रिय क्षेत्रीय आधार वाले गठजोड़ कांग्रेस के टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरे।[3]

श्री लोहिया द्वारा संचालित गैर कांग्रेसवादी अभियान की प्रेरणा से सभी दलीय गठबंधन में कांग्रेस विरोध की जो राजनीति विकसित हुई उसमें न तो सामुदायिक हितों को महत्व मिला न संस्थागत मूल्यों को। सिद्धान्तविहीन दलीय गठबन्धन से निर्मित विपक्ष का कोई सर्वमान्य राष्ट्रीय स्वरूप मतदाताओं के मस्तिष्क में निर्मित नहीं हो सका। विजातीय एवं बेमेल सत्ता विन्यासित गठबंधन की नई प्रवृत्ति ने सशक्त एवं स्थायी विपक्ष के विकास की पृष्ठभूमि ही तैयार नहीं होने दी।

चतुर्थ आम निर्वाचन के बाद विधानसभाओं के स्तर पर दल-बदल एवं दलीय गठबन्धन की एक ऐसी राजनीति प्रारम्भ हुई जिसमें सिद्धान्त निष्ठा, दलीय प्रतिबद्धता एवं दलीय अनुशासन को दफना दिया गया तथा सरकार को राजनीति रूपी बाजार में सौदेबाजी की वस्तु बना दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप जन प्रतिनिधियों की महत्वकांक्षाओं एवं मतदाताओं की अपेक्षाओं के बीच सामंजस्य बनाये रखने की राजनीतिक दलों की क्षमता समाप्त होने लगी। इस नई राजनीतिक प्रवृत्ति से निर्वाचकीय राजनीति एवं सत्ता राजनीति के बीच जो रिक्तता उत्पन्न हुई उससे प्रत्याशी एवं मतदाता के सम्बन्ध दिशाहीन एवं दायित्वविहीन होने लगे। ऐसे ही राजनीतिक परिस्थितियों में भारत के बहुलतावादी समाज की निर्वाचकीय अभिव्यक्ति का आधार दलीय आस्था की जगह जाति, सम्प्रदाय, वर्ग एंव क्षेत्र के प्रति आस्था होने

लगी। सभी राजनीतिक दलों के अन्दर जातीय, वर्गीय एवं क्षेत्रीय गुट प्रभावी होने लगे। इन गुटों के हितों के बीच जब तक नेतृत्व सामंजस्य स्थापित करता रहा तब तक ये गुट राजनीतिक दलों की शक्ति का सम्वर्द्धन करते रहे और जब नेतृत्व सामंजस्य स्थापित करने में असमर्थ रहा तो ये गुट अलग राजनीतिक दल बनाकर सत्ता में हिस्सेदारी का दावा करते रहें। सातवें दशक से जाति एवं सम्प्रदाय विशेष की संख्या के आधार पर प्रत्याशियों का चयन राजनीतिक दलों द्वारा प्रारम्भ हो गया। इस प्रवृत्ति के चलते जाति वर्ग एवं सम्प्रदाय का राजनीतिकरण और प्रजातंत्रीकरण भी प्रारम्भ हो गया। श्री योगेन्द्र यादव के अनुसार भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति एवं चरित्र में होने वाला यह परिवर्तन एक युगान्तकारी घटना थी। लोकतंत्र के शिशु को 20 वर्षों के पालन-पोषण के बाद नर्सरी (कांग्रेस से बाहर) से अधिक नैसर्गिक और अधिक जोखिम भरी आबोहवा में उतारा जा रहा था। यह व्यवस्था की असफलता का नहीं बल्कि राजनीतिक दायरे में नये समुदायों को शामिल करने में लोकतांत्रिक राजनीति की असाधारण सफलता का द्योतक था।[4] 1965 में केरल कांग्रेस का निर्माण, 1967 में पश्चिम बंगाल में बंगला कांग्रेस का निर्माण, 1971 में उड़ीसा में उत्कल कांग्रेस का निर्माण, 1967 में उत्तर प्रदेश में भारतीय क्रान्ति दल का निर्माण तथा अन्ततः 1969 में सम्पूर्ण कांग्रेस पार्टी का दो भागों में विभाजन भारतीय राजनीति की ऐसी घटनायें हैं जो स्पष्ट करती हैं कि ज्यों ही कांग्रेस पार्टी का गठबंधनात्मक एवं समायोजनवादी चरित्र का ह्रास हुआ, त्यों ही उसका विघटन भी प्रारम्भ हो गया। इस अवधि में राजनीति का जो क्षेत्रीकरण हुआ और कांग्रेस के संस्थागत स्वरूप एवं राष्ट्रीय चरित्र में जो परिवर्तन हुआ उसका विश्लेषण करते हुये श्री रजनी कोठारी ने लिखा है कि राज्यों की राजनीति केन्द्रीय स्तर पर किसी योगफल के रूप में जुड़ते हुए नहीं दिखती थी। बड़े प्रान्तों में क्षेत्रीय प्रकृति के दल राष्ट्रीय प्रकृति के दलों को पीछे छोड़कर कांग्रेस के बाद दूसरे नंबर की ताकत बनते जा रहे थें।[5]

1971 के संसदीय निर्वाचन से पूर्व बंग्लादेश के निर्माण के सम्बन्ध में राष्ट्रीय अस्मिता के रक्षक के रूप में इन्दिरा जी के चमत्कारी व्यक्तित्व का जो विकास हुआ तथा 20 सूत्रीय कार्यक्रम एवं गरीबी हटाओ जैसे लोकलुभावन नारों के चलते उनकी जो लोकप्रियता बढ़ी उसके चलते आम जनता के बीच जो सम्मोहन कांग्रेस के प्रति रहा करता था, वह इन्दिरा जी के व्यक्तित्व में सम्मिलित हो गया। परिणामतः इन्दिरा जी के गठबंधन को इस निर्वाचन में 400 स्थान प्राप्त हुये, जिसमें इन्दिरा कांग्रेस 350, मा.क.पा. एवं डी.एम.के. को 23 तथा मुस्लिम लीग को तीन स्थान मिलें। इन्दिरा जी ने अपने कार्यकाल में बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके तथा राजाओं के प्रीवीपर्स को समाप्त करके हरित क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया तथा गरीबों की जीवन पद्धति में सुधार लाने की पहल की। किन्तु कांग्रेस पार्टी संघात्मक एवं गठबंधनात्मक के स्थान पर एकात्मक एवं वैयक्तिक हो गई। गठबंधन एवं समायोजन राजनीति की कार्यप्रणाली निष्प्रभावी हो गयी। गैर संवैधानिक एवं अधिनायकवादी राजनीति प्रभावी होने लगी।

संसदीय एवं संघवादी मूल्यों की उपेक्षा होने लगी। क्षेत्रीय राजनीतिक दलों में अलगाववादी प्रवृत्ति का विकास होने लगा।

ऐसे ही राजनीतिक परिदृश्य की प्रतिक्रिया में भारतीय लोक दल, संगठन कांग्रेस, सी.एफ.डी., जनसंघ एवं समाजवादी दल ने जनता पार्टी का निर्माण कर उसमें अपना विलय कर लिया तथा विरोधी पार्टियों के साथ संयुक्त मोर्चे का निर्माण कर 1977 के निर्वाचन में कांग्रेस को पराजित कर दिया। 1977 में श्री मोरार जी देसाई के नेतृत्व में गठित संविद सरकार में जिस गठबन्धन राजनीति का विकास हुआ उसमें भी संस्थागत, संसदीय एवं संविधानिक मूल्यों की उपेक्षा की गयी। जनता पार्टी संस्था विन्यासित न होकर व्यक्ति विन्यासित बनी रही। जनता पार्टी में जिन दलों ने अपना विलय किया वे अपने धार्मिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय पूर्वाग्रहों को छोड़ नहीं पाये थें। जनता पार्टी के विभिन्न घटकों में अपने-अपने घटकों पर शीर्ष नेताओं का एकाधिकार पूर्ववत था। परिणामतः उनकी सत्ता विन्यासित प्रतियोगिता ने दलीय संगठन एवं दलीय निर्णय निर्माण प्रक्रिया में एकरसता का संचार नहीं होने दिया। केन्द्र से लेकर राज्य स्तर की विभिन्न घटकों के नेताओं के बीच जो खींचतान हुई, उसमें न तो संवैधानिक संघवाद को महत्व मिला, न प्रान्तीय स्वायत्तता को, न संसदीय मूल्यों को, न गठबंधनात्मक मानकों को। अन्ततः जनता पार्टी 28 माह बाद बिखर गयी और पुनः इन्दिरा जी 1980 के निर्वाचन में तथा राजीव गाँधी 1984 के निर्वाचन में सत्ता में आ गये।

1980 एवं 1984 के संसदीय निर्वाचन में जो दलीय गठबंधन सम्पन्न हुये वे तीन तरह के रहें–

1. शीर्षस्थ नेताओं का गठबंधन
2. साम्प्रदायिक एवं क्षेत्रीय पार्टियों का गठबन्धन
3. विजातीय दलीय गठबंधन

दलीय गठबंधन की इन प्रवृत्तियों ने राष्ट्रीय पार्टियों को शीर्षस्थ नेताओं की सत्ता विन्यासित महत्वकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बना दिया। परिणामतः उनका जनाधार इतना सीमित हो गया कि क्षेत्रीय पार्टियों से गठबंधन किये बिना उनके लिये चुनाव जीतना लोहे के चने चबाने जैसा होता गया। दूसरी तरफ क्षेत्रीय राजनीतिक दल राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के तुलना में अपनी स्थिति अपराजेय बनाते गये। जम्मू-कश्मीर में नेशनल कॉफ्रेंस, पंजाब में अकाली दल, बंगाल में मकपा, महाराष्ट्र में राष्ट्रवादी कांग्रेस, तमिलनाडु में ए.डी.एम.के. तथा आन्ध्र प्रदेश में तेलगु देशम पार्टी के साथ दलीय गठबंधन या दलीय समायोजन राष्ट्रीय पार्टियों की विजय की संभावना को सुनिश्चित करने की दृष्टि से अनिवार्य होता गया।

1989 के संसदीय निर्वाचन में दलीय गठबन्धन का जो स्वरूप विकसित हुआ, दलीय गठबंधन हेतु जिस प्रकार राष्ट्रीय पार्टियों के साथ ही क्षेत्रीय पार्टियों ने भी

पहल करना प्रारम्भ किया, उससे यह स्पष्ट होने लगा कि सभी राजनीतिक दल चाहें व क्षेत्रीय हो या राष्ट्रीय, किसी भी कीमत पर गठबंधन को आवश्यक मानने लगे हैं। 1989 में सर्वश्री एन.टी. रामाराव, देवी लाल एवं वी.पी. सिंह की पहल पर जनता दल, तेलगु देशम, संगठन कांग्रेस एवं असम गण परिषद के बीच दलीय गठबंधन के तहत राष्ट्रीय मोर्चे का निर्माण किया गया तथा 1989 का निर्वाचन लड़ा गया। जिसे आम जनता ने अपनी सहमति प्रदान करते हुये विजयश्री दिलाई। एक साझे दुश्मन से लड़ने की गैर कांग्रेस मानसिकता ने तथा सत्ता विन्यासित साझा स्वार्थ ने अलग-अलग बिखरे हुये सैद्धान्तिक क्षेत्रीय एवं साम्प्रदायिक ताकतों को एक मंच पर लाकर गठबंधन की राजनीति को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इस साझे मोर्चे के निर्माण के पीछे मूलभावना कांग्रेस के एकाधिकार को उखाड़ फेंकना रहा। संसदीय एवं सांविधानिक मूल्यों के अनुरूप प्रजातांत्रिक व्यवस्था को दिशा देना रही। किन्तु दलीय गठबंधन से सम्बन्धित यह पहली घटना रही कि राज्यों की स्वायत्तता के सम्मान के पक्ष में तथा अधिनायकवादी केन्द्रीयता के विरोध में राजनीतिक कार्यवाही का संघीय मंच राजनीतिक दलों के गठबंधन द्वारा प्रदान किया गया। क्षेत्रीय दलों को मोर्चे में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान कर अलगाववादी क्षेत्रीयता का राष्ट्रीय सन्दर्भ प्रदान करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गयी।

1989 का साझा मोर्चा एवं 1977 के साझे मोर्चे में काफी भिन्नता रही। 1977 के साझे मोर्चे में क्षेत्रीय पार्टियों का महत्व नहीं रहा। किन्तु 1989 के साझे मोर्चे में क्षेत्रीय पार्टियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। 1977 के साझा मोर्चे में सभी राजनीतिक दलों ने स्वतंत्र पहचान समाप्त कर जनता पार्टी में अपना विलय कर लिया था। किन्तु 1989 के साझे मोर्चे में किसी भी पार्टी ने अपनी-अपनी पहचान समाप्त नहीं की। इस गठबंधन राजनीति के चलते राष्ट्रीय स्तर पर 1980 से चले आ रहे व्यक्ति विशेष की प्रधानता का युग समाप्त हो गया। 1977 की सरकार जो दक्षिणपंथी, वामपंथी और केन्द्रस्थ शक्तियों के गठजोड़ से बनी हुई थी, एक मिलीजुली सरकार ही थी। जिस पर जनता पार्टी का आवरण डाल दिया गया था। जनता पार्टी के पांच-छह घटक दलों में अधिकतम लाभ के लिए जब तक अनवरत संघर्ष चलता रहा, जब तक पार्टी समाप्त नहीं हो गयी। किन्तु 1989 की गठबंधन सरकार राष्ट्रीय एवं स्वायत्तता समन्वित अभिव्यक्ति के प्रयोजन से बनी थी, जिसके चलते गठबंधन राजनीति के विकास का मार्ग क्रमशः सुनिश्चित होने लगा।

1989 से 1999 तक पाँच संसदीय निर्वाचन हुये, जिससे भारतीय मतदाता एक पार्टी की प्रधानता तथा पार्टियों के शीर्षस्थ नेताओं के प्रभाव को समाप्त करने का जनादेश देते रहे तथा ऐसे दलीय गठबंधन की अपेक्षा दर्शाते रहें। जिनमें सभी भारतीय समुदायों के हितों को महत्व दिया जाता है। मतदाताओं के जनादेश से यह भी आशान्वित होता रहा कि दलीय गठबन्ध की रूपरेखा जब तक दलीय नेतृत्व की सत्ता

सम्बन्धी महत्वकांक्षा पर आधारित होगी, तब तक उन्हें देश के शासन हेतु अधिकृत नहीं किया जा सकता। इस पाँच संसदीय निर्वाचनों में दलीय नेताओं का महत्व क्रमशः कम होता रहा और गठबंधन के घटकों का महत्व बढ़ता रहा। जातीय, क्षेत्रीय, वर्गीय एवं सम्प्रदाय के हितों से सम्बन्धित पार्टियों की स्थिति संसद में क्रमशः सुदृढ़ होती रही। इस प्रकार शीर्षस्थ राजनीतिक नेताओं के बढ़ते बौनेपन एवं राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के घटते जनाधार ने सभी राजनीतिक दलों को समान स्तर पर ला दिया। हर बार पार्टियां महत्वपूर्ण हुआ करती थीं, अब मोर्चा महत्वपूर्ण होने लगा।

अप्रैल 1996 में 11 वीं लोकसभा का चुनाव हुआ जिसमें भारतीय जनता पार्टी एवं उसके सहयोगी दलों को 194 स्थान प्राप्त हुये, कांग्रेस को केवल 140 स्थान प्राप्त हुये तथा क्षेत्रीय दलों एवं अन्य छोटे दलों एवं निर्दलियों को 150 स्थान प्राप्त हुये। परिणाम स्वरूप जोड़तोड़ की स्थिति बनी रही। 1996 एवं 1997 की अवधि में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार बनी जो 13 दिन बाद धराशायी हो गयी। दूसरी सरकार क्षेत्रीय पार्टियों द्वारा चयनित नेता श्री देवगौड़ा की बनी जिसे कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया और तीसरी सरकार श्री इन्द्र कुमार गुजराल की बनी जिसे कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया। श्री देवगौड़ा की सरकार 11 माह चलकर कांग्रेस के नेतृत्व परिवर्तन सम्बन्धी दबाव के चलते गिर गयी। श्री इन्द्र कुमार गुजराल की सरकार 10 माह चलकर कांग्रेस के समर्थन वापस लेने के कारण गिर गयी।

भारत के राजनीतिक इतिहास का यह पहला अवसर रहा जब क्षेत्रीय पार्टियों द्वारा चयनित व्यक्ति को प्रधानमंत्री पद प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। पहली बार इस संविद सरकार में घटक दल न्यूनतम सहमति प्राप्त कार्यक्रमों के परिपेक्ष्य में सरकार के निर्माण हेतु सहमत हुये थें और कांग्रेस का समर्थन सम्प्रदाय विरोधी सिद्धान्त के आधार पर मिला था। इस संविद में 15 दल शामिल थें जो क्षेत्रीय आर्थिक रूप से भिन्न एवं राष्ट्रीय प्रकृति के थे। अन्तरविरोधों के बावजूद सरकार मंत्रिमण्डल स्तर पर निर्णय लेने में सक्षम हो सकी थी।

1998 में बारहवीं लोकसभा निर्वाचन के समय सभी राजनीतिक दलों द्वारा गठबंधन की अपरिहार्यता स्वीकार कर ली गयी। पहली बार इन्दिरा कांग्रेस समेत सभी राजनीतिक दलों ने सिद्धान्त, विचारधारा एवं दलीय प्रतिबद्धता को हाशिये पर कर लोकसभा में स्थान पाने के लिए मुख्य पहलू बनाया गठबंधन को, क्योंकि कोई दल या सामाजिक पहचान समूह इतना बड़ा नहीं रहा जिसके आधार पर राजनीति करने वाले दल बहुमत प्राप्त कर सकें। श्री धीरूभाई सेठ का मानना है कि सामाजिक पहचान समूहों की चेतना बढ़ने एवं महत्वकांक्षा में व द्धि होने की स्थिति में गठबन्धन की राजनीति ही भारत का सच है।[6]

श्री पुरुषोत्तम अग्रवाल का मानना है कि विभिन्न क्षेत्रीय एवं जातीय पहचानों का आत्मरेखांकन अब उस परिपक्वता पर पहुंच गया है जहां किसी एक राजनीतिक दल

के लिए इन सभी पहचान समूहों को अपने अन्दर रखना सम्भव नहीं रहा। विविधता में एकता के नारे में अब तक बल एकता पर रहा लेकिन अब सामाजिक स्थिति यह है कि एकता विविधता की स्वभाविक परिणति हो सकती है पर विविधता के अस्तित्व की शर्त नहीं है।[7]

1998 के संसदीय निर्वाचन के बाद 13 घटक दलों के राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन ने 19 मार्च 1998 को श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में केन्द्रीय सरकार का गठन किया। इस सरकार में इसके घटकों का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा। उनकी क्षेत्रीय स्तर पर कार्य करने की शैली भी स्वतंत्र बनी रही। मंत्रियों की नियुक्ति एवं पदच्युति में घटक दलों के अध्यक्षों की राय ली गयी।[8] राजग के घटक दलों ने अपने मतदाता वर्ग को ध्यान में रखते हुए सरकार के साथ अपने सम्बन्धों का निर्धारण किया। इसके घटक दलों में से प्रमुख नेता श्री रामविलास पासवान के असहयोग के कारण विश्वास के मत पर इसे पराजय का मुँह देखना पड़ा।

1999 के संसदीय चुनाव में राजग के पिछले रचनात्मक गठबन्धनात्मक कार्यप्रणाली को देखते हुये मतदाताओं ने राजग गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत प्रदान किया और श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने राजग सरकार के द्वारा अपनी सहयोगात्मक एवं समावेशी प्रकृति के चलते यह सिद्ध कर दिया कि गठबंधन सरकारें भी अपना कार्यकाल पूर्ण करने में सक्षम हैं। वाजपेयी ने गठबन्धन अर्थव्यवस्था और देश में नई जान फूंकी, उनकी अगुवाई में भारत विश्व स्तर का खिलाड़ी बना। राजनीतिक प्रबन्धन में उनकी सहनशीलता ने देश में स्थिरता और समृद्धि का संचार किया। एकता के इस सूत्रधार ने भारत में गठबन्धन का नया धर्म स्थापित किया। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन सैद्धान्तिक विविधता में एकता का पहला सक्रिय प्रयोग साबित हुआ। घटक दलों को खुश करने के लिए खजाने के चतुराई भरे प्रयोग ने संघीय व्यवस्था को नई परिभाषा दी। पुनः 2004 के निर्वाचन और 2009 के निर्वाचन से यह स्पष्ट हो गया कि भारत के निकट भविष्य में एकदलीय शासन की सम्भावना नहीं है। कोई भी राजनीतिक दल ऐसा नहीं है जिसमें भारत के सभी समुदायों के स्थायी हित को महत्व मिल सके। भारत के विभिन्न समुदाय भी अपनी राजनीतिक जागरूकता के चलते यह समझने लगे हैं कि उनके हितों की सुरक्षा किस राजनीतिक दल द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है।

गठबंधन सरकारें भी सरकार के नीतिगत संचालन एवं निर्देशन के लिये समन्वय समिति का गठन करने लगी। मंत्रिमण्डल के मंत्रियों की नियुक्ति घटक दलों की संख्या के अनुपात में होने लगी। प्रधानमंत्री न चाहते हुये भी घटक दलों के सांसदों को मंत्री नियुक्त करते हैं। घटक दलों के शीर्ष नेताओं की महत्वकांक्षाओं पर विराम लगने लगा है। मंत्रिमण्डल में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना भी पुष्ट होती जा रही है। संविद सरकार में शामिल दलों ने भी अपने सहयोगी दलों की राजनीतिक बाध्यताओं को समझने में उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना प्रारम्भ कर दिया है। मनमोहन सिंह की

संविद सरकार अनिवार्यतः अधिक जवाबदेह एवं पारदर्शी है। भले ही उपरी तौर पर यह सरकार कमजोर प्रतीत होती है, पर निश्चित रूप से ज्यादा लोकतंत्रीय एवं संघीय तथा संसदीय मूल्यों के अनुरूप है।

2014 के आम निर्वाचन में भाजपा ने 280 सीटों पर विजय हासिल की। मोदी चाहते तो अकेले भाजपा की सरकार बना सकते थें किन्तु उन्होंने भी गठबन्धन का धर्म निभाया और यह भी बता दिया कि वे किसी भी तरह के दबाव से मुक्त रहेंगे। जो नियम उन्होंने भाजपा के सन्दर्भ में लागू किया वही नियम गठबन्धन के सहयोगियों के साथ भी लागू किया। भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह का कहना था कि सरकार में हिस्सेदारी की पहल का मापदण्ड मेरिट रहा। ऐसे में जाति, क्षेत्र, वर्ग के मुद्दे को विशेष महत्व नहीं दिया गया। दक्षिण के सभी राज्यों को मंत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व दिया गया। गठबन्धन में सम्मिलित सभी दलों को मंत्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। सत्रहवीं लोक सभा चुनाव के बाद भी भाजपा को 303 सीटों पर विजय प्राप्त हुई किन्तु मोदी ने गठबन्धन धर्म का त्याग नहीं किया और सरकार के गठन में गठबन्धन के घटकों को महत्व देते हुए पुनः गठबन्धन सरकार का निर्माण किया।

संदर्भ

1. अजय के. मेहरा; कैबिनेट सिस्टम इन ए कोलिशन सिचुएरन, कोलिशन गवर्नमंट एन्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया; सम्पादक एस.सी. कश्यप, उत्पल पब्लिकेशनन्स, नई दिल्ली, 1997 पृ. 93-94
2. श्री योगेन्द्र यादव; काया पलट की कहानी, लोकतंत्र के सात अध्याय; सम्पादक, अभय कुमार दूबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. कोलिशन पॉलिटिक्स इन इण्डिया, सम्पादक महेन्द्र प्रताप सिंह एवं अनिल मिश्र; मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 105
4. अभय कुमार दूबे (सम्पादक), लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 45
5. रजनी कोठारी; भारतीय नीति : कल और आज; सम्पादक- अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
6. धीरूभाई सेठ, दलों की वैचारिक दरिद्रता टिकाउ गठबन्धन में बाधक; दैनिक राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, नई दिल्ली, 20 अप्रैल 1997
7. दैनिक राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेत्र, नई दिल्ली, 20 अप्रैल 1999
8. एशियन रिकार्डर, 26 नवम्बर- 2 दिसम्बर 1997; पृ. 26897

गठबन्धन सरकार की कमियाँः एक अध्ययन

गुंजन त्रिपाठी

Ikjk'k *विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में बहुदलीय पद्धति को अपनाया गया है। 1952 के आम चुनाव से लेकर 2019 तक के आम चुनाव तक विभिन्न राजनीतिक दलों ने राजनीतिक व्यवस्था में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयास किया है लेकिन दलों की अधिकता ने भारत की राजव्यवस्था को कई बार नुकसान भी पहुँचाया है। 'कांग्रेस सिस्टम' के बाद से भारत में कई दलों का एक साथ मिलकर सरकार बनाने का सिलसिला शुरू हुआ जिसे गठबन्धन सरकार कहा जाता है। विगत् तीन दशकों से भारत में गठबन्धन सरकारें बनती रहीं हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में गठबन्धन सरकारों का राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।*

प्रस्तावना

भारत में लोकतांत्रिक मूल्य प्राचीन काल से ही विद्यमान रहे हैं। इसके प्रमाण बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय अठ्ठल निपात, रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों में मिलते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् यह व्यवस्था जारी रही। जब संविधान सभा का गठन हुआ तभी पण्डित नेहरू के नेतृत्व में एक अन्तरिम सरकार गठित हुई जिसमें कांग्रेस सहित कई दल सम्मिलित थे। 1952 के प्रथम आम चुनाव में कांग्रेस पार्टी ने बड़ी जीत हासिल की। यहाँ से लेकर चौथे आम चुनाव के पहले तक कांग्रेस का भारतीय राजनीति में वर्चस्व रहा। 1967 के चौथे आम चुनाव में कांग्रेस की स्थिति को कमजोर किया। फिर भी कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी थी। केन्द्र में उसी की सरकार बनी लेकिन उत्तर प्रदेश सहित नौ राज्यों में कांग्रेस को सरकार बनाने के लिए दूसरे दलों पर निर्भर होना पड़ा। राज्यों में यहीं से गठबन्धन का युग शुरू हुआ ध्यातव्य है कि 1952 के आम चुनाव के समय भी कुछ राज्यों में कांग्रेस को सत्ता नहीं मिली। 1954 के विधानसभा चुनाव में त्रावणकोर कोचीन में कांग्रेस की गठबन्धन सरकार

बनी (कोठारी 2002 पृ0-1)। 1969 तक कांग्रेस पार्टी में आन्तरिक कलह के कारण फूट पड़नी सुनिश्चित हो गयी। 1969 में कांग्रेस दो हिस्सों कांग्रेस (R) और कांग्रेस (O) मे बँट गई, 'कांग्रेस (R) का नेतृत्व इन्दिरा गाँधी ने किया और उन्होंने कुछ दलों के साथ मिलकर केन्द्र में पहली गठबन्धन सरकार बनायी। यद्यपि केन्द्र में गठबन्धन का यह पहला प्रयास था तथापि अपनी निजी आकांक्षाओं को देखते हुए श्रीमती गाँधी ने 1971 में आम चुनाव सम्पन्न कराया। अपने विरोधियों की लामबन्दी का ध्यान में रखते हुए उन्होंने 'गरीबी हटाओं' का नारा दिया और प्रचण्ड बहुमत के साथ सत्ता में आई किन्तु कतिपय गलत नीतियों के चलते 1977 में हुए आम चुनाव के पश्चात् उन्हें सत्ता से बेदखल होना पड़ा।

1977 में हुए आम चुनाव में जनता पार्टी की सरकार बनी। यह सरकार केन्द्र में पहली गैर-कांग्रेसी गठबन्धन सरकार थी। भारतीय राजनीति में गठबन्धन सरकारों का वास्तविक दौर 1989 से देखने को मिलता है, जब विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार अस्तित्व में आई। उसके बाद चन्द्रशेखर सिंह की सरकार अस्तित्व में आई। केन्द्र में 1991 में हुए आम चुनाव के पश्चात् नरसिम्हा राव की सरकार बनी। यह पहली ऐसी सरकार थी जिसने गठबन्धन होने के बाद भी अपना कार्यकाल पूरा किया। इसके बाद 1996 से 1999 तक लगातार अस्थिरता का दौर जारी रहा किन्तु 1999 के बाद से अब तक केन्द्र में गठबन्धन की सरकारें रही हैं जिन्होंने अपना कार्यकाल सफलतापूर्वक पूरा किया है।

गठबन्धन की सरकारों को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय राजनीति में इनकी स्थापना के पश्चात् आने वाली कमियों को निम्नांकित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता हैः

1- LFkkf;Ro dk [krjk& भारत में पहली गठबन्धन सरकार श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में केन्द्र स्तर पर गठित हुई इसके पहले कांग्रेस पार्टी का दबदबा था, इसी को रजनी कोठारी ने 'कांग्रेस सिस्टम' नाम दिया था। उन्होंने यह कहा है कि स्वतंत्रता के पश्चात भारत में एक सशक्त सरकार की आवश्यकता थी जिसे कांग्रेस ने पूरा भी किया (कोठारी, 1964 पृ0 1161)। यह दौर बहुत लम्बे समय तक नही चल सका और कांग्रेस में विभाजन हो गया। इस विभाजन के पश्चात गठबन्धन सरकार बनी। 1969 की इन्दिरा सरकार इसी का परिणाम थी लेकिन यह सरकार भी बहुत लम्बे समय तक नही चल पाई। इसी तरह से 1977 में बनने वाली जनता पार्टी की सरकार भी मात्र 850 दिन ही चल पाई यदि केन्द्र में बनने वाली सरकारों का विश्लेषण किया जाए तो विदित होता है कि इन सरकारों ने अस्थिरता को जन्म दिया है। केन्द्र में बनने वाली गठबन्धन सरकारों की अस्थिरता को तालिका–1 के माध्यम से देखा जा सकता हैं।

rkfydk&1

Øekd	ny	dk;dky ¼fnu e½
1.	जनता पार्टी	827 दिन
2.	जनता पार्टी	23 दिन
3.	जनता दल	341 दिन
4.	जनता दल (सो.)	224 दिन
5.	भाजपा	13+3 दिन
6.	जनता दल (संयुक्त मोर्चा)	325 दिन
7.	जनता दल (संयुक्त मोर्चा)	332 दिन
8.	भाजपा (एन.डी.ए.)	395 दिन

Ikr% चुनाव आयोग के आंकड़ों के आधार पर शोधार्थी द्वारा की गयी गणना।

नोट– इस तालिका में गठबन्धन आधारित अस्थिर सरकारों को दर्शाया गया है। 1999, 2004, 2009 और 2014, सरकारें यद्यपि गठबन्धन आधारित रही हैं, तथापि इन्होंने अपना कार्यकाल सुचारू ढंग से पूरा किया है।

2- {k=okn rFkk tkfrokn dk c<kok& संविद सरकार की यह सबसे बड़ी कमी रही है कि इसने क्षेत्रवाद और जातिवाद को बढ़ावा दिया है। 1989 में जब जनता दल की सरकार बनी तो इसने '3–M' का कार्ड खेला– मन्दिर, मण्डल और मार्केट (योगेन्द्र यादव एवम् अन्य, 2006 पृ0 98–101)। मण्डल जो वी0पी0 सिंह द्वारा दी गई रिपोर्ट का संक्षिप्त रूप है। वी0पी0 सिंह के पूर्व किसी भी सरकार ने इस रिपोर्ट को लागू करने की हिम्मत नही की। इस रिपोर्ट के लागू होने के पश्चात् भारतीय राजनीति में भूचाल आ गया। इस रिपोर्ट का विशेष रूप से असर उत्तर प्रदेश और बिहार की राजनीति पर पड़ा। इसके पश्चात् ही समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल और लोक जनशक्ति पार्टी का अभ्युदय हुआ। इन पार्टियों ने गठबन्धन की सरकारों में अपनी विशेष भूमिका निभाई इन पार्टियों के कारण गठबन्धन की स्थिति कमजोर रही है।

क्षेत्रवाद की राजनीति भी गठबन्धन के लिए घातक साबित हुई। क्षेत्रीय मुद्दों ने राष्ट्रीय मुद्दों को प्रभावित किया। क्षेत्रीय हित राष्ट्रीय हित से महत्वपूर्ण होने लगे। क्षेत्रवाद की इस राजनीति ने अस्मिता को बहुत अधिक चोट पहुंचाई। 'भूमि-पुत्र' के सिद्धान्त ने क्षेत्रवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया। शिवसेना, असमगण परिषद्, जैसे दलों ने इसकी राजनीति की और केन्द्र में तथा राज्यों में गठबन्धन में शामिल भी होते रहे।

पिछली केन्द्र सरकार ने यद्यपि अपना कार्यकाल सुचारू ढंग से पूरा किया तथापि शिवसेना और भाजपा की टकराहट यदा-कदा देखने को मिलती रही है। बहुत ही

प्रयास के पश्चात् शिवसेना और भाजपा का गठबन्धन 2019 के आम चुनाव में हो सका, वह भी अमित शाह जैसे कुशल खिलाड़ी के चलते।

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि सत्ता के लोलुपता के चलते गठबन्धन बनाए जाते रहें हैं और वे गठबन्धन लगातार टकराव की स्थिति में रहते हैं।

3- ny-cny dh jktuhfr& गठबन्धन की राजनीति ने दल-बदल को बढ़ावा दिया है। इससे भारत की दलीय व्यवस्था कमजोर पड़ी है। 1967 के आम चुनाव के पश्चात् दलीय व्यवस्था अत्यधिक कमजोर हुई। 1957 से 1967 के मध्य 10 वर्षों के अन्तराल में होने वाले दल परिवर्तनों से कांग्रेस को अत्यधिक लाभ मिला। इस दौरान कांग्रेस को छोड़ने वाले दलों की संख्या 98 थी और अन्य दलों को छोड़कर कांग्रेस में सम्मिलित होने वाले की दलों की संख्या 419 थी। मात्र एक वर्ष पश्चात् यह स्थिति बदल गयी और यह संख्या क्रमशः 175 और 139 हो गयी (एस0एम0सईद, 2001 पृ0 77)।

1985 मे दल-बदल अधिनियम 52, वें सवैधानिक संशोधन और 2003 में इसे और मजबूत करते हुए 91वें संविधान संशोधन को किया गया (भारत का संविधान, 2010)। इन संशोधनों का भी कोई बहुत अधिक प्रभाव पड़ता हुआ नही दिखलायी पड़ रहा है। सम्प्रति भारत की दलगत राजनीति भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को नियंत्रित करने लगी है। अत्यधिक दलों के कारण गठबन्धन का बनना स्वाभाविक है और इससे बड़े दलों को लगातार नुकसान उठाना पड़ा है। राष्ट्रीय दल अपनी अस्मिता के संकट से जूझ रहे हैं। 2009 में भाजपा, 2014 और 2019 में कांग्रेस जैसी पार्टी आज अगर भारतीय राजनीति हाशिए पर खड़ी है तो इसके लिए कही न कहीं विभिन्न मुद्दों पर आधारित छोटी-छोटी पार्टियाँ हैं। वर्तमान समय में कर्नाटक में यही स्थिति बनी हुई है जहाँ कांग्रेस ने जनता दल (स0) के साथ गठबन्धन सरकार बनायी और बड़ी पार्टी होने के बावजूद कुमार स्वामी को मुख्यमंत्री बनाया और लगातार सौदेबाजी को झेल रही है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि गठबन्धन की राजनीति में दलीय दुष्चक्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और राजनीतिक व्यवस्था को गहरी चोट दी है।

गठबन्धन की राजनीति में इस बात की सदैव समस्या रही है कि किसी भी विषय में आम सहमति कैसे बनायी जाए। अस्थिर सरकारों में यह सामान्य बात थी। जबसे गठबन्धन की राजनीति में स्थायित्व (1999 के बाद) आया है तब से सरकार में सम्मिलित दलों के बीच आम सहमति को लेकर के हमेशा खींचा-तानी होती रही है। यू0पी0ए0–1 के कार्यकाल में '123 एग्रीमेंण्ट' जिसे 'हाइड एक्ट' भी कहा जाता है (मारिया सुल्तान व अन्य, 2008) को लेकर तत्कालीन गठबन्धन में लगातार खिंचातानी का दौर चलता रहा। इसी प्रकार चूंकि गठबन्धन सरकारें अलग-अलग सिद्धान्तों वाले दलों पर आधारित होती हैं, इस कारण उनके मध्य मतभेद की स्थिति बनी रहती हैं। केवल सरकार बचाने के निमित कई बार इन सिद्धान्तों के आगे राष्ट्रीय हित को भी नकार दिया जाता है।

गठबन्धन की सरकारों में यह भय सदैव बना रहता है कि वह कभी भी सरकार गिर सकती हैं और ऐसी स्थिति में दुबारा चुनाव की स्थिति बन जाती है। गठबन्धन सरकारों के द्वारा साम्प्रदायिकता और भाषावाद जैसे मुद्दों को भी यदा-कदा उठाया जाता रहा है, जो राष्ट्रीय एकीकरण के लिए घातक है। गठबन्धन की इसी राजनीति के चलते शाहबानो मामले और राम मन्दिर मुद्दें ने तूल पकड़ी। आरक्षण का दौर भी इस राजनीति का ही परिणाम रहा है, चाहे वह जातिगत आधार पर हो अथवा आर्थिक आधार पर निःसंदेह इसने अपने सत्ता की लोलुपता के चलते समाज को वर्गों में विभाजित किया है।

चाहे सरकारें चुनाव पूर्व रही हों अथवा चुनाव पश्चात् गठबन्धन की राजनीति अपने पुराने ढर्रे पर चलती रही हैं। बावजूद इसके गठबन्धन की राजनीति के कुछ सकारात्मक पहलू भी हैं। इससे संघवाद को मजबूती मिली है, साथ ही इसने अल्पसंख्यक समुदाय के प्रतिनिधित्व को भी मजबूती प्रदान की है।

संदर्भ

1. एस0एम0 सईद, 2001 ''भारतीय राजनीतिक व्यवस्था'', सुलभ प्रकाशन लखनऊ।
2. भारत का संविधान (वेयर एक्ट), 2010, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन इलाहाबाद।
3. मारिया सुल्तान एवम् मियाँ बेहजाद आदिल, 2008, ''द हेनरी जे0 हाइड एक्ट एण्ड 123 एग्रीमेंट : एन अस्सिमेण्ट'' लन्दन : साऊथ एशियन स्ट्रेटजिक स्टेबिलिटी इन्स्टीच्यूट।
4. योगेन्द्र यादव और सुहास पलिष्कर 2006, ''पार्टी सिस्टम एण्ड एलेक्टोरल पॉलिटिक्स इन द इण्डियन स्टेटस'', 1952–2002– फ्रॉम हेजिमोनी टू कन्वर्जेन्स'' ई0 श्रीधरन एण्ड पीटर रोनाल्ड डिसूजा (स0) इण्डियाज पॉलिटिकल पार्टीज़ नई दिल्ली, सेज प्रकाशन।
5. रजनी कोठारी 1964 ''द कांग्रेस सिस्टम इन इण्डिया'', एशियन सर्वे, वा–IV नं0 12
6. रजनी कोठारी 2002 ''द कांग्रेस सिस्टम इन इण्डिया'', जोया हसन (स0) पार्टीज एण्ड पार्टी पॉलिटिक्स इन इण्डिया, नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

गठबन्धन के दौर में स्थायी एवं अस्थायी सरकारों का विवेचनात्मक अध्ययन

शैलेश कुमार राम

Ikjk'k% भारतीय राजनीतिक व्यवस्था लोकतन्त्र पर आधारित है जहां पर शासन व्यवस्था जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों के द्वारा की जाती है। प्रतिनिधि किसी राजनीतिक दल द्वारा या स्वतन्त्र रूप से चुनाव में निर्वाचित होकर सदन में पहुँचते हैं। यहां पर हम गठबन्धन के दौर में स्थायी एवं अस्थायी सरकारों के शासन का विवेचनात्मक अध्ययन करने जा रहें हैं। जो भारतीय राजनीति में स्वतन्त्रता के लगभग 30 वर्ष बाद राजनीतिक रूप से दूसरी क्रांति की ओर ले गया है। जहां भारतीय राजनीति की दशा एवं दिशा ही बदलकर रख दी यह वह दौर था जहां से केन्द्र में गैर-कांग्रेसी सरकार का उद्भव हुआ।[1]

प्रस्तावना

लोकतान्त्रिक व्यवस्था के प्रसंग में राजनीति स्थायित्व की सरकारों का सामान्य आशय यह होता है कि ''सरकार का एक निश्चित कार्यकाल उसे एक राजनीतिक स्थायित्व प्रदान करता है। सरकार का यह निश्चित कार्यकाल राजनीतिक स्थायित्व का प्रथम तत्व होता है। लेकिन राजनीतिक स्थायित्व इससे भी अधिक सकारात्मक स्थिति है। इसका आशय यह है कि एक ऐसी सरकार के निश्चित कार्यकाल तक बने रहने का है वह जो शत-प्रतिशत लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के आधार पर सत्ता प्राप्त करती है। यह सरकार लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के आधार पर निर्णय लेती है और उसे सत्ता वैधता प्रदान करती है। यह ही राजनीतिक रूप से सकारात्मक अर्थ में स्थायित्व का आशय है। लोकतान्त्रिक प्रक्रिया से चुनी गई सरकार जिसका उद्देश्यपूर्ण और प्रभाव पूर्ण शासन हो। राजनीतिक के विद्वानों में सदैव ही इस बात को स्वीकार किया है कि स्थायित्व पर स्थिरता शासन की प्रथम आवश्यकता है लेकिन भारतीय राजनीति में एक वर्ग ऐसा भी है जो राजनीतिक अस्थायित्व को स्थायित्व विवाद का पर्याय मानते हुए राजनीतिक स्थायित्व की तुलना में राजनीतिक अस्थायित्व को श्रेष्ठकर मानते हैं।[2]

राजनीतिक अस्थायित्व का आशय यह है कि बार-बार और जल्दी-जल्दी होने वाली सत्ता परिवर्तन। इसका प्रमुख कारण हैं। लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य भी स्थितियाँ हैं जो विभिन्न मात्रा में राजनीतिक अस्थायित्व को जन्म देती हैं। गठबन्धन के दौर में बनने वाली सरकार में राजनीतिक आस्थायित्व का गुण सदैव विद्यमान रहता है। केन्द्र में प्रधानमंत्री एवं राज्यों में मुख्यमंत्री द्वारा राजनीतिक कार्यों से मंत्रिमंडलीय व्यवस्था में बार-बार किये जाने वाले परिवर्तन तय गम्भीर विवाद सरकार को स्थायी की ओर ले जाने का प्रमुख कारण होता है। इसमें सरकार द्वारा राजनीतिक षडयन्त्र का मार्ग अपनाकर शासन सम्यक सांसदों एवं विद्यालयों की संख्या बदलकर घटना इस प्रकार राजनीतिक अस्थायित्व है–भारतीय राज व्यवस्था में गठबन्धन की सरकार एक आदत सी बनती जा रही है। जिसके कारण स्थायित्व की सरकारें बनती हैं।[3]

राजनीतिक अस्थायित्व सरकारें

गठबन्धन के दौर में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के केन्द्रित स्तर की राजनीति में सर्वप्रथम 1977 में गैर-कांग्रेसी सरकार मोरार जी देसाई के निर्देशन में बनी थी यह पहली सरकार थी जो एक दलीय परम्परा का तोड़कर सरकार में आयी जो पूर्ण रूप से गठबन्धन की सरकार रही लेकिन मोरार जी देसाई सरकार का पतन जुलाई 1979 में हुआ। यह भारतीय राजनीति में अस्थायी सरकार का पहला प्रयोग सिद्ध हुआ जो अपना कार्यकाल पूर्ण नहीं कर सकी और अपना सरकार का पतन एक ऐसे प्रश्न की ओर ले जाता है जो भारतीय में परिवर्तन का दौर शुरू हुआ और होते ही समाप्त भी हो गया। लेकिन राजनीतिक विज्ञान के विद्वानों ने जो परिवर्तन को भारतीय राजनीति की क्रांति कहा। यह सच में एक क्रांति ही थी जिसने 30 वर्ष के एकदलीय आधिपत्य को खत्म कर दिया। केन्द्रीय स्तर की राजनीति में सर्वप्रथम मोरार जी देसाई का पतन 1979 में हुआ जिसका प्रमुख कारण जनता दल में विद्यमान घटकवाद और दल-बदल तथा मंत्रिमंडल के बीच मतभेद रहा। जनता सरकार का गठन भारी उम्मीद और उत्साहपूर्ण हुई थी, और इस घटना को तत्कालीन भारतीय राजनीति में स्वतन्त्रता प्रणाली के बाद पहली गैर-कांग्रेसी सरकार सत्ता में आयी थी। लेकिन जिस आशा के साथ जनता दल को केन्द्र में सरकार बनाने का अवसर प्राप्त हुआ। वह सरकार के उम्मीदों पर खरा नही उतर सकी। भारतीय शासन व्यवस्था में इस 27 महिने के सरकार ने व्यवस्था में प्रत्येक क्षेत्र में धनधोर दिशाहीनता दिखाई पड़ी। जिससे सरकार का पतन होना लाज़मी भी हो गया।

जनता दल की 1979 में पतन होने के बाद कांग्रेस के बाहरी समर्थन से चौधरी चरण सिंह 28 जुलाई 1979 को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। 20 अगस्त 1979 को विश्वास मत प्राप्त करने से पूर्व ही पद से त्याग प्रधानमंत्री कि कुर्सी पर नही बैठे, जिस दिन त्यागपत्र दिया। उस दिन घटना क्रम के दौरान जनता सरकार

में अस्थायित्व का वातावरण व्याप्त रहा, जिस कारण से जनता ने फिर से जनता सरकार पर भरोसा नहीं दिखाया।

1980 के लोकसभा के आम चुनाव में कांग्रेस की पुनः वापसी होती है। 1977 के चुनाव के बाद जनता दल के सत्ता में आने के जिस कारणों के आधार पर सरकार बनी थी इससे तो यही आशा कि जा रही थी कि कांग्रेस की वापसी लम्बे समय तक सम्भव नही हो सकती है, लेकिन 80 के दशक के शुरूआत में कांग्रेस की वापसी सभी राजनीतिक दलों एवं राजनीति विज्ञान के विद्वानों को पुनः एक दलीय सरकार का एक बार जिक्र करना अति आवश्यक बना दिया। इस चुनाव में इन्दिरा गांधी एक बार पुनः प्रधानमंत्री का कार्यभार सम्भाला, लेकिन यह वह समय नही रहा जो 1971 से 1977 के बीच का रहा। कुछ अपवादों को छोड़कर देखा जाये तो यह कार्यकाल ठीक ही रहा लेकिन 1984 में उनके सुरक्षा कर्मियों द्वारा हत्या कर पूरे देश में शोक की लहर दौर गई। इन्दिरा गांधी के अचानक चले जाने से भारतीय राजनीति में एक विराम की अवस्था जैसी स्थिति पैदा हो गई, लेकिन आनन-फानन में राजीव गांधी को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई। इन्दिरा गांधी कि हत्या के लिए पंजाब को दोषी ठहराया गया, वहां पर विद्रोह हो गया जिससे अधिक से अधिक जान-माल का नुकसान हुआ। राजीव गांधी ने एक भाषण मे उनकी हत्या के एवज में कहा कि ''जब कोई भारी भरकम पेड़ गिरता है तो उसके नीचे न जाने कितने छोटे-मोटे पेड़ पौधें नष्ट हो जाते हैं'' इस कथन का आशय इस बात से लगाया जा सकता है कि जो पंजाबी सुरक्षा कर्मी इन्दिरा गांधी की सुरक्षा में थे उनके द्वारा हत्या ही पंजाब के नरसंहार का कारण बनी।

1985 का आम चुनाव ऐसा चुनाव रहा जो अब तक भारतीय राजनीति में ऐसा कोई आम चुनाव नही हुआ था। इस चुनाव पर पड़ने वाला सीधा प्रभाव पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय इन्दिरा गांधी का रहा जो उनकी मृत्यु से भारतीय जनता में एक भावनात्मक रवैया अपनाया जो इस चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उम्मीद से अधिक सीटें प्राप्त हुईं। वहीं वह चुनाव था जिसमें कांग्रेस को 404 सीटें प्राप्त हुई थी और राजीव गांधी को पुनः प्रधानमंत्री बनाया गया।

भारतीय राजनीति में 1980 से 1989 तक लगभग 10 वर्षों की केन्द्र में राजनीति स्थायित्व की सरकार रही, लेकिन 1989 में कांग्रेस के पतन और भाजपा का उत्कर्ष का दौरा प्रारम्भ हुआ भारतीय राजनीति में यहीं से पुनः अस्थायित्व की सरकार का युग शुरू हो गया। जब नौवीं लोक सभा चुनाव में 543 सीटों में से 528 सीटों पर ही चुनाव सम्पन्न हुए उस समय एक दलीय सरकार के युग की समाप्ति और साझा सरकारों का युग प्रारंभ हुआ। जिनसे भारतीय राजनीति में राजनीतिक स्थायित्व के नाम पर अस्थायित्व को जन्म दिया। 1988 में चौधरी देवी लाल के प्रयासों से जनता पार्टी का गठन किया गया। इस गठबन्धन में चौधरी देवी लाल की अध्यक्षता में पार्टी का गठन हुआ। जिसमें वी.पी. सिंह एवं चन्द्रशेखर सिंह को मिलाकर यह गठबन्धन

बना। दल की संसदीय बैठक में चौधरी देवी लाल को सर्व सम्मति से दल का नेता चुना गया। लेकिन वी.पी. सिंह के आग्रह करने पर उन्होंने वी.पी. सिंह को प्रस्तावित कर दिया और सभी सदस्यों ने इसका अनुमोदन भी कर दिया। चन्द्रशेखर सिंह जी चाहते थे कि उनका नाम प्रस्तावित किया जायेगा। चौधरी देवी लाल जी ने उनकों भरोसा भी दिलाया या कि उनका ही नाम प्रस्तावित किया जायेगा। लेकिन वी.पी. सिंह का नाम प्रस्तावित होने से वे काफी नाराज हुए और बैठक से उठकर चले गये। दिसम्बर 1989 में वी.पी. सिंह सरकार के गठन के साथ ही राजनीतिक अस्थायित्व का दौर शुरू हो गया कहने का तात्पर्य यह रहा कि वी.पी. सिंह ने सरकार में आते है तो 'मण्डल कमीशन' की रिपोर्ट को लागू करेंगें, और वे अपने वादे पर खरे उतरे जिससे पार्टी के अन्य सदस्य एवं गठबन्धन उनसे काफी नाराज हुआ जिसका परिणाम रहा कि 11 महीने के कार्यकाल हि वी.पी. सिंह सरकार में रह पाये और उन्हें अविश्वास प्रस्ताव पारित कर सरकार गिरा दी गई। इस गठबन्धन के 11 माह के कार्यकाल में राजनीतिक अस्थायित्व और राजनीतिक अव्यवस्था का दौर देखने को मिला। वी.पी. सिंह के बाद चन्द्रशेखर सिंह ने 60 सांसदों को लेकर सरकार बनाने के लिए राष्ट्रपति के पास दावा पेश किया इसमें कांग्रेस ने बाहर से समर्थन किया। चन्द्रशेखर सिंह ऐसे प्रधानमंत्री हुए जो सबसे कम सदस्यों को लेकर बनाने का दावा पेश किया था। यह सरकार भी एक अस्थायी सरकार साबित हुई। यह सरकार ज्यादा दिन तक सत्ता में नहीं रह सकी।

1997 के आम चुनाव मे जनता दल की शक्ति में भारी कमी आयी। इसे मात्र 35 स्थानों पर ही विजय हासिल करने में सफल हुई। इसके बाद दल में एकता कायम नही रह सकी। अजित सिंह के नेतृत्व में अनेक सदस्यों ने जनता दल छोड़ दिया। लोकसभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने इसे दल विभाजन मानते हुए नये दल का जनता दला (अ) के रूप में मान्यता दें दी। बाद में अजीत सिंह और उसके समर्थक कांग्रेस (ई) में शामिल हो गये। इस चुनाव में नौ राष्ट्रीय दल 39 राज्य दल और 301 रजिस्टर्ड दलों ने भाग लिया। यह पहला आम चुनाव था जिसमें नेहरू परिवार के किसी सदस्य ने चुनाव में चुनाव नही लड़ा। लेकिन राजीव गांधी की हत्या के कारण मतदाताओं की सहानुभूति से कांग्रेस के पक्ष में मतदान हुआ। इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। यह पार्टी 120 सीटों पर विजय प्राप्त कर विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी साबित हुई। यहीं से इस पार्टी को राष्ट्रीय के रूप में उभर कर भारतीय राजनीति में एक अलग दौर की शुरूआत को भी देखा जा सकता है। 10वीं आम चुनाव के परिणाम में कांग्रेस का जो जनाधार एवं सीटें प्राप्त का जो आँकड़ा था वह पूरा हुआ और नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री बनाया गया। 1989 के बाद यह ऐसी सरकार थी जो अपने पांच वर्ष के कार्यकाल को पूरा करने में सफल रही। इस कार्यकाल को पूरा करने में प्रंधानमंत्री नरसिम्हा राव की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही है। नरसिम्हा

बसके नेतृत्व में संचालित अल्पमत की कांग्रेस सरकार जो बाद में दल-बदल के आधार पर बहुमत को प्राप्त कर लिया। भारतीय राजनीति में जोड़-तोड़ की राजनीति लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के लिए यह संकट का दौर माना जाता है। लेकिन आगे के कांग्रेस का सफर बहुमत से दूर होता नजर आने लगा और फिर एक बार पुनः गठबन्धन के दौर में लाकर खड़ा कर दिया। नरसिम्हा राव के शासन काल में भारतीय जन मानस को पंचायती राज के रूप में ग्राम पंचायत एवं नगरीय शासन प्रणाली को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ। यहीं से स्थानीय शासन का विस्तार हुआ शासन का विकेन्द्रीकरण एक ऐसा भारतीय राजनीति व्यवस्था में शासन को लेकर हुआ जो ग्राम पंचायत एवं नगरीय शासन को अपना शासन करने का सुनहरा अवसर प्रदान कर दिया।

1996 में 11वीं लोक सभा चुनाव में परिणाम त्रिशंकु संसद को जन्म दिया भाजपा एवं उसके सहयोगी दलों को 194 स्थान प्राप्त हुए। यही वह समय था जब भाजपा केन्द्र में सबसे अधिक स्थान प्राप्त करने वाली पार्टी बन कर उभरी। कांग्रेस के इस चुनाव में 140 स्थान ही प्राप्त हुए। इस चुनाव में क्षेत्रीय दलों का उभरी बहुत ही तीव्र गति से हुआ जो अभी तक चलता आ रहा है। यह चुनाव अधिक स्थिरता की ओर ले जाता है। इस चुनाव के बाद परिणाम आने के पश्चात सत्ता के दावेदार तीन मुख्य राजनीतिक दल थे, वे दल प्रमुख रूप से कांग्रेस भाजपा एवं राष्ट्रीय मोर्चा रहे। परन्तु चुनाव के कुछ दिनों पूर्व ही जैन हवाला स्कैण्डल का मामला सामने आया जिसमें लाल कृष्ण आडवाणी के साथ 29 लोगों पर आरोप सिद्ध हुए। इस चुनाव में चुनाव आयोग टी.एन. शेषन द्वारा चुनाव की नयी आचार संहिता लागू की। यह चुनाव एक ऐसा चुनाव हुआ की इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि चुनाव में होने वाले असीमित व्यय और चुनाव प्रचार एवं अभियान में अपनाये जाने वाले प्रचार के तरीकों को इस प्रकार प्रतिबंधित कर दिये कि जैसे देश में चुनाव ही न हो रहें हों, चुनाव पूर्णतः शान्तिपूर्वक हुआ। 1996 के चुनाव में भाजपा लोक सभा में सबसे बड़े राजनीतिक दल के रूप में उभर कर सामने आयी। राजनीतिक विद्वानों ने इस चुनाव के मुद्दों को स्पष्ट करते हुए कहा कि भाजपा ने राम मन्दिर जैसे धार्मिक मुद्दा को लाकर भाजपा को बल प्रदान किया है। राम मन्दिर का मुद्दा भावनात्मक आकर्षण के रूप में अधिक प्रभावशाली रहा। इस चुनाव में कांग्रेस को अधिक नुकसान हुआ। क्योंकि उसका परम्परागत वोट बैंक दलित, पिछड़ा एवं अल्पसंख्यक वोट, समाजवादी पार्टी एवं बहुजन समाज पार्टी के आने से विभाजित हो गया था और इन वोटों पर इन दोनों पार्टियों ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया।

1996 के चुनाव क्षेत्रीय दलों का उभार भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ लेकर आया। इस चुनाव में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत न प्राप्त होना और क्षेत्रीय दलों के सहयोग से सरकार बनाना एक अस्थायी सरकार कि ओर ले जाता है। वर्तमान स्थिति ऐसी हो गई है कि क्षेत्रीय दलों के समर्थन के बल पर सरकार का जीवन निर्भर

है। इस चुनाव में किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था और पहली बार भाजपा कि अटल बिहारी पार्टी के नेतृत्व में 16 मार्च 1996 को सरकार बनी जो एक स्थायी सरकार का कार्य काल पूरा करने में असमर्थ हुई और 13 दिन में ही सरकार गिर गई। यह पहली ऐसी सरकार थी जो भारतीय राजनीति में सबसे कम समय की सरकार साबित हुई। मई 1996 से जनवरी 1998 एवं मार्च 1998 तक तीन सरकारें बनीं एवं टूटी। 4 दिसम्बर 1998 के चुनाव में भी किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही हुआ स्पष्ट बहुमत नही मिलने के बाद भी भारतीय जनता पार्टी को इस चुनाव में 179 सीटें मिली जो सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी के रूप में रही। 1996 के चुनाव की तुलना में भाजपा की स्थिति में सुधार एवं मिलने वाली सीटों की प्रतिशतता भी बढ़ गयी। 1998 के चुनाव मे भाजपा को 179 स्थान जिसमें एक दर्जन से अधिक राजनीतिक दलों को मिलाकर मिश्रित सरकार का निर्माण अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में हुआ। परन्तु यह सरकार केवल 13 महीने तक ही जीवित रह सकी। सरकार में सहायक घटक दलों की समय-समय पर छोटी-छोटी मांगों को लेकर विवाद की स्थिति उत्पन्न होने लगी जिससे सरकार कि स्थिरता पर सवाल उठने लगे। इस सरकार में सहयोगी रही जयललिता का विवाद बढ़ता ही जा रहा था अन्त में 13 अप्रैल 1999 को जयललिता ने सरकार को विश्वास मत प्राप्त करने के लिए प्रस्ताव रखा, जिस पर 17 अप्रैल 1999 को विवादित रूप से मतदान हुआ। तथा इस मतदान-व्यवहार में एक वोट से भाजपा को पराजय का सामना करना पड़ा, और सरकार मात्र 13 महीने ही चल सकी एवं इस सरकार का पतन हो गया। यहां यह देखने को मिलता है कि गठबन्धन से बनी सरकार का जीवन का कोई भरोसा नही होता है कि वे अपना कार्यकाल पूरा कर सकेगी या गिर जायेगी। यहां भी एक अस्थायी सरकार सिद्ध हुई।

लोक सभा में भाजपा सरकार द्वारा विश्वास मत प्राप्त नही होने पर कांग्रेस ने वैधायिक रूप से सरकार बनाने के लिए बातचीत प्रारम्भ कर दी। परन्तु विभिन्न गैर कांग्रेसी दलों के बीच आपसी सम्बन्ध न हो पाने से, अन्त में 26 अप्रैल 1999 को विघटित कर दिया गया और अगले चुनाव की घोषणा भी कर दी गई। यह 26 अप्रैल 1999 को 12वीं लोकसभा मंज होने के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा चुनावी गठबन्धन बनाने के लिए जोड़-तोड़ शुरू कर दिये। 13वीं लोक सभा के लिए भाजपा ने कुछ क्षेत्रीय दलों से चुनावी समझौते किये और एन.डी.ए. बनाया और उसी के मैनीफेस्टो पर कार्य प्रारम्भ कर दिया। भाजपा ने इस आम चुनाव में केवल 239 सीटों पर ही अपने उम्मीदवार खड़े किये, जबकि कांग्रेस ने 453 सीटों पर चुनाव लड़ा। लेकिन कांग्रेस को कुछ खास लाभ प्राप्त नहीं हुआ। इस चुनाव में कांग्रेस को अधिक नुकसान का समाना करना पड़ा और भाजपा सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरकर सामने आयी। इस चुनाव में भाजपा के गठबन्धन को 297 सीटें एवं कांग्रेस को 136 सीटें प्राप्त हुई और अन्य को 108 सीटें प्राप्त हुई। लोक सभा में सबसे बड़े राजनीतिक

दल भाजपा ने अपने सहयोगी दलों के साथ मिलकर सरकार बनाने में सफल रही। यह सरकार एक बार पुनः अटल बिहारी के नेतृत्व में बनी जो अपना कार्यकाल पूरा करने से आठ माह ही भंग हो गई।

राजनीतिक स्थायित्व की सरकारें

गठबन्धन के दौर में स्थायी सरकारों का जो युग हुआ वह भारतीय राजनीति में एक नई क्रान्ति लेकर आया, वह क्रान्ति लेकर आया, क्रान्ति की गठबन्धन के कारण संभव हुआ। 14वीं लोक सभा से पहले जिनकी सरकारें बनी भले की गठबन्धन की सरकारें रहीं लेकिन वह चुनाव के बाद सहयोग करके सरकार बनायी जाती थी। लेकिन वे सरकारें स्थायी सरकार नही बना सकीं। 2004 के आम चुनाव से पहले कांग्रेस ने यू.पी.ए. का निर्माण किया। जिसमें अनेक क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों को अपने गठबन्धन में शामिल किया। जब की भाजपा ने 1999 के आम चुनाव से पहले ही एन.डी.ए. का निर्माण क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों को लेकर कर चुकी थी।

8 फरवरी 2004 को राष्ट्रपति ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम ने 13वीं लोक सभा को आठ महीने पहले ही भंग कर दिया। और साथ ही साथ 14वीं लोक सभा चुनाव की घोषणा कर दिया। वाजपेयी सरकार द्वारा सरकार को समय से पहले ही भंग करने का निर्णय 55 वर्ष के गणतन्त्र में सत्तारूढ़ रूढ़ दल द्वारा चौथी बार लिया गया। इस लोक सभा चुनाव में मतदाताओं की संख्या 675 करोड़ रही जो इस चुनाव में इन मतदाताओं कि अति महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस गठबन्धनों की नजाकत को देखते हुए इण्डिया टुडे ने लिखा कि ''इस महाभारत मे इस बार गठबन्धनों की जंग होने वाली है''। भाजपा ने अपने गठबन्धन में 24 दलों के लेकर गठबन्धन का निर्माण अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में हुआ। इस चुनाव में यू.पी.ए. को सत्ता प्राप्त हुई। और यू.पी.ए. ने अपना पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। यह कार्यकाल इतना प्रभावी रहा कि कुछ अपवादों को छोड़कर देखा जाये तो डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यू.पी.ए.–1 ने भारतीय जन मानस के लिए ऐसे-ऐसे कार्य किये जिसमें भारत में एक नई क्रान्ति ला दीया, 2005 में सूचना का अधिकार लाकर सरकार ने नही किया था और ग्रामीण क्षेत्रों से ही रहे पलायन को रोकने एवं बेरोज़गारी को समाप्त करने के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना तो ग्रामीण के लिए जीवन दान साबित हुई।

15वीं लोक सभा चुनाव में पुनः यू.पी.ए.–2 का दौर शुरू हुआ भले ही ये सरकार गठबन्धन की रही तो लेकिन स्थायी सरकार होने का जो गौरव प्राप्त किया वह पहले की सरकारों जैसा नहीं रह गया था जिसमें सरकारें अल्प अवधि की ही हुआ करती थीं। उसे मानवीय राजनीति में संकट का दौर ही कहा जा सकता है। 2009 के आम चुनाव से पहले ही गठबन्धन में दरार देखने को मिली। जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आते गये सहयोगी दलों के सम्बन्धों में तेजी से परिवर्तन देखने को मिला। जिसका परिणाम यह रहा कि लालू प्रसाद यादव (राजद), रामविलास पासवान (लोजपा) अलग हो गये।

लेकिन इस सरकार का एक सकारात्मक परिणाम यह रहा कि यू.पी.ए.–1 और यू.पी.ए.–2 ने जिस क्षेत्रीय दलों को लेकर सरकार बनायी उस पार्टी को सरकार में स्थान दिया और उन क्षेत्रों के विकास को लेकर तत्परता से कार्य किया, जिसका लाभ क्षेत्रीय दलों को उनके क्षेत्र की अस्मिता एवं विकास कार्यों का तबज्जों दिया गया। यह पहली सरकार रही जिसने जनता के लिए सकारात्मक कार्य किये। लेकिन सरकार के शासन काल के समय हुए भ्रष्टाचार इस सरकार को पतन की ओर ले जाने का सबसे वहा कारण साबित हुए।

16वीं लोकसभा का चुनाव 2014 में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ, इस सरकार ने भी अपने गठबन्धन को और प्रभावशाली बनाने के लिए अधिक मात्रा में कम्पेन करना शुरू किया। लेकिन यह चुनाव पिछले चुनाव कुछ अलग ही दिशा में भारतीय राजनीति को पुनः व्यक्ति केन्द्रित राजनीति को ओर ले गया। जिसका परिणाम यह रहा कि नरेन्द्र मोदी की लोकप्रियता का ऐसा जोर चला की राष्ट्रीय स्तर की पार्टी भी अपनी जमानत बचाने में भी असफल रही। इस चुनाव में विपक्ष को भी निर्धारित सीटें प्राप्त नही हो सकीं जो विपक्ष में बैठने के काबिल हो। यह सरकार एक स्थायी सरकार साबित हुई। इस चुनाव में सहयोगी दलो के सदस्यों ने भी सरकार में स्थान प्राप्त करने में सहयोग किया। इस सरकार ने कुछ ऐसे-ऐसे कार्य किये जो भारतीय जनता के लिए सकारात्मक तो कुछ नकारात्मक साबित हुई इस चुनाव में एन.डी.ए. ने 336 सीटें जीतीं। जिसमें भाजपा ने अकेले 282 सीटें प्राप्त की, जिसे पूर्ण बहुमत कहा जाता है। कांग्रेस ने 44 सीटें ही जीत सकी। इस चुनाव में भाजपा 39 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे वही यू.पी.ए. कांग्रेस को 24 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे।

17वीं लोक सभा का चुनाव 2019 जो अभी हाल ही में सम्पन्न हुआ है यह चुनाव एन.डी.ए ने भारत में राष्ट्रवाद के नाम पर लड़ा। भारत की जनता किसी अन्य मुद्दे पर भले ही किसी पार्टी का साथ दे न दे लेकिन जहां राष्ट्रवाद का मुद्दा हो वहां पर जनता सरकार के साथ ही जाती है जिसका लाभ भाजपा ने बखूबी उठाया। पुलवामा और बालाकोट जैसे आंतकवादी घटनाओं से जनता का ध्यान अपनी सुरक्षा को लेकर एक भावनात्मक रूप से सरकार से जुड़ गया। भाजपा ने इसी को अपना मुद्दा बना लिया और जोर से प्रचार किया। पहले की जितने भारत के मुद्दे जैसे बेरोजगारी लूट हत्या, चोरी, भ्रष्टाचार, आदि सभी को भारतीय जनता ने हाशियें पर रख दिया। इस चुनाव में इसका लाभ ही एन.डी.ए. भाजपा को इतनी अधिक सीटों पर विजय हासिल हुई। इस चुनाव में भाजपा ने अकेले 303 सीटें जीतीं जो एक पूर्ण बहुमत को प्राप्त हुए एन.डी.ए. की कुल 351 सीटें प्राप्त हुईं, वहीं पर कांग्रेस ने 52 सीटें प्राप्त कीं। इस बार भी विपक्ष की जो न्यूनतम प्रतिशत होती है वहां तक पहुंचने में असफल रहा। इस चुनाव मे अन्य राज्यों के गठबन्धन को भी उम्मीद के अनुसार सीटें प्राप्त नहीं हो पायीं। लेकिन बसपा के पिछली चुनाव की अपेक्षा इस चुनाव में 10 सीटें प्राप्त हुई जब की

सपा को पांच सीटें जो पिछले चुनाव में रही वही थी। इस चुनाव में एक ऐतिहासिक जीत हासिल कर एक बार फिर स्थायी सरकार बनाने में सफल रही।

संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कोठरी, रजनी, (2005) 'कांग्रेस व्यवस्था राजनीति की किताब'' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 125
2. थामस मेरी (2001), 'पॉलिटिकल पार्टिज़ इन इण्डिया' लिबरल टाइम्स वाल्यूम पृ. 120
3. तिवारी, रजनी (2003), 'भारत मे दलीय व्यवस्था और संसदीय लोकतंत्र, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, पृ. 148
4. अस्थाना, वी.पी., और सिंह बी.बी., (1985) 'राजनीतिक निबन्ध' तुलसी प्रकाश जातीवाडा मेरठ, पृ. 340
5. सईद, एस.एम. (2003), भारतीय राजनीतिक व्यवस्था', हिमांशु प्रिंटर्स दिल्ली, पृ. 273
6. अरोरा, बलवीर, (1999), *पॉलिटिक पार्टी एण्ड द पार्टी सिस्टम : द इमर्जेन्स आफ न्यू कोलीशन*, मयंक पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ. 35
7. आहुजा, एम.एल., (1998), इलेक्ट्रोरल पॉलिटिक्स एण्ड जनरल इलेक्शन' इन इण्डिया, मित्तल पाब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 289
8. नारंग, ए.एस., (2000), ''इण्डियन गवर्मेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', गीतांजलि पब्लिकेशन, नई दिल्ली पृ. 62
9. साहनी, एन0सी0, (1999), ''इलेक्शन पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', न्यू एकेडमी पब्लिशिंग, नई दिल्ली, पृ. 45
10. योगेश, अटल, (2000), 'द मैनडेड और पॉलिटिकल ट्रांजिशन' रि इमंजेन्स, ऑफ वाजपेयी, रावत पब्लिकेशन, जयपुर पृ. 70
11. अख्तर, मजिद, (2000), को कोलिएशन पॉलिटिक्स एण्ड पावर शेयरिंग, मयंक पब्लिकेशन, जामिया हमदर्द, नई दिल्ली पृ. 35
12. सईद एस.एम., (2010), 'भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, हिमांशु, प्रिन्टर्स, नई दिल्ली पृ. 283
13. वहीं पृ. 285
14. वही नया संसकरण (2016) पृ. 296
15. कुमार, संजय, निदेशक, सीएसडीएस, दिल्ली, राष्ट्रीय सहारा, हस्तक्षेप, 25 मई 2019 ''कामकाज से ज्यादा राष्ट्रवाद पर वोट'' पृ. सं. 01।

भारत में गठबन्धन की राजनीति : ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

ब्रजेश कुमार मिश्र

Ikjk'k% *भारतीय लोकतंत्र संसदात्मक व्यवस्था पर आधारित है। यहाँ पर संघात्मक प्रणाली को अपनाया गया है। ऐसी प्रणाली को भारत की बहु संस्कृति, भाषाई और क्षेत्रीय विभिन्नता के चलते अपनाया गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् प्रारम्भिक दो दशकों में केन्द्र में एक ही पार्टी का वर्चस्व था। इस वर्चस्व के कारण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एकात्मक शासन की तरफ बढ़ती जा रही थी, किन्तु 1960 के दशक के अन्तिम वर्षों में कांग्रेस का वर्चस्व समाप्त होने लगा। 1969 तक आते-आते कांग्रेस में फूट पड़ गयी। श्रीमती गाँधी के नेतृत्व में पहली गठबन्धन सरकार का गठन हुआ। 1977 में पहली गैर-कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ, जो कई गैर-कांग्रेसी दलों से मिलकर बनी थी। इसके बाद 1989 में गठबन्धन की सरकार केन्द्र में क्रमशः वी.पी. सिंह और श्री चन्द्रशेखर सिंह के नेतृत्व में आयी। 1991 में नरसिम्हा राव के नेतृत्व में पहली ऐसी गठबन्धन सरकार अस्तित्व में आयी जिसने अपना कार्यकाल पूरा किया। प्रस्तुत शोध पत्र में 1952 से लेकर 2019 तक बनने वाली गठबन्धन सरकारों का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।*

प्रस्तावना

राजनीति अत्यन्त पावन शब्दावली है। यह लोकमंगल का अधिष्ठान है। सम्प्रति राजनीति का सर्वश्रेष्ठ साधन लोकतंत्र है। समकालीन विश्वव्यवस्था को संजोए रखने में इसकी विशिष्ट भूमिका है। लोकतंत्र लोकमन एवं लोकमंच का प्रतिपाद्य विषय है। इसकी सफलता में राजनीतिक दलों की भूमिका विशिष्ट रही है। राजनीतिक दल स्वतंत्र रूप से किसी भी लोकतान्त्रिक प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और निर्वाचन प्रणाली के अनुरूप अपने प्रत्याशियों के पक्ष में चुनाव प्रचार करते हैं। विगत् तीन दशकों से भारत में सरकार का एक अलग स्वरूप दिखलाई पड़ रहा है, वह है संविद सरकार अथवा गठबन्धन सरकार। गठबन्धन शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द

'Coalition' का हिन्दी रूपान्तर है, जो लैटिन भाषा के शब्द 'कीएलिशियो' से निष्पन्न हुआ है। जिसका शाब्दिक अर्थ है एक साथ जाना अथवा मिलना। इस प्रकार गठबन्धन शब्द का अर्थ हुआ दो या दो से अधिक लोगों अथवा दलों के मिलन से बना समूह अथवा दल। एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलना गठबन्धन कहलाता है (Merrian Webster Dictionary)। प्रो. ऑग ने गठबन्धन को ऐसी सहकारी व्यवस्था बताया है, जिसमें अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ अथवा ऐसी पार्टियों के सभी सदस्य सरकार बनाने के लिए एक जुट हो जाते हैं (Devanathan 1999)। इस प्रकार गठबन्धन, एक दूसरे से अलग रहीं या दो या दो से अधिक दलों का सत्ता की प्राप्ति हेतु बनाया जाता है। जैसा कि हाल ही में सम्पन्न हुए 17वीं लोक सभा के चुनाव के दौरान समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी के मध्य उत्तर प्रदेश में हुआ। यह गठजोड़ चुनाव के तत्काल बाद अलग हो गया।

नेशनल डेमोक्रेटिक इंस्टीट्यूट और द ओस्लो सेन्टर फॉर पीस एण्ड ह्यूमन राइट द्वारा गठबन्धन निर्माण के पाँच चरण बताए गए हैं (Coalitions : A Gride for Political Parties) – 1. पार्टी की रणनीति विकसित करना, 2. गठबन्धन पर विचार करना, 3. आरम्भण (Getting Started), 4. गठबन्धन में काम करना और 5. सबक सीखना।

गठबन्धन की राजनीति ने भारत की संसदीय व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया है, कभी ऐसा प्रतीत होता है कि इससे भारत के संवैधानिक ढाँचे को ठेस पहुँचेगी, तो कभी ऐसा भी लगता है कि गठबन्धन वर्तमान लोकतन्त्र का पर्याय है। बहुत हद तक यह सत्य भी है। यद्यपि गठबन्धन सरकार ने भारत की दलीय स्थिति को व्यापक रूप से परिवर्तित किया है तथापि विगत तीन दशकों में उभरने वाले क्षेत्रीय दलों ने भारत के संघीय स्वरूप को मजबूत भी किया है, जो एकात्मक सरकार की ओर बढ़ती हुई प्रतीत होता है। भारत में गठबन्धन की राजनीति का ऐतिहासिक विश्लेषण निम्नांकित रूपों में किया जा सकता है –

1. कांग्रेस के वर्चस्व का युग (1947–1967)

प्रथम आम चुनाव से ही भारत में चुनाव अबाध गति से होता रहा, जिससे राजनीतिक प्रणाली मजबूत हुई। 1967 तक लोकसभा और विधानसभा के चुनाव साथ-साथ होते रहे। 1967 के बाद ही इसमें परिवर्तन हुआ। इस पूरे काल के दौरान कांग्रेस का वर्चस्व बना रहा। कांग्रेस के इर्द-गिर्द ही भारतीय राजनीतिक व्यवस्था घूमती रही, इसी कारण इसे 'कांग्रेस सिस्टम' नाम दिया गया (Kothari, 1964)। कांग्रेस से जो लोग अलग हुए उन्होंने ही कांग्रेस के विपक्ष की भूमिका निभाई। पहले दो दशकों में कांग्रेस का केन्द्र और राज्य दोनों में ही वर्चस्व रहा। 1952, 1957 और 1962 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को 45 से 48 प्रतिशत मत प्राप्त हुए (Kothari, 2002, P. 175)। एकजुट विपक्ष की अनुपस्थिति के कारण कांग्रेस पार्टी का वर्चस्व बना

रहा। ऐसा भी नहीं है कि कांग्रेस पूरे देश में शासन कर रही थी क्योंकि 1952 में हुए राज्य विधान सभा चुनावों में कांग्रेस ने लगभग सभी राज्यों में पूर्ण बहुमत की सरकार बनायी, सिवाय मद्रास, त्रावणकोर-कोचीन, पेप्सू और उड़ीसा को छोड़कर। जहाँ तक राजस्थान का प्रश्न है तो यहाँ किसी तरह सत्ता कांग्रेस के हाथ लगी। 1954 का विधान सभा चुनाव, जो त्रावणकोर कोचीन में सम्पन्न हुआ में कांग्रेस समर्थित प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, मुस्लिम लीग और कांग्रेस के गठबन्धन की सरकार बनी (Kothari, 2002, P.1)। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भले ही कांग्रेस पार्टी का केन्द्र में वर्चस्व रहा हो परन्तु बहुत पहले से ही राज्यों में गठबन्धन सरकारें रही हैं।

केन्द्र स्तर पर गठबन्धन सरकार आजादी के पहले ही नेहरू जी के नेतृत्व में बनी। अन्तरिम सरकार वस्तुतः कांग्रेस, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग और अन्य दलों के गठबन्धन पर आधारित थी। कांग्रेस को मुस्लिम लीग के निर्वाचन प्रणाली से हट जाने के कारण लाभ मिला। 1967 तक आते-आते स्थितियों में परिवर्तन होने लगा। कुछ वर्षों के अन्तराल पर हुए दो युद्धों 1962 में चीन और 1965 में पाकिस्तान तथा दो बड़े नेताओं पं. नेहरू और शास्त्री जी की असमय मृत्यु ने कांग्रेस की जड़ को हिला दिया। 1967 के चौथे आम चुनाव के बाद कांग्रेस के किले में सेंध लगी और नौ राज्यों में कांग्रेस की स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह स्वयं अपने बल पर सरकार बना सके। यहीं से राज्यों में व्यापक तौर पर गठबन्धन की शुरूआत हुई। क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व आरम्भ हुआ, साथ ही बाजार राजनीति का भी श्री गणेश हुआ।

2. कांग्रेस विभाजन का काल (1967–1979)

1967 के आम चुनाव के बाद से ही भारतीय राजनीति में होने वाले परिवर्तन की आहट मिलने लगी थी। इसी के बाद कांग्रेस की नींव दरकने लगी। भारतीय राजनीति में 'बाजार राजनीति' का आरम्भ हुआ। 1967 में जब विपक्ष संयुक्त विधायक के बैनर तले एक जुट हो गया और हिन्दी पट्टी में कांग्रेस की हार हुई तब पार्टी के भीतर श्रीमती इंदिरा गाँधी की क्षमता पर सवाल उठने लगे और पार्टी में दबा हुआ विरोध का स्वर ऊपर आ गया (BBC Hindi)। कई राज्यों में गठबन्धन का युग आरम्भ हुआ। इकबाल नारायण ने इसे भारतीय राजनीति के संक्रमण का काल माना है। वस्तुतः कांग्रेस के विरोध की शुरूआत डॉ. राम मनोहर लोहिया ने की (सुप्रिया राय व अन्य, 1997)। समूचे राजनीतिक परिदृश्य पर डॉ. लोहिया के विचारों का असर पड़ा और केन्द्र तथा राज्यों में गठबन्धन अथवा गठबन्धन जैसी स्थिति दिखलायी पड़ने लगी। कांग्रेस की ऐसी स्थिति को देखते हुए पत्रकार *एरिक द कोस्टा* ने *'द स्टेट्स मैन'* में लिखा कि यह चुनाव 1967 की क्रांति हैं उन्होंने आगे लिखा कि केन्द्र अभी भी मजबूत है लेकिन यह एक द्वीप है। अमृतसर से हावड़ा तक की लम्बी यात्रा में दिल्ली एक मात्र कांग्रेस शासित क्षेत्र है। तमिलनाडु को छोड़कर 1967 के बाद कांग्रेस के असन्तुष्ट लोगों के कारण ही पार्टी कमजोर हुई।

कांग्रेस के 1969 के अधिवेशन के बाद कांग्रेस विखराव की ओर बढ़ी। श्रीमती इन्दिरा गाँधी की कतिपय नीतियाँ यथा– आर्थिक नीति, सिंडिकेट्स और इन्दिरा गाँधी के मध्य विरोधाभास और राष्ट्रपति के रूप में वी.वी. गिरि का चुना जाना, ऐसे मुद्दे थे जिन्होंने कांग्रेस के परम्परावादी गुट को नाराज कर दिया (Hardgrave, 1970)। 12 नवम्बर 1969 को कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने श्रीमती गाँधी को पार्टी से निकाल दिया। पार्टी का टूटना लगभग सुनिश्चित हो गया। इन्दिरा गाँधी के समर्थन वाली पार्टी कांग्रेस (R) और पुरानी पार्टी कांग्रेस (O) कहलायी। विभाजन के पश्चात् कांग्रेस (R) कम्युनिस्ट पार्टी, डी.एम.के., अकाली दल और निर्दलीय सांसदों के सहारे सरकार बनाने में सकल रही। केन्द्र में पहली गठबन्धन सरकार बनी। यह सरकार भी लम्बे समय तक नहीं चल सकी क्योंकि यह सरकार एक अल्पमत की सरकार थी, इसी को दृष्टिगत रखते हुए श्रीमती गांधी ने चुनाव कराने का फैसला किया। फलतः 1971 में आम चुनाव सम्पन्न हुए।

1971 का आम चुनाव कई मायनों में महत्वपूर्ण रहा क्योंकि इस चुनाव में कांग्रेस (R) के विरूद्ध एक महागठबन्धन खड़ा हुआ। इससे स्वतन्त्र पार्टी, जनसंघ, सोशलिस्ट और कांग्रेस से अलग हुए दल सम्मिलित थे। यह गठबन्धन निष्फल सिद्ध हुआ क्योंकि इन्दिरा गाँधी के 'गरीबी हटाओं' के नारे ने जनता को अपनी ओर आकर्षित किया। फलतः श्रीमती गाँधी को प्रचण्ड बहुमत मिला। यह कांग्रेस का प्रभावी युग था, जो नेहरू और शास्त्री के नेतृत्व वाली सरकार से बिल्कुल अलग था। यहाँ से कांग्रेस पार्टी 'वन मैन शो' हो गयी। श्रीमती गाँधी की बढ़ती शक्ति और अभूतपूर्व क्षमता से पार्टी में पुनः विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी। श्रीमती गाँधी यह जानती थीं कि जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में उनके विरूद्ध एक वर्ग खड़ा हो रहा है। इसी को ध्यान में रखते हुए उन्होंने भारतीय राजनीति के इतिहास में पहली बार केन्द्र में 'आपातकाल' की घोषणा की। यह एक ऐसा निर्णय था जिसे भारतीय 'राजनीति के काले अध्याय' के रूप में जाना जाता है।

एक बार पुनः कांग्रेस के अन्दर विरोधी सुरों के उठने का कारण तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ थीं। बांग्लादेश युद्ध (1971), अरब-इजराइल युद्ध (अक्टूबर 1973) और मानसून की देरी ने भारत की आर्थिक स्थिति को क्षति पहुँचाई। खाद्यान्न संकट भी एक प्रमुख कारण था। बिहार और गुजरात में चल रहे छात्र आन्दोलन ने श्रीमती गाँधी को परेशान कर दिया। इसी बीच इलाहाबाद उच्चतम न्यायालय का ऐतिहासिक निर्णय आया जिसने श्रीमती गाँधी के निर्वाचन को रद्द कर दिया (Oliver 1978)। इसी के बाद अपने विरोधियों को नियन्त्रित करने के निमित्त श्रीमती गाँधी ने आपात काल की घोषणा की।

आपात काल की समाप्ति के पश्चात् 1977 में चुनाव हुआ। मार्च 1977 में हुए चुनावों में कांग्रेस को पराजय का मुँह देखना पड़ा। मोरार जी देसाई के नेतृत्व में

कांग्रेस की सरकार बनी। मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली जनता पार्टी की सरकार जो बेमेल गठबन्धन पर आधारित थी भी अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी और 15 जुलाई, 1979 को सरकार गिर गयी। इसके बाद चौधरी चरण सिंह के नेत्तृत्व में सरकार बनी लेकिन वह भी अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर पायी और शक्ति परीक्षण के पूर्व ही गिर गई। इस प्रकार केन्द्र में गठबन्धन सरकार का दूसरा प्रयास भी असफल रहा। वस्तुतः इस असफलता का कारण सफल नेत्तृत्व का अभाव और निर्णय लेने की क्षमता की कमी थी (Arshi, 2001)।

3. कांग्रेस के उत्स का काल (1980–1989)

1977 में बुरी तरह से पराजित होने के पश्चात् 1980 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी को पूर्ण बहुमत मिला। 351 सीटों के साथ कांग्रेस सबसे बड़ा दल था। 41 सीटों के साथ लोक दल दूसरे नम्बर की सबसे बड़ी पार्टी बनी। श्रीमती गाँधी ने जब दूसरी बार सत्ता में वापसी की तो उन्होंने अपने पुराने रास्ते से अलग हटकर कांग्रेस पार्टी को संगठनात्मक रूप से मजबूत करने का काम किया। श्रीमती गाँधी के पुत्र राजीव गाँधी जो उनकी हत्या के बाद 1984 के आम चुनाव के बाद सत्ता में आए ने भी संगठन स्तर पर काम करने में भलाई समझी। राजीव की सफलता में इसकी विशेष भूमिका थी (Mynor, 1989)। 1984 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को सहानुभूति का लाभ मिला। कांग्रेस 401 सीटें जीतने में सफल रही। यह विजय लोकसभा के अब तक के इतिहास में (2019 के आम चुनाव को लेकर) सबसे बड़ी विजय थी। राजीव गाँधी ने कांग्रेस के पुराने सामाजिक आधार को प्राप्त करने के उद्देश्य से एक साथ दो कार्ड खेले–पहला शाहबानों मामलें के सन्दर्भ में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को बदल दिया और दूसरे राम मन्दिर का ताला खोला। इन दोनों निर्णयों का उद्देश्य क्रमशः हिन्दुओं और मुस्लिमों को प्रसन्न करना था (Sheth, 1998)। इन दोनों निर्णयों का राजीव गाँधी लाभ नहीं ले सके। प्रशासनिक अक्षमता, भ्रष्टाचार जैसे आरोपों (बोफोर्स मामले) के कारण कांग्रेस में पुनः दरार पड़ी। रक्षा मंत्री वी.पी. सिंह ने कांग्रेस छोड़ दी और जनमोर्चा नामक संगठन बनाया। एक बार पुनः विपक्ष एक जुट हुआ और कांग्रेस की सरकार का पतन हो गया।

4. गठबन्धन की राजनीति : स्थायित्व की ओर (1989–1999)

विपक्ष की एकजुटता ने विपक्षी दलों को एक बार पुनः एक मंच पर ला खड़ा किया। इस बार चौधरी देवी लाल ने इन्हें एक सूत्र में बाँधा तो विश्वनाथ प्रताप सिंह ने नेत्तृत्व सम्भाला। यद्यपि कांग्रेस अब भी सबसे बड़ा दल था तथापि कांग्रेस के विरूद्ध पांच राजनीतिक दलों ने मिलकर सरकार बनायी। भाजपा और वाम दल बाहर से समर्थन कर रहे थे। यह सरकार बहुत दिन तक नहीं चल सकी। वी.पी सिंह की कार्यशैली और आन्तरिक गुटबाजी के कारण इस सरकार का अन्त हो गया। इस

सरकार का सबसे बड़ा फैसला मण्डल कमीशन की रिपोर्ट को लागू करना था, इसी समय भाजपा ने रथयात्रा निकाली लेकिन आडवाणी की गिरफ्तारी के बाद भाजपा ने अपना समर्थन वापस ले लिया और वी.पी. सिंह सरकार गिर गयी। इसके तत्काल बाद कांग्रेस के सहयोग से चन्द्रशेखर सरकार बनी किन्तु यह सरकार मात्र 61 दिन चली और 21 जून 1991 को चन्द्रशेखर मन्त्रिमण्डल का अन्त हो गया।

मई-जून 1991 में लोक सभा का आम चुनाव हुआ और कांग्रेस 220 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी थी। इस बार भी किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला किन्तु इसने अन्य दलों के सहारे सरकार का निर्माण किया और अपना कार्यकाल पूरा किया। केन्द्र में यह गठबन्धन की पहली सरकार थी जिसने अपना कार्यकाल पूरा किया।

1996 के आम चुनाव में भाजपा अप्रत्याशित तरीके से 161 सीटें लेकर सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। यद्यपि भाजपा ने 12 सहयोगी दलों को साथ लेकर सरकार बनाने का दावा पेश किया तथापि विश्वास मत हासिल नहीं कर पायी और मात्र 13 दिनों में ही विघटित हो गयी। इसके बाद कांग्रेस के सहयोग से एच.डी. देवगौड़ा तथा इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में अल्पकालीन सरकारें बनीं। ऐसी परिस्थिति में पुनः आम चुनाव होना स्वाभाविक था। 12वीं लोक सभा का चुनाव फरवरी-मार्च 1998 में सम्पन्न हुआ। भाजपा पुनः सबसे बड़े दल के रूप में उभरी। अटल बिहारी वाजपेयी के नेत्तृत्व वाली यह सरकार मात्र 13 महीने में ही गिर गयी। ऐसी परिस्थिति में पुनः 1999 में आम चुनाव हुए जिसमें भाजपा ने अपने सहयोगी दलों के साथ मिलकर रा.ज.ग. बनाया जो 'न्यूनतम साझा कार्यक्रम' पर आधारित था। इस सरकार ने अपने पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। इसके बाद से 2004 से 2019 तक कुल चार सरकारें बनीं जो गठबन्धन पर आधारित थीं किन्तु इन्होंने अपना कार्यकाल पूरा किया (इसमें 2019 की वर्तमान सरकार भी सम्मिलित है)।

निष्कर्ष

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि 1969, 1977, 1989, 1991, 1996, 1997, 1998, 1999, 2004, 2009, 2014 और 2019 में केन्द्र में गठबन्धन सरकारें बनी। 1991 की नरसिम्हा राव सरकार को छोड़कर उसके पूर्ववर्ती किसी भी गठबन्धन सरकार ने अपना कार्य काल पूरा नहीं किया। आगे चलकर 1996 से 1999 तक बनने वाली सरकारों की स्थिति भी यथावत रही। 1999 के बाद गठबन्धन आधारित सरकारों में स्थायित्व आया और इन्होंने अपना कार्यकाल पूरा किया। 1999 के चुनाव से गठबन्धन सरकारों का एक ऐसा दौरा शुरू हुआ जिसने चुनाव पूर्व ही गठबन्धन किया और सफलता पूर्वक अपना कार्यकाल भी पूरा किया। इसमें भाजपा नेतृत्व वाली राजग (1999), कांग्रेस के नेतृत्व वाली सं.प्र.ग. 2004 और 2009 तथा पुनः भाजपा नेत्तृत्व वाली राजग (2014 और अब 2019 क्रमशः जारी) सम्मिलित हैं। उल्लेखनीय बात यह

है कि 2014 और 2019 में भाजपा अकेले ही पूर्ण बहुमत प्राप्त करने के बावजूद भी गठबन्धन धर्म को निभा रही हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह विदित होता है कि भारतीय राजनीति में गठबन्धन अपरिहार्य बन चुका है, इसके पीछे कारण भारतीय समाज का प्रारम्भ से संघात्मक रहना है। सम्प्रति छोटा से छोटा दल भी अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान का प्रतिनिधित्व करने के निमित्त सरकार में सम्मिलित होने के लिए लालायित है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि गठबन्धन की सरकार ने छोटे व अल्प संख्यक समूहों को भी प्रतिनिधित्व का अवसर प्रदान कर वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना की है।

सन्दर्भ

1. Coalitions, : A Guide for Political Parties, www.ndi.org.27/10/2015
2. D. Devanathan, Sterngthening Coalition Experimemnt of Centare : A Few Suggestions. Third concept, Vol. 12, No. 143, January, 1999, PP. 26
3. K. Arshi (2000) : Coalition Politics in India Since 1967, in Akhtar Majeed (Ed.), Coalition Politics and Power Sharing (P.156) , New Delhi : Manak Publication.
4. Kothari Rajani : The Congress System in India, Assian Survey. Vol. 4, No 12, (Dec. 1964) PP.-1161-1173
5. Kothari, Rajani (2002) : Congress System in India, in Zoya Hassan (Ed.) Parties and Party Politics in India, New Delhi, Oxford Publisher.
6. M. Oliver (1978) : The Collapse of Indian National Congress. Pacific Affair, 5(1), 45 Retrived from, http://www.jstore.org/stable.2757008. Accessed at 25/7/2013.
7. Merriam Webster Dicionary
8. P. Sheth (1998) : Indian 50-Pollitical Development and Decay. New Delhi : South Asian Publishers, PP. 13
9. R. L. Hardgrave (1970) : The congress in India : Crises and split. Asian Survey, 10(03), 256, Retrieved form http://www.org/stable2642578.on, 21/9/2013.
10. W. Mynor (Ed.) (1989) : The Indian Paradox. New Delhi, Sage Publication PP. 296
11. चुनाव 2019 राष्ट्रीय दलों का परिचय, कांग्रेस, BBC Hindi, https://www.bbc.com/hindi/spec.
12. सुप्रिया राय एवं एस.पी.एन. सिंह, ''भारतीय संविद सरकारों की बदलती प्रवृत्तियाँः वर्तमान सन्दर्भ, लोकतन्त्र समीक्षा, खण्ड-29, 1997, पृ. 13

भारत में गठबन्धन की राजनीति : अतीत, वर्तमान, भविष्य

महेश कुमार सिंह

Ikjk'k *प्रस्तुत शोधपत्र में 'भारत में गठबन्धन की राजनीति : अतीत, वर्तमान, भविष्य' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। भारतीय राजनीति में गठबन्धन सरकारों के युग का सूत्रपात बींसवीं शताब्दी के मध्योपरांत के दशक से ही हो चुका है। भारतीय राजनीति में गठबन्धन की राजनीति कोई नूतन तथ्य न होकर चुनावी राजनीति के अस्तित्व के समय से ही परिलक्षित होती रही है, जिसके माध्यम से सत्ता प्राप्ति में विभिन्न राजनीतिक दलों की भागीदारी सुनिश्चित की जाती रही। भारत में इसका अस्तित्व आजादी के पूर्व से ही विद्यमान है। भारतीय राजनीति में राष्ट्रीय दलों के साथ क्षेत्रीय दल भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे है। यद्यपि भारत एक बहुभाषी, बहुधर्मी एवं बहुजातीय समाज के स्वरूप को धारण करता है, जिसमें छोटे -छोटे जातीय या क्षेत्रीय समूह अपनी पहचान बनाएं रखने हेतु प्रयत्नशील रहते है। हमारा देश समृद्ध विविधताओं से परिपूर्ण है, जिसकी अभिव्यक्ति अक्सर राजनीतिक क्षेत्र में परिलक्षित होती हैं। आज हमारे समाज की इस वैविध्यपूर्णता को मानने एवं स्वीकार करने की आवश्यकता है, जिससे गठबन्धन सरकारें सफलतापूर्वक स्थायी सरकार के रूप में चलाई जा सके।*[1]

प्रस्तावना

समाज का मूलभूत परिवर्तन भी गठबन्धन की प्रक्रिया के अस्तित्व में सहायक सिद्ध होता है। जब भी कोई समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा होता है, तब ऐसी परिस्थितियाँ अस्तित्व में आ जाती है, कि गठबन्धन अपरिहार्य बन जाता है। वर्तमान समय में भारतीय समाज न केवल जाति, धर्म, भाषा, अमीर-गरीब के आधार पर विभक्त है, वरन् वर्ग, जीवन शैली एवं व्यवसाय के आधार पर भी बँटा हुआ है। यह सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक वैविध्यपूर्णता चुनावी राजनीति को पूर्णतः प्रभावित करती हुई परिलक्षित हो रही है। भारतीय लोकतंत्र के गत दो दशकों के कार्यकलापों ने यह सिद्ध

कर दिया है कि यहाँ गठबन्धन की राजनीति सिर्फ सतही नहीं है, वरन् इसकी जड़ें गहरी जम चुकी है।[2]

वर्तमान भारतीय राजनीति में गठबन्धन सरकारें अपरिहार्य बन चुकी हैं। आगामी वर्षों में भी यह आशा की जाती है कि भारत में संघ तथा राज्यों के स्तर पर गठबन्धन सरकारों का ही गठन होता रहेगा। विविधताओं से परिपूर्ण भारत देश में भौगोलिक, जातीय, धार्मिक, भाषायी एवं सांस्कृतिक स्थितियाँ पृथक्-पृथक् होने के कारण किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत की प्राप्ति न होने से गठबन्धन की राजनीति का प्रचलन हुआ और अग्रेतर भारतीय राजनीति में गठबन्धन की राजनीति अपरिहार्य बनती चली गई।

यद्यपि गठबन्धन सरकार विभिन्न राजनीतिक दलों के परस्पर सहयोग से बनती है। जिसमें विभिन्न मतों एवं नीतियों को मानने वाले दल सम्मिलित होते हैं। जब गठबन्धन की नीतियों का निर्धारण किया जाता है, तब उसमें शामिल सभी राजनीतिक दलों द्वारा विचार-विमर्श किया जाता है। सभी दलों के मिश्रित विचार ही नीति का रूप धारण करता है। गठबन्धन सरकार द्वारा जो भी साझा कार्यक्रम निर्मित होता है उस पर गठबन्धन का सामूहिक उत्तरदायित्व निश्चित होता है। सरकार द्वारा लिए गए निर्णय उसके विभिन्न घटक दलों के भी निर्णय माने जाते है। अतः गठबन्धन सरकार राजनीतिक समुदायों या शक्तियों का वह गठजोड़ है, जो अस्थायी एवं किंचिद विशिष्ट प्रयोजनों के लिए होता है। गठबन्धन सरकारों का निर्माण जिन घटक दलों के सहयेाग के फलस्वरूप होता है, उनमें बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रमों के ऊपर मतैक्यता पायी जाती है।[3]

लोकतंत्र की प्रतिस्पर्धी दल के अभाव में कल्पना युक्तियुक्त नहीं है। चतुर्थ आम चुनाव तक भारतीय राजनीति में प्रतिस्पर्धी दल का अभाव दृष्टिगत होता है। भारत प्रायः एक दलीय व्यवस्था की श्रेणी में रखा जाने वाला देश था। एलेन वाल ने 'दल पद्धति के वर्गीकरण' में भारत और मलाया को 'प्रभावी दल पद्धति' के अन्तर्गत रखा है।[4] राज्यों में अधिकांश समय तक कांग्रेस का एकाधिकार रहा। राज्यों में सरकारों को एक स्वायत्त इकाई के रूप में देखा गया, जिससे राज्यों के हितों की क्षति हुई और राज्य की जनता में क्षोभ उत्पन्न होने लगा। प्रारम्भिक दिनों में केन्द्र तथा प्रांतों की सत्ता में जो लोग थे उनमें से अधिकांशतः स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले लोग थे। जो राजनीति में सेवा हेतु संलग्न हुए थे, किसी स्वार्थ या लाभ हेतु नहीं। तत्कालीन राजनीति में नेहरू जी के व्यक्तित्व के सम्मुख सभी छोटे थे, किन्तु नेहरू जी की लोकतंत्र में असीम आस्था थी। इसलिए वे संसद तथा विधान सभाओं में अपने विरोधियों को भी (जो योग्य तथा क्षमतावान थे) भेजने में विश्वास रखते थे। इसलिए केन्द्र तथा प्रान्त में कोई विवाद नहीं था।[5]

आज गठबन्धन की राजनीति को एक राजनीतिक संकट के रूप में देखे जाने का

प्रचलन है। इसे इक्कीसवीं सदी के 'नए भारत की प्रसव पीड़ा' के रूप में भी देखा जाता है। कतिपय गठबन्धन सरकारों द्वारा अपना कार्यकाल पूर्ण न कर पाने, निर्णायक फैसले न ले पाने तथा केन्द्र की कमजोर स्थिति के कारण इन सरकारों के प्रति नकारात्मकता की प्रवृत्तिपोषण स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त समस्त विकल्पों का खुला रखना, सशर्त समर्थन न देना, सरकार को वाह्य समर्थन देना आदि मुहावरों तथा दलों के आंतरिक लोकतंत्र का अभाव के साथ-साथ राजनीति को धन संग्रह का उपकरण समझने वाले दलों के गठबन्धन ने भी इन सरकारों की परेशानियाँ बढ़ा दी है।

भारत की वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में जब मिली-जुली (गठबन्धन) सरकारें हमारी नियति बन गयी है तो हमें इन सरकारों की सफलता हेतु राजनीतिक समझ, संस्कृति, आचार-विचार एवं व्यवहार को अपनाना ही होगा।[6] वस्तुतः भारत में गठबन्धन की राजनीति के लिए दो दशक की परिस्थितियों अर्थात् दलों का प्रादुर्भाव जो भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र आदि पर अवलम्बित है, को उत्तरदायी माना जा रहा है। किन्तु ये परिस्थितियाँ तो आजादी के पूर्व भी विद्यमान थी। तब और अब में अन्तर यह है कि आजादी के पूर्व धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, विचारधारा की विभिन्नता के बाद भी महत्वपूर्ण लक्ष्य सम्मुख था – साम्राज्यवादी शक्तियों को परास्त करना। सत्ता प्राप्त करना प्रमुखता न होकर गौण था। सत्ता का बंटवारा भी पूर्णतः गौण था। इसलिए इन विविधताओं के रहते हुए भी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सभी ने गाँधी जी के नेतृत्व को स्वीकारा और सराहा। वर्तमान समय में ऐसा बड़ा लक्ष्य सम्मुख न होने के कारण विचारधारा की टकराहट दृष्टिगत होती है। येन केन प्रकारेण सत्ता की प्राप्ति करना ही प्रमुख लक्ष्य हो गया है। सरकार का नेतृत्व करने वालों के प्रति सहयोगियों की निष्ठा का अभाव परिलक्षित हो रहा है। आज गठबन्धन सरकार के लिए उत्पन्न परिस्थितियों को कोसने से बेहतर यह दृष्टि में रखना अधिक श्रेयस्कर होगा कि आखिर ऐसी परिस्थितियाँ क्यों आयी?

गठबन्धन सरकारों के मध्य परस्पर अविश्वास और एक-दूसरे के खिलाफ विरोध के भाव प्रस्फुटित होते रहते हैं, जिससे निरन्तर जोड़-तोड़ की भयावह स्थितियाँ बनी रहती हैं। सरकार न्यूनतम कार्यक्रम में सहमति के बावजूद ठीक ढंग से कार्य सम्पादित नहीं कर पाती। इन कार्यक्रमों के विविध पहलुओं के क्रियान्वयन में अन्तर्द्वन्द्व की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यद्यपि कार्यक्रम पर सबकी मतैक्यता होती है, परन्तु जब कार्यक्रम ही अस्पष्ट एवं कमजोर होता है, तो उसका क्रियान्वयन भी बहुत मुश्किल से संतोषप्रद होता है। इससे कार्यसम्पादन आधे-अधूरे ही रह जाते हैं। गठबन्धन सरकारों के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि ''ये सरकारें सदैव खतरनाक और अलोकप्रिय विकल्पों से बचने की कोशिश करती हैं और निर्णय को स्थगित करती रहती है''।[7] सरकारें किसी भी समस्या की प्रत्यक्षतः निराकरण करने में सक्षम नहीं होती

है। वे इस हेतु कोई ठोस समाधान देने में विफल होती है। इसका मात्र कारण मूल्य आधारित राजनीति की जगह स्वार्थपरक राजनीति है।

वस्तुतः गठबन्धन की राजनीति नूतन दौर में प्रविष्ट कर गयी है, जहाँ क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के क्षत्रपों का सामन्ती एवं व्यक्तिवादी गठजोड़ प्रबल स्वरूप धारण कर सत्ता में हिस्सा प्राप्ति हेतु मनोनुकूल गठजोड़ का गठन-पतन का चलन गतिमान है। वर्तमान गठबन्धन की राजनीति में जितने भी गठबन्धन निर्मित हैं, वे सभी भूमण्डलीकरण के वाहक है। जिसकी नीतियों के प्रश्रय पाकर साम्राज्यवादी देशों को भारत में 'लूट की खुली छूट' मिल गई है। छोटे, देशी उद्योग-धन्धे से लेकर मजदूर, किसान सब हाशिये पर कर दिये जा रहे है। ऐसी दशा में देश में जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले सशक्त एवं लोकतांत्रिक गठबन्धन की आवश्यकता अपरिहार्य है। राजनीतिक दलों के स्वार्थपरता व सत्तालोलुपता पर आधारित गठबन्धन ने दल-बदल विरोधी कानून को अप्रभावी बनाते हुए भ्रष्टाचार व अपराध को प्रत्यक्ष प्रश्रय प्रदान कर दिया है। राजनीति में भ्रष्टाचार व अपराध की जिस तरह प्रबलता परिलक्षित हो रही है उसमें गठबन्धन आधारित राजनीति की प्रमुख भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। इससे दिशाहीन, विचारहीन राजनीति व राजविरोधियों को बल मिला है। राजनीति से समस्त स्थायी मुद्दें क्रमशः लुप्तप्रायः होते चले गये हैं। मूल्यपरक राजनीति का स्थान स्वार्थपरक राजनीति ने ले लिया है।

गठबन्धन के घटक दलों के निजी स्वार्थपूर्ति में उलझी राजनीति में नित नूतन परिवर्तन दृष्टिगत हुए। जो राजनीतिक दल चुनाव बाद सरकार बनाने हेतु गठबन्धन करते थे, वो आज चुनाव पूर्व ही गठबन्धन बनाकर चुनाव लड़ रहे हैं। चुनाव पूर्व व बाद में बनते-बिगड़ते गठबन्धन राष्ट्रीय राजनीति का अहित कर रहे हैं। इनके पास न तो स्पष्ट राष्ट्रीय दृष्टि है, न ही कोई ठोस राष्ट्रीय कार्यक्रम। चुनाव में अनावश्यक पूँजी का प्रदर्शन, झूठी महत्वकांक्षाएँ उत्पन्न करने वाली जातीय व साम्प्रदायिक दलबन्दी गठबन्धन की राजनीति की नियति बनती जा रही है। गठबन्धन की आड़ में जहाँ एक तरफ जातिवादी, साम्प्रदायिक शक्तियाँ देश में प्रबल स्वरूप धारण करती जा रही हैं वहीं दूसरी तरफ देश में साम्राज्यवादी, बहुराष्ट्रीय, पूँजीवादी ताकतें अपनी जड़े जमाती जा रही हैं। नीतिगत रूप से देश में जितने भी गठबन्धनों का गठन-पतन हो रहा है, सबमें किंचित समानता परिलक्षित हो रही है, अन्तर सिर्फ मुखौटे का ही है।

यद्यपि भारत में गठबन्धन की राजनीति का अतीत चार दशक से भी पुरातन रहा है। प्रारम्भिक स्वरूप में गठबन्धन राजनीति की अपरिहार्यता को दृष्टि में रखते हुए कतिपय बुनियादी सिद्धान्तों पर सहमति आधारित होते थे, किन्तु वर्तमान समय में यह निहित स्वार्थों की पूर्ति का माध्यम बनते नजर आ रहे है। गठबन्धन की सरकारें सत्तालोलुपता की अनूठी मिसाल मात्र बनती जा रही है। गठबन्धन की राजनीति की आज न तो कोई नीति है, न ही कोई अनुशासन। इनकी राजनीति के केन्द्र में न कहीं

जनता है और न कहीं सुशासन। इनकी सम्पूर्ण पूँजी तो जाति व सम्प्रदाय में संलिप्त है, जो लोकतंत्र हेतु भयावह संकट है।

यद्यपि चुनावी राजनीतिक प्रयोगशाला में गठबन्धन का सर्वप्रथम प्रयोग राजनीतिक महत्वाकांक्षा की भेंट चढ़ गया। जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि अग्रेतर भारतीय राजनीति में किसी एक दल की प्रभुता का अस्तित्व नहीं बना रह सकता। 1989 का वह वर्ष भारतीय राजनीति के लिए एक युगान्तकारी वर्ष रहा है। जिसे वास्तविक रूप में केन्द्र में गठबन्धन की राजनीति का श्री गणेश माना जा सकता है। श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में दिसम्बर 1989 में भाजपा तथा वामदलों के बाह्य समर्थित राष्ट्रीय मोर्चा के रूप में जो सरकार बनी, वह 1990 में भाजपा द्वारा समर्थन वापस लेने से अपदस्त हुई। नवम्बर 1990 में श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व में कांग्रेस समर्थित गठबन्धन सरकार सत्तारूढ़ हुई, जो 21 जून 1991 तक रही। वर्ष 1991 में ही श्री पी. वी. नरसिम्हाराव के नेतृत्व में कांग्रेस की स्थायी सरकार बनी जिसने अपना कार्यकाल पूर्ण किया। मई 1996 के आम चुनाव में पुनः किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने से भाजपा ने अपने सहयोगियों संग सरकार गठन का दावा पेश किया और अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार का गठन हुआ, जिसका लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध न कर पाने से 13 दिनों में ही अन्त हो गया। श्री अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के पतनोपरांत जून 1996 में देवगौड़ा के नेतृत्व में कांग्रेस समर्थित सरकार सत्तारूढ़ हुई, जो कांग्रेस के हठधर्मिता के कारण मात्र 10 माह बाद ही इसका अन्त हो गया। अप्रैल 1997 में इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में कांग्रेस व मार्क्सवादी दल समर्थित सरकार बनी, जिसका शीघ्र ही अन्त हो गया। 12वीं लोकसभा आम चुनाव 1998 बहुत महत्वपूर्ण है, जो त्रिशंकु संसद व खण्डित जनादेश के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार बनी जिसका अपने ही सहयागी दल की हठधर्मिता के कारण अंत हो गया।

दसवीं लोकसभा आम चुनाव वर्ष 1989 से बारहवीं लोकसभा आम चुनाव 1998 के आम चुनावों में लगभग अन्तर्विरोधयुक्त गठबन्धन सरकारें बनी जो अल्पायु रही, किन्तु तेरहवीं लोकसभा आम चुनाव 1999 में भी किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने से चुनाव पूर्व भाजपा व सहयोगी दलों ने 'राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन' का निर्माण कर प्रथम बार चुनाव पूर्व न्यूनतम साझा कार्यक्रम आधारित गठबन्धन कर अटल बिहारी वाजपेयी जी के नेतृत्व में पुनः जो सरकार सत्तारूढ़ हुई, इसने अपना कार्यकाल पूरा किया। यह गठबन्धन सरकार अन्य गठबन्धन सरकारों से भिन्न थी क्योंकि यह गठबन्धन चुनाव पूर्व किया गया था। गठबन्धन की संस्कृति विकसित अवस्था की ओर अग्रसर थी। सरकार ने समस्त क्षेत्रों में चतुर्दिक अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की, चाहे वह राष्ट्रीय फलक हो या अन्तर्राष्ट्रीय। वाजपेयी जी गठबन्धन धर्म का ईमानदारी पूर्वक पालन करते हुए गठबन्धन की राजनीति के महत्व की समझ विकसित कर लिए थे,

जो अटल बिहारी वाजपेयी जी के लोकसभा में 17 अप्रैल 1999 को दिये गये वक्तव्य से समीचीन प्रतीत होता है कि –''हम तो प्रारम्भ से कह रहे है कि भारत की राष्ट्रीय राजनीति जिस तरह से मोड़ ले रही है, उसमें क्षेत्रीय दलों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। क्षेत्रीय दलों का उभार हमारी विविधता का परिचायक है। यह इस बात का संकेत है कि जो अपने को अखिल भारतीय दल कहते हैं, वे प्रदेश की आशाओं और आकांक्षाओं का सही प्रतिनिधित्व नहीं कर सके है। अनेक क्षेत्रीय दल हमारे साथ है। जो बाद में हमें छोड़कर चले गए है उन्होंने भी ऐसा रवैया नहीं अपनाया, जो इस देश की एकता एवं अखण्डता के लिए आपत्तिजनक हो। उनसे मतभेद हुए लेकिन देश की एकता में उनका विश्वास डिगा नहीं। यह एक शुभ लक्षण है, जिसका स्वागत होना चाहिए''।[8]

चुनाव पूर्व भाजपा नीत 'राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन' की अभूतपूर्व सफलता से प्रभावित कांग्रेस पार्टी ने 'एकला चलो' की राह त्याग कर गठबन्धन की राजनीति का अनुशरण किया। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन ने अपनी उपलब्धियों पर अतिविश्वस्त होकर समय पूर्व ही चुनाव कराने का निर्णय लिया, जो उसकी भयंकर भूल साबित हुआ। चुनाव परिणाम आश्चर्यचकित करने वाले रहे। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन को वह आशान्वित सफलता नहीं मिली, जो कांग्रेस समर्थित सहयोगियों (संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन) को मिली। 'संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन' 'राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन' से सात सीटें अधिक प्राप्त कर मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाने में सफल रही। इस गठबन्धन में वामपंथी दलों ने वाह्य समर्थन देना स्वीकार किया। जिसने प्रारम्भ से ही विभिन्न मुद्दों को लेकर सरकार पर दबाव बनाते रहे। येनकेन प्रकारेण यह अपने कार्यकाल को पूरा करने में सफल रही। 15वीं लोकसभा आम चुनाव 2009 में जनादेश पुनः गठबन्धन सरकार के पक्ष में आया और कांग्रेस नीत संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार की वापसी हुई। यूपीए के दूसरे कार्यकाल में कांग्रेस ऐसी सरकार का नेतृत्व कर रही थी जो स्वाधीन भारत के अब तक के सबसे बड़े घोटालों में उलझी रही।[9] प्राप्त जनादेश को कांग्रेस समर्थित यूपीए तीव्रतर कमजोर करते हुए किसी तरह अपने कार्यकाल को पूरा किया।

16वीं लोकसभा आम चुनाव 2014 के उपरांत भारतीय राजनीति एक नूतन कलेवर में परिलक्षित हुई। पूर्व चुनावों में प्राप्त जनादेश से यह आम धारणा बन चुकी थी कि अब भारतीय राजनीति में किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर सरकार बनाना कठिन होगा, किन्तु भाजपा नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन ने श्री नरेन्द्र दामोदर दास मोदी के नेतृत्व में गठबन्धन की राजनीतिक झंझावातों से मुक्त होकर सरकार का गठन किया और सफलतापूर्वक अपने कार्यकाल को पूर्ण किया।

17वीं लोकसभा आम चुनाव 2019 में पुनः जनादेश राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन को प्राप्त हुआ जिसमें भाजपा *'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास'* के नारों

से जनता को अभीभूत करते हुए स्वयं स्थायी सरकार बनाने में सक्षम हुई। वर्तमान में जनादेश 'एक बार फिर मोदी सरकार' पर विश्वास करते हुए देश की वागडोर नरेन्द्र मोदी जी के हाथों में सुपुर्द कर दिया गया है।

निष्कर्षतः भारत में शनैः शनैः गठबन्धन राजनीति की संस्कृति परिपक्व होती दिख रही है। गठबन्धन संस्कृति को आत्मसात करते हुए छोटी-मोटी बातों के लिए गठबन्धन जोड़ने या छोड़ने की प्रवृत्ति का अन्त करना होगा, व्यक्ति के स्थान पर विचारधारा को प्रोत्साहित कर प्रतिष्ठित करना होगा। गठबन्धन की राजनीति में दोष ढूंढने के बजाएं इसमें आयी हुई विकृतियों को दूर करना होगा। राजनीतिक दलों को विवेकशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा, परिपक्वता, नैतिकता एवं ईमानदारी के गुणों संग राजनीतिक शुचिता, पारदर्शिता एवं नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना करना होगा। राजनीतिक दलों को स्वहित का त्यागकर राष्ट्रहित को प्रमुखता देकर भारतीय लोकतांत्रिक राजनीति में अस्थायी एवं मजबूर सरकार के स्थान पर स्थायी और मजबूत सरकार के निर्माण हेतु प्रयत्न करना होगा जिससे भविष्य के सशक्त भारत का निर्माण किया जा सके।

सन्दर्भ

1. अटल बिहारी वाजपेयी, गठबन्धन की राजनीति, सम्पादक– डॉ. ना.भा. घटाटे प्रभाव प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 11
2. आर.बी. जोशी, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था : पुनर्रचना के नये आयाम, आढ़ा आर. एस. रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2000, पृ. 210
3. डॉ. सुभाष कश्यप एवं डॉ. विश्व प्रकाश गुप्ता, राजनीतिकोश, हिन्दी कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ. 64
4. डी.सी. गुप्ता, भारतीय शासन व्यवस्था एवं राजनीति, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृ. 435-437
5. चार्ल्स ए मिकॉड : फ्रेंच पॉलिटिकल पार्टीज आइडियोलॉजिकल मिथ्स एण्ड सोशल रिएलिटीज, सिग्मण्ड न्यूमैन, शिकागों, 1956, पृ. 106
6. एलेनबाल, आधुनिक राजनीति और भाासन, मैकमिलन प्रकाशन, 1971, पृ. 99
7. डॉ. अर्जुन मिश्र, भारत में गठबन्धन की राजनीति, डॉ. वीणा गोपाल मिश्रा (सं.) ए. एस.आर. पब्लिकेशन, गाजियाबाद (लोनी), 2013, पृ. 128
8. अटल बिहारी वाजपेयी, गठबन्धन की राजनीति, सम्पादक डॉ. ना.भा. घटाटे, प्रभाव प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 11
9. डॉ. बी.एल. फाड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, 2018, पृ. 686

भारतीय प्रशासन में गठबन्धन सरकारों की भूमिका

dey dekj JhokLro

Ikjk'k *हमारा संविधान ब्रिटिश पद्वति के संसदीय जनतंत्र पर आधारित है। संसदीय लोकतंत्र की अपनी एक संस्कृति मूल्य एवम् मर्यादाएं हैं। संसदीय शासन प्रणाली में राजनीतिक सत्ता का केन्द्र बिन्दु मंत्रिमंडल होता है, जो अपने कार्यों के लिए सामूहिक रूप से विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। संसदीय परम्पराओं के अनुसार प्रत्येक आम चुनाव के पश्चात विधान-मण्डल के निम्न सदन में जिस राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त होता है, सामान्यतया उसी दल के नेता को मंत्रिमण्डल बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है। इस प्रकार बहुमत प्राप्त दल द्वारा गठित मंत्रिमण्डल को समदलीय मंत्रिमण्डल कहा जाता है, क्योंकि इसमें सारे सदस्य केवल एक ही दल के होते हैं। यदि चुनाव के बाद किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो ऐसी स्थिति में विभिन्न पार्टियों के राजनीतिक दल संगठित होकर बहुमत का निर्माण एवम् मंत्रिमण्डल का गठन करते हैं। ऐसी सरकार को साझा सरकार, मिश्रित या गठबंधन की सरकार कहा जाता है। यह स्मरणीय है कि मिश्रित मंत्रिमण्डल में जो घटक राजनीतिक दल होते हैं, वह सरकार बनाने के उद्देश्य से संगठित होने के बाद भी अपने पृथक दलीय अस्तित्व को बनाये रखते हैं अर्थात् उन विभिन्न राजनीतिक दलों की पहचान बनी रहती है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रिमण्डल का गठन करने वाले राजनीतिक दलों का विलय नहीं होता है। वे किसी भी समय सरकार से अपना समर्थन वापस लेकर मंत्रिमण्डल से पृथक हो सकते हैं। बहुधा यह भी सम्भव है कि कोई राजनीतिक दल बिना किसी मंत्रिमण्डल में सम्मलित हुए, बाहर से ही सरकार को समर्थन देता रहता है।*

प्रस्तावना

Lorkuk

स्वतंत्रता पूर्व 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के अन्तर्गत सर्वप्रथम गठबंघन सरकार का उदय 1937 में हुआ था। कांग्रेस पार्टी को केन्द्रीय प्रान्तों, उड़ीसा, बिहार,

चेन्नई (मद्रास) एवं संयुक्त प्रान्तों में भारी बहुमत प्राप्त हुआ था। परन्तु मुम्बई (महाप्रान्त) बाम्बे प्रेसीडेन्सी में मात्र आधी सीटें ही पाने में सफल रही। सरकार के निर्माण में अन्य दलों एवम् मुस्लिम लीग का सहयोग भी चाहिये था परन्तु कांग्रेस ने मुस्लिम लीग का सहयोग नकार दिया क्योंकि मुस्लिम लीग के जनक मुहम्मद अली जिन्ना की मानसिकता को देखते हुए कांग्रेस ने सहयोग नही प्राप्त किया। जिन्ना का मनतव्य साफ था कि यदि गठबंधन में मुस्लिम लीग सम्मिलित हो जाती है तो सरकार में मुसलमानों की एक उचित भागीदारी शासन में मिलेगी।

सन् 1946 के अन्तरिम सरकार गठन के औपचारिक रूप से प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू बने। ये अपने आप में सर्वप्रथम गठबन्धन सरकार का पहला प्रयोग रहा। इस गठबन्धन में मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा इत्यादि अन्य दल सम्मिलित थे। शायद गठबन्धन के पीछे स्वतंत्रता प्राप्त करने की मंशा रही हो। राष्ट्र इस समय *'परिवर्तन'* काल से भी गुजर रहा था।

नवम्बर 1989 में नौवीं लोक सभा का चुनाव सम्पन्न हुआ। इस चुनाव प्रक्रिया में आठ राष्ट्रीय दलों, 33 राज्य दल एवम् 301 पंजीकृत दलों ने सहभागिता दर्शायी। इस चुनावों में कांग्रेस शासन का अन्त हो गया और स्थिति काफी विपरीत हो गई।

स्वतंत्रता पश्चात् गठबन्धन सरकार

28 जुलाई, 1947 को संघीय संविधान समिति के प्रतिवेदन को संविधान सभा में विचार विर्मश हेतु प्रस्तुत किया गया। प्रधान मंत्री एवम् मंत्रिपरिषद की नियुक्ति के सम्बन्ध में आये हुए विभिन्न संशोधनों के प्रस्ताव पर बहस के बाद अंत में संविधान द्वारा प्रारूप संविधान 62 (1) पर प्रस्तुत दोनों संशोधन प्रस्तावों को भारी मत से अस्वीकार कर उसे ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया जो वर्तमान संविधान की धारा 75(1) के रूप में भारतीय संविधान में सम्मिलित है। यद्यपि नियुक्त के सम्बन्ध ा में विस्त त व्याख्या का अभाव है, परन्तु एन. गोपाल स्वामी आयंगर ने संविधान सभा में कहा था कि *''प्रथाओं के अनुसार राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को या उसके अभाव में, अन्य दलों के समर्थन से स्थायी सरकार बनाने में समर्थकों को प्रधानमंत्री नियुक्ति करेगा''* तथा उनके परामर्श से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करेगा।

1952 के प्रथम आम चुनाव से 1967 के चतुर्थ चुनाव तक भारतीय राजनीति में कांग्रेस दल का एकाधिकार था। केन्द्र एवं देश के अधिकांश राज्यों में कांग्रेस दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त रहा। अतः स्थिर एवम् समदलीय सरकारों का गठन होता रहा।

1967 के चतुर्थ आम चुनाव में कांग्रेस दल के राजनीतिक एकाधिकार का अन्त हो गया। इस चुनाव में केन्द्र में यद्यपि कांग्रेस दल को ही बहुमत प्राप्त हुआ, लेकिन इससे प्रान्त स्थानों में भारी कमी आयी। 1967 में जिन 16 राज्यों में विधानसभा के चुनाव हुए, उनमें से आठ राज्यों में कांग्रेस सहित कोई भी राजनीतिक दल पूर्ण बहुमत

पाने में असफल रहा। ये राज्य बिहार, पश्चिमी बंगाल, केरल, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान एवम् उत्तर प्रदेश थे। 1952 से 1967 तक के लोक सभा के चुनाव में कांग्रेस लगातार दो-तिहाई बहुमत से विजयी रही, परन्तु सीटों की संख्या निरन्तर गिरती गयी। 1952 में 364, 1957 में 371 और 1962 में 361 और 1967 में 283 सीटों पर सन्तोष करना पड़ा था।

इस प्रकार देश के संवैधानिक इतिहास में पहली बार उपरोक्त आठ राज्यों में मिश्रित मंत्रिमण्डलों का निर्माण हुआ। वास्तविकता यह है कि (मिली-जुली) गठबंधन सरकार का पूर्ण अनुभव 1967-1971 के मध्य ही हुआ। इन चार वर्षों में 32 राज्य सरकारों का निर्माण एवम् अन्त हुआ।

गठबन्धन सरकार की विवेचना

सत्ता में आने के लिए, अपनी सरकार बनाने के लिए किसी भी नेता अथवा दल के लिए आवश्यक है कि उसे सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। जब किसी भी एक दल को सदन में स्पष्ट बहुमत उपलब्ध न हो तो एक से अधिक दलों के द्वारा मिली-जुली सरकार बनाने की बात उठती है। गठबन्धन सरकार का दूसरा स्वरूप भी है कि आम चुनाव से पहले दो या दो से अधिक राजनीतिक दल आपस में मिलकर चुनाव लड़ते हैं एवम् बहुमत सिद्ध होने पर साझा सरकार का गठन करते हैं। वस्तुतः जब भी एक से अधिक दल अपनी राजनीतिक पहचान कायम रखते हुए एक साथ मिलकर सरकार बनाते हैं तो ऐसी सरकार को साझा सरकार, मिली जुली सरकार अथवा गठबन्धन की सरकार से परिभाषित किया जाता है। कभी-कभी केवल सत्ता हथियाने हेतु अलग-अलग विचारधाराओं, हित समूहों और व्यक्तियों के मध्य भी गठबन्धन बढ़ जाते हैं। यह भी स्वाभाविक है कि जब-जब विभिन्न राजनीतिक दल गठबन्धन में जुड़कर सरकार बनाने और राजकाज करने का दायित्व उठाते हैं तो वे सभी दल के लोग आदर्शों, सिद्धान्तों एवम् विचारधाराओं में समझौता करने के लिए बाध्य भी होते हैं।

गठबन्धन सरकार के कारण एवं आवश्यक तत्व

गठबन्धन की सरकार का आज सम्पूर्ण राष्ट्र एवं राज्यों में चलन सा हो गया है।

- **{k=h; nyksa dk iHkqRo %** वर्तमान में राजनैतिक अस्थिरता का चलन है। सम्पूर्ण भारत राष्ट्र में राज्य स्तरीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का गठन हो गया है। फलस्वरूप इनका क्षेत्रीय स्तर पर व्यापक प्रभाव है।
- **nyh; xVcUnh %** राष्ट्र स्तर पर राष्ट्रीय दलों की संख्या कम है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय दलों में आपस की गुटबन्दी क्षेत्रीय भाषा अथवा जातीय

समीकरणों के आधार पर हो जाती है। जो अतीत एवम् वर्तमान में काफी प्रभावशाली रहा है। ये समीकरण चुनाव में बहुमत प्राप्त करने में बाधक भी हैं।

- **{k=h; fodkl gr%** क्षेत्रीय विकास के लिए आवश्यक है कि विभिन्न राजीनतिक दलों की सरकार में पर्याप्त भागीदारी हो। इस प्रकार की भागीदारी दो प्रकार से हो सकती है– प्रथम सरकार में रहकर द्वितीय बाहर से समर्थन द्वारा। इन्हीं कारणों से ये दल किसी भी बड़े दल से गठबंधन कर लेते हैं।
- **l:lnh; fLFkjrk %** संसदीय लोकतंत्र में स्थिरता नितान्त आवश्यक है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब किसी बड़े दल को बहुमत प्राप्त हो एवम् सरकार का गठन करें। वर्तमान में कई छोटे-छोटे राजनीतिक दल बड़े दल से गठबन्धन कर न्यूनतम साझा सरकार के आधार पर सरकार का गठन करते हैं। इस प्रकार की गठबन्धन सरकार से स्थिरता एवम् उत्तरदायित्वों की अपेक्षा भी की जाती है।
- **'kk/k puko l cpu gr%** भारतीय संविधान में निर्वाचन की व्यवस्था का व्यापक उल्लेख है। संविधान के नियमानुसार प्रति पाँच वर्षों उपरान्त चुनाव होना सुनिश्चित है। चुनाव नियमावली में यह भी सुनिश्चित किया गया है कि यदि किसी राजनीतिक दल को चुनाव में बहुमत नहीं प्राप्त होता है एवम् विभिन्न दलों में आपसी गठबन्धन पर सहमति नहीं होती है तो छः महीने के उपरान्त पुनः चुनावी प्रक्रिया आवश्यक हो जाती है, फलस्वरूप राष्ट्र को अतिरिक्त चुनावी बोझ को सहन करना पड़ता है। इसीलिए गठबन्धन की सरकार आवश्यक हो जाती है।

केन्द्रीय स्तर पर गठबन्धन सरकारें

केन्द्र में पहली बार गठबन्धन की सरकार की स्थापना 1977 में हुई। मार्च, 1977 के आम चुनावों में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त कर केन्द्र में गठबन्धन सरकार मोरार जी देसाई के नेतृत्व में बनी, जो कि स्वतंत्रता पश्चात पहली गैर-कांग्रेसी जनता सरकार थी। केन्द्र में मिली-जुली सरकार का स्वतंत्रता पश्चात प्रथम प्रयोग था। जनता दल की सरकार में कांग्रेस संगठन (कांग्रेस (O), जनसंघ, भारतीय लोक दल, संयुक्त समाजवादी दल, विद्रोही कांग्रेस, अकाली दल, द्रमुक आदि दल सम्मिलित हुए। जनता पार्टी के आन्तरिक संघर्ष के कारण 28 मास के पश्चात 15 जुलाई 1979 को मोरारजी देसाई को त्याग पत्र देना पड़ा। परन्तु 28 जुलाई तक कार्यवाहक प्रधानमंत्री बने रहे।

29 जुलाई को जनता (एस.) तथा कांग्रेस (एस.) ने चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में औपचारिक रूप से गठबन्धन सरकार का गठन किया। परन्तु दलीय स्वार्थ,

सैद्धान्तिक मतभेद एवम् राजनीतिक महत्वाकांक्षा स्वरूप इन दलों के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गया। फलस्वरूप मात्र 23 दिन के बाद ही इस मंत्रिमण्डल का पतन हो गया। चौधरी चरण सिंह को विवश होकर त्याग पत्र देना पड़ा।

नौवीं लोक सभा 1989

1989 के चुनाव परिणाम से किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। यद्यपि कांग्रेस (इ) सबसे दल के रूप में उभर कर सामने आई, फिर भी राजीव गाँधी ने सरकार न बनाने का दावा प्रस्तुत करते हुए अपने पद से त्याग पत्र भी दे दिया।

कांग्रेस की इस अप्रत्याशित पराजय का कारण दल में उत्पन्न हुई अव्यवस्था, आन्तरिक गुटबन्दी एवम् पारस्परिक वैमनस्य मुख्य रूप से राजीव गाँधी के खिलाफ स्वयं कांग्रेस के सदस्यों द्वारा लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोप कांग्रेस के पतन के मूल कारण बने। वहीं दूसरी तरफ कतिपय गैर-कांग्रेसी दलों के विलय से बनने वाले राजनीतिक दल-जनता दल ने सुंसगठित रूप से कांग्रेस को भारी टक्कर दी।

संक्षेप में 1989 के चुनाव से भारतीय राजनीति में कांग्रेस के पतन और भारतीय जनता पार्टी के उत्कर्ष का युग प्रारम्भ हुआ। यहीं से देश में *'एक दलीय सरकार'* के युग की समाप्ति एवम् *'गठ बन्धन सरकारों'* का युग प्रारम्भ हुआ।

चुनाव परिणामों से उत्पन्न हुई परिस्थिति पर काफी विचार विमर्श हुआ। पूर्व सॉलिसिटर जनरल और संवैधानिक कानून के विशेषज्ञ सोली सोहराव जी ने एक लेख में कहा कि ब्रिटिश परम्पराओं से स्थापित हो गया है कि आम चुनावों में जब सत्तारूढ़ दल हार जाये तो विपक्ष को ही सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए।

कांग्रेस के विरूद्ध पाँच राजनीतिक दलों, जनता दल, कांग्रेस (एस) तथा तीन राज्य स्तरीय दलों, तेलगू देशम, डी. एम. के. तथा ए. जी. पी. ने संगठित होकर राष्ट्रीय मोर्चे (National Front) का गठन किया। फलस्वरूप राष्ट्रीय मोर्चे ने जिसे 143 सीटें मिली थी, भारतीय जनता दल एवम् वाम मोर्चे से बाहर दिए गए समर्थन से 2 दिसम्बर 1989 को वी. पी. सिंह के नेतृत्व में सरकार का गठन किया। परन्तु तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वेंकेटरमन ने 30 दिनों के अन्दर लोक सभा में विश्वासमत हासिल करने को आमंत्रित किया। राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने 21 दिसम्बर 1989 को लोक सभा का विश्वास मत हासिल कर लिया। वी. पी. सिंह के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय मोर्चा सरकार गठबन्धन की सरकार के अतिरिक्त अल्पमतीय सरकार भी थी। भारतीय लोकतंत्र में पहली बार बहुमत के समर्थन वाली अल्पमत सरकार सत्ता में आई थी।

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के निर्माण के कुछ समय उपरान्त इसके स्वाभाविक आन्तरिक मतभेद खुलकर सामने आ गये। फलस्वरूप 341 दिन तक यह सरकार सत्ता में रही। सरकार की अस्थिरता के कई निम्नवत मुख्य कारण थे।

- रामजन्म भूमि का मुद्दा।

- मंडल आयोग प्रतिवेदन को लागू करना।
- अन्य पिछड़े वर्गों को नौकरियों में आरक्षण।
- लाल कृष्ण अडवाणी को बिहार में रथ यात्रा के समय तत्कालीन बिहार के जनता सरकार द्वारा गिरफ्तार करना।

अन्ततोगत्वा भारतीय जनता पार्टी ने 23 अक्तूबर, 1990 को सरकार से समर्थन वापस ले किया, जिसमें सरकार अल्पमत में आ गई। राष्ट्रपति के निर्देशनुसार 7 नवम्बर, 1990 को लोकसभा में विश्वास मत हासिल न कर पाने पर सदन में पराजित हो गई।

वी. पी. सिंह मंत्रिमंडल के त्याग पत्र के पश्चात जनता दल से अलग होने वाले गुट, नेता दल (सोशलिस्ट) के नेता चन्द्रशेखर ने 10 नवम्बर, 1990 को सरकार का गठन किया। कांग्रेस के सभी 195 सदस्यों ने भी बाहर से समर्थन देने की बात कही थी। इस मंत्रिमण्डल की विशेषता थी कि चन्द्रशेखर के दल में केवल 61 सदस्य थे।

21 जून 1991 को चन्द्रशेखर मंत्रिमण्डल का भी अन्त हो गया। यह गठबन्धन की चौथी सरकार थी।

राष्ट्रपति ने नौवीं लोकसभा भंग कर जून 1991 तक नई दसवीं लोक सभा गठित करने का निर्देश दिया।

दसवीं लोक सभा 1991

दसवें आम चुनाव के परिणामों से यह स्पष्ट है कि इस चुनाव में भी किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी कांग्रेस दल को सबसे ज्यादा सींटे मिली। राज्य स्तरीय दलों के प्रत्याशियों की भी संख्या वृद्धि हुई और 50 पहुँच गयी। निदर्लीय प्रत्याशी को काफी क्षति उठानी पड़ी। इससे यह स्पष्ट होता है कि मतदाताओं में काफी जागरूकता थी।

कांग्रेस संसदीय दल की बैठक में नरसिम्हा राव निर्विरोध पार्टी के नेता चुन लिये गये। अतः राष्ट्रपति ने पी. वी. नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री नियुक्त किया एवम् 12 जुलाई, 1991 को विश्वास मत भी प्राप्त करने को कहा। विश्वास मत 15 जुलाई, 1991 को 190 के मुकाबले 280 मतों से स्वीकृत हुआ। इस प्रकार से दसवीं लोक सभा ने पाँच वर्ष की अवधि पूरी की। कांग्रेस अल्पमत में होने के बावजूद अपनी सूझ-बूझ से पूरे पाँच साल पूरे किये। दसवीं लोक सभा चुनाव में पहली बार नेहरू परिवार से कोई भी चुनाव मैदान में नहीं था। राजीव गाँधी की हत्या के कारण मतदाताओं की सहानुभूति कांग्रेस को मिली थी।

ग्यारहवीं लोक सभा 1996

1996 के लोक सभा के चुनाव में काफी अस्थिरता रही। ग्यारवीं लोक सभा चुनाव में किसी भी रजीनतिक दल को पुनः बहुमत नहीं प्राप्त हुआ।

यह चुनाव कुछ अर्थों में विगत चुनावों से भिन्न था। सबसे बड़ी विशेषता मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन द्वारा चुनाव की नयी आचार संहिता, जिसमें चुनाव में होने वाले असीमित व्यय एवम् चुनाव अभियान में अपनाए जाने वाले प्रचार के तरीकों को इस प्रकार प्रतिबंधित कर दिया कि यह लगा ही नहीं कि देश में चुनाव हो रहे हों।

ग्यारहवीं लोक सभा के चुनाव परिणाम में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। सम्पूर्ण अर्थों में एक त्रिशंकु लोक सभा को जन्म दिया। इसके पीछे मुख्य कारण विखंडित जनादेश था। इस लोक सभा में तीन प्रधान मंत्रियों को सत्ता पर आसीन किया परन्तु दुर्भाग्य वश किसी ने भी अपना पूरा कार्यकाल नहीं सम्पन्न किया।

सर्व प्रथम अटल बिहारी वाजपेयी ने प्रधानमंत्री का पद ग्रहण किया। 16 मई, 1996 को अटल बिहारी वाजपेयी ने पाँचवी गठबन्धन सरकार बनाई और तत्कालीन राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने वाजपेयी को 31 मई 1996 तक लोक सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने का निर्देश दिया। 27 मई 1996 को विश्वास मत प्रस्ताव लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। उन्होंने 28 मई, 1996 को संख्या बल से नतमस्तक होते हुए बगैर मतदान कराये हुए अपनी मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र को राष्ट्रपति को सौंप दिया। अन्ततोगत्वा 13 दिन बाद ही वाजपेयी की सरकार का पतन हो गया। यह भारत के संसदीय इतिहास में अब तक की सबसे कम अवधि की सरकार थी।

वाजपेयी के त्यागपत्र देने के बाद राष्ट्रपति ने संयुक्त मोर्चे के निर्वाचित नेता कर्नाटक के मुख्यमंत्री तथा जनता दल नेता एच. डी. देवगौड़ा को नई सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। राष्ट्रपति ने 1 जून 1996 को उन्हें प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाते हुए 12 जून तक लोक सभा में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा। परन्तु यह भी सरकार कांग्रेस के समर्थन से लगभग 10 महीने तक ही चली। कांग्रेस ने यूनाइटेड फ्रन्ट को समर्थन देने की शर्त रखी कि वे देवगौड़ा के स्थान पर कोई दूसरा नेता चुने।

फलस्वरूप यूनाइटेड फ्रन्ट ने 19 अप्रैल 1997 को आई. के. गुजराल को अपना नेता चुना और 21 अप्रैल 1997 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली, एवम् 22 अप्रैल, 1997 को लोक सभा में विश्वास मत प्राप्त किया। इसी बीच पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या जाँच करने वाले जैन कमीशन की रिपोर्ट आ गई जिसमें राजीव गॉधी की हत्या के लिए तत्कालीन डी. एम. के. सरकार को उत्तरदायी ठहराया गया था। कांग्रेस की मांग थी कि प्रधानमंत्री अपने मंत्रिमंडल से डी. एम. के मंत्रियों को हटा दें परन्तु गुजराल ने इसे नहीं स्वीकार किया। अन्ततोगत्वा कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया जिससे सात महीनों के बाद 28 नवम्बर 1997 को गुजराल को अपना त्याग पत्र देना पड़ा। इस प्रकार इस सरकार का भी अन्त हो गया। 4 दिसम्बर को राष्ट्रपति ने ग्यारहवीं लोक सभा भंग कर दी।

बारहवीं लोक सभा 1998

बारहवीं लोक सभा चुनाव के परिणामों ने पुनः त्रिशंकु संसद को जन्म दिया। यद्यपि भारतीय जनता प्रार्टी एवम् उनके सहयोगी गठबन्धन को सर्वाधिक स्थान प्राप्त हुए। अटल बिहारी वाजपेयी संसद में भारतीय जनता पार्टी के विधिवत नेता चुने गये। इस प्रकार अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 19 मार्च 1998 को विभिन्न राजनीतिक दलों के समर्थन से आठवीं गठबन्धन सरकार अस्तित्व में आई। परन्तु अन्ननाद्रमुक ने कुछ समय पश्चात भारतीय जनता सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। परिणामस्वरूप सरकार को सत्ताच्युत्त होना पड़ा। तेरहवीं लोक सभा के चुनाव सितम्बर अक्तूबर 1999 में पाँच चरणों में सम्पन्न करवाये गये। बारहवीं लोक सभा का कार्यकाल 395 दिन तक रहा।

तेरहवीं लोक सभा 1999

तेरहवीं लोक सभा के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी नेतृत्व वाला राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (National Democratic Alliance) (NDA) सबसे बड़ी राजनीतिक शक्ति के रूप से उभरा। लोक सभा चुनाव से पूर्व भारतीय जनता पार्टी समर्थक दलों ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन का निर्माण किया था। इस गठबन्धन में 24 राजनीतिक दल सम्मिलित थे। उदाहरणार्थ– शिव सेना, डी.एम. के., बीजू जनता दल, अकाली दल, जनता दल यूनाईटेड, तृणमूल कांग्रेस, आई. एन.एल.डी., पी. एम. के. एच. वी. सी.। तेलगू देशम पार्टी का बाहर से समर्थन था।

भारत के राष्ट्रपति ने गठबन्धन के संख्या के बहुमत से संतुष्ट होकर तीसरी बार अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 13 अक्टूबर 1999 को पुनः प्रधानमंत्री की शपथ दिलायी। यह भारतीय राजनीति में 1977 के बाद से नवीं गठबन्धन की सरकार थी, इसने अपना कार्यकाल भी पूरा किया।

चौदहवीं लोक सभा 2004

इस बार का चुनाव मुख्यतः दो बड़े गठबन्धनों के मध्य सम्पन्न हुआ। एक संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (United Prograssive Alliance(UPA) जिसका नेतृत्व कांग्रेस कर रही थी। इसमें कांग्रेस, राष्ट्रीय जनता दल (RJD), द्रविण मुन्नेत्र कणगम (DMK), राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल (NCP), लोक जन शक्ति (Lok Jan Shakti) अन्य छोट-छोटे दल सम्मिलित थे। दूसरा राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (National Democratic Alliance) (NDA) इसका नेतृत्व भारतीय जनता पार्टी कर रही थीं इसमें बीजू जनता दल (BJD), जनता दल यूनाइटेड JDU, तृणमूल कांग्रेस शिव सेना, आल इंडिया द्रविण मुन्नेत्र कणगम (AIDMK) आदि दल सम्मिलित थे।

संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन ने सर्वसम्मत से सोनिया गाँधी को संसदीय दल का

नेता चुना। परन्तु 18 मई 2004 को प्रधानमंत्री पद के लिए सोनिया गाँधी ने राष्ट्रपति को मना कर दिया। कांग्रेस नेताओं एवम् गठबन्धन में सम्मिलित अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा दबाव डालने के बावजूद सोनिया गाँधी ने प्रधानमंत्री पद को नहीं स्वीकार किया। एस बदले हुए घटना क्रम में सहयोगी दलों ने अपने संशोधित समर्थन पत्र में मनमोहन सिह को सहमति व्यक्त की। फलस्वरूप 14 सहयोगी दलों एवम् पूर्व में समाजवादी पार्टी तथा राष्ट्रीय लोक दल द्वारा समर्थित सम्बन्धी पत्र राष्ट्रपति को प्रेषित किया।

अतः राष्ट्रपति ने 20 मई 2004 को मनमोहन सिंह को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। और 22 मई 2004 को शपथ दिलाई।

इस प्रकार से 14वीं लोक सभा के गठन पश्चात संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (United Progressive Alliance) (UPA-I) ने अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल भी पूरा किया।

पंद्रवीं लोक सभा 2009

15वीं लोक सभा के चुनाव की घोषणा 2 मार्च, 2009 को भारत निर्वाचन आयोग ने कर दी। 543 सींटों वाली लोक सभा का चुनाव कार्यक्रम पाँच चरणों का था। इसकी अवधि 16 अप्रैल से 13 मई, 2009 तक थी। इसमे सात राष्ट्रीय दलों, 44 क्षेत्रीय दलों के साथ-साथ अन्य दलों ने भी चुनाव लड़ा। इस लोक सभा चुनाव के पूर्व परिदृश्य को देखने से स्पष्ट होता है कि इस चुनाव में चार गठबन्धन प्रमुख रूप से सम्मिलित थे। ये गठबन्धन क्रमशः संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन, राष्ट्रीय जन तांत्रिक गठबन्धन, तीसरा मोर्चा एवं चौथा मोर्चा थे।

इस चुनाव में मुख्य मुकाबला कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन, भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जन तांत्रिक गठबन्धन तथा वाम दलों के नेतृत्व में बने तीसरे मोर्चे के मध्य था। तीसरा मोर्चा पूर्व मार्क्सवादी साम्यवादी दल के महा सचिव प्रकाश कारत की पहल से अस्तित्व में आया जिसमें वामपंथी दलों समेत मायावती, जयललिता एवम् चन्द्रबाबू नायडू जैसे नेता शामिल थे। चुनाव के दौरान पहले और बाद में कई दलों ने अपने गठबन्धन बदले जिसके परिणाम स्वरूप चुनाव से पूर्व चौथा मोर्चा भी अस्तित्व में आ गया। इस लोक सभा चुनाव परिणाम से पुनः कांग्रेस नेतृत्व प्रगतिशील गठबन्धन UPI-II का कार्यकाल 2014 में सम्पन्न हुआ।

सोलहवीं लोक सभा 2014

2014 के चुनाव अप्रैल 7 से 12 मई, 2014 के मध्य नौ चरणों में सम्पन्न हुए। पूर्व की भाँति इस चुनाव में भी दो महागठबन्धन चुनाव प्रक्रिया में सम्मिलित थे। पर इस चुनाव की विशेषता और परिणाम 2012 से परिलक्षित होने लगे थे। निरन्तर संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन के 10 साल के शासन काल के अन्तराल में देश में काफी आक्रोश

था क्योंकि समस्यओं की जटिलता एवं परिवर्तन की लहर प्रारम्भ हो गई थी। वैसे परिवर्तन की लहर की मुख्य भूमिका में श्री अन्ना हजारे, केजरीवाल, किरण बेदी आदि का महायोगदान रहा। राष्ट्रीय लोक तांत्रिक गठबन्धन ने एक स्वर से नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री पद के रूप में चुनाव परिणाम के पहले ही नामित कर दिया था।

2014 के चुनाव में सात राष्ट्रीय दल, कांग्रेस, बहुजन समाज पार्टी, आल इंण्डिया तृणमूल कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी (इंडिया), कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी, एवं एन. सी. पी. सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त 54 पंजीकृत एवम् 58 अमान्यता प्राप्त दल चुनाव लड़े थे।

2014 के चुनाव परिणाम पूर्णतया लोक तांत्रिक गठबन्धन के पक्ष में गया। इसका सारा श्रेय भारतीय जनता पार्टी को जाता है जिसने कि अकेले दम पर 282 सीटें प्राप्त की। वहीं दूसरी ओर कांग्रेस को मात्र 45 सीटें प्राप्त हुई। 2009 चुनाव की अपेक्षा में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबन्धन को 6.47 प्रतिशत बढ़त मिली फलस्वरूप सीटों की संख्या 159 से 339 तक पहुँच गयी। यह कुल मतों का 31.1 प्रतिशत रहा।

इस चुनाव की एक विशेषता यह भी थी कि उत्तर प्रदेश से कोई भी मुसलमान प्रत्याशी नहीं विजयी हुआ। एवम् भारतीय जनता पार्टी ने 72 सीटें प्राप्त कीं। वहीं गुजरात, राजस्थान राज्यों में किसी अन्य दल का खाता भी नहीं खुला। संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन को 17.82 प्रतिशत का नुकसान हुआ था।

सत्रहवीं लोक सभा 2019

सत्रहवीं लोक सभा के गठन के लिए भारतीय आम चुनाव सम्पूर्ण राष्ट्र में 11 अप्रैल से 19 मई 2019 के मध्य सात चरणों में आयोजित किये गये। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन में भारतीय जनता पार्टी, शिवसेना, AIDMK, JDU, शिरोमणि अकाली दल, पट्टाली मक्कल कच्ची, लोक जन शक्ति पार्टी, भारतीय धर्म जनसेना, असम गण परिषद, अपना दल, देसिमा मुरपोम्कु द्रविण मुन्नेत्र कड़गम, सुलेहदेव भारतीय समाज पार्टी, आदि छोटी मोटी पार्टियों को मिलाकर लगभग 20 दल सम्मिलित थे। वहीं संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन में कांग्रेस, राष्ट्रवादी कांग्रेस दल, जनता दल सेक्युलर, अपना दल (कृष्णा पटेल) J.M.M., J Darelop मोर्चा प्रजातांत्रिक, राष्ट्रीय जनता दल, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी, द्रविण मुन्नेत्र कणगम, इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग इत्यादि छोटे दलों को मिलाकर 21 दल सम्मिलित थे।

उपरोक्त दोनों गठबन्धनों के अतिरिक्त दो मोर्चे और भी इसके बाद पुनः चुनाव में थे। एक तो बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी, लोक दल, CPM, पंजाब फ्रंट, लोक इंसाफ पार्टी, लोकतंत्र सुरक्षा पार्टी, CPI जन सेना पार्टी, आदि दल शामिल थे।

चौथा वाम मोर्चा, आल इंडिया फारवर्ड ब्लाक, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी आदि थे।

अन्य गठन दलों में भारतीय तृणमूल कांग्रेस, तेलगू देशम दल, *बीजू जनता दल,* आम आदमी पार्टी, वाई. एस. आर. कांग्रेस पार्टी ने चुनाव में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया।

अन्त में 23 मई 2019 को चुनावी परिणामों की घोषणा हो गई। भारतीय जतना पार्टी के 303 प्रत्याशी विजयी हुए। वहीं दूसरी राष्ट्रीय पार्टी कांग्रेस को 52 सीटों पर मात्र सफलता प्राप्त हुई। तृतीय एवम् चतुर्थ मोर्चे को मात्र 100 सीटों पर संतोष करना पड़ा। इस प्रकार से राष्ट्रीय लोक तांत्रिक गठबन्धन को प्रचंड बहुमत प्राप्त हुआ। इनकी संख्या 351 हो गई, जो कि संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की संख्या 91 ही रही। स्वतंत्र भारत के इतिहास में 39 वर्ष बाद पूर्ण बहुमत वाली सरकार दोबारा आई। भारतीय जनता पार्टी ने दस राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों में अन्य दल का पूर्णतया सफाया कर दिया। देश का सबसे बड़ा प्रदेश उत्तर प्रदेश है जहाँ पर समाजवादी दल, बहुजन समाज वादी एवं राष्ट्रीय लोक दल साथ में मिलकर चुनाव लड़े थे परन्तु इस गठबन्धन को भी मुँह की खानी पड़ी।

देश के 17 राज्यों में बी.जे.पी. को 50 प्रतिशत वोट मिले।

विशेष :

- यू. पी. से राहुल गाँधी अपनी परम्परागत सीट अमेठी से स्मृति इरानी से हार गये। वैसे यहाँ की सीट का एक विचित्र संयोग है कि प्रत्येक 21 वर्ष बाद तीसरी बार पुनः कांग्रेस हारी।
- इस आम चुनाव में 12 पूर्व मुख्यमंत्री क्रमशः शीला दीक्षित, भूपेन्द्र हुड्डा, हरीश रावत, मुकुल संगमा, एच. डी. देवगौड़ा, शिबू सोरेन, बाबू लाल मरांड़ी, दिग्विजय सिंह, नवाब लुकी, अशोक चव्हाण, सुशील शिंदे, एवम् जीतन राम माझी हार गये।
- जाति वाद एवम् वंशवाद का सफाया हो गया।
- भारत के लोकतंत्र के चुनावी इतिहास में पहली बार चुनाव आयोग ने अनुच्छेद 324 का प्रयोग कर प्रचार समय घटाने का आदेश दिया।
- इस लोक सभा के आम चुनाव में सभी राजनीतिक दलों ने अमर्यादित भाषाओं का खुलकर प्रयोग किया। यह भारत के लोकतंत्र के लिए दुर्भाग्य का विषय है।
- इस चुनाव प्रचार-प्रसार से एक संदेश अध्यक्षीय प्रणाली की तरफ संकेत करता हैं।
- यूँ तो लोकतंत्र में चुने हुए सांसद दल के नेता का चुनाव करते हैं। परन्तु इस चुनाव में प्रधानमंत्री के अथक प्रयास से लोक सभा के प्रत्याशी विजयी हुए।

सरकार एवं प्रशासन

पिछले पाँच दशकों में प्रशासकों की तटस्थता में कमी दृष्टिगोचर हो रही है। सरकार परिवर्तित होती रहती है परन्तु लोक सेवक प्रत्येक सरकार के कार्यकाल में समान भावना से कार्य करते है। किन्तु वर्तमान में इस स्थिति में काफी परिवर्तन आया है। आज लोक सेवक अपने व्यक्तिगत हितों के लिए, प्रोन्नति तथा स्थानान्तरण हेतु राजनीतिज्ञों से सम्बन्ध बनाये रखते हैं परन्तु प्रत्यक्ष रूप से किसी भी दल की सदस्यता प्राप्त नहीं करते हैं।

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में आज एक परिवर्तन और दिखलाई पड़ रहा है कि लोक सेवक आज न केवल नीति क्रियान्वयन बल्कि नीति निर्माण में भी अपना महत्वपूर्ण येागदान देते हैं। लोक सेवक अपने क्षेत्रों में विशेषज्ञ होने के कारण नीति निर्माण में शासन को महत्वपूर्ण सलाह प्रदान करते हैं। *पाल एच. एपलबी के अनुसार* ''आज सभी प्रशासक राजीनतिज्ञ हैं क्योंकि वे लोक हित के प्रति उत्तरदायी होते हैं।'' लोक सेवकों के द्वारा नीति निर्माण में सहभागिता के कारण नीति क्रियान्वयन सरल हो जाता है। जिसे डेलीगेटेड लेजिसलेशन भी कहते हैं।

प्रशासन में नैतिक मूल्यों का ह्रास

प्रशासन के मूल्यों में प्रतिदिन गिरावट महसूस की जा रही है। भ्रष्टाचार की समस्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आय से अधिक सम्पत्ति रखने के आरोप में कई वरिष्ठ अधिकारियें पर शिकंजा कसा जा चुका है। वर्तमान में राजनीतिज्ञो, प्रशासनिक अधिकारियों एवं मुख्य-न्यायाधीश पर यौन उत्पीड़न के आरोप लगाये जा रहे हैं। जिससे प्रशासन की छवि धूमिल होती जा रही है। प्रशासनिक अधिकारियों में कार्य विलम्ब से करने की प्रवृत्ति पनपती जा रही है, जिससे जनता एवं समाज का विश्वास प्रशासन से धीरे-धीरे कम होता दिखाई पड़ता है।

नवीन प्रशासनिक संस्कृति

1969 से पूर्व लोक सेवकों की राजनीतिक निष्पक्षता को अधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु 1970 के पश्चात प्रशासनिक संस्कृति में तीव्र परिवर्तन हुए हैं। जैसे प्रबन्धकीय दृष्टिकोण, पारदर्शिता, सहभागिता लोक सेवकों की तटस्थता, आदि।

भारत में नवीन प्रशासनिक संस्कृति अभी विकास की ओर अग्रसर है। भारतीय प्रशासनिक संस्कृति में पुरानी एवम् नवीन दोनों संस्कृतियों की विशेषताएं दृष्टिगोचर होती है। 1970 के दशक के पश्चात बदलती सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में प्रशासन के व्यवहार, मूल्यों एवम् मानदण्डों में भी परिवर्तन आया है। जिसने नीवन प्रशासनिक संस्कृति को जन्म दिया है। आज ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता है जो संविधान के उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम हो तथा भारतीय परिवेश के अनुरूप हो जिससे प्रशासन में नवीन सकारात्मक प्रशासनिक संस्कृति का विकास हो सके।

सन्दर्भ

1. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था : एस. एम. सईद
2. कांस्टीट्यूशन असेम्बली डिबेटस, वाल्यूम VII
3. भारतीय प्रधानमंत्री : जैन पुखराज
4. लोक सभा निर्वाचन : लक्ष्मीमल्ल सिंधवी
5. दि टेलीग्राफ– कलकत्ता, 29 नवम्बर, 1989.
6. नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली 24 अक्तूबर, 1990
7. पंजाब केसरी, जलन्धर, 19 मई 2004
8. रेडिकल शिफ्ट इन द सोशल बेसिस आफ पॉलीटिक्ल पावर : योगेन्द्र यादव
9. कांग्रेस टी सरजेन्स : वेकेंटेश रामा कृष्णनन्
10. अमर उजाला– 2014 मई
11. टाइम्स आफ इंडिया– 2014 मई
12. दैनिक जागरण– 24 मई, 2019
13. अमर उजाला– 24 मई, 2019
14. भारतीय निर्वाचन आयोग–
15. कोलिशन पॉलिटिक्स इन इण्डियाः सुभेन्द्र रंजन राज
16. गठबन्धन की सरकारें एवं राष्ट्रपति की भूमिकाः ओम प्रकाश पवार।

भारत में गठबंधन सरकारों का दौरः एक विवेचन

मनु सिंह व जनक सिंह मीना

lkjk'k *भारतीय संस्कृति विश्व की एक महानतम संस्कृति है। भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में बहुत सी महत्वपूर्ण विशेषताओं के लिए जानी जाती है। उन सभी में उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है। 'साझा संस्कृति'। देश में संसदीय लोकतंत्र अपनी जड़ें जमा रहा है और छोटे-मोटे बवण्डरों का सामना करने की क्षमता उसमें आ गई है। भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी सफलता है, कि इसका स्थिर एवं व्यापक संविधान तथा मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाएँ। 1977 के लोकसभा चुनावों के परिणामस्वरूप भारत में पहली बार केंद्र में सत्ता परिवर्तन हुआ और कांग्रेस के स्थान पर जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनाव के बाद हम पुनः अल्पमत (मिली-जुली सरकार) सरकार की तरफ बढ़ने लगें। 1991, 1996, 1998, 1999, 2004, 2009 मिली-जुली सरकारों का दौर रहा है। 2014 में पुनः सरकार से गठबंधन सरकारों का युग समाप्त सा होने लगा। 2019 के चुनाव में विपक्षी पार्टियों के हालात अच्छे नहीं रहें। इस शोध पत्र में गठबंधन की सरकारों की कार्यप्रणाली एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के उत्थान-पतन का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।*

प्रस्तावना

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था संक्रमण के ऐसे दौर से गुजर रही है, जहाँ जमीनी सच्चाई देश को 2014 के आम चुनाव के पूर्व तक गठबंधन की राजनीति की ओर धकेल रही थी। 1977 से अब तक पाँच बार मध्यावधि चुनाव हुए हैं, जिनका प्रमुख कारण गठबंधनों का असफल होना रहा है। 1977 से लेकर अब तक दस बार केंद्र में संविद-सरकारें बन चुकी हैं। संविद-राजनीति ने प्रांतीय नेतृत्व को विस्तार दिया है। केंद्रीय राजनीति क्षेत्रीय दलों की मोहताज बनी। यही कारण है कि अब तक बनी संविद सरकारों ने केंद्र के स्तर पर पाँच साल का कार्यकाल अभी तक कभी पूर्ण नहीं किया है। कुर्सी के लिए समझौते किये जाते हैं, सुशासन और स्थिर शासन के लिए नहीं।

साझा सरकार की अवधारणा

साझा सरकार का सामान्य अर्थ हैं – राजनीतिक लाभ के उद्देश्य से जब कुछ राजनीतिक दल एक सामान्य कार्यक्रम के आधार पर मिल जाते हैं और इस प्रकार संयुक्त मोर्चा बनाकर सरकार की स्थापना करते हैं, तो उसे हम मिली-जुली सरकार की संज्ञा देते हैं। दूसरे शब्दों में एक से अधिक दलों द्वारा मिली-जुली सरकारों का गठन करना एवं शासन का संचालन करना। संसदीय व्यवस्था में केंद्रीय स्तर और राज्य स्तर पर व्यवस्थापिका के लोकप्रिय सदन (लोकसभा/विधानसभा) के चुनाव होते हैं। लेकिन जब लोकप्रिय सदन के चुनाव में किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता, तब त्रिशंकु लोकसभा या त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति बनती हैं। राजनीतिक दलों और दलीय नेताओं के बीच गठबंधन को जन्म देने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है और जो गठबंधन राज्य के प्रधान को अपने बहुमत से आश्वस्त कर देता है, उस गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है और गठबंधन का नेता प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री मिली-जुली सरकार का गठन करता है। मिली-जुली सरकार का नाम प्राप्त करने के लिए सरकार में कम से कम दो दलों की भागीदारी आवश्यक हैं। इस प्रकार गठबंधन शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द *कोएलेशियो* से हुई है जिसका अर्थ है– साथ चलना, साथ जुड़ना, या साथ बढ़ना।

राजनीति में गठबंधन तीन तरह की परिस्थितियों में जन्म लेता है

1. जब द्विसदनीय व्यवस्थापिका के निम्न सदन में चुनावों में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही होता।
2. जब द्विदलीय व्यवस्था में चुनाव के पश्चात् दो दलों के बीच वैचारिक मतभेदों के कारण किसी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता है तब दोनों दलों में से एक दल किसी अन्य दल या दल बदलुओं के साथ गठजोड़ कर लेते हैं।
3. राष्ट्रीय संकट के समय जब सभी राजनीतिक दल अपने निजी हितों को त्याग कर संयुक्त सुरक्षा के लिए गठबंधन बना लेते हैं। इस प्रकार के गठबंधनों ने भारत के कई राज्यों में जन्म लिया है।

साझा सरकारों को समझाने के लिए उनके सामान्य लक्षणों को समझना आवश्यक है

1. मिली-जुली सरकार में कम-से-कम दो भागीदार होते हैं, भागीदार दलों की संख्या इससे अधिक हो सकती है।
2. भागीदार दल गठबंधन की राजनीति को कुछ प्राप्ति के लिए अपनाते हैं।
3. गठबंधन एक अस्थायी प्रबंध होता है।

4. मिली-जुली सरकार का गठन समझौतों के आधार पर होता है, इसमें कठोर सिद्धांतवादी राजनीति के लिए कोई स्थान नहीं होता।
5. मिली-जुली सरकारें यथार्थवाद पर आधारित होती हैं।

केंद्र में मिली-जुली सरकारें

भारत में सन् 1977 में केंद्र में पहली संयुक्त सरकार जय प्रकाश नारायण के आशीर्वाद से मोरारजी देसाई के नेतृत्व में गठित हुई और कई पड़ावों को तय करते हुए मनमोहन सिंह सरकार तक मिली-जुली सरकारों का गठन हुआ हैं। भारत के संसदीय इतिहास में मिलीजुली सरकारों का प्रयोग लगभग असफल रहा है। भारत में राज्यों में 1967 के पश्चात् तथा केंद्र में 1990 के दशक में गठबंधन सरकारों का अनुभव अत्यधिक कटु रहा है। इन सरकारों ने अनिश्चितता तथा अस्थिरता का वातावरण तैयार किया हैं। केंद्र में 1977 में पहली बार मिली-जुली सरकार बनी तब से अब तक केंद्र में 10 मिली-जुली सरकारें बन चुकी हैं। इनमें से प्रत्येक की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार हैः

मोरारजी देसाई सरकार (1977)

1977 में केंद्र में पहली बार मिली-जुली सरकार का गठन हुआ। उसे तकनीकी अर्थों में एक दल की सरकार कहा जाए या मिलीजुली सरकार, इस पर विचारभेद और विवाद हो सकता है, लेकिन यह सरकार अपने गठन और कार्यकरण में एक मिली-जुली सरकार ही थी। चुनाव के बाद श्री देसाई के नेत्तृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी थी। ढाई वर्ष के बाद जब सरकार के विरूद्ध सदन में अविश्वास का प्रस्ताव लाया गया तो काफी संख्या में सदस्यों के दल बदल के कारण प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने अविश्वास के प्रस्ताव पर मतदान होने से पूर्व ही त्याग पत्र दे दिया। जनता पार्टी की सरकार का गठन भारी आशा और उत्साह के वातावरण में हुआ था और इस घटना को तत्कालीन भारतीय राजनीति में 'स्वतंत्रता प्राप्ति के 30 वर्ष बाद दूसरी क्राँति' का नाम दिया था, लेकिन व्यवहार में 27 महीनों के शासनकाल में शासन के प्रत्येक क्षेत्र में घोर दिशाहीनता देखी गई। जनता पार्टी से दल बदल कर जाने वाले लोगों ने अन्य दलों से मिलकर एक संयुक्त दल बनाया जिसके नेता चौधरी चरण सिंह बने।

चौ. चरण सिंह के नेतृत्व में मिली-जुली सरकार

जनता पार्टी सरकार के उपप्रधानमंत्री चौ. चरण सिंह और उनके समर्थकों द्वारा दल बदल कर लिए जाने और कांग्रेस सरकार द्वारा चरण सिंह सरकार को बाहर से समर्थन दिए जाने की घोषणा के आधार पर 28 जुलाई 1979 को चौधरी चरण सिंह ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। लेकिन जब मंत्रिपरिषद् ने उनके विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। वे भारत के अकेले प्रधानमंत्री थे जिन्होंने एक दिन भी संसद का सामना नहीं किया।

राष्ट्रपति द्वारा 22 अगस्त 1979 को लोकसभा भंग कर दी गई और चौ. चरण सिंह को निर्देश दिया गया कि आम चुनाव के आधार पर सरकार बनाने तक वे प्रधानमंत्री पद पर कार्य करें। इस प्रकार चौ. चरण सिंह एक क्षण के लिए भी लोकसभा में बहुमत का विश्वास प्रस्ताव प्राप्त किये बिना ही पाँच माह तक प्रधानमंत्री बने रहे।

वी. पी. सिंह के नेतृत्व में मिलीजुली सरकार (1989 -1990)

वी. पी. सिंह के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय मोर्चे की यह सरकार न केवल एक मिलीजुली सरकार थी वरन् इसके साथ ही एक 'अल्पमतीय सरकार' भी थी, जो दो परस्पर विरोधी ध्रुवों के बाहरी समर्थन पर टिकी हुई थी। किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। इस प्रकार कोई भी दल अकेले सरकार बनाने में सक्षम नहीं था। भाजपा और कम्युनिस्ट पार्टियों ने राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार को बाहर से समर्थन दिया। लगभग 11 महीने बाद जब भाजपा ने इस सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया, तब यह सरकार धराशायी हो गई। केंद्रीय स्तर पर राजनीतिक अस्थायित्व और राजनीतिक अव्यवस्था का जैसा दौर इस काल में देखा गया। प्रधानमंत्री और उपप्रधानमंत्री के बीच शह और मात का खेल चल रहा था। राजनीतिक मारा-मारी के इस खेल में कोई पक्ष किसी मर्यादा के प्रति चिंतित नहीं था। ऐसी स्थिति में सरकार को जाना ही था।

चन्द्रशेखर के नेतृत्व वाली मिलीजुली सरकार (1990 -1991)

भाजपा द्वारा समर्थन वापस लिए जाने से विश्वनाथ प्रताप सिंह की संयुक्त मोर्चा सरकार लोकसभा में अविश्वास पर हार गई और उसे त्यागपत्र देना पड़ा। यह पहला अवसर था जब लोकसभा में किसी सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास हुआ हो और विपक्ष को सरकार को सत्ताच्युत करने का अवसर मिला। इस प्रकार वी. पी. सिंह नेतृत्व देने में असफल रहे। कांग्रेस के समर्थन के चंद्रशेखर नए प्रधानमंत्री बनाए गए। फिर चार महीने के बाद मार्च 1991 में जनता दल की सरकार कांग्रेस पार्टी द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण गिर गई तथा प्रधानमंत्री ने त्यागपत्र देकर चुनाव करने की सिफारिश की, लेकिन दसवीं लोकसभा के चुनाव सम्पन्न होने तक यह सरकार पदारूढ़ रही।

चंद्रशेखर सरकार की स्थिति तो वी. पी. सिंह सरकार की तुलना में भी कमजोर थी क्योंकि इस सरकार का गठन दल बदल के आधार पर हुआ था और इस सरकार ने जनता से कोई विश्वास प्राप्त नहीं किया था। कांग्रेस नेतृत्व से मतभेद हो जाने से कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया तथा चंद्रशेखर सरकार का पतन हो गया।

पी. वी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व वाली अल्पमत सरकार

1991 में भी लोकसभा में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला और पुनः त्रिशंकु संसद बनी। राजीव गाँधी की हत्या के कारण कांग्रेस पार्टी में भी नेतृत्व के

प्रश्न पर अनिश्चितता उत्पन्न हो गई। लोकसभा में दलीय स्थिति इस प्रकार थी–

1991 esa nyh; fLFkfr

कुल स्थान	543
चुनाव हुए	511
कांग्रेस	221
भाजपा	117
जनता दल	52
माकपा और भाकपा	50
सजपा	5
तेलगूदेशम	12
अन्ना डी. एम. के	11
झामुमों	6
शिव सेना	4
इण्डियन मुस्लिम लीग	2
कांग्रेस (एस)	1
अन्य	15

इस प्रकार इस चुनाव में लोकसभा में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति ने सबसे बड़े दल कांग्रेस के नेता श्री नरसिम्हा राव को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया और एक माह के अंदर उन्हें अपना बहुमत सिद्ध करने को कहा। 22 जून 1991 को नरसिम्हा राव ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली, 16 जुलाई को नरसिम्हा राव की अल्पमत सरकार ने लोकसभा में बहुमत प्राप्त किया जबकि इसमें 112 सदस्य अनुपस्थित रहें किंतु बाद में श्री नरसिम्हा राव ने लोकसभा में अन्य राजनीतिक दलों के अनेक कई सदस्यों को कांग्रेस में सम्मिलित करके अपना बहुमत बना लिया। यह दल बदल की राजनीति कांग्रेस के लिए वरदान साबित हुई।

अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मिलीजुली सरकार (1996)

कांग्रेस पार्टी के पाँच वर्ष के कार्यकाल के पूरा होने पर 1996 में आम चुनाव कराया गया। इस चुनाव में किसी भी दल को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला। 32 राजनीतिक दलों ने इस चुनाव में भाग लिया था। कांग्रेस पार्टी को इस चुनाव में भारी पराजय का सामना करना पड़ा। भाजपा सबसे बड़े दल के रूप में उभरी और उसके सहयोगी दलों को मिलाकर उसकी संख्या 194 जो रामों-वामों के 179 और कांग्रेस के 136 से अधिक थी। भाजपा ने सरकार बनाने के अपना दावा राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया। रामों-वामों ने चुनाव के पूर्व कोई गठबंधन नहीं बनाया था। ऐसे स्थिति में रामों-वामों के नेताओं ने सत्ता के फिसलने की आशंका से आनन-फानन में 13 दलों का एक गठबंधन संयुक्त मोर्चा बनाया और कई दिनों के कठिन प्रयास के बाद कर्नाटक के मुख्यमंत्री (देवगौड़ा) जो लोकसभा का चुनाव भी नहीं

लड़े थे को अपना नेता चुना। राष्ट्रपति ने पूर्व परम्पराओं का अनुसरण करते हुए लोकसभा के सबसे बड़े दल के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने का निमंत्रण दिया और 15 दिन के अंदर लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करने को कहा। लोकसभा में विश्वास संकल्प पर जब बहस हो रही थी तब श्री अटल बिहारी वाजपेयी को ऐसा महसूस हुआ कि जिस समर्थन की वे आशा करते हैं, वह उन्हें प्राप्त होने वाला नहीं है तो उन्होंनें 28 मई 1996 को अपना त्याग पत्र दे दिया। उन्हें बहुमत सिद्ध करने की जरूरत नहीं पड़ी। पहली बार 13 दिन श्री अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री रहे।

एच. डी. देवगौड़ा के नेतृत्व में गठबंधन सरकार

श्री अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र देने के बाद राष्ट्रपति ने संयुक्त मोर्चा के श्री देवगौड़ा को सरकार बनाने का निमंत्रण दिया और उन्हें लोकसभा में बहुमत सिद्ध करने का समय दिया। श्री देवगौड़ा ने लोकसभा में कांग्रेस व मार्क्सवादी दल की सहायता से अपना बहुमत सिद्ध कर दिया। इस प्रकार श्री देवगौड़ा के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा सरकार ने 1 जून 1996 को शपथ ली व 12 जून को बहुमत प्राप्त किया, नौ महीने बाद ही 30 मार्च 1997 को कांग्रेस ने देवगौड़ा के स्थान पर किसी और को प्रधानमंत्री बनाने की मांग कर अपना समर्थन वापस ले लिया। संसद में विश्वास मत पर पराजित होने के पश्चात् पुनः मोर्चा के घटकों में प्रधानमंत्री पद के लिए उपयुक्त प्रत्याशी की खोज प्रारंभ हो गई।

इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में गठबंधन सरकार

देवगौड़ा सरकार गिरने के बाद कई दिनों की उठापटक के पश्चात श्री गुजराल को मोर्चे का नया नेता चुना गया और इस तरह श्री गुजराल को तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने 12 अप्रैल 1997 को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई किंतु सात माह बाद यह नाटक पुनः दोहराया गया। देवगौड़ा सरकार और गुजराल सरकार को एक ही सरकार के दो रूप भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि सिर्फ कप्तान ही तो बदला, टीम तो लगभग वही थी।

अटल बिहारी वाजपेयी की गठबंधन सरकार (मार्च 1998)

19 मार्च 1998 को श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भाजपा के नेतृत्व में नई गठबंधन सरकार केंद्र में सत्तारूढ़ हुई। 12 वीं लोकसभा के चुनाव में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। क्षेत्रीय दलों का प्रभाव सर्वाधिक बढ़ा। यह सरकार भी लगभग प्रत्येक मोर्चे पर विफल रही। इस प्रकार केंद्र स्तर पर सन् 1977-1998 तक बनी सभी संविद सरकारों में देखने को मिला हैं, एक योजनाबद्ध नीति का अभाव। इस काल में देश में भारी राजनीतिक उथल-पुथल हुई और दो साल से भी कम समय में लोगों को एक अन्य आम चुनाव का सामना करना पड़ा।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मिलीजुली सरकार (अक्टूबर 1999–21 मई 2004 तक)

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को स्पष्ट बहुमत मिला। इस गठबंधन में छोटे-बड़े 24 दल सम्मिलित थे तथा अटल बिहारी वाजपयी के नेतृत्व पुनः संविदा या मिलीजुली सरकार का गठन हुआ। 13 वीं लोकसभा आठ माह पूर्व भंग कर दी गई क्योंकि 2003 में कुछ राज्यों में विधानसभाओं के चुनाव होने थे। अतः आठ माह पूर्व भंग कर दी। समय से पर्व लोकसभा भंग करना हमेशा ही एक राजनीतिक मुद्दा रहा है। इस प्रकार भारत में समय से पूर्व लोकसभा भंग करने का सिलसिला 1970 से शुरु हुआ जो 13 लोकसभा में से केवल पांच लोकसभाओं ने पांच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण किया जबकि आठ लोकसभाएँ समय से पहले भंग की गईं।

डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में गठबंधन सरकार (22 मई 2004–22 मई 2014) तक

चुनाव के बाद कांग्रेस के नेतृत्व में यूनाईटेड एलायस (यू.पी.ए) ने डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में मिलीजुली सरकार का गठन किया तथा लोकसभा में 'राजग' ने प्रमुख विपक्षी दल की भूमिका निभाई।

13oh] 14oh] 15 oh yksd lHkk % r|ukRed foo|pu

ny	çkIr LFkku 1999	çkIr LFkku 2004	çkIr LFkku 2009
कांग्रेस गठबंधन (यू.पी.ए)	137	222	262
भारतीय जनता पार्टी गठबंधन (एन.डी.ए)	302	186	157
अन्य तीसरा मोर्चा (यू.एन.पी.ए) एवं अन्य	104	135	124

lfon-ljdkjksa dk dk;dky ¼1977 l| v|ru½

Ø-l-	urRo	'kiFk ¼urk½	vofj	dky	leFkku fnol	ykdlHkk v/;{k
1	मोरारजी देसाई (जनता पार्टी)	24 मार्च 1977 (छठी लोकसभा)	1	856	कांग्रेस / जनसंघ / भालोद / संयुक्त समाजवादी दल / कांग्रेस फोरडेमोक्रेसी संगठन	श्री के. एम. हेगड़े
2	चौधरी चरण सिंह (जनता – एस)	28 जुलाई 1979 (छठी लोकसभा)	1	170	कांग्रेस का बाहरी समर्थन	श्री के. एम. हेगड़े

3	विश्वनाथ प्रताप सिंह (राष्ट्रीय मोर्चा)	2 दिसम्बर 1989 (नौवीं लोकसभा)	1	343	वामपंथी दलों का संयुक्त मोर्चा तथा भारतीय जनता पार्टी का बाहरी समर्थन	श्री रवि राय
4	चंद्रशेखर (जनता – एस)	10 नवम्बर 1990 (नौवीं लोकसभा)	1	223	कांग्रेस का बाहरी समर्थन	श्री रवि राय
5	अटल बिहारी वाजपेयी (भारतीय जनता पार्टी)	16 मई 1996 (ग्यारहवीं लोकसभा)	1	16	शिवसेना / अकाली दल तथा हरियाणा विकास	श्री पी. ए. संगमा
6	एच.डी. देवगौड़ा (भारतीय जनता पार्टी)	1 जून 1996 (ग्यारहवीं लोकसभा)	1	324	संयुक्त मोर्चा / जनता दल / तेलगूदेशम / असम गण परिषद् / कांग्रेस (एस) / द्रमुक / कांग्रेस का बाहरी समर्थन	श्री पी. ए. संगमा
7	अटल बिहारी वाजपेयी (भारतीय जनता पार्टी)	19 मार्च 1998 (बारहवीं लोकसभा)	2	413	18 दलों का गठबंधन तृणमूल कांग्रेस, तेलगूदेशम और राष्ट्रीय लोक दल का बाहरी समर्थन	श्री जी.एम.सी.
8	अटल बिहारी वाजपेयी (भारतीय जनता पार्टी)	13 नवम्बर 1999 (तेरहवीं लोकसभा)	1	1512	24 दलों का गठबंधन (एन. डी. ए)	श्री जी.एम.सी. बालयोगी तथा मनोहर गजानन जोशी (11 जून 2002 से 2 जून 2004 तक)
9	डॉ. मनमोहन सिंह (कांग्रेस)	22 मई 2004 (चौदहवीं लोकसभा)	1	1825	यू. पी. ए तथा वामपंथी दलों का बाहरी समर्थन	अध्यक्ष–श्री सोमनाथ चटर्जी उपाध्यक्ष– श्री चरण अत्वाल
10	डॉ. मनमोहन सिंह (कांग्रेस)	22 मई 2009 (पन्द्रहवीं लोकसभा)	2	1829	कांग्रेस एवं अन्य सहयोगी दल	श्रीमती मीरा कुमार
11	नरेंद्र दामोदर मोदी (भारतीय जनता पार्टी)	26 मई 2014 (सोहलवीं लोकसभा)	1	1853	भाजपा एवं अन्य सहयोगी दल	श्रीमती सुमित्रा महाजन
12	नरेंद्र दामोदर मोदी (भारतीय जनता पार्टी)	30 मई 2019 (सत्रहवीं लोकसभा)	2	अद्यतन	भाजपा एवं अन्य सहयोगी दल	श्री ओमबिरला

इस प्रकार 11वीं लोकसभा चुनाव से लेकर 15वीं लोकसभा चुनाव तक मिली-जुली सरकारों का ही बोलबाला रहा हैं।

16 oh ykdlHkk ¼2014½

वर्ष 2014 का जनादेश सिर्फ एक अलोकप्रिय सरकार को हटाने के लिए नहीं था। चुनाव प्रचार में नरेंद्र मोदी ने जनता को एक सपना दिखाते हुए विकास एवं सुशासन का एक नया मॉडल देश के सामने पेश किया। जनता ने उससे प्रभावित होकर व्यापक बदलाव की आशा में भरपूर समर्थन दिया। भाजपा की यह पारी सियासत में एक बड़े परिवर्तन का संकेत है। भारतीय जनता पार्टी ने नरेंद्र मोदी को बहुत पहले ही अपने प्रधानमंत्री पद का दावेदार घोषित कर दिया था और सारा प्रचार उन्हीं को केंद्र में रखकर किया गया। कुल 543 सीटों के लिए सात भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को 334 सीटें प्राप्त हुईं। इस जीत के साथ ही भाजपा वर्ष 1984 के बाद लोकसभा में पूर्ण बहुमत पाने वाला पहला दल बना। इस बार भाजपा नरेंद्र मोदी लहर पर सवार होकर केंद्र में सत्ता बनाने के काबिल हो पाई तो उसके पीछे बड़ा कारण उत्तर प्रदेश और बिहार में मिला जनादेश रहा है। कांग्रेस पार्टी को मात्र 44 सीटों पर विजय मिली। वहीं कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन को मात्र 60 सीटें प्राप्त हुईं।

16 वीं लोकसभा के नौ चरणों में हुए मतदान प्रक्रिया पर अकेली केंद्र सरकार के 3426 करोड़ रुपए खर्च हुए जो वर्ष 2009 से 131 प्रतिशत अधिक हैं। चुनाव आयोग ने अधिक मतदान के लिए विशेष अभियान चलाया, इस कारण सरकारी चुनाव खर्च में काफी वृद्धि हुई। मोदी की जीत को सही मयाने में समझना है तो 1979 में ब्रिटेन में मार्गरेट थैचर की अगुवाई में कंज़रवेटिव पार्टी और 1981 में अमेरिका में रोनाल्ड रेगन की जीत के संदर्भ में समझना होगा, जहाँ के हालात और माहौल हमसे अलग नहीं थे। वैसे भी यह सर्वविदित हैं कि जब-जब कोई अर्थव्यवस्था चुनौतीपूर्ण माहौल से गुजरती है, तो दक्षिणपंथी ताकतों को पनपने एवं हावी होने का मौका मिलता है और उनका सबसे जल्द व असरकारी प्रभाव मध्यम वर्ग पर होता है।

16 वीं लोकसभा के लिए हुए जिस चुनाव ने हमारी राजनीति की दिशा और दशा निर्णायक रूप से बदल दी हैं। उसे भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में सबसे ओछे, घृणास्पद और मद्दाविहीन चुनाव अभियान के लिए याद रखा जाएगा। 16 वीं लोकसभा के चुनाव परिणाम बताते हैं कि लोगों का बदलाव का सोच अपवादों को छोड़कर लगभग पूरे देश में एक समान था। एक चीज जरूर साफ हैं कि कांग्रेस के प्रति लोगों में नाराजगी थी। जिसकी वजह से सभी लोग परिवर्तन चाहते थे और उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा के रूप में एक पार्टी विकल्प दे रही थी और नरेंद्र मोदी उसके ऐसे नेतृत्व के रूप में अचानक उभरें, जिन पर लोग भरोसा करने लगे।

17 oh ykdlHkk ¼2019½

17 वीं लोकसभा के लिए सात चरणों में निर्वाचन सम्पन्न कराए गए। इस बार

लगभग 90 करोड़ मतदाता पंजीकृत थे, जबकि सम्पूर्ण निर्वाचन प्रकिया में लगभग 67 प्रतिशत मतदाताओं ने ही अपने मताधिकार का प्रयोग किया। इसका सीधा-सा अभिप्राय यह हैं कि देश के 33 प्रतिशत मतदाताओं ने भारतीय लोकतंत्र के इस महापर्व में भाग ही नहीं लिया। भारत एक लोकतांत्रिक राज्य हैं। यहाँ विपक्ष की भूमिका भी उतनी ही अर्थपूर्ण हैं, जितनी की सत्ता पक्ष की। सशक्त विपक्ष ही सत्ता पक्ष के चिंतन को धार देता है।

हमारे यहाँ राष्ट्रीय स्तर की दो ही पार्टियाँ रही हैं। एक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा दूसरी, भारतीय जनता पार्टी। हाल ही 2019 के लोकसभा चुनाव पूरी तरह एक पक्षीय रहा। विपक्ष के रूप में कांग्रेस मात्र 10 प्रतिशत (52) सीटों पर ही सिमट गई अर्थात् पिछले पांच सालों में अपना जनाधार राष्ट्रव्यापी नहीं बना पाई। यह स्वस्थ लोकतंत्र का प्रमाण नहीं है।

कांग्रेस नाम का ढाँचा ही देश में नहीं दिखाई पड़ता। चुनाव अभियान इस बात का साक्षी रहा है कि वहाँ पार्टी के वरिष्ठ नेता ही नदारद थे। एक ही व्यक्ति कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी पर सारा दारोमदार था क्योंकि पार्टी में सफेदपोश नेताओं का दबदबा है। ऐसे नेता बहस कर सकते हैं, किंतु इसका जनाधार नही है।

कांग्रेस जिनको नेता मान बैठी थी, वे सभी हार गए। क्यों? पार्टी को इस तथ्य पर चिंतन करना पड़ेगा। आज कांग्रेस पार्टी के बाहर सोचती नजर नहीं आ रही। कांग्रेस को पुनर्जीवित करने की जरूरत है। मनमोहन सिंह एवं प्रियंका गांधी के भावनात्मक प्रभाव से कांग्रेस मजबूत होने वाली नही है।

17 वीं लोकसभा के चुनावों में भाजपा की ऐतिहासिक जीत के साथ जहाँ प्रजातांत्रिक व्यवस्था में देश की आम जनता की आस्था और विश्वास फिर से गहरा हुआ है, वहीं मुख्य विपक्षी पार्टी के रूप में कांग्रेस और अन्य छोटी-मोटी पार्टियों के निरन्तर कमजोर होते आधार और दरकते अस्तित्व के चलते कई प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष राष्ट्रीय संकट की आशंकाएँ भी गहरी हुई हैं। संसदीय नियमों के अनुसार किसी राजनीतिक पार्टी के लिए मुख्य विपक्षी दल का दर्जा हासिल करने के लिए उसे लोकसभा की कुल सीटों की कम-से-कम 10 प्रतिशत सीटें हासिल होनी चाहिए।

2014 में दूसरे बड़े राजनीतिक दल के रूप में कांग्रेस के केवल 44 सांसद ही लोकसभा पहुँच पाए थे और इसके कारण 16 वीं लोकसभा नेता प्रतिपक्ष से महरूम रही। 2019 के चुनाव के बाद भी विपक्षी पार्टियों के लिए हालात अच्छे नहीं हैं। दूसरी बड़ी पार्टी के रूप में कांग्रेस को इस बार 52 सीटें मिली हैं और इस बार भी जरूरी आँकड़ों को पार्टी छू नहीं पाई है। हाल के चुनाव में यू.पी, महाराष्ट्र, बिहार व गुजरात की 184 सीटों में से पार्टी को सिर्फ तीन सीटों पर संतोष करना पड़ा। यू.पी की 80, महाराष्ट्र की 48 और बिहार की 40 में से 1–1 सीट ही जीती।

गुजरात की 26 सीटों में उसका खाता भी नहीं खुल पाया। सोनिया 1998-2017 तक लगातार 19 साल अध्यक्ष रहीं। उनके नेतृत्व में 2004-2009 में केंद्र में कांग्रेस सरकार बनी। 1999 व 2014 में पार्टी हारी। लेकिन 2014 में भाजपा की कमान मोदी के हाथों में आने के बाद से कांग्रेस का ग्रॉफ उतरने लगा। नरेंद्र मोदी के करिश्मे को एक तरफ रख दिया जाए, तो भी भाजपा की बराबरी पर आज की कांग्रेस कहीं नहीं ठहरती।

मजबूत और पूर्ण बहुमत वाली सरकार के तानाशाही रवैया अख्तियार करने की आशंका तो रहती है लेकिन देश के लोकतंत्र में ऐसा हो पाना न तो सरल है और न ही अच्छा। पूर्ण बहुमत की सरकार अपनी नीतियों को ठीक से लागू कर पाती है और गठबंधन की मजबूरी वाली सरकारों की तरह पूर्ण बहुमत की सरकार में कम-से-कम ब्लैकमेलिंग तो नहीं। जद्यू के सासंदों को मंत्रिमंडल में अधिक स्थान देने की जिद कुछ इसी किस्म की थी। भाजपा गठबंधन के सहयोगी दलों को साथ लेकर तो चल रही है लेकिन सहयोगी दल उसकी मजबूरी नही हैं। यह अच्छा संकेत है। विश्व में भी इससे अच्छा संदेश जाता है कि इस सरकार में फैसले जल्द किए जा सकेंगें क्योंकि भारत में अब मजबूत सरकार है।

संदर्भ ग्रंथ

1. इंद्रा, उम्मेद सिंह, "संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा" कल्पाज पब्लिकेशन्स, दिल्ली–2010, पृ. 175–178
2. पाण्डेय, जयनारायण "भारत का संविधान" सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2014, पृ. 473
3. लोकतंत्र समीक्षा, जनवरी–दिसम्बर 2003, पृ. 129
4. कश्यप, सुभाष, "भारतीय संसद समस्याएँ एवं समाधान" हिंदी माध्यम कार्यान्वय निर्देशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1999 पृ. 54
5. पूर्वोक्त, "संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा" पृ. 180
6. अवस्थी एवं अवस्थी, "भारतीय प्रशासन" लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशक, आगरा, 2015–16, पृ. 649
7. पत्रिका ईयर बुक, 2015, पृ. 299
8. प्रेस वाणी मासिक समाचार पत्रिका, मई 2014, पृ. 6
9. राजस्थान पत्रिका (जोधपुर) 22 मई 2019
10. राजस्थान पत्रिका (जोधपुर) 26 मई 2019
11. राजस्थान पत्रिका (जोधपुर) 6 जून 2019
12. राजस्थान पत्रिका (जोधपुर) 10 जून 2019

गठबन्धन सरकार : समस्यायें एवं समाधान

स्निग्धा त्रिपाठी

Ikjk'k *प्रस्तुत शोध पत्र का मूल उद्देश्य ''गठबन्धन सरकार : समस्यायें एवं समाधान'' का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करना है। भारतीय संविधान द्वारा केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। इस संसदीय व्यवस्था में दोनों ही स्तर पर व्यवस्थापिका के लोकप्रिय सदन लोक सभा अथवा विधान सभा के चुनाव होते हैं। इन चुनावों में जब एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब त्रिशंकु लोक सभा की स्थिति बनती है। ऐसे समय में राजनीतिक दलों द्वारा गठबन्धन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। उस गठबन्धन के नेता द्वारा सरकार का गठन किया जाता है। इसे ही गठबन्धन सरकार कहते हैं। यह सरकार एक ऐसी सरकार होती है जिसमें कम-से-कम दो राजनीतिक दलों की भागीदारी होती है, जो अधिक भी हो सकती है। ये सरकार 'सम्मिलन की राजनीति' का परिणाम होती है, जिसे विभिन्न राजनीतिक दल चुनाव पूर्व या चुनाव पश्चात् अपना सकते है। सम्मिलन की राजनीति को अपनाने का विशिष्ट प्रयोजन होता है। चुनाव पूर्व जो गठबन्धन बनते हैं उनमें अवसरवादिता कम होती है परन्तु चुनाव पश्चात् के गठबन्धन में इसके तत्व अधिक अंशों में विद्यमान होते हैं और यही धारणा इन गठबन्धनों को कमजोर कर देती है।*

प्रस्तावना

भारतीय शासन व्यवस्था में गठबन्धन की राजनीति नई नहीं है। जब से चुनावी राजनीति शुरू हुई गठबन्धन की राजनीति भी अस्तित्व में है जिसके माध्यम से सत्ता में विभिन्न दलों की भागीदारी सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है। भारत में इसका वजूद आजादी से पहले से ही मौजूद था। कोई भी आन्दोलन लोगों की भागीदारी के बिना सफल नहीं हुआ है। विभिन्न आन्दोलनों में लोगों की भागीदारी अपने अधिकारों को लेकर उनकी जागरूकता का ही परिणाम रही। आज वही

जागरूकता राजनीतिक दलों में दिखाई दे रही है। गठबन्धन की राजनीति इन दिनों भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुकी है।

गठबन्धन का तात्पर्य ऐसी सरकार से होता है, जो अनेक दलों द्वारा मिलकर बनाया जाता है। इस सरकार में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता मंत्रीपद ग्रहण करते हैं तथा सरकार में शामिल होते हैं। गठबन्धन सरकार तब आवश्यक हो जाती है जब लोक सभा में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता। ऑग ने कहा है –''मिली-जुली सरकार एक ऐसे सहयोगी प्रबन्धन का नाम है जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य सरकार के गठन या मंत्रिमण्डल के निर्माण के लिये एक हो जाते हैं''[1]। भवानी सेन गुप्ता के शब्दों में –''गठबन्धन सरकारों के गठन और जीवन तथा कार्यकारण के लिये जिस प्रतिभा और संस्कृति की आवश्यकता होती है भारत के लोकतांत्रिक राजनीति में अभी तक वस्तुतः उसका अभाव रहा है। अस्थायी मिली–जुली सरकारों या अल्पमत सरकारों के क्रम ने राज्य के संकट में योगदान किया है''[2]। कश्यप तथा गुप्त के शब्दों में –''मिली-जुली सरकार राजनीतिक समुदायों तथा शक्तियों का गठजोड़ है जो अस्थायी और कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिये होता है। राजनीतिक दलों का यह मिलन सरकारों के निर्माण या उनकी रक्षा करने के लिये बनाया जाता है। जिन दलों के सहयोग के फलस्वरूप संयुक्त सरकारों का निर्माण होता हैं वे एक बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रम पर एकमत होते है''[3]। इंगलिश शब्दकोश में इसे विभिन्न दलों, व्यक्तियों अथवा राज्यों का स्थायी रूप में एक में विलीन हुए बिना किसी संयुक्त कार्यों के लिये किया गया समझौता कहा गया है[4]। विलियम एच. रिकर ने स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गठबन्धन को 'गेम थ्योरी' से जोड़ते हुए बताया है कि इस खेल में राजनीति खिलाड़ी एक व्यक्ति वर्ग या समूह हो सकता है। प्रत्येक राजनेता को एक बौद्धिक घटक कहा जाता है[5]। गठबन्धन सरकारों में कुछ प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं। जो निम्नलिखित है[6] –

1. गठबन्धन सरकार में कम-से-कम दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों की भागीदारी होती है।
2. इसमें सम्मिलित दल कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं।
3. ये गठबन्धन सरकारें सामान्यतः अस्थायी होती हैं। वैसे कार्यकाल भी पूरा कर सकते हैं।
4. गठबन्धन सरकार का गठन न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर होता है।
5. गठबन्धन सरकारों में दलों के सम्मिलित होने के समीकरण बदलते रहते हैं। कुछ राजनीतिक दल एक समय पर विरोधी हो सकते हैं और वही राजनीतिक दल दूसरे समय पर सहयोगी।

आज भारत में केन्द्र स्तर पर गठबन्धन सरकार का जो रूप है, वह कुछ बातों की

दृष्टि से गठबन्धन सरकार के इन सभी प्रतिमानों से अलग हटकर है। 1969 से भारत में गठबन्धन की राजनीति का युग आरम्भ होता है जो आज तक भारतीय राजनीति की प्रमुख विशेषता बना हुआ है। 1969 में कांग्रेस पार्टी को साम्यवादी दल और डी. एम.के. से समर्थन लेना पड़ा था। 1977 में अपातकाल के बाद पहली बार जनता दल के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार बनी, जिसमें मोरार जी देसाई प्रधानमंत्री बने। दलीय स्वार्थ और सैद्धान्तिक मतभेद के चलते इन्हें इस्तीफा देना पड़ा और चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री बनें, लेकिन विषम परिस्थितियों में इन्हें भी त्यागपत्र देना पड़ा। इसके बाद 1989 में नौवीं लोक सभा चुनाव में वी.पी. सिंह ने क्षेत्रीय दलों के साथ मिलकर 'राष्ट्रीय मोर्चा' बनाया, जिसने कांग्रेस के खिलाफ जीत दर्ज की और गठबन्धन सरकार का गठन किया। राजनीतिक मतभेद के कारण भाजपा ने समर्थन वापस ले लिया और सरकार गिर गयी।

1991 में हुए चुनाव में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला लेकिन कांग्रेस सबसे बड़ा दल बनकर उभरी। इसने अन्य दलों के समर्थन से नरसिम्हा राव के नेतृत्व में सरकार का गठन किया और पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। 1996 से 1998 तक गठबन्धन सरकारों का दौर रहा। मई 1996 में अटल बिहारी बाजपेयी ने 12 अन्य दलों के समर्थन से गठबन्धन सरकार का गठन किया जिसका 13 दिन बाद विघटन हो गया। इसके बाद 1 जून 1996 को केन्द्र में 'संयुक्त मोर्चा' की सरकार का गठन किया गया तथा एच.डी. देवगौड़ा को प्रधानमंत्री बनाया गया। लेकिन कांग्रेस के समर्थन वापसी के पश्चात् 11 महीने पश्चात् यह सरकार गिर गयी। पुनः 21 अप्रैल 1997 कांग्रेस के बाहरी समर्थन से इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में दूसरी संयुक्त मोर्चा सरकार का गठन किया। विशेष परिस्थिति में 28 नवम्बर 1997 को पुनः कांग्रेस के समर्थन वापसी से यह सरकार गिर गयी। 1997 में 12वीं लोक सभा के चुनाव को उस समय भाजपा के नेतृत्व में कई पार्टियों को मिलाकर 'राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबन्धन' (एन.डी.ए.) का गठन किया गया। इस गठबन्धन के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को 19 मार्च 1998 को देश का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। लेकिन 13 महीने पश्चात् यह सरकार भी गिर गयी। 13वीं लोक सभा का चुनाव 1999 में हुआ तत्पश्चात् 13 अक्टूबर 1999 को एन.डी.ए. का नेतृत्व करते हुए अटल बिहारी वाजपेयी पुनः प्रधानमंत्री बने और अपना कार्यकाल पूर्ण किया।[7]

मई 2004 में 14वीं लोक सभा का चुनाव सम्पन्न हुए। इसमें कांग्रेस के नेतृत्व में गठित 'संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन' (यू.पी.ए.) को सरकार बनाने का अवसर प्राप्त हुआ तथा डॉ. मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने। इस सरकार ने अपना पांच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण किया। 2009 में 15वीं लोक सभा चुनाव के पश्चात् पुनः यू.पी.ए. की सरकार बनी और इसने अपना कार्यकाल पूर्ण किया। 2014 के 16वीं लोक सभा चुनाव में भाजपा के नेतृत्व में एन.डी.ए. को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ तथा नरेन्द्र मोदी

देश के प्रधानमंत्री बने। कुशल नेतृत्व और सशक्त सरकार का परिचय देते हुए इस सरकार ने अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण किया। 2019 के 17वीं लोक सभा चुनाव में एन.डी.ए. ने भारी बहुमत से जीत हासिल की और नरेन्द्र मोदी पुनः प्रधानमंत्री बने। वर्तमान समय में नरेन्द्र मोदी देश के प्रधानमंत्री हैं और केन्द्र में उन्हीं की सरकार कार्य कर रही है। अपने पूर्ववर्ती सरकारों से अलग हटकर 2014 के बाद मोदी सरकार ने एन.डी.ए. के गठबन्धन सरकार के सफलतम कार्यों द्वारा गठबन्धन सरकार की नयी परिभाषा प्रस्तुत की है तथा एक सशक्त और स्थिर गठबन्धन सरकार दी है।

भारत में 1969 से लेकर अब तक केन्द्रीय स्तर पर जितनी भी सरकारें कार्यरत् रहीं, उनमें नरसिम्हा राव सरकार तथा 2014 के बाद कार्यरत् मोदी सरकार को छोड़ दिया जाये तो, अन्य सभी गठबन्धन सरकारों की कतिपय समस्यायें तथा कतिपय सकारात्मक पहलू उभरकर सामने आते हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है–

xBcU/ku ljdkj dh leL;k,¡ vFkok pukSfr;k¡ : गठबन्धन सरकारों का निर्माण भिन्न-भिन्न सिद्धान्त व विचारधारा वाले घटक दलों के सहयोग से होता है। अतः गठबन्धन सरकार में कुछ प्रमुख समस्यायें देखने को मिलती हैं –

1. गठबन्धन सरकारों की मुख्य समस्या सरकार की आस्थिरता तथा शामिल दलों की आपसी खींचतान है। क्षेत्रीय दल अपने दल के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं, अतः गठबन्धन में उनकी भूमिका राष्ट्रीय हितों के अनुकूल नहीं होती। आपसी खींचतान के कारण नीतियों में समायोजन तथा एकरूपता का अभाव बना रहता है। कदाचित इसी कारण मोरिस जोंस ने कहा है कि – ''भारतीय राजनीतिक के सहभागियों के कथनी और करनी में अन्तर है''[9]।
2. संसदीय लोकतंत्र में सरकार का एक प्रमुख लक्षण 'राजनीतिक सजातीयता' है – 'अर्थात् एक ही दल व विचारधारा के लोग सरकार का निर्माण करे'। परन्तु गठबन्धन की सरकार में राजनीतिक सजातीयता के सिद्धान्त का पालन नहीं हो पाता।
3. संसदीय लोकतंत्र के एक और प्रमुख लक्षण 'मंत्रिमण्डल के सामूहिक उत्तरदायित्व' का पालन नहीं हो पाता क्योंकि मंत्रिमण्डल में कई राजनीतिक दलों के मंत्री शामिल होते हैं।
4. गठबन्धन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, इस कारण क्षेत्रीय हित राष्ट्रीय हित पर प्रभावी हो जाते हैं।
5. गठबन्धन सरकारों में प्रधानमंत्री की स्थिति दयनीय हो जाती है वह न तो अपनी इच्छानुसार मंत्रियों का चयन कर सकता है और न ही निर्णय ले सकता है।
6. गठबन्धन सरकारों में घटक दलों की भावनाओं को संतुष्ट करने के लिये

मंत्रिमण्डल का आकार बड़ा रखा जाता है, जिससे सरकार पर आर्थिक दबाव पड़ता है। इसका अर्थव्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

7. गठबन्धन सरकारों में राज्यपाल जैसे– संवैधानिक प्रमुख पद को भी दलगत राजनीति में घसीट दिया जाता है। राजनीतिक अस्थिरता, नौकरशाही की शक्ति में अपार वृद्धि, क्षेत्रीयता, अलगाववाद तथा विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिलता है।

उपर्युक्त कमियों के बावजूद गठबन्धन सरकार के कुछ सकारात्मक पक्ष भी है – पिछले सरकारों (2009-2019 तक) को देखा जाये तो इनमें काफी हद तक राजनीतिक स्थिरता पाई गयी है, अतः राजनीतिक अस्थिरता का आरोप निराधार है। साथ ही गठबन्धन में भाामिल विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच न्यूनतम साझा कार्यक्रम के द्वारा सहयोग एवं सामंजस्य स्थापित कर आम सहमति से कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। केन्द्रीय स्तर पर गठबन्धन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी वास्तविक अर्थों में राजनीतिक संघवाद को मजबूती प्रदान कर रही है। इससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया मजबूत होती है तथा यह देश की एकता और अखण्डता को मजबूत करने में भी सहायक है। गठबन्धन सरकार में किसी प्रकार की राजनीतिक तानाशाही का कोई स्थान नहीं होता है। साथ ही गठबन्धन सरकार द्वारा आम चुनावों के बिना भी अलोकप्रिय नेतृत्व में परिवर्तन सम्भव हो पाता है। गठबन्धन सरकार से लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं एवं मान्यताएं मजबूत होती हैं तथा क्षेत्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति गठबन्धन सरकार के दौर में होती है[10]। जिससे संतुलित क्षेत्रीय विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि गठबन्धन की सरकार वर्तमान राजनीति की आवश्यकता बन गयी है तथा गत् वर्षों में भारत की राजनीति में जो नया मोड़ आया है उसमें गठबन्धन की सरकार को नकारा नहीं जा सकता। अतः गठबन्धन सरकार के समक्ष उत्पन्न होने वाली प्रमुख समस्याओं के समाधान के लिये सुझाव रूप में यह कहा जा सकता है कि– इसकी सफलता के लिये हमें अपने देश की राजनीतिक परिस्थितियों और राजनीतिक संस्कृति के अनुरूप मार्ग खोजना होगा। किसी भी गठबन्धन की सफलता उसके घटक दलों के आचरण पर निर्भर करती है। अतः घटक दलों का एकमात्र लक्ष्य सत्ता में भागीदारी न होकर प्रशासन में गुणवत्ता सुनिश्चित करना होना चाहिए। लोक सभा में घटक दलों की संख्या के आधार पर उन्हें सरकार में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।[11] क्षेत्रीय समस्याओं का उचित समाधान निकाला जाना चाहिए, परन्तु उन्हें राष्ट्रीय हित से ऊपर नहीं रखा जाना चाहिए। गठबन्धन सरकार द्वारा सामूहिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए। गठबन्धन को सदा चुनाव पूर्व ही किया जाना चाहिए तथा सभी दलों को समान महत्व प्रदान किया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों द्वारा कोरी सिद्धान्तवादिता को त्याग कर समझौते की प्रवृत्ति और सार्वजनिक

जीवन में व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाया जाना चाहिए। गठबन्धन राजनीति उच्चशृंखलता का शिकार न होने पाये, कोई भी घटक दल सरकार गिराने का भय दिखाकर अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा पूरा न करे या क्षेत्रीय हितों के आगे भारत के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय हितों को दुश्प्रभावित करने की कोशिश न करें, इसके लिये सर्वसहमति से एक 'गठबन्धन धर्म' बनाया जाना चाहिए, जिसका पालन करना सभी घटकों के लिये अनिवार्य हो। तभी गठबन्धन सरकारें सफलता पूर्वक कार्य करते हुए राजनीतिक अस्थिरता को स्थायित्व प्रदान कर सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. फड़िया, डॉ.बी.एल. एवं डॉ. कुलदीप फड़िया : भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन आगरा, 2018, पृ. 669
2. गुप्ता, भवानी सेन : इण्डिया–प्राबलम्स ऑफ गवर्नेन्श, कोणार्क पब्लिशर, नई दिल्ली, 1996, पृ. 104
3. कश्यप एवं गुप्त : राजनीति कोश, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, विश्वविद्यालय, 2009, पृ. 57
4. दि आक्सफोर्ड डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण, आक्सफोर्ड, पृ. 382
5. रिकर, विलियम एच. : द थ्योरी ऑफ पोलिटिकल कोलिशंस, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1962, पृ. 12
6. सिंहल, डॉ. एस.सी. : भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2009-10, पृ. 332-333
7. उप्पल, भवेता : स्वतंत्र भारत में राजनीति, एस.सी.ई.आर.टी., जून-2007, पृ. 178
8. Times of India, Lucknow, 23th May, 2004
9. लिंपोस, जे.एल. : द प्रोटक्सन ऑफ माइनरिटीज, युनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1980, प .3
10. जायसवाल, डॉ. रामकृष्ण : भारतीय राज्यों में भाासन एवं राजनीति, शांति प्रकाशन, फैजाबाद, 1994, पृ. 213-214
11. Time of India, (Editorial), Lucknow, 10th Sep., 2004, P-7

गठबंधन राजनीति और स्थायित्व की समस्या

कमलेश नारायण मिश्र एवं अंजुलता मिश्र

Lkkjk'k% *किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में गठबंधन राजनीति की जरूरत उस समय पड़ती है जब कोई एक पार्टी अकेले बहुमत पाने से वंचित हो जाती है। कभी-कभी कोई एक पार्टी अकेले बहुमत पाकर भी अन्य पार्टियों को अपने साथ गठबंधन में शामिल कर लेती है, लेकिन प्रायः गठबंधन की जरूरत बहुमत की सीमा रेखा पार कर लेने की होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में बहुमत की व्याख्या भी मतदान की प्रक्रिया के आधार पर दो प्रकार से होती है। मतदान के लिये जहाँ सूची प्रणाली प्रचलन में है। वहाँ बहुमत कुल मतों के पचास प्रतिशत से अधिक मत पाने वाले दल या गठबंधन को हासिल होता है। हमारे देश में जहाँ ब्रिटिश-अमेरिकी मॉडल का पालन होता है। वहाँ जीती गयीं सीटों के आधार पर बहुमत का निर्धारण होता है। यही कारण है कि 1952 से लेकर 1984 तक (1977 को छोड़कर) कांग्रेस कुल मतों का 40 से 48 प्रतिशत भाग पाकर ही लगातार बहुमत पाती रही है। यहाँ तक कि कई बार कांग्रेस सिर्फ 40 प्रतिशत मत पाकर लोकसभा की दो-तिहाई सीटें हासिल करने में सफल रही है।*

प्रस्तावना

गठबंधन राजनीति कोई नयी अवधारणा नही है। यूरोप के अधिकांश देशों और इज़राइल आदि में काफी पहले से गठबंधन की राजनीति अस्तित्व में रही है। इन देशों में द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले से ही कई राजनीतिक दलों के द्वारा मिल-जुलकर सरकार बनाने का परम्परा थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वहाँ गठबंधन की राजनीति का स्वरूप और भी स्पष्ट हुआ और उसके बाद तो इन देशों में जिस तरह का राजनीतिक माहौल विकसित हुआ है। यही कारण है कि अधिकांश यूरोपीय और इज़राइल आदि देशों में गठबंधन के बिना किसी सरकार के निर्माण की कोशिश नहीं होती। वहाँ गठबंधन संस्कृति का विकास भी ठीक से होता है और इसी कारण वहाँ सरकारें अपेक्षाकृत स्थिर होती है।

भारत में गठबंधन की राजनीति का इतिहास आजादी से पहले का है। शुरू में पहला बड़ा गठबंधन कांग्रेसी सरकार की समाप्ति के बाद देश में बनी पहली कैबिनेट का था जिसमें बाबा साहेब अंबेडकर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे लोग मंत्रिमंडल के सदस्य बने। वो एक तरह से राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा थी।

उससे पहले जो अंग्रेजों के खिलाफ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक बहुत बड़ा संयुक्त मोर्चा ही थी। लेकिन जिस अर्थ में हम गठबंधन राजनीति की बात करते हैं इसकी शुरूआत 1964-65 से होती है। 1964-65 में देश में अकाल, भूख और भ्रष्टाचार का हमला हुआ और तीन प्रगतिशील दलों में जिसमें लोहिया की समाजवादी पार्टी, गोपालन की कम्युनिस्ट पार्टी और डागें की कम्युनिस्ट पार्टी ने साथ मिलकर साझा मोर्चा बनाकर गरीबी, महंगाई और भुखमरी के खिलाफ आंदोलन का एक सिलसिला शुरू हुआ इसके बाद हुए चुनावों में डॉ. लोहिया ने गैर-कांग्रेसवाद के विश्लेषण के साथ संयुक्त मोर्चा की राजनीति को दिशा दी।

भारतीय राजनीति का मौजूदा दौर गठबंधन का है। इसलिये एक स्थिर गठबंधन तंत्र के ठोस मॉडल पर भी विचार करने का मामला है। सर्वप्रथम अवसरवादी और तात्कालिक गठबंधनों के कारण अस्थिरता बनी रहेगी। इसलिये ऐसे गठबंधन बने जो उदार विचारधारा पर आधारित हों। इसमें विभिन्न समूहों की पहचान एवं हितों का विविधता मूलक समावेश हो। अपनी पहचान स्थापित करने की राजनीति सामान्य हितों के आधार पर ही चल सकती है। इस व्यवस्था में क्षेत्रीय, धार्मिक, जातीय और अन्य सामुदायिक पहचान और उनके हितों के साथ राष्ट्रवाद धर्मनिरपेक्षता एवं समानता की विचारधाराओं का एक बेहतर मजबूत समन्वित आधार जरूरी है। भारत जैसे देश में बिना राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय स्वाभिमान की विचारधारा को अपनाये कोई भी दल बहुसंख्यक आबादी को स्वीकार्य नहीं हो सकता। राष्ट्रवाद और सेक्यूलरिज्म एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

गठबंधन की व्यवस्थित एवं स्थिर राजनीति के लिये जिन दो पार्टियों के नेतृत्व में गठबंधन बने उसके पास संसद या विधानसभा की कुल 80 प्रतिशत सीटें होनी चाहिये। ऐसा नहीं होने पर हमेशा अस्थिरता का दौर बना रहेगा क्योंकि कई दलों के आपसी हित एवं व्यक्तियों के अन्य गठबंधनों को ठीक से काम ही नहीं करने देंगे।

तीसरी बात है अर्थव्यवस्था की जवाबदेह स्वायत्तता। इटली इसका ताजा उदाहरण है। ब्रिटेन में भी लेबर पार्टी की सरकार आने से व्यवस्था में कोई बड़ा फेरबदल नहीं हुआ चूँकि राजनीति और अर्थव्यवस्था उन देशों में एक दूसरे पर कम निर्भर है इसलिये वहाँ अधिक स्थिरता भी है। हमारे यहाँ केन्द्र में थोड़ी सी राजनीतिक अस्थिरता से अर्थव्यवस्था को बड़ा नुकसान होने लगता हैं क्योंकि यहाँ अभी तक राजनीति से अलग एक व्यवस्थित एव स्वायत्त अर्थ तंत्र का विकास होना बाकि है।

चौथी बात यह है कि गठबंधन का कोई न कोई मानक नियम (फार्म) तो बनाना ही होगा। संसद या विधानसभा में जिस दल का जितना प्रतिनिधित्व होगा, सत्ता में उसकी उतनी ही भागीदारी होनी चाहिये। आज हालात यह है कि उनकी कोई वैचारिक प्रतिबद्धता नहीं है कोई भी दल कभी भी किसी भी गठबंधन में जा सकता है–उसे ब्लैकमेल कर सकता है।

आज समस्या यह भी है कि गठबंधन सरकारों के सामने कोई लोकप्रिय जानांदोलन नहीं है क्योंकि सत्ता से हर पार्टी के हित जुड़े हुए हैं। आज देश की सामाजिक संरचना बदल रही है। जब तक सभी सामूहिक समूहों का सरकार या सत्ता में प्रतिनिधित्व नहीं होगा तब तक राजनीतिक स्थिरता नहीं आ सकती। अस्थिरता का समाधान एक या दो पार्टी को बहुमत मिलने से नही हो सकता। सत्ता के विकेन्द्रीकरण को संस्थागत रूप देना होगा। हमें राजनीतिक व्यवस्था के कुछ संरचनात्मक बदलाव कर इसे अधिक संघीय बनाना होगा। राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व और प्रांतीय प्रतिनिधित्व की व्यवस्था पर भी विचार किया जा सकता है कि संविधान में संशोधन कर राष्ट्रीय पार्टियों को ही केवल संसद का चुनाव लड़ने का प्रावधान किया जाए और क्षेत्रीय दलों को प्रांतीय चुनावों के लिये निर्धारित किया जाये।

जिसे हम स्थिरता कहते हैं वह एक राजनीतिक समस्या है। राजनीति में जो प्रतिनिधित्व है वह समाज से अधिक नहीं है। आज भारतीय राजनीति के प्रतिनिधित्व का संकट है। इसके संतुलन की प्रक्रिया 1967 में शुरू हुई उसे पूरा होना बाकी है। सामाजिक परिवर्तन और प्रतिनिधित्व के संतुलन को यदि राजनीति अपने में समाहित नहीं करती और केवल बहुमत से स्थिरता लायी जायेगी तो वह आरोपित स्थिरता होगी जो चलेगी नहीं। आज 50 के दशक की राष्ट्रीय सहमति नहीं चल सकती। लोगों ने उस अभिजात्य सहमति को अस्वीकार कर दिया है। अब एक नयी राष्ट्रीय सहमति बनानी होगी जिसमें जनता के सभी तबकों की भागीदारी हो। आज वह पुराना मध्य वर्ग नहीं रहा जिसमें केवल सवर्ण जातियों का वर्चस्व था। आज एक अधिक बहुजातीय-बहुभाषी विस्तृत मध्यवर्ग बन रहा है। विचारहीन गठबंधन और विचारों के तालमेल की शुरूआत 1977 में जनता पार्टी के गठन के साथ ही शुरू हो गयी थी। इस समय सभी पार्टियों ने परस्पर विरोधी विचारधाराओं और अपनी स्वतंत्र पहचान को किनारे रखकर जनता पार्टी के रूप में कांग्रेस का विकल्प बनने की कोशिश की थी। ठोस विचारधारा से हीन ऐसे राजनीतिक गठबंधन का जो हश्र होना चाहिये था वही हुआ लेकिन तब से उस इतिहास को उसके विद्रूप परिणामों की उपेक्षा करते हुए कई बार दोहराया गया है। एक बार तो ऐसा लगने लगा था कि अब यह भारतीय राजनीति की अनिवार्य परिणति हो गयी है। किन्तु एनडीए और यूपीए सरकार ने पूरे पांच साल तक सरकार चलाकर गठबंधन राजनीति को एक नयी दिशा दी है।

निष्कर्ष

आज की सत्ता की राजनीति को जो माहौल है उसे आदर्श नहीं कहा जा सकता। तात्कालिक चुनावी सफलता का लक्ष्य लेकर चलने वाले राजनीतिक दलों के लिए स्वतंत्र पहचान और विचारधारा का कोई विशेष मतलब नहीं रह गया है। कांग्रेस और भाजपा के अलावा जो भी दल हैं, उनमें अधिकांश के साथ क्षेत्रीय आकांक्षाएं जुड़ी हुई हैं। ये दल तीसरा मोर्चा बनाने के लिए एक मंच पर तो आसानी से आ जाते हैं लेकिन जैसे ही इनमें से किसी एक दल को अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति का कोई अन्य जरिया दिखता है वो उधर को लपक लेते हैं। लेकिन निराश होने की जरूरत नही है। धीरे-धीरे गठबंधन की राजनीति में मजबूती आ रही है। गठबंधन के बड़े दल को यह मालूम हो चुका है कि अपने अहं को स्थगित रखकर और छोटे दलों के अहं का सम्मान करके ही गठबंधन राजनीति को नई दिशा दी जा सकती है।

संदर्भ

1. जैन, पुखराज एवं फाड़िया, बी.एल (भारतीय शासन एवं राजनीति साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, पृ. 106)
2. इंडिया टुडे (हिन्दी) 26 अगस्त 2004
3. सिंह एम.पी. एवं हिमांशु राय (2005) इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम, मानक पब्लिकेशंस प्रा. लि., नई दिल्ली पृ. 378
4. भारतीय राजनीतिक प्रणाली, दि मैकमिलन के. ऑफ इंडिया लि., नई दिल्ली, पृ. 320 सईद एम.एस. (1978)
5. डा. हरिद्वार राय एवं प्रसाद सिंह, राजनीतिक दल पृ. 318
6. Saved K. chatterji, The Colation Govt. 1974 Chapter IV
7. कश्यप तथा गुप्त, राजनीतिक कोष पृ. 57
8. E-Sridharan "Coliation Politics" Seminar, No- 437 Jan. 1996, P-56
9. Dipankar Gupta "Coalition Politics: Making a Virtue of Necessity," Ibid May 28, 1996 P-12

बिहार के सन्दर्भ में गठबन्धन सरकार एवं प्रशासन

कुमारी सरोज एवं अनिल कुमार ओझा

Ikjk'k% *गठबन्धन सरकार की आवश्यकता किसी एक राजनीतिक दल को सरकार गठन के लिए आवश्यक बहुमत नहीं प्राप्त होने की स्थिति में पड़ती है। द्विदलीय या एक दलीय प्रभुत्ववाली राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना में बहुदलीय व्यवस्था में गठबन्धन सरकार की संभावना अधिक है। संघात्मक व्यवस्थाओं में जनसांख्यिकी विविधता एवं अन्य कारणों से दलों की संख्या में वृद्धि होती है। जिससे दल व्यवस्था में तरलता आती है तथा दलीय प्रतियोगिता का स्वरूप राष्ट्रीय न रहकर राज्य-केन्द्रित हो जाता है। कालक्रम में सुस्थापित राष्ट्रीय दलों के जनाधार का क्षरण होता है। गठबन्धन सरकार की प्रकृति मुख्यतः निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती है– प्रथम, सदन की दलीय स्थिति; द्वितीय, गठबन्धन में शामिल दलों की आनुपातिक स्थिति; तृतीय, गठबन्धन में शामिल दलों के बीच वैचारिक समानता की स्थिति, तथा चौथा, गठबन्धन का नेतृत्व। प्रस्तुत आलेख बिहार के सन्दर्भ में गठबन्धन सरकार और प्रशासन के आलोचनात्मक मूल्यांकन का एक विनम्र प्रयास है। वस्तुतः गठबन्धन सरकार आदर्श स्थिति नहीं है। विचारधारात्मक अनुरूपता का अभाव तथा सहयोगी घटक दल से जनाधार की प्रतिस्पर्धा स्थिति को जटिल बनाती है। 2017 में महागठबन्धन सरकार की समाप्ति इसी कारण से हुई। आज 2019 में भाजपा के बढ़ते जनसमर्थन और उसके केन्द्रीय नेतृत्व के दृढ़ रवैये के कारण जद(यू) असहज स्थिति में प्रतीत हो रही है। इसका प्रभाव प्रशासन पर निःसन्देह पड़ेगा।*

प्रस्तावना

गठबन्धन सरकार का तात्पर्य संसदीय शासन प्रणाली में बहुदलीय मन्त्रिपरिषद् है। इसकी आवश्यकता संसद के लोकप्रिय निम्न सदन के लिए संपन्न कराये गए आम चुनाव में किसी एक राजनीतिक दल को सरकार गठन के लिए आवश्यक बहुतम नहीं प्राप्त होने की स्थिति में पड़ती है। द्विदलीय या एक दलीय प्रभुत्ववाली राजनीतिक

व्यवस्थाओं की तुलना में बहुदलीय व्यवस्था में गठबन्धन सरकार की संभावना अधिक है। किसी राजनैतिक मुद्दे पर दलों के विभाजन और दल-बदल के कारण भी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। किसी विशाल देश में विशेषकर संघात्मक व्यवस्थाओं में जनसांख्यिकी विविधता एवं अन्य कारणों से दलों की संख्या में वृद्धि होती है। जिससे दल व्यवस्था में तरलता आती है तथा दलीय प्रतियोगिता का स्वरूप राष्ट्रीय न रहकर राज्य-केन्द्रित हो जाता है। कालक्रम में सुस्थापित राष्ट्रीय दलों के जनाधार का क्षरण होता है। इस क्षरण की सघनता और मात्रा अलग-अलग राज्यों और अंचलों में अलग-अलग होती है। जिससे राज्य-स्तरीय क्षेत्रीय दलों का उदय होता है।

सामान्यतः गठबन्धन सरकार की प्रकृति एकदलीय सरकार से भिन्न होती है। गठबन्धन सरकार की प्रकृति मुख्यतः निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करती है– *प्रथम,* सदन की दलीय स्थिति; *द्वितीय,* गठबन्धन में शामिल दलों की आनुपातिक स्थिति; *तृतीय,* गठबन्धन में शामिल दलों के बीच वैचारिक समानता की स्थिति, तथा *चौथा,* गठबन्धन का नेतृत्व। सरकार गठन के लिए आवश्यक बहुमत जुटाने के उद्देश्य से जब चुनावपूर्व गठबन्धन किया जाता है, तब स्थिति भिन्न होती है। चुनाव पूर्व गठबन्धन में सीटों के पूर्ण तालमेल का प्रयास किया जाता है, इसमें दोस्ताना संघर्ष की नौबत प्रायः नहीं आती है। बल्कि एक चुनाव घोषणा पत्र भी जारी किया जाता है। जैसाकि 1999 में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन द्वारा शासन की राष्ट्रीय कार्यसूची (नेशनल एजेंडा फॉर गवर्नेंस) जारी की गयी थी।[1] इसके पूर्व 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा ने संयुक्त चुनाव घोषणा पत्र जारी किया था। राष्ट्रीय मोर्चा में जनता दल के अतिरिक्त तेलगू देशम पार्टी, असम गण परिषद् तथा द्रविड़ मुनैत्र कड़गम आदि शामिल थे। नेशनल फ्रंट के संयोजक टी.डी.पी. नेता एन.टी. रामाराव थे तथा एन.डी.ए. के संयोजक तत्कालीन समता पार्टी नेता जार्ज फर्नांडीस थे। यूनाइटेड फ्रंट (1996-98) के संयोजन चन्द्रबाबू नायडू थे।

वस्तुतः भारत में राष्ट्रीय स्तर पर पहली गठबन्धन सरकार 1977 में जनता पार्टी की मोरारजी देसाई के नेतृत्व में बनी थी, जिसमें अकाली दल भी शामिल था। 1979 में चरण सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस (एस) के साथ अल्पकालिक सरकार गठित हुई थी। 1989 में विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के बाद 1996-98 के बीच संयुक्त मोर्चा (यूनाइटेड फ्रंट) के द्वारा जनता दल के एच.डी.दैवगोड़ा तथा इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में 13 दलों का, जिसे कांग्रेस का बाहर से समर्थन प्राप्त था, दो गठबन्धन सरकारें गठित हुईं। 1998-2004 के दौरान अटल बिहार वाजपेयी के नेतृत्व में एन.डी.ए. की गठबन्धन सरकार रही। अपना कार्यकाल पूरा करनेवाले गठबन्धन सरकार के पहले प्रधानमंत्री अटल बिहार वाजपेयी रहे, यद्यपि उन्होंने भी समयपूर्व आम चुनाव करा अपना कार्यकाल छोटा कर लिया।[2] वर्ष 2004 से 2014 तक कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (यूनाइटेड प्रोग्रेसिव

एलांएस-यू.पी.ए.) की सरकार रही। यू.पी.ए. की अध्यक्ष कांग्रेस की अध्यक्ष सोनिया गाँधी रहीं, जिनके द्वारा मनोनीत कॉंग्रेस के ही राज्यसभा में नेता मनमोहन सिंह दस वर्षों तक प्रधानमन्त्री रहे।

यों तो 2014 तथा 2019 में भी भारतीय जनता पार्टी में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में गठित सरकारों में अन्य दलों का प्रतिनिधित्व रहा तथा तकनीकि दृष्टि से इन्हें एन.डी.ए. की गठबन्धन सरकार कह सकते हैं। किन्तु 2014 में भाजपा को 282/543 तथा 2019 में 303/542 सीटों के साथ पूर्ण बहुमत प्राप्त था। 2014 की गठबन्धन सरकार में तेलगू देशम पार्टी (अशोक गजपति राजू तथा श्री चौधरी), शिवसेना (अनंत गीते), लोकजन शक्ति पार्टी (रामविलास पासवान), राष्ट्रीय लोक समता पार्टी (उपेन्द्र कुशवाहा), अकाली दल (हरसिमरत कौर बादल), अपना दल (अनुप्रिया पटेल), रिपब्लिकन पार्टी (रामदास अथवले) का प्रतिनिधित्व था। किन्तु 2014 की सरकार एक प्रकार का सरप्लस गठबन्धन की सरकार थी अर्थात् सरकार का अस्तित्व किसी सहयोगी दल पर निर्भर नहीं था। नीति संबंधी प्रश्नों पर किसी दल का निषेधाधिकार (वीटो) प्राप्त नहीं था।

इसी प्रकार 2019 की मोदी सरकार भी नाममात्र की गठबन्धन सरकार है। जिसमें अकाली दल, शिवसेना, लोक जनशक्ति पार्टी, रिपब्लिक पार्टी (अथवले) को सांकेतिक प्रतिनिधित्व दिया गया है। इसी कारण जनता दल (यूनाइटेड) ने मन्त्रिपरिषद् में सम्मिलित होने का आग्रह अस्वीकार कर दिया। बिहार से 16 लोकसभा तथा छह राज्यसभा सदस्यों वाले जनता दल (यूनाइटेड) ने सरकार में भागीदारी के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व की मांग रखी थी। इसके बाद जे.डी.यू. ने एन.डी.ए. में बने रहने तथा सरकार के साथ दृढ़ता से खड़े रहने की घोषणा की है। उल्लेखनीय है कि बिहार में जेडीयू तथा बीजेपी की गठबन्धन सरकार जुलाई 2017 से है तथा राज्य सरकार का अस्तित्व भाजपा पर आधारित है।

प्रस्तुत आलेख बिहार के सन्दर्भ में गठबन्धन सरकार और प्रशासन के आलोचनात्मक मूल्यांकन का एक विनम्र प्रयास है। उत्तर भारत के अन्य राज्यों की भांति बिहार में भी गठबन्धन सरकारों की शुरूआत 1967 से मानी जाती है, जब डॉ0 राम मनोहर लोहिया के प्रयासों से विपरीत वैचारिक ध्रुवों पर अवस्थित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.आई.) तथा भारतीय जनसंघ ने संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, स्वतन्त्र पार्टी तथा विक्षुब्ध कांग्रेस जनों द्वारा गठित जनक्रान्ति दल के साथ मिलकर महामाया प्रसाद सिन्हा के नेतृत्व में बिहार की पहली गठबन्धन सरकार बनाई। कई राज्यों में कांग्रेस का विभाजन हुआ– भारतीय क्रांति दल (उत्तर प्रदेश), उत्कल कॉंगेस, बंगला कांग्रेस, केरल कांग्रेस, विशाल हरियाणा पार्टी आदि। बिहार में 1967-72 गठबन्धन सरकारों का दौर रहा।

भारतीय राजनीति की इस नवीन परिघटना ने संसदीय राजनीति और दल

व्यवस्था के अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट किया था। संस्थात्मक और व्यवहारवादी पद्धतियों के प्रयोग द्वारा अनेकानेक अध्ययन प्रकाशित हुए, जिनमें इस परिघटना की व्याख्या और विश्लेषण किया गया। नवीन सिद्धान्त निर्माण की दिशा में कुछ सार्थक सामान्यीकरण भी सामने आए।

परन्तु राष्ट्रीय स्तर पर काँग्रेस की प्रभुत्वशील स्थिति से पतन द्वारा भारतीय राजनीति में नये अध्याय की शुरूआत हुई। 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 तथा 2014 के लोकसभा चुनावों में किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। 1977 में द्विदलीय व्यवस्था (कांग्रेस और जनता पार्टी) की जो संभावना मायरन वीनर को दिखी थी[3] वह भी जनता पार्टी के बिखराव तथा कांगेस के विभाजन (कांग्रेस-इंदिरा का गठन) से तिरोहित हो गयी।[4] 1980 के दशक में असम, आन्ध्रप्रदेश, जम्मू-कश्मीर में क्षेत्रीय दलों के उदय तथा पं. बंगाल, कर्नाटक में गैर काँग्रेस दलों की सशक्त ने दल व्यवस्था का स्वरूप परिवर्तित किया। दल व्यवस्था का क्षेत्रीयकरण हुआ। राज्य दलीय चुनावी प्रतियोगिता के पृथक अखाड़े बन गये। राष्ट्रीय राजनीति इन्हीं राज्य स्तरीय राजनीति के परिणामों से स्वरूप ग्रहण करने लगी। इसी दौर में राष्ट्रीय स्तर पर गठबन्धन या अल्पमत सरकार (1991-1996) का दौर चला।[5]

उल्लेखनीय है कि 2014 और 2019 में भले ही एन.डी.ए. की गठबन्धन सरकारें बनीं, परन्तु इनकी प्रकृति एक दलीय सरकार की है।

जहाँ तक बिहार का प्रश्न है तो 21वीं सदी इस राज्य के लिए गठबन्धन सरकारों का काल रहा है। वर्ष 2000 में नीतीश कुमार की पहली सरकार समता पार्टी, जनता दल (यू) तथा भाजपा की गठबन्धन सरकार थी। जिसने अपेक्षित बहुमत जुटा पाने में विफल रहने पर एक सप्ताह में इस्तीफा दिया था। बिहार विधानसभा अध्यक्ष पद पर इसके उम्मीद्वार गजेन्द्र प्रसाद हिमांशु कांग्रेस के सदानन्द सिंह से पराजित हो गये थे। तब राष्ट्रीय जनता दल की राबड़ी देवी के नेतृत्व में राजद, काँग्रेस, क्रांतिकारी साम्यवादी पार्टी, यू.जी.डी.पी. आदि की गठबंधन सरकार बनी। किन्तु नवम्बर 2000 में बिहार विभाजन (झारखंड राज्य के गठन) के बाद विधानसभा का स्वरूप बदल गया। 324 के बदले 243 सदस्यीय विधानसभा में अन्य दलों पर राजद की निर्भरता कम हो गयी। कांग्रेस के प्रायः सभी विधायक मंत्रिपरिषद् में शामिल थे पर 2001 में 91वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा मन्त्रिपरिषद् की सदस्य संख्या 15 प्रतिशत अर्थात् 36 तय कर दी गयी। राबड़ी देवी की पुनर्गठित गठबन्धन सरकार में राजद और काँग्रेस शामिल थी, पर जनस्मृति और लोक छवि राजद सरकार ही रही।[6] इसका कारण काँग्रेस केन्द्रीय नेतृत्व का दृष्टिकोण था, जिसने बिहार में द्वितीय भूमिका को ही राष्ट्रीय सन्दर्भ में संभावनापूर्ण माना था। 2004 में यू.पी.ए. सरकार के गठन में राजद 24 लोकसभा सदस्यों के साथ प्रमुख घटक की भूमिका में थी।[7]

सच्चे अर्थों में स्थिर गठबन्धन सरकार की शुरूआत बिहार में 2005 में हुई।

फरवरी-मार्च 2005 के चुनावों में किसी दल या चुनाव पूर्व गठबंधन को बहुमत नही मिला। चुनाव परिणाम इस प्रकार थाः राजद 75, काँग्रेस 10, जद (यू) 55, भाजपा 37, लोजपा 29, सी.पी.आई. तीन, सी.पी.एम. एक, सी.पी.एम.एल सात, बसपा चार, सपा दो तथा निर्दलीय 17।

परिणामस्वरूप किसी मंत्रिपरिषद् का गठन नहीं हो सका। लोजपा विधायकों ने जब विद्रोह कर जद(यू)– भाजपा को समर्थन देना चाहा, तत्क्षण राज्यपाल बूटा सिंह ने विधानसभा भंग करा दी जिसे सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अवैध करार दिया। पर तब तक अक्टूबर-नवम्बर 2005 में पुनः विधानसभा चुनाव संपन्न हुए, जिसमें जद(यू)– भाजपा गठबन्धन को क्रमशः 88 और 55 सीटों के साथ पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। एन.डी.ए. सरकार नीतीश कुमार के नेतृत्व में गठित हुई, जिसमें भाजपा के सुशील कुमार मोदी उपमुख्यमंत्री बने। मंत्रिपरिषद् में संख्या तथा विभागों का वितरण आनुपातिक आधार पर किया गया। विभाग घटकवार चिन्हित कर दिये गये।

2005 से 2010 तक गठबंधन सरकार सुचारू रूप से चली।[8] प्रशासन के क्षेत्र में इस गठबन्धन सरकार की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ रहीं। पंचायती राज तथा शहरी स्थानीय निकायों में स्त्रियों को 50 प्रतिशत सीटें तथा पद मिलें। अतिपिछड़ी जातियों के लिए भी 20 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। पूर्व में एकल पदों पर बिहार में आरक्षण लागू नहीं था, इसे बहाल किया गया। 2006 के अधिनियम के अनुसार 2006, 2011 तथा 2016 में पंचायती राज संस्थाओं का निर्वाचन संपन्न हुआ। इन्हें कार्य सौंपे गये, इनके लिए निधि एवं कार्मिकों की व्यवस्था की गयी। नगरीय निकायों के चुनाव भी 2007, 2012 तथा 2017 में संपन्न हुए, जिनमें अनुसूचित जाति के अतिरिक्त अतिपिछड़ी जातियों तथा स्त्रियों के आरक्षण के सफल प्रयोग के कारण वंचित तबकों का सशक्तिकरण हुआ। विकेन्द्रित विकास में इनकी सहभागिता बढ़ी।

सड़क, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं को गठबंधन सरकार ने प्राथमिकता दी। सबसे बढ़कर विधि व्यवस्था की स्थिति में सुधार हुआ। परिणामस्वरूप इस गठबन्धन सरकार की स्वीकार्यता बढ़ी। प्रशासन की कार्यकुशलता पर गठबन्धन के कारण किसी प्रकार की बाधा सामने नहीं आयी। इसका कारण था घटक दलों में परस्पर विश्वास तथा समन्वय। 2009 के लोक सभा चुनावों में जद(यू) को 20 तथा भाजपा को 12 सीटें मिली, राजद 22 से चार पर आ गयी। जबकि राष्ट्रीय स्तर पर न केवल यू.पी.ए. सरकार की पुर्नवापसी हुई, बल्कि काँग्रेस की संख्या 145 से बढ़कर 206 हो गई थी। गुड गवर्नेंस के लिए गठबन्धन सरकार को सराहना मिल रही थी।

पाँच वर्षों के सफल एवं स्थिर कार्यकाल के बाद 2010 के विधानसभा चुनावों में व्यापक जन समर्थन मिला। 243 में जद(यू) ने 115 तथा भाजपा 91 सीटें प्राप्त की। राजद 54 सीटों से 22 पर आ गयी। 2010 की गठबन्धन सरकार में भी मन्त्रिपरिषद् का गठन तथा विभागों का वितरण पूर्व के फार्मूले के अनुसार हुआ। दोनों घटक दलों में किसी प्रकार का विवाद सार्वजनिक नहीं हुआ। जद(यू) तथा समता पार्टी भाजपा

की सहयोगी क्रमशः 1996 तथा 1999 से थी।[9] राष्ट्रीय स्तर पर कुछ बिन्दुओं पर वैचारिक मतभेद को हाशिये पर रखकर सरकार चलाने में सफलता पायी।

बिहार विधानसभा 2010 के चुनावों के पूर्व एक विवाद सामने आया था, जब भाजपा राष्ट्रीय कार्यकारिणी की पटना बैठक के अवसर पर आयोजित रात्रिभोज जद(यू) द्वारा रद्द कर दिया गया था।

प्रशासनिक स्तर पर किये गये प्रयत्नों का परिणाम सेवा प्रदायन में मात्रा और गुणवत्ता की वृद्धि के रूप में सामने आया। परन्तु जद(यू) बिहार में क्रमशः नेतृत्व-केन्द्रित तथा नीतीश कुमार के व्यक्तित्व पर आधारित होने लगी। यू.पी.ए., विशेषकर कांग्रेस तथा राजद के बदले जद(यू) से सहयोग के संकेतों से भ्रम उत्पन्न हुआ। 2009-2014 के दौरान गठबन्धन की सरकार की प्रशंसा केन्द्रीय मन्त्रालय द्वारा की जाने लगी। किन्तु, तीव्र विकास दर के बावजूद सकल राज्य घरेलू उत्पाद और अन्य संकेतकों की दृष्टि से बिहार का पिछड़ापन तभी दूर किया जा सकता है, जब इसे विशेष दर्जा मिले, ऐसी मांग तीव्रता से जद(यू) द्वारा की जाने लगी। बिहार अस्मिता, उपराष्ट्रवाद जैसे तत्वों को रेखांकित किया जाने लगा। इसके बावजूद जद(यू) भाजपा गठबन्धन 2013 के मध्य तक बिहार में सफल कही जा सकती है। भाजपा द्वारा 2014 लोकसभा चुनाव के पूर्व राष्ट्रीय अभियान समिति का प्रमुख नरेन्द्र मोदी को बनाया गया, फिर उन्हें प्रधानमन्त्री उम्मीद्वार भी घोषित किया गया। जद(यू) इसी मुद्दे पर एन.डी.ए. से अलग हो गयी। 243 के सदन में इसके 115 सदस्य थे। मई 2014 तक जद(यू) की ही सरकार रही। नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने पर नीतीश कुमार ने पद त्याग कर जीतनराम मांझी को मुख्यमंत्री बनाया। फिर फरवरी 2015 में नीतीश कुमार मुख्यमन्त्री बने। मांझी ने जद(यू) में फूट डलवायी तथा नीतीश कुमार की सरकार अन्य दलों के बाहरी समर्थन से नवम्बर 2015 तक चली।

2015 के विधानसभा चुनाव में जद(यू) ने राजद तथा काँग्रेस से महागठबन्धन बनाकर भाग लिया। दूसरी ओर भाजपा ने लोजपा, रालोसपा तथा हम के साथ गठबन्धन बनाया। जद(यू) 71, राजद 80, कांग्रेस 27, भाजपा 53, लोजपा 2, रालोसपा 2, हम 1 सीट पर विजयी हुई। महागठबन्धन 178 तथा एन.जे.ए. 58 सीटें प्राप्त कर सकी। महागठबंधन की सरकार का कार्यकाल नवम्बर 2015 से जुलाई 2017 तक रहा। इसमें नीतीश कुमार मुख्यमन्त्री, तेजस्वी यादव उपमुख्यमन्त्री रहे। मन्त्रिपरिषद् में आनुपातिक भागीदारी रही तथा विभागों का वितरण सर्वमान्य फार्मूले के तहत हुआ। प्रांरभ में गठबन्धन सरकार का कार्यकाल सन्तोषप्रद रहा। किन्तु शीघ्र ही राजद द्वारा प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर हस्तक्षेप, नियुक्ति पदस्थापना में पक्षपात की शिकायतें आने लगीं। इस गठबन्धन सरकार ने शराबबन्दी लागू की, जिसे क्रियान्वित कराना प्रशासन के लिए निरन्तर चुनौतीपूर्ण रहा।

जुलाई 2017 में जद(यू) ने महागठबन्धन से पृथक होकर भाजपा के साथ गठबन्धन सरकार का निर्माण किया। जो जून 2019 में भी जारी है। सरकार के

विभागों का वितरण तथा मंत्रिमंडल में हिस्सेदारी सदन में संख्या तथा पूर्व के फार्मूले के अनुसार किया गया है। 2019 के लोकसभा चुनाव में जद(यू), भाजपा तथा लोजपा एन.डी.ए. का हिस्सा रही।

जहाँ तक प्रशासनिक पक्ष का प्रश्न है तो 2005 से 2013 तक का कार्यकाल सचेष्ट प्रयत्नों के कारण उत्कृष्ट कहा जा सकता है। 2013 से 2017 का काल प्रशासनिक पक्ष पर राजनीतिक पक्ष के हावी होने का काल है। 2017 से मई 2019 का काल न्याय के साथ विकास की दिशा में पुर्न प्रयत्न का काल है। नरेन्द्र मोदी के मन्त्रिपरिषद् में जद(यू) द्वारा सांकेतिक प्रतिनिधित्व का अवसर अस्वीकार करने से नयी परिस्थिति उत्पन्न हुई है, जिसके प्रभाव से बिहार की गठबन्धन सरकार अछूता नहीं रहेगा।

वस्तुतः गठबन्धन सरकार आदर्श स्थिति नहीं है। विचारधारात्मक अनुरूपता का अभाव तथा सहयोगी घटक दल से जनाधार की प्रतिस्पर्धा स्थिति को जटिल बनाती है। 2017 में महागठबन्धन सरकार की समाप्ति इसी कारण से हुई। आज 2019 में भाजपा के बढ़ते जनसमर्थन और उसके केन्द्रीय नेतृत्व के दृढ़ रवैये के कारण जद(यू) असहज स्थिति में प्रतीत हो रही है। इसका प्रभाव प्रशासन पर निःसन्देह पड़ेगा।

संदर्भ

1. Sridharan, Eswaran "Coalition strategies and the BJP's Expansion, 1989-2004", Common Wealth and Comparative Politics, no. 2 (2005), 194-221.
2. Sridharan, Eswaran, Coalitions and Party Strategies in India's Parliamentary Federation. Publics : The Journal of Federalism, 33, no. 4 (2003) 135-152.
3. Weiner, Myron, "The 1977 Parliamentary Elections in India", Asian Survey, 17, no. 7, (1977) 619-626.
4. Weiner, Myron, India at the Polls: The Parliamentary Elections of 1977, American Enterprises Institute of Public Policy Research, Washington, D.C., 1978, 107-111.
5. Adeney, Katharime and Lawrence Saez (eds.), Coalition Politics and Hindu Nationalism, Routledge, Oxon, 2005.
6. Ojha, Anil Kumar, "Congress in Bihar Politics : Form Dominance to Marginality", Studies in Humanities and Social Services, Indian Institute of Advance Study, Shimla, Vol. X, No. 1, Summer 2003, 107-115.
7. Ojha, Anil Kumar, "Alliances, Castes and Personalities : 14th Lok Sabha Elections in Bihar." Indian Journal of Political Science, Vol LXVII, No.4, October-December, 2006 717-732.
8. Kumari Saroj, "Regional Parties in Bihar Politics in N.P.Choudhary and Anil Kumar Ojha (eds.) Indian Democracy: Contemporary Challenges, Shipra Publications, New Delhi, 2013, 240-257.
9. Ojha, Anil Kumar and MR Kazimi, "Bipolar Competition and the 13th LoK Sabha Elections in Bihar" in Paul Wallance and Samashray Roy (eds.) India's 1999 Elections and 20th Century Politics, Sage Publications, New Delhi, 2003, 311-331.

गठबंधन की सरकार एवं भारतीय राजनीति

सुमित्रा देवी शर्मा

Ikjk'k% किसी भी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में दलीय प्रणाली सुशासन तथा उचित नियंत्रण का माध्यम बनती है। भारत भी संसदात्मक प्रणाली के द्वारा दलीय प्रणाली से आबद्ध है। भारत में दलीय प्रणाली में सदैव परिवर्तन देखे गए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से प्रारम्भ एकदलीय प्रभुत्व में कांग्रेस एकमात्र शक्तिशाली दल रहा। परन्तु वर्तमान में भारतीय लोकतंत्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है, जहाँ जमीनी सच्चाई देश को गठबंधन की राजनीति की ओर धकेल रही है। पिछले दशक से लगभग हर चुनावों के बाद किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने के कारण विभिन्न दलों की मिली-जुली सरकार केन्द्र व राज्यों में निर्मित हो रही है, जिसे गठबंधन सरकार या कई दलों की मिली-जुली मिश्रित सरकार कहा जाता है। प्रायः गठबंधन राजनीति में प्रत्येक घटक दल अपनी प्राथमिकताओं के निर्धारण एवं विकल्पों का चुनाव करते समय दलीय हित को सर्वोपरि महत्व देते हैं। हमारा देश गठबंधन सरकारों के युग में प्रवेश कर चुका है। भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस पार्टी जैसे दो प्रमुख दलों के अतिरिक्त क्षेत्रीय दल भी भारतीय राजनीति का अटूट हिस्सा बन चुके हैं। राजनीतिक दलों के लिए गठबंधन करना आसान होता है, लेकिन निभाना उतना ही कठिन होता है, जिसमें गठबंधन की सरकार विकास के वादे तो करती है परन्तु विकास उस क्षेत्र का होता है जहाँ के दल गठबंधन की सरकार में होते हैं। आज भारत में कोई भी राजनीतिक दल वैचारिकता के धरातल पर ईमानदार नहीं है। गठबंधन सरकारों के अनिश्चित कार्यकाल को देखकर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज भारतीय राजनीति में छोटे-छोटे क्षेत्रीय दलों की भरमार ने देश को राजनैतिक अस्थिरता के दौर में पहुँचा दिया है, क्योंकि ये दल प्रायः राष्ट्रीय हित नहीं बल्कि अपना क्षेत्रीय हित देखते हैं। वस्तुतः राजनीतिक गठबंधन बेशक सत्ता सुख सुलभ कराते हैं। लेकिन इसमें शामिल घटक दलों की बार-बार दोस्ती, धोखाधड़ी एवं सौदेबाजी ही गठबंधन राजनीति की कड़ी सच्चाई बन गई है। यह राष्ट्रीय और

राजनीतिक दायित्वों के प्रति गैर जिम्मेदार और गैर जवाबदेह होता है। ऐसे गठबंधनों का कोई राष्ट्रीय चरित्र नहीं होता। ये केवल सत्ता की बंदर बांट के लिए किए जाते रहे हैं। भारत में गठबंधन व्यवस्था राजनीतिक अस्थिरता का प्रमुख कारण है जो हमारे देश के लिए उचित नहीं है। परन्तु गत् वर्षों में भारत की राजनीति में जो नया मोड़ आया है, उसमें गठबंधन सरकारों के दौर में सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक विकास के नए अवसर उत्पन्न होने लगे हैं। कभी एकदलीय प्रभुत्व के कारण जहाँ विपक्ष भी प्रायः प्रभावी भूमिका में नजर नहीं आता था आज क्षेत्रीय तथा राज्य दलों के साथ पक्ष और विपक्ष दोनों लगभग समान गठजोड़ से नियंत्रणकारी भूमिका में रहते हैं। गठबंधन सरकार के साथ जहाँ द्वि-दलीय निरंकुशता समाप्त हो रही है तो वंचित तथा अल्पसंख्यक वर्गों का प्रतिनिधित्व भी अपेक्षाकृत बढ़ता जा रहा है। वर्षों से दलित, शोषित समाज को संसद में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त होने लगा है।

अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि गठबंधन सरकारों से राजनीतिक व्यवस्था को हानि ही नहीं होती बल्कि गठबंधन सरकारों से राजनीतिक व्यवस्था के नए आयामों का विकास हो रहा है। इसलिए इसके लिए पक्ष-विपक्ष की बात की जा सकती है न कि गठबंधन सरकारों को पूरी तरह हानिकारक बताया जा सकता है।

भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था के विद्वानों तथा राजनीतिक दलों के नेताओं के बीच गठबंधन सरकार के गठन और कार्यकरण की समस्त प्रक्रिया पर गंभीर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। इस बात पर विचार करना होगा कि राज्य व केन्द्र में गठबंधन सरकार की राजनीति से उत्पन्न राजनीतिक अस्थायित्व को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सके जिससे राजनीतिक दल व्यक्तिगत हितों को त्यागकर सामाजिक हितों को महत्व दें और भ्रष्टाचार को खत्म करने का प्रयास करें।

प्रस्तावना

एक समान उद्देश्य हेतु, एक साथ कुछ लोगों या समूहों द्वारा संयुक्त सहयोग देकर कोई काम करना गठबंधन कहलाता है। यह गठबंधन अस्थाई या सुविधा अनुसार भी हो सकता है।

इनके कार्य मुख्यतः या सामान्यतः एक प्रकार के होते हैं अथवा यह किसी अन्य प्रकार के हित हेतु गठबंधन में बंध जाते हैं।

राजनीति और सरकार[1]

गठबंधन सरकार, एक संसदीय प्रणाली में पार्टियों (राजनीति दलों) के गठबंधन से बनी एक सरकार है। पार्टियों के गठबंधन को भी एक चुनावी संलग्न कहा जाता

है। कैंब्रिज शब्दकोश इसे ''आमतौर पर एक सीमित समय के लिए, किसी विशेष प्रयोजन के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों या समूहों के मिलन को'' गठबंधन के रूप में परिभाषित करता है।

गठबंधन सरकार वाले देशों की सूची[2]

गठबंधन सरकारों के साथ काम करने वाले देशों में शामिल हैंः भारत, नॉर्डिक देश, बेनेलक्स देश, ऑस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रिया, साइप्रस, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, इंडोनेशिया, आयरलैण्ड, इज़रायल, इटली, जापान, केन्या, कोसोवो, लातविया, लेबनान, नेपाल, न्यूज़ीलैण्ड, पाकिस्तान, थाईलैण्ड, त्रिनिदाद और टोबैगो, तुर्की और यूक्रेन आदि।

भारतीय समाज जाति, पंथ, धर्म एवं क्षेत्रीय संकीर्णताओं में बँटा हुआ है। यहाँ प्रत्येक राजनीतिक दल का अलग जातीय आधार है, तो जातियों की अलग राजनीतिक पार्टियाँ हैं। यदि क्षेत्रवादी पार्टियाँ हैं तो राजनीतिक दलों की प्रभावशालीता के कुछ खास क्षेत्र भी हैं। सामाजिक एवं राजनीतिक आधार पर इच्छाओं, अपेक्षाओं, आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के इस विखण्डन से आम चुनावों में किसी भी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना कठिन है। फलस्वरूप सरकार के निर्माण एवं उसके संचालन के लिए गठबंधन राजनीति प्रारम्भ होती है।

देश में प्रायः दो प्रकार का राजनीतिक गठबंधन का स्वरूप देखने को मिलता है।

प्रथम– चुनावों के पूर्व का गठबंधनकृवे गठबंधन जो कुछ विशेष राजनीतिक दलों के द्वारा एवं निश्चित कार्यक्रमों के आधार पर आम चुनाव के पूर्व बना लिए जाते हैं।

द्वितीय– चुनावों के पश्चात् का गठबंधन–वे गठबंधन जो चुनाव के पश्चात् बनता है और परिस्थितिजन्य होता है। यह उस समय अस्तित्व में होता है जब आम चुनाव में किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है। चुनाव के पूर्व जो गठबंधन बनते हैं उनमें अवसरवादिता के तत्व कम होते हैं और साथ ही साथ कार्य करने का आधार बन जाता है। लेकिन चुनाव के बाद और चुनाव से उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए जो गठबंधन बनाए जाते हैं, उनमें इस प्रकार की अवसरवादिता के तत्व अधिकतर अंशों में विद्यमान रहते हैं और यही बात इस गठबंधन को कमजोर कर देती है।

गठबंधन सरकार[3]

गठबंधन सरकार एक संसदीय सरकार की कैबिनेट होती है, जिसमें कई राजनीतिक दल सहयोग करते हैं, जिसमें गठबंधन के भीतर किसी भी एक दल का प्रभुत्व कम नहीं रहता है। इस व्यवस्था का आम कारण यह दिया जाता है कि कोई दल अपने बलबूते संसद में बहुमत प्राप्त नहीं कर सकता। एक गठबंधन की सरकार राष्ट्रीय संकट के समय भी बनाई जा सकती है (उदाहरण के लिए, युद्ध का आर्थिक संकट के दौरान),

जो सरकार को उच्च स्तर की राजनीतिक औचित्यपूर्णता या सामूहिक पहचान दे सकती है, जो उसे चाहिए व साथ ही, आन्तरिक राजनीति विग्रह को कम करने में भूमिका निभा सकती है।

ÇFkk– जब किसी आम चुनाव में किसी अकेले दल को साफ बहुमत नहीं मिलता, तब दल या तो संसदीय बहुमत के समर्थन से गठबंधन कैबिनेट बनाते हैं या फिर अल्पमत कैबिनेट बनाते हैं, जिसमें एक या अनेक दल हो सकते हैं। जब एक आम चुनाव में किसी एक पार्टी के लिए स्पष्ट बहुमत नहीं होता है, तो पार्टियाँ या तो गठबंधन मंत्रिमण्डलों का निर्माण करती हैं, जो एक संसदीय बहुमत या अल्पसंख्यक मंत्रिमण्डलों द्वारा समर्थित होती हैं, जिसमें एक या अधिक दल शामिल हो सकते हैं। पार्टियों के एक समूह पर आधारित कैबिनेट जो संसद में बहुमत का आदेश देते हैं, अल्पसंख्यक मंत्रिमण्डलों की तुलना में अधिक स्थिर और लम्बे समय तक जीवित रहते हैं, उनके पास अविश्वास के वोटों से डरने का कम कारण है। किसी एक पार्टी पर आधारित अधिकांश सरकारें आमतौर पर और भी अधिक स्थिर होती हैं, जब तक कि उनके बहुमत को बनाए रखा जा सकता है।

सरकार गठन के लिए क्यों महत्वपूर्ण है[4] 272

लोकसभा में 545 सदस्य होते हैं। इनमें से 543 सांसद सीधे जनता द्वारा चुनकर आते हैं, जबकि एंग्लो-इंडियन समुदाय से दो सदस्यों को राष्ट्रपति मनोनीत करते हैं। केन्द्र में सरकार बनाने के लिए किसी भी पार्टी या पार्टियों के समूह (गठबंधन) को लोकसभा चुनाव में स्पष्ट बहुमत मिलना चाहिए। यानी किसी भी पार्टी या गठबंधन की इनमें से आधी से ज्यादा सीटें होनी चाहिए। जो दल या गठबंधन इस आंकड़े को पार कर लेता है, वह सरकार बना सकता है। इस बार (17वीं लोकसभा चुनाव में) 543 में से 442 सीटों पर मतदान हुआ है, ऐसे में बहुमत के लिए कम से कम 272 सीटें संबंधित दल या गठबंधन के पास होना अनिवार्य है। पार्टी या गठबंधन अपना नेता चुनते हैं, जिन्हें प्रधानमंत्री के रूप में राष्ट्रपति शपथ दिलाते हैं।

इसके अलावा निर्धारित संख्या में सांसदों को कैबिनेट और राज्य मंत्री के रूप में शपथ दिलाई जाती है। प्रधानमंत्री और मंत्रियों का दोनों सदनों (लोकसभा और राज्यसभा) में से किसी एक का सदस्य होना जरूरी है।

15 प्रतिशत से ज्यादा मंत्री नहीं

किसी भी कैबिनेट में लोकसभा में कुल सदस्यों के 15 प्रतिशत से ज्यादा मंत्री नहीं हो सकते। ऐसे में 585 सीटों की लोकसभा में पीएम सहित अधिकतम 81 मंत्री बन सकते हैं। इसमें कैबिनेट और राज्य मंत्री शामिल हैं।

भारत में गठबंधन की राजनीति[5]

भारतीय लोकतंत्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है, जहाँ जमीनी सच्चाई देश को

गठबंधन की राजनीति की ओर धकेल रही है। पिछले दशक से लगभग हर चुनावों के बाद किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलने के कारण विभिन्न दलों की मिली-जुली सरकार केन्द्र व राज्यों में निर्मित हो रही है, जिसे गठबंधन सरकार या कई दलों की मिली-जुली मिश्रित सरकार कहा जाता है। संसदीय लोकतंत्र में सरकार का गठन, उसका संचालन, पुनर्निर्माण, विशिष्ट संसाधनों की उपलब्धता, सहयोगियों की निश्चित संख्या, सुनिश्चित राजनीतिक आधार एवं राजनीतिक निपुणता आदि कारकों पर आधारित होता है। गठबंधन की राजनीति परिस्थितियों के गर्भ से उत्पन्न होती है। संसदीय शासन प्रणाली में उसी राजनीतिक दल को सरकार के गठन का अधिकार मिलता है। जिसके पास विधायिका के निचले सदन में आधे से अधिक सदस्यों का समर्थन प्राप्त होता है।

ऐसी सरकार राजनीतिक सत्ता का प्रमुख केन्द्र होती है। इसके सभी सदस्य अथवा मंत्रीगण सामान्यतया एक ही राजनीतिक दल अथवा विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं इसलिए ऐसी सरकारों पर दलीय एकाधिकार होता है लेकिन यदि आम चुनाव के पश्चात् सदन के किसी राजनीतिक दल अथवा गुट को साधारण बहुमत हासिल नहीं हुआ है, तो परिस्थिति गठबंधन राजनीति के निर्माण का आधार बनती है। जिसमें शामिल प्रत्येक घटक दल अपनी प्राथमिकताओं के निर्धारण एवं विकल्पों का चुनाव करते समय दलीय हित को सर्वोपरि महत्व देते हैं। हमारा देश गठबंधन सरकारों के युग में प्रवेश कर चुका है। भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस पार्टी जैसे दो प्रमुख राष्ट्रीय दलों के अतिरिक्त क्षेत्रीय दल भी भारतीय राजनीति का अटूट हिस्सा बन चुके हैं। भारत एक बहुभाषी, बहुधर्मी और बहुजातीय समाज हैं। छोटे-छोटे जातीय या क्षेत्रीय समूह अपनी पहचान बनाए रखने के इच्छुक रहते हैं।

हमारा देश विविधताओं से भरपूर हैं। ये विविधताएँ अक्सर राजनीति क्षेत्रों में अभिव्यक्त होती हैं। हमारे समाज की इस जटिल संरचना को मानने और स्वीकार करने की आवश्यकता है ताकि गठबंधन सरकारें सफलतापूर्वक चलाई जा सकें। वास्तव में कोई भी राजनीतिक गठबंधन उसमें भागीदार राजनीतिक दलों के कार्यक्रम तथा उनकी सामाजिक एवं वर्गीय अधिसंरचना के आधार पर निर्मित होता है। लेकिन कभी-कभी राजनीतिक विशेषताएँ भी राजनीतिक दलों को गठबंधन करने के लिए मजबूर कर देती हैं। उदाहरणस्वरूप वर्तमान समय में भारतीय राजनीति में जाति की प्रभावशीलता चरम होने के बावजूद अकेले सत्ता प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। इसलिए इसकी प्रतिपूर्ति या तो दल परिवर्तन के द्वारा अथवा सरकार के निर्माण के लिए दलों के आपसी गठबंधन के रूप में होती है।

संक्रमण के दौर से गुजरती भारतीय लोकतंत्र की जमीनी सच्चाई देश को गठबंधन की राजनीति की ओर धकेल रही है। किसी भी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने के कारण विभिन्न राजनीतिक दलों की मिली-जुली सरकार बनती है, जिसे संयुक्त सरकार, गठबंधन सरकार, संविद सरकार जैसे कई नामों से जाना जाता है।

वर्तमान समय में गठबंधन सरकार का विकल्प तेजी से बढ़ रहा है। मिली-जुली सरकार के गठन और जीवन के कार्यकरण के लिए जिस प्रतिमा और संस्कृति की आवश्यकता होती है, भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में वस्तुतः उसका अभाव रहा है। राजनीतिक दलों के लिए गठबंधन करना आसान होता है लेकिन निभाना उतना ही कठिन होता है, जिसमें गठबंधन की सरकार विकास के वादे तो करती है परन्तु विकास उस क्षेत्र का होता है जहाँ के दल गठबंधन की सरकार में होते हैं। स्पष्टतः गठबंधन की राजनीति एक मिली-जुली सरकार को जन्म देती है जिसमें दल अथवा गुट बुनियादी राजनीतिक सवालों पर एकमत होते हुए पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों पर समझौता करते हैं। जातीय, धार्मिक, क्षेत्रीय एवं भाषायी आधार पर विभाजित समूहों को जोडने के लिए विचारधाराएँ पहले फेविकोल की तरह कार्य करती थी। वैचारिक शास्त्रों से लैस कार्यकर्ता वैचारिक विचलन के सवाल पर अपने नेतृत्व को घेरने में भी संकोच नहीं करते थे, लेकिन आज की राजनीतिक परिस्थिति इसके एकदम विपरीत है। आज भारत में कोई भी राजनीतिक दल वैचारिकता के धरातल पर ईमानदार नहीं है।

राष्ट्रीय संदर्भ में गठबंधन राजनीति का सूत्रपात प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय हुआ। जब ब्रिटिश भारत के हिन्दू एवं मुस्लिम सिपाहियों ने कारतूस से गाय और सूअर की चर्बी के प्रयोग के कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध संयुक्त रूप से संघर्ष का शंखनाद किया था। भारत भूमि के अलग-अलग दो धर्मों के लोगों का ऐसा पहला गठजोड़ था जो राष्ट्र को विदेशी आधिपत्य से मुक्त कराने के लिए किया गया था। कालान्तर में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के गठबंधन ने इस अभियान को और अधिक तीव्रता प्रदान की। पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में 1946 में गठित अन्तरिम सरकार गठबंधन राजनीति की कोख से पैदा हुई सरकार थी। जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा जैसे राजनीतिक दलों ने मिलकर जन्म दिया था। भारत में गठबंधन सरकार की स्थापना राज्य स्तर पर सर्वप्रथम 1953 में शुरु हो गई। 1953 में आन्ध्रप्रदेश में संयुक्त मंत्रिमण्डल का गठन, लेकिन 13 माह के बाद ही मंत्रिमण्डल विघटित हो गया। इसी तरह उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, प. बंगाल और कुछ अन्य राज्यों में मिली-जुली सरकार का निर्माण किया, लेकिन जनता की आशा मिथ्या साबित हुई और गठबंधन सरकार से विभिन्न घटकों में इतनी अधिक खींचतान हुई कि उनका अस्तित्व समाप्त हो गया।

राष्ट्रीय स्तर पर सर्वप्रथम गठबंधन सरकार की शुरुआत 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार के गठन के साथ मानी जाती है। 1 मई 1977 के दिल्ली के *'हॉल ऑफ नेशन्स'* के भव्य समारोह में संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी तथा लोकतांत्रिक कांग्रेस के साथ मिलकर जनता पार्टी को जीवन प्रदान किया गया। संघीय स्तर पर कांग्रेस के एक छत्रछाया शासन को पहली बार 1977 में जनता पार्टी की सरकार के रूप में सशक्त चुनौती मिली तथा डॉ. राममनोहर लोहिया के द्वारा दिए गए गैर कांग्रेसवाद के नारे को स्वीकार करते हुए आम

भारतीय मतदाता ने निर्वाचन के माध्यम से जनता पार्टी को शासन की बागडोर सौंप दी। परन्तु जनता पार्टी के घटक दल जनसाधारण के विकास एवं स्वयं के दलीय आधार को सुदृढ़ करने की अपेक्षा गठबंधन के अन्दर अपने महत्व को लेकर अधिक संघर्षरत् रहे, जिससे जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो सकी, परिणामस्वरूप पार्टी और सत्ता दोनों की अकाल मृत्यु हो गई।

नौवीं लोकसभा चुनाव (1989) में, जो एक तरह से 'गठबंधन सरकार' की औपचारिक शुरुआत माने जाते हैं, राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का गठन वी.पी. सिंह के नेतृत्व में हुआ। देश में संघीय स्तर पर इस तरह के अवसरवादी गठबंधन के प्रयोग को 2 दिसम्बर, 1989 को राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार के गठन के रूप में फिर से दोहराया गया। राष्ट्रीय मोर्चा की इस गठबंधन सरकार (नौवीं लोकसभा) में प्रमुख रूप से जनता दल (143 सीटें), माकपा (33 सीटें), भाकपा (12 सीटें) जीतीं।

तेलगूदेशम, असम गणपरिषद्, कांग्रेस एस, आर.डी.एम. के जैसे क्षेत्रीय राजनीतिक दल भागीदार थे। ये सभी दल गठबंधन में सहयोगी होते हुए भी विभिन्न राष्ट्रीय मुद्दों पर परस्पर विरोधी और तीक्ष्ण मतभेद रखते थे। जनता दल की तरह जनता पार्टी के घटकों के नेताओं की महत्वाकांक्षा ने आगे चलकर सरकार की कार्यनीति को गहराई से प्रभावित किया जो अन्ततः गठबंधन सरकार के पतन की प्रमुख वजह बनी। प्रधानमंत्री पद के लिए वी.पी. सिंह के नाम को अस्वीकार करते हुए चन्द्रशेखर द्वारा स्वयं को प्रधानमंत्री घोषित करना और चौधरी देवीलाल द्वारा वी.पी. सिंह का खुलकर समर्थन करना, इस प्रकार के घटनाक्रम से यह राजनीतिक गठबंधन असमय बिखर गया।

राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद उपजी राष्ट्रव्यापी सहानुभूति के सहारे दसवीं लोकसभा चुनाव के पश्चात् सबसे बड़े दल के रूप में उभरी कांग्रेस के नेता पी.वी. नरसिम्हाराव ने छोटे-छोटे राजनीतिक दलों एवं कुछ निर्दलीय सांसदों का समर्थन लेकर गठबंधन सरकार का गठन किया। बाद में व्यापक पैमाने पर दल परिवर्तन कराकर कांग्रेस ने अपनी अल्पमत की सरकार को बहुमत की सरकार बना लिया। 28 जुलाई, 1979, 1989, 1990 और 1991 तक कई बार गठबंधन सरकार की स्थापना हुई और अपना कार्यकाल पूरा करने से पहले ही गिर गई।

ये देखकर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि आज भारतीय राजनीति में छोट-छोटे क्षेत्रीय दलों की भरमार ने देश को राजनैतिक अस्थिरता के दौर में पहुँचा दिया है, क्योंकि ये दल राष्ट्रीय हित नहीं बल्कि अपना क्षेत्रीय हित अधिक देखते हैं। वास्तविक रूप से त्रिशंकु सरकार का गठन ग्यारवीं लोकसभा चुनाव के बाद हुआ, इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी और सहयोगी दलों को 194 स्थान, कांग्रेस को 140 स्थान और क्षेत्रीय दलों को 150 स्थान प्राप्त हुए और भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (1996) की सरकार मात्र 13 दिन चली। 1996 में संयुक्त मोर्चा सरकार में एच.डी. देवगौड़ा तथा आई.के. गुजराल ने क्रमशः सरकार चलाई। यह भी एक गठबंधन सरकार ही थी।

राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन में शामिल घटक दलों के दबाव के कारण भाजपा को अपने विवादास्पद मुद्दे गोवध निषेद, अनुच्छेद 370 को हटाना, समान नागरिक संहिता एवं राम मंदिर निर्माण आदि को सरकार की कार्यसूची से बाहर रखना पड़ा। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव में भारी वृद्धि हुई। *बारहवीं लोकसभा चुनाव* (1998) के पश्चात् भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (N.D.A) ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 253 स्थान प्राप्त कर सरकार का गठन किया। गठबंधन में सम्मिलित विभिन्न राजनीतिक दलों के पूर्वाग्रह व्यक्तिगत रूझान एवं महत्वपूर्ण आकांक्षाएँ अन्ततः 13 माह बाद ही वाजपेयी सरकार को ले डूबी।

तेरहवीं लोकसभा चुनाव 1999 में एक बार फिर त्रिशंकु लोकसभा का गठन जिसमें भारतीय जनता पार्टी को सर्वाधिक 182 स्थान, कांग्रेस को 114 स्थान एवं क्षेत्रीय दलों को 162 स्थान प्राप्त हुए। केन्द्र में एक बार फिर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 24 दलों की गठबंधन सरकार का गठन किया गया। इस सर्वाधिक घटक दलों वाली सरकार ने 5 वर्ष का कार्यकाल पूर्ण किया। *चौदहवें लोकसभा चुनाव* (2004) में कांग्रेस ने अपनी पूर्व की एकाधिकारवादी राजनीतिक दल की धारणा को छोड़कर गठबंधन राजनीति की आवश्यकता को गंभीरता से लिया और राष्ट्रीय स्तर पर छोटे-छोटे राजनीतिक दलों का गठबंधन करके डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA 2004) की सरकार बनाई और 5 वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। *15वीं लोकसभा चुनाव* (2009) में पहली बार दो प्रमुख राजनीतिक गठबंधन राष्ट्रीय जनतांत्रिक (NDA) एवं संयुक्त प्रगतिशील (UPA) गठबंधन के बीच चुनाव लड़ा गया और एक बार पुनः डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार बनी।

16वीं लोकसभा चुनाव 2014 में भारतीय जनता पार्टी ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का नेतृत्व करिश्माई नेता श्री नरेन्द्र मोदी को सौंपा और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन ने सोनिया और राहुल गाँधी को आगे रखा। इन चुनावों में भारतीय जनता पार्टी को अकेले 282 स्थान प्राप्त हुए और लम्बे समय बाद केन्द्र में किसी एक राजनीतिक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ, जो किसी करिश्मे से कम नहीं था। विपक्ष में कांग्रेस को प्रतिपक्ष के नेता के चयन के लिए निर्धारित 10 प्रतिशत स्थान प्राप्त नहीं हुए केवल 44 स्थान मिले और अन्ना द्रविड़, मुनेत्रा कडगम, तृणमूल कांग्रेस, बीजू जनता दल, शिवसेना को छोड़कर लगभग सभी क्षेत्रीय दलों का सफाया हो गया, जो भारतीय राजनीति के लिए शुभ संकेत है।

17वीं लोकसभा (2019)[6]

नरेन्द्र दामोदर दास मोदी ने गुरुवार (30-5-2019) शाम सात बजे देश के प्रधानमंत्री के रूप में (व्यक्ति के तौर पर 14वें) पद व गोपनीयता की शपथ ली। मोदी दोबारा सत्ता

में आने वाले पहले गैर कांग्रेसी प्रधानमंत्री हैं। राष्ट्रपति रामनाथ कोंविद ने उनके अलावा 24 कैबिनेट मंत्री, नौ राज्यमंत्री स्वतंत्र प्रभार और 24 राज्यमंत्रियों को भी शपथ दिलाई। 2014 (26 मई 2014) में पीएम मोदी समेत कुल 46 मंत्रियों ने शपथ ली थी, वहीं इस बार बड़े बहुमत के बावजूद शपथ लेने वाले मंत्रियों की संख्या सिर्फ 57 ही रही। इन 57 नामों में 19 नए चेहरे हैं। इनमें छह नए कैबिनेट मंत्री हैं। मंत्रिपरिषद् में कुल छह महिलाओं को जगह दी गई। इनमें तीन कैबिनेट मंत्री हैं, जबकि 2014 की मोदी सरकार में छह महिला मंत्री थीं। राष्ट्रपति भवन में आयोजित विहंगम समारोह में 6000 से ज्यादा अतिथि मौजूद थे।

मोदी पहली बार 2014 में देश के प्रधानमंत्री बने थे। बतौर प्रधानमंत्री अपना कार्यकाल पूरा करने के बाद लगातार दूसरी बार यह पद संभालने वाले वह भारत के तीसरे प्रधानमंत्री हैं। उनसे पहले एक पूर्ण कार्यकाल के बाद दूसरी बार पण्डित जवाहरलाल नेहरू और डॉ. मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने थे।

17वीं लोकसभा चुनाव के नतीजे

भारत में कुल 91.01 करोड़ मतदाता है। 542 सीटों पर सात चरणों में मतदान हुआ जिसमें 67.1 प्रतिशत वोटिंग हुई एवं 23 मई 2019 को चुनावों के नतीजे आए।

48 साल बाद एक दल को लगातार दूसरी बार पूर्ण बहुमत[7]

भाजपा ने कई राज्यों में तकरीबन 2014 जैसा ही प्रदर्शन दोहराया तो कई राज्यों में पिछली बार से भी ज्यादा सीटें हासिल की हैं–

भाजपा ने राजस्थान में 25, गुजरात 26, कर्नाटक 25, हरियाणा 10, बिहार 39, मध्यप्रदेश 28, उत्तरप्रदेश 64, छत्तीसगढ़ नौ, दिल्ली सात, महाराष्ट्र 41 सीटें हासिल की हैं।

पिछले चुनाव के समान राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल और उत्तराखंड की 100 सीटों में इस बार भी 97 सीटों पर जीत दर्ज कराई है।

भाजपा-कांग्रेस में 174 सीटों पर सीधी टक्कर - (भाजपा-161, कांग्रेस-11, अन्य 02) थी।

लोकसभा चुनावों की स्थिति[8]

- अकेले भाजपा को 303, एनडीए 350 = शिवसेना 18, जेडीयू 16, लोजपा छः, अन्य सात, सीटें मिलीं।
- अन्य को 111, बसपा-सपा-15, वाईएसआर-24, टीएमसी-22, बीजद-12, अन्य 38 सीटें मिलीं।
- कांग्रेस को अकेले 52, व यूपीए 81 = डीएमके-23, एनसीपी-4, राजद-००,

2019 dh fLFkfr		2014 dh fLFkfr	
भाजपा	कांग्रेस	भाजपा	कांग्रेस
303	52	282	44

xBc/ku d: vkdM:		xBc/ku d: vkdM:	
एनडीए	350	एनडीए	336
यूपीए	81	यूपीए	59
यूपीए	111	यूपीए	148

अन्य-दो सीटें मिली।

गठबंधन व वंशवाद को देश ने नकारा[9]

भाजपा की लहर के सामने कई राज्यों में गठबंधन की राजनीति नाकाम हो गई। यूपी सबसे बड़ा उदाहरण बना–

गठबंधन की राजनीति को सबसे बड़ा झटका उत्तर प्रदेश में लगा। वोट प्रतिशत का गणित जोड़कर तैयार हुआ सपा-बसपा, रालोद का गठबंधन भाजपा के जबरदस्त रणनीति के आगे टिका नहीं। वह 20 सीटों का आंकड़ा भी नहीं छू सका। तमिलनाडु की 39 सीटों के लिए भाजपा के साथ एआईएडीएमके, डीएमडीके और पीएमके के साथ गठबंधन ने काम नहीं किया तो कांग्रेस डीएमके, एडीएमके का गठबंधन कारगर साबित हुआ। महाराष्ट्र की 48 सीटों के लिए शिवसेना और भाजपा में गठबंधन कारगर हुआ तो कांग्रेस और एनसीपी के उम्मीद पर खरा नहीं उतरा। बिहार में नीतीश की जेडीयू और भाजपा गठबंधन सफल रहा तो बाकी सब फेल हो गए। पंजाब में कांग्रेस के आगे भाजपा-अकाली दल का गठबंधन नहीं चला।

भाजपा की लहर में आए इन नतीजों से यह साबित हो गया कि गठबंधन केवल गणित का फार्मूला नहीं। नेताओं के हाथ मिलाने का अर्थ यह नहीं कि मतदाता भी उनके साथ चल देंगे। भारतीय राजनीति में इस तथ्य का व्यापक असर हो सकता है।

देश में जरूरी था ऐसा जनादेश[9]

देश ने एक बार फिर आम चुनावों में मोदी के हाथों में सत्ता सौंप दी। भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) को प्रचंड बहुमत के साथ देश के मतदाताओं ने जीत दिलाई। भाजपा को अकेले ही इतनी सीटें मिल गई कि वह अपने दम पर ही सरकार बना पाने में सक्षम है।

ऐसी भी आशंका थी कि बहुमत का आंकड़ा नहीं छू पाने की स्थिति में क्षेत्रीय दलों

की महत्ता बहुत अधिक बढ़ जाएगी। कुछ अन्य दलों को अपनी ओर खींचने के लिए कुछ समीक्षक नेताओं की खरीद फरोख्त की आशंका भी व्यक्त कर रहे थे। लेकिन जिस किस्म के चुनाव परिणाम आए, उससे सारी आशंकाएँ निर्मूल साबित हुई। देश को इसी तरह के परिणाम की जरूरत भी है। भिन्न-भिन्न मतों वाले दलों के मेलजोल की जुगाड़ वाली सरकार सुनने में बहुत अच्छी लगती है लेकिन इनमें फैसले होने में या तो देरी होती है या फिर वे हो ही नहीं पाते। इसलिए देश के लिए पूर्ण बहुमत वाली सरकार की जरूरत लंबे समय से महसूस की जाती रही है।

वर्ष 2014 में राजग की सरकार ने इस जरूरत को पूरा किया। न केवल देश, बल्कि विदेश में भी भारत में टिकाऊ सरकार होने और उसके अडिग फैसलों का विश्वास लोगों के मन में जगाया। आमजन में यह विश्वास लौटा कि मोदी की पूर्ण बहुमत वाली सरकार ढुलमुल फैसलों वाली सरकार नहीं है। इस बार भी मतदाता ने इसी किस्म की मजबूत सरकार के लिए जनादेश दिया।

प्रधानमंत्री ने 2014 से 2019 तक के कार्यकाल में जमकर विदेश दौर किए। विभिन्न देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाए। कई समझौतों को अंजाम दिया। विभिन्न देशों में भारत का नाम सम्मान के साथ लिया जाने लगा। भारत की बात को गंभीरता के साथ सुना और समझा जाने लगा। विदेशी नेताओं को भी लगा कि भारत के साथ दीर्घकालीन सम्बन्ध बनाए और समझौते किए जा सकते हैं। भारत में टिकाऊ और विश्वसनीय सरकार है जो जल्द फैसले भी लेती है और उनका क्रियान्वयन भी तेजी के साथ करती है। दुनिया में भारत को नई पहचान दिलाने और उसे कायम रखने के लिए ठोस, त्वरित फैसले करने वाली सरकार की जरूरत थी। जो कि एक पूर्ण बहुमत की सरकार ही हो सकती है। पूर्ण बहुमत की सरकार अपने एजेंडें में रहे सभी मुद्दों पर बिना किसी दबाव के कार्य करती है जबकि गठबंधन की राजनीति के चलते सरकारों को कई मुद्दों को ठंडे बस्ते में डालना पड़ता है।

ऐसा लगा कि जनता यह संदेश दे रही है कि देश में आमूल-चूल परिवर्तन करने हैं तो बड़े कदम उठाने होंगे और इन बड़े कदमों के लिए शासन की निरन्तरता और स्थायित्व आवश्यक है। एक पूर्ण बहुमत कि सरकार ही बड़े बदलाव ला सकती है।[11]

गठबंधन सरकार के अब तक के अनुभव से स्पष्ट है कि यह हमारे देश के लिए उचित नहीं है। विगत कुछ वर्षों से राष्ट्रीय राजनीति में जो बिखराव आया है। उससे गठबंधन सरकार से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है। आज कोई भी राजनीतिक दल अपने बूते पर केन्द्र में या राज्य में सरकार नहीं बना सकता। अनचाही गठबंधन सरकार देश की नीति बन चुकी है। भारतीय राजनीति में पिछले दो दशकों से साझा सरकारों का स्वरूप विकसित होकर सामने आया है। यहाँ गठबंधन की राजनीति सिर्फ सतही नहीं है बल्कि उसकी जड़ें गहरे रूप में जम चुकी हैं।

वस्तुतः राजनीतिक गठबंधन बेशक सत्ता सुख सुलभ कराते हैं। लेकिन इसमें ाामिल घटक दलों की बार-बार की दोस्ती, धोखाधड़ी एवं सौदेबाजी ही गठबंधन राजनीति की कड़ी सच्चाई बन गई है। यह राष्ट्रीय और राजनीतिक दायित्वों के प्रति गैर-जिम्मेदार और गैर-जवाबदेह होता है। ऐसे गठबंधनों का कोई राष्ट्रीय चरित्र नहीं होता। ये केवल सत्ता की बंदर बांट के लिए किए जाते रहे हैं। अस्वाभाविक गठबंधन भारतीय राजनीति की व्यावहारिक सच्चाई है। गठबंधन निर्वाचन के पहले या पश्चात् कार्यक्रम व नीतियों में समानता रखने वाले दलों के बीच होता है। गठबंधन के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों में नेतापद व मंत्रिपद के लिए तनाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे में संभव है कि क्षुब्ध् राजनीतिक दल गठबंधन से समर्थन वापस लेकर सरकार गिरा देते हैं और देश पर पुनः आम चुनाव को थोप देते हैं, उसके परिणाम अत्यन्त भयानक होते हैं।

भारत में गठबंधन व्यवस्था राजनीतिक अस्थिरता का प्रमुख कारण हैं जो हमारे देश के लिए उचित नहीं है। परन्तु गत् वर्षों में भारत की राजनीति में जो नया मोड़ आया है, उसमें गठबंधन की सरकार को नकारा भी नहीं जा सकता। क्षेत्रीय दल स्थानीय मुद्दों को बहुत ही प्रमुख स्थान देते हैं और सरकार की गलत नीतियों एवं मनमानी पर रोक लगाते हैं। मिली-जुली सरकार की सफलता के लिए आवश्यक है कि राजनीतिक दल अहंवादी व्यक्तित्व और अनुशासनहीनता का त्याग कर सार्वजनिक नैतिकता के भाव को ग्रहण करे। भारतीय संविधान एवं राजव्यवस्था के विद्वानों तथा राजनीतिक दलों के नेताओं के बीच मिली-जुली सरकार के गठन और कार्य कारण की समस्त प्रक्रिया पर गंभीर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। इस बात पर विचार करना होगा कि राज्य व केन्द्र में मिली-जुली सरकार की राजनीति से उत्पन्न राजनीतिक अस्थायित्व को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सके। जिससे राजनीतिक दल व्यक्तिगत हितों को त्यागकर सामाजिक हितों को महत्व दें और भ्रष्टाचार को खत्म करने का प्रयास करें।

वर्तमान में भारतीय राजनीति तेजी से परिवर्तन तथा विकास की ओर उन्मुख हो रही है। गठबंधन सरकारों के दौर में सामाजिक-राजनैतिक-आर्थिक विकास के नए अवसर उत्पन्न होने लगे हैं। 12 कभी एक दलीय प्रभुत्व के कारण जहाँ विपक्ष भी प्रायः प्रभावी भूमिका में नजर नहीं आता था। आज क्षेत्रीय तथा राज्य स्तरीय दलों के साथ पक्ष और विपक्ष दोनों लगभग समान गठजोड़ से नियंत्रणकारी भूमिका में रहते हैं। गठबंधन सरकार के साथ जहाँ द्वि-दलीय निरंकुशता समाप्त हो रही है तो वंचित तथा अल्पसंख्यक वर्गों का प्रतिनिधित्व भी अपेक्षाकृत बढ़ता जा रहा है। वर्षों से दलित, शोषित समाज को संसद में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त होने लगा है।

ऐसे में, गठबंधन सरकारें राज्य के साथ-साथ केन्द्र में भी विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने लगी हैं। वैसे, गठबंधन सरकार (Coalition Government) के खतरे

भी कम नहीं हैं। इस स्थिति में राष्ट्रीय हित को ताक पर रखकर क्षेत्रीय स्वार्थजनित मुद्दों को प्राथमिकता देने से लोकतंत्र के साथ ही भारत-राज्य की एकता और अखण्डता पर अतिरिक्त भार पड़ता है। परिवर्तन को विकास के अनुकूल बनाने हेतु राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा अत्यावश्यक है।

राष्ट्रीय परिदृश्य में बदलाव के साथ ही दलीय राजनीति में परिवर्तन होते रहते हैं। विचारधारा का बंधन इन दिनों प्रायः कम ही नजर आ रहा है। साथ ही सत्ता प्राप्ति हेतु राजनीतिक दल ऊपर-ऊपर से विचारधारा की तनिक भी समानता दिखाई देने से एक गठबंधन का निर्माण कर लेते हैं, फिर चाहे उसी गठबंधन की विवशता गलफांस क्यों न बन जाए? मद्दों तथा राष्ट्रीय हित पर आधारित दलीय राजनीति स्पष्ट रूप से न तो सत्ता पक्ष करता है और न ही विपक्ष।

अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि गठबंधन सरकारों से राजनीतिक व्यवस्था को हानि ही नहीं होती बल्कि गठबंधन सरकारों से राजनीतिक व्यवस्था के नए आयामों का विकास हो रहा है इसलिए इसके केवल पक्ष-विपक्ष की बात की जा सकती है न कि गठबंधन सरकारों को पूरी तरह हानिकारक बताया जा सकता है।

संदर्भ

1. https://hi.m.wikipedia.org. (गठबंधन - विकिपीडिया)
2. https://hi.m.wikipedia.org. (गठबंधन सरकार - विकिपीडिया)
3. उपरोक्त
4. राजस्थान पत्रिका, जयपुर राजस्थान, 23 मई 2019, पृ. सं. 9
5. भारत में गठबंधन की राजनीति – Coalition Politics in India - Punjab Kesari.in, Feb. 09, 2017, चौधरी डॉ. लाखा राम
6. राजस्थान पत्रिका, जयपुर, राजस्थान, 31 मई, 2019, पृ. सं. 6, 11
7. राजस्थान पत्रिका, जयपुर, राजस्थान, 24 मई, 2019, पृ. सं. 2
8. उपर्युक्त, पृ. सं. 3, 1
9. राजस्थान पत्रिका, जयपुर, राजस्थान, 25 मई, 2019, पृ. सं. 11
10. उपर्युक्त, चौधरी नीरजा, 'देश में जरूरी था ऐसा जनादेश' (जन गण मन), पृ. सं. 12
11. राजस्थान पत्रिका, जयपुर, राजस्थान, कोठारी, गुलाब, 'भारत भाग्य विधाता', 24 मई, 2019, पृ. सं. 5
12. जैन, महावीर एवं सोलंकी, गोपाल सिंह, 'राजनीति विज्ञान (लक्ष्य)', मनु प्रकाशन प्रा. लि. जयपुर, 2018, पृ.सं. 155-156
- जैन, डॉ. पुखराज, 'भारतीय राजव्यवस्था' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2018

गठबन्धन की सरकार व नौकरशाही : उभरते हुए आयाम

कृष्ण कुमार एवं ममता रानी

Ikjk'k *स्वतन्त्रता के पश्चात् चार दशकों तक भारत में एक ही दल का शासन रहा इसने राजनैतिक केन्द्रीयकरण को बढ़ावा दिया परन्तु 1990 के दशक से भारत में केन्द्र व राज्यों में गठबन्धन की सरकारों की शुरूआत हुई। गठबन्धन सरकारों में अधिक से अधिक वर्गों व हितों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है इसलिए राजनैतिक विकास की दृष्टि से यह एक सकारात्मक संदेश है। आर्थिक प्रबन्धन व नीति नियोजन में क्षेत्रीय दलों व राज्य सरकारों की भूमिका में वृद्धि हुई है परन्तु इसके साथ ही बहुत सी समस्याएं व मुद्दे भी सामने आए हैं। जैसे नव उदारीकरण की नीतियों व प्रशासनिक सुधारों को लागू करने के लिए केन्द्र सरकार कानून बनाती है। जिसका राज्य सरकार अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन मानकर विरोध करती है। राज्य के मुख्यमंत्री व क्षेत्रीय राजनीतिज्ञ केन्द्रीय गठबन्धन की सरकार को बनाने व गिराने की क्षमता रखते हैं। जिससे शासन प्रणाली व संवैधानिक सिद्धान्तों पर व्यापक असर पड़ता है जैसे भारतीय प्रशासन में प्रधानमंत्री की अहम भूमिका, मंत्रिमण्डल का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व, सरकार द्वारा प्रशासन में सहयोग व समन्वय आदि। वर्तमान शोध पत्र में यह विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है कि कौन-कौन से कारक व शक्तियाँ गठबन्धन सरकार की कार्यप्रणाली को प्रभावित करती हैं और इसका नौकरशाही के उत्तरदायित्व, प्रभावशीलता व जवाबदेहिता पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है।*

प्रस्तावना

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में ब्रिटिश लोकतांत्रिक प्रणाली के अनुरूप संस्थाओं की प्रकृति निर्धारित की और प्रशासनिक कार्यप्रणाली के नियम, विनियमों का निर्माण हुआ। भारतीय संविधान में जन-प्रतिनिधियों का निर्वाचन, प्रतिनिधि सरकार की स्थापना के प्रावधान के साथ-साथ व्यावसायिक, निष्पक्ष व तटस्थ प्रशासनिक प्रणाली

जो लोगों के विकास के लिए जन प्रतिनिधियों की प्रशासन व सरकार चलाने के लिए परामर्श व सहायता प्रदान करने की रूपरेखा है।

कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन में सरकार की भूमिका में वृद्धि हुई है। इसके कारण नौकरशाही की शक्तियों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। नौकरशाही को कार्यकारी शक्तियों के साथ-साथ अर्द्ध विधायी व अर्द्ध-न्यायिक शक्तियाँ भी प्रदान की गई हैं। विशेषज्ञता पर एकाधिकार व पर्याप्त सूचना होने के कारण राजनैतिक व्यवस्था नौकरशाही पर प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं कर पाती। इस प्रकार नौकरशाही की तुलना में राजनैतिक व्यवस्थाओं का अपेक्षित विकास नहीं हुआ। स्वतन्त्रता के पश्चात् हमें केन्द्रीकृत, अनुत्तरदायी व शक्तिशाली प्रशासनिक सेवाएं विरासत में मिली हैं। इसलिए प्रशासनिक सेवाओं की कार्यप्रणाली जन-भावनाओं के अनुरूप बनाने व उत्तरदायित्व निश्चित करना आवश्यक है। जोसेफ लॉ पलोम्बारा का मानना है कि विकासशील देशों में शक्तिशाली नौकरशाही एक आवश्यक बुराई है और लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अच्छे भविष्य के लिए इसे सहन करना सीखना होगा[1]।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप शक्तिशाली वातावरणीय कारणों ने लोक प्रशासन को प्रभावित किया है। ज्ञान आधारित उत्पादन, संचार क्रान्ति, विश्व व्यापार में अत्यधिक वृद्धि और गुणवत्ता पूर्वक सेवाओं की माँग ने विकास के क्षेत्र में सहयोग और पेशेवर तन्त्र के उपयोग को आवश्यक बना दिया है[2]।

राजनैतिक व प्रशासनिक व्यवस्था के मूल्यों में गिरावट आई है। नौकरशाही गहरे संकट में है और यह संकट तब तक रहेगा जब तक लोकतन्त्र, समाजवाद व एकाग्रता जैसे मूल्य मजबूत नहीं होते और लोकतन्त्र व नौकरशाही में सही सन्तुलन स्थापित नहीं होता। वर्तमान व्यवस्था में राजनेताओं, नौकरशाहों, अपराधियों व व्यावसायिक व्यक्तियों का खतरनाक गठजोड़ बन चुका है जो अवैध कार्यों के लिए अर्थव्यवस्था का दुरुपयोग करते हैं इसलिए एक ऐसी प्रशासनिक सेवा की आवश्यकता है जिसमें न केवल पारम्परिक गुण जैसे निष्पक्षता, तटस्थता व एकाग्रता हो बल्कि संवैधानिक मूल्यों व उद्देश्यों के प्रति समर्पित भी हो[3]। इस राजनैतिक व प्रशानिक परिपेक्ष्य को ध्यान में रखकर गठबन्धन की सरकार का राजनैतिक व प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रभाव का विश्लेषण हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं:

1. **vLFkk;h o detkj ljdkj%**– भारत में बहु.दलीय प्रणाली की व्यवस्था को अपनाया गया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् तीन दशकों तक अधिकतर समय एक ही दल की सरकार रही है। स्पष्ट बहुमत होने के कारण ऐसी सरकार स्थायी व प्रभावशाली रही है। देश की प्रगति व विकास के लिए अनेकों कानूनों का निर्माण हुआ व विकासशील नीतियों को लागू किया गया। 1980 के दशक के अन्त में गठबन्धन सरकारों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। 1989 में श्री वी.पी. सिंह के नेतृत्व में गठबन्धन की

सरकार बनी। इस सरकार में वामपन्थी व दक्षिणपंथी दोनों विचारधाराओं के दल शामिल थे इसलिए प्रशासन को निर्विघ्न व कुशलतापूर्वक चलाने के लिए न्यूनतम साझा कार्यक्रम का निर्माण हुआ। अयोध्या विवाद व नौकरियों में आरक्षण के प्रश्न पर विचारधारात्मक मतभेद होने के कारण 1990 में ही साझा मोर्चा सरकार का पतन हो गया। 1990 में श्री चन्द्रशेखर के नेतृत्व में सरकार बनी परन्तु इसका कार्यकाल भी कुछ महीनों तक सीमित होकर रह गया। 1991 में बनी नरसिम्हा राव की सरकार को पांच वर्ष पूरे करने के लिए जोड-तोड़ का सहारा लेना पड़ा। 1996 में देवगौड़ा की अध्यक्षता में जनता दल (संयुक्त मार्चा) की सरकार जो एक वर्ष तक कार्य कर सकी। 1997 में काँग्रेस ने सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया और देवगौड़ा के नेतृत्व में बनी सरकार का पतन हो गया। 1997 में श्री आई.के.गुजराल देश के प्रधानमंत्री बने परन्तु यह सरकार भी एक वर्ष से अधिक कार्य नहीं कर सकी। 1998 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बी.जे.पी. की सरकार बनी परन्तु 1999 में सुश्री जयललिता द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण इसका भी पतन हो गया। 1999 से 2014 तक गठबन्धन की सरकारों ने अपना कार्यकाल पूरा किया परन्तु कई अवसरों तक सत्ताधारी दलों को अपनी मूलभूत नीतियों व सिद्धान्तों से समझौता करना पड़ा और इसने निश्चित रूप से स्वतन्त्र रूप से नीति निर्माण व निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रभावित किया। इस प्रकार गठबंधन की सरकार निर्बाध रूप से अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी।

2- tokcngh lfuf'pr djuk dfBu& जवाबदेही लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली का आधार है। निर्वाचित सरकार अपनी नीतियों व प्रशासन के लिए जनता व जनप्रतिनिधियों के प्रति जवाबदेह होती है। प्रधानमन्त्री सरकार का मुखिया होता है और व्यक्तिगत व सामूहिक जवाबदेही निश्चित करने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। मन्त्रिपरिषद् का निर्माण प्रधानमंत्री का विशेषाधिकार है। प्रधानमंत्री की अनुशंसा के बिना राष्ट्रपति किसी भी सदस्य को मंत्री पद की शपथ नहीं दिला सकते परन्तु गठबन्धन की सरकार में प्रधानमंत्री की शक्तियां बहुत ही सीमित हो जाती है। उसे न केवल सहयोगी दलों के नेताओं को समायोजित करना पड़ता है अपितु अपने दलीय संगठन के नेता की माँग के अनुसार मंत्रिपरिषद का निर्माण करना पड़ता है। डॉ. मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्री कार्यकाल (2004-2014) के दौरान दलीय संगठन के अध्यक्ष की मंत्री नियुक्त करने व अपदस्थ करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। 2006 में पार्टी अध्यक्ष के निर्देश पर हरीश रावत के स्थान पर सुबीरामी रेड्डी को शामिल किया गया।[4] इसी प्रकार ए.राजा को डी.एम. के अध्यक्ष करूणानिधि की अनुशंसा के आधार पर मंत्री बनाया गया। राजनीति शक्तियां गठबन्धन सरकार के सहयोगी दलों के अध्यक्षों में निहित होने के कारण प्रधानमंत्री भ्रष्ट मंत्रियों को बरखास्त भी नहीं कर सकते थे। इस प्रकार यह स्थिति 'शक्तिविहीन उत्तरदायित्व' व सत्ताविहीन शासन की

तरह थी। डॉ. मनमोहन सिंह अपनी जिम्मेदारी समझते थे और मंत्रालयों से भ्रष्टाचार समाप्त करना चाहते थे परन्तु राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन किए बिना यह सम्भव नहीं था। उसका एक तरीका यह भी था कि वे भ्रष्ट मंत्रियों के अधीन ईमानदार अधिकारियों की नियुक्ति कर देते परन्तु यहाँ भी वे असफल रहे क्योंकि उन्हें मन्त्रियों के पसंदीदा सचिवों की नियुक्ति करनी पड़ी। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री शक्तिविहीन होने के कारण किस प्रकार व्यक्तिगत व सामूहिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित कर सकते हैं। इस प्रकार गठबन्धन सरकार में पारदर्शी उत्तरदायी व जवाबदेह शासन प्रणाली की स्थापना करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। पिछले कुछ दशकों से विशेष रूप से जब से आर्थिक क्षेत्र में उदारीकरण व राजनैतिक क्षेत्र में गठबन्धन सरकार की शुरूआत हुई है, सार्वजनिक जीवन में मूल्यों का ह्रास हुआ है। राजनैतिक व्यवस्था भी इसकी चपेट में है। विश्व में बेहतर व्यवस्था लाने व अच्छा समाज स्थापित करने की अपेक्षा राजनीति एक आकर्षक व्यवस्था बन चुकी है। राजनैतिक नेताओं व दलों के बीच अनैतिक प्रतिस्पर्धा ने इस व्यवसाय को अस्थायी बना दिया हैं। आज के राजनेता सही या गलत यह महसूस करते हैं कि शासन व सरकार की जवाबदेही उनकी है न की गुमनाम नौकरशाही की। वह ऐसी नौकरशाही का विरोध करते हैं जो उनकी इच्छाओं व अपेक्षाओं का सम्मान करने की बजाय नियमों व विनियमों को प्राथमिकता देते हैं।[5] इस प्रकार राजनेता अपनी अनैतिक व अवैध माँगों को पूरी करने के लिए अनुचित दबाव बनाते हैं परन्तु प्रशासनिक अधिकारी ब्रिटिश काल की स्वायत्तता, लोकतान्त्रिक मूल्यों व स्टील फ्रेम की परम्परा से प्रभावित होकर प्रशासन का संचालन करते हैं। ऐसी स्थिति में हितों का टकराव होना अवश्यम्भावी है। उदारीकरण की प्रक्रिया के पश्चात सार्वजनिक जीवन में निजी क्षेत्र की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गई है इसलिए जवाबदेही को व्यापक रूप में परिभाषित करने व सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

3. **ukdj'kkgh dk jktuhfrdj.k** स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में तटस्थ नौकरशाही के प्रतिमान को अपनाया गया है। प्रशासनिक सेवाओं का मुख्य कार्य राजनैतिक नेतृत्व को स्वतन्त्र व निष्पक्ष परामर्श देना और सत्ताधारी दल को शासन चलाने में मदद करना है। भारत में प्रशासनिक सेवाओं को लिए आचरण के नियम बनाए गए हैं जो अधिकारियों की राजनैतिक गतिविधियों पर अंकुश लगाते हैं परन्तु व्यवहार में यह स्थिति नही है विशेष रूप से गठबन्धन की सरकारों के अस्तित्व में आने के बाद इसमें काफी परिवर्तन आया है। गठबन्धन की सरकार विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है यह राजनैतिक विकास का सकारात्मक संदेश है क्योंकि जनसंख्या के अधिकतर भाग को इसमें प्रतिनिधित्व मिलता है परन्तु इसमें प्रशासनिक अधिकारियों के लिए यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि किस वर्ग को अधिक महत्व दिया जाए। 1980 व 1990 के दशकों में केन्द्र व राज्यों में गठबन्धन की सरकारें बनी हैं। गठबन्धन सरकार के घटक दलों की अपनी राजनैतिक विचारधारा के अनुसार राजनैतिक व आर्थिक कार्यक्रम को लागू करना चाहते हैं। कई बार घटक दलों में

विचारधारात्मक विरोधाभास होता है। जैसा कि संयुक्त प्रगतिशील मोर्चा की सरकार के दौरान परमाणु कार्यक्रम को लेकर कांग्रेस व वामपंथी दलों में देखने को मिला है। गठबन्धन सरकार के घटक दल अपनी लोकप्रियता बढ़ाना चाहते हैं कई बार इससे दूसरे घटक दलों का राजनैतिक नुकसान हो सकता है। ऐसी स्थिति में प्रशासनिक अधिकारियों के सामने यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि वे किस घटक दल की विचारधारा को अधिक महत्व प्रदान करें। गठबन्धन सरकारों में आदेश की एकता के सिद्धान्त का सही प्रकार से पालन नहीं होता और इससे शासन की निर्णय लेने की क्षमता भी प्रभावित होती है। गठबन्धन की सरकारों ने नौकरशाही के राजनीतिकरण को बढ़ावा दिया है। निर्वाचन के बाद या मन्त्रियों का विभाग बदलने के बाद अधिकारियों के स्थानान्तरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 1990 के दशक में बी.जे.पी. और बी.एस.पी. की गठबन्धन सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश में सुश्री मायावती द्वारा मुख्यमन्त्री का पदग्रहरण करने के दो माह पश्चात 600 आई.ए.एस व आई.पी.एस. अधिकारियों का स्थानान्तरण इसका उदाहरण है।[6] इससे अधिकारियों में गुटबाजी को भी बढ़ावा मिलता है। इससे प्रशासनिक मशीनी की सुचारू रूप से कार्य करने की प्रणाली बाधित होती है और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

व्यावहारिक प्रशासन का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि प्रशासनिक अधिकारी राजनीति व राजनैतिक गतिविधियों में संलिप्त हैं नौकरशाह राजनीति में तटस्थ नहीं हैं और कानून द्वारा निश्चित सीमा से अधिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं। राजनेताओं का आरोप है कि प्रशासनिक अधिकारियों के पास सेवा की सुरक्षा है, वे अपने कार्यों के लिए अनुत्तरदायी और जनता की अपेक्षा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार गठबंधन की सरकारों ने नौकरशाही के राजनीतिकरण को बढ़ावा दिया है और मंत्री गण प्रशासन के प्रति समर्पण व समय के अभाव के कारण प्रशासनिक अधिकारियों की जवाबदेही सुनिश्चित नहीं कर पाते।[7]

4. **Hk"Vkpkj e of)**:– सार्वजनिक जीवन में मूल्यों का ह्रास, राजनितिज्ञों व अधिकारियों के बीच गठजोड़, उदारीकरण की नीति व परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र की बढ़ती हुई भूमिका, राजनेताओं के पास अधिकारियों के स्थानान्तरण की शक्ति का दुरुपयोग होने के कारण उच्च पदों पर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला है। भ्रष्ट नेता व अधिकारी प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन हो रहे हैं और ईमानदार अधिकारियों को अलग-थलग कर रहे हैं। प्रशासन के सभी स्तरों पर व्याप्त भ्रष्टाचार इस कथन का समर्थन करता है।[8] उदारीकरण की प्रक्रिया ने प्रशासन व अर्थशास्त्र में निजी क्षेत्र की भूमिका में काफी बढ़ोतरी हुई हैं। जो कार्य पहले सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा किये जाते थे वह अब निजी क्षेत्र द्वारा किए जाते है। सार्वजनिक-निजी क्षेत्र भागीदारी के तहत निर्माण के क्षेत्र में अनेकों योजनाएं निजी क्षेत्र के द्वारा लागू की जाती है। राजनीति व प्रशासन का शीर्ष नेतृत्व इस कार्य के लिए निजी क्षेत्र के साथ विभिन्न प्रकार के

समझौता ज्ञापन करते हैं। राजनीतिज्ञों व अधिकारियों के साथ कुछ व्यावसायी व्यक्तियों ने मिलकर एक खतरनाक गठजोड़ बना लिया है जो अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में नियमों को ताक पर रखकर अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए इसका दुरुपयोग करते हैं। सरकार के मुखिया व नियामकीय संस्थाओं के प्रभावशाली नियन्त्रण के अभाव में भ्रष्टाचार व अनैतिक कृत्यों को बढ़ावा मिलता है। गठबन्धन की सरकारों के दौरान अनेकों भ्रष्ट कृत्य व घोटाले सामने आए जैसे राष्ट्रमण्डल खेलों में घोटाला, कोयला घोटाला, टू जी स्पेक्ट्रम संचार घोटाला इत्यादि। यह भी स्पष्ट हो गया कि इन सभी भ्रष्ट कार्यों में निर्धारित प्रक्रिया का पालन न होने, पारदर्शिता की कमी व जनहित की भावना को ताक पर रखा गया। इस दौरान सरकार मुखिया प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने सार्वजनिक जीवन में सदाचार व सच्चरित्रता के उच्च आदर्शों को अपनाया और यह भी सुनिश्चित किया कि वे स्वयं व उसके पारिवारिक सदस्य किसी भी अनैतिक कार्य में संलिप्त न हो परन्तु वे अपने अधीनस्थ अधिकारियों व मन्त्रियों को भ्रष्ट कार्यों में संलिप्त होने से नहीं रोक सके। वे अपनी पार्टी के मन्त्रियों के सम्बन्ध में कांग्रेस दल के नेतृत्व से और सहयोगी दलों के मन्त्रियों के सम्बन्ध में उनके दलीय नेतृत्व से यह उम्मीद रखते थे कि वे अपने दल की काली भेड़ों के खिलाफ कार्रवाई करें।[9] इस प्रकार गठबन्धन सरकार चलाने की विवशताओं के कारण सरकार के मुखिया ने मन्त्रियों के भ्रष्ट कार्यों की अनदेखी की और अनैतिक कार्यों पर अंकुश नहीं लगा सके।

5. **l'kklu dh ekx o xBcU/ku dh ljdkj**: पिछले कुछ दशकों से नागरिक समाज सुशासन व गुणवत्तापूर्वक सेवाओं की माँग कर रहा है इनमें मुख्य रूप से प्रशासन में पारदर्शिता लाने, जवाबदेही सुनिश्चित करने व भ्रष्टाचार मुक्त बनाने के लिए सूचना के अधिकार, जनसेवाओं के लिए नागरिक अधिकार पत्र व लोकपाल की संस्था की माँग शामिल है। पारदिर्शता लाने के लिए आवश्यक है कि प्रशासन में गुप्तता को समाप्त किया जाए क्योंकि गुप्तता लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के विपरीत हैं इसके लिए प्रशासनिक सुधार आवश्यक हैं। डॉ. मनमोहन सिंह ने जून 2004 में राष्ट्र के नाम अपने पहले संदेश में कहा कि ''विकास का कोई भी लक्ष्य सार्वजनिक संस्थाओं व सरकार में सुधार किए बगैर प्राप्त नहीं किया जा सकता''। 2005 में सूचना का अधिकार लागू किया। इसका मुख्य उद्देश्य प्रशासन में जवाबदेहित व पारदर्शिता लाना था। इसे राष्ट्रीय परामर्श समिति की अनुशंसा के आधार पर लागू किया गया था। उस समय बहुत से वरिष्ठ व सेवानिवृत्त अधिकारियों ने इस कानून के प्रति प्रधानमंत्री को चेताया था। उन्होंने यह भी कहा था कि इससे नीति-निर्माण की प्रक्रिया बाधित हो सकती हैं।[10] इस कानून के लिए दल की अध्यक्षा समर्पित थी इसलिए इसका कोई विरोध नहीं हुआ परन्तु प्रशासन के अन्य क्षेत्रों में अपेक्षित सुधार नहीं हो सका और इसका मुख्य कारण था प्रधानमंत्री कार्यालय का कमजोर होना। इसके साथ

ही प्रधानमंत्री के मुख्य सचिव अनुभवहीन थे। उनमें अपने पूर्व अधिकारियों जैसे विश्वास की कमी थी और वैसा तंत्र विकसित नहीं कर पाये जैसा उन्होंने विकसित किया था। यद्यपि प्रशासनिक सुधार लागू करने के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री कार्यालय मन्त्रालयों से रिपोर्ट माँगता था और इसकी सूचना प्रधानमन्त्री को देता था परन्तु कार्यों की देखरेख रखने के साथ-साथ उनसे प्रशासनिक सुधार लागू करवाने में असफल रहा। [11] इस प्रकार वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता वाले प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें लागू करने में नौकरशाही का अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। उसके बाद भी नौकरशाही ने सूचना के अधिकार को कमजोर करने की कोशिश की और यह तर्क दिया कि इससे अधिकारियों के निर्णय लेने की क्षमता व पहलकदमी प्रभावित होती है परन्तु नागरिक समूहों के विरोध करने के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। इसी प्रकार व्यापक जन आन्दोलन ने लोकपाल कानून पारित करने के लिए सरकार को बाध्य किया परन्तु इस संस्था को स्थापित करने में काफी समय लग गया। इस प्रकार प्रशासनिक सुधार न केवल सुशासन के लिए आवश्यक है बल्कि नागरिकों को गुणवत्तापूर्वक सेवाएं प्रदान करने, अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास व भारत को सम्पन्न राष्ट्र बनाने के लिए भी आवश्यक है परन्तु गठबन्धन की सरकारों में प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित अहम निर्णय लेने व लागू करने, इसके लिए आवश्यक तन्त्र का विकास करने व घटक दलों व नौकरशाही का सहयोग प्राप्त की क्षमता नहीं है।

6. **i/kkuea=h dk;kZy; 'kfDrfofgu**: प्रधानमंत्री कार्यालय प्रधानमन्त्री को प्रशासनिक कार्यों में मदद करता है और सचिवालय के रुप में कार्य करता है। 1960 व 70 के दशकों में प्रधानमंत्री कार्यालय बहुत शक्तिशाली रहा परन्तु गठबन्धन सरकारों की शुरुआत होने के बाद प्रधानमंत्री कार्यालय की शक्तियां कम हो गईं। वी.पी. सिंह, नरसिम्हा राव, एच.डी.देवगौड़ा, आई.के. गुजराल के प्रधानमंत्री कार्यकाल के दौरान प्रधानमंत्री कार्यालय तुलनात्मक दृष्टि से शक्तिविहीन ही रहा परन्तु अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल के दौरान इसकी शक्तियाँ बढ़ी। डॉ. मनमोहन सिंह के कार्यकाल के दौरान प्रधानमन्त्री शक्तिविहीन होकर रह गया। भारतीय लोकतन्त्र में प्रधानमन्त्री व प्रधानमन्त्री कार्यालय का विशेष महत्व है क्योंकि शक्तिशाली प्रधानमन्त्री कार्यालय न केवल नौकरशाही पर प्रभावशाली तरीके से नियन्त्रण कर सकता है अपितु मन्त्रियों के कार्यों की प्रगति की समीक्षा भी कर सकता है और आवश्यकता पड़ने पर दोषी मन्त्रियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई भी कर सकता हैं। प्रधानमन्त्री की स्थिति कमजोर होने व अस्थिर सरकार होने पर नौकरशाही अपनी मनमानी करती है व इससे जन-हितों की उपेक्षा होती है व भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

7. **xBcU/ku dh ljdkj o bldk lq?kkRed vk;ke**– स्वतन्त्रता के पश्चात चार दशकों तक भारत में एक ही दल का शासन रहा इससे राजनैतिक केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला परन्तु 1990 के बाद राजनैतिक व आर्थिक क्षेत्र में व्यापक

परिवर्तन हुआ। राजनैतिक क्षेत्र में क्षेत्रीय दलों का उभरना व आर्थिक क्षेत्र में नव उदारवादी नीतियों ने भारतीय संघ की राजनैतिक अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है। इनके परिणामस्वरूप भारत सरकार के लिए बाजारी शक्तियों व नागरिक समूह संगठनों को आर्थिक प्रबन्धन व नियोजन की प्रक्रिया में समायोजित करना विवशता है।[12]

केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच कईं मुद्दों जैसे लोकपाल, राष्ट्रीय आतंकवाद विरोधी केन्द्र की स्थापना, माओवाद की समस्या, भूमि अधिग्रहण, खाद्यान्न सुरक्षा, मनरेगा में भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, तीस्ता नदी जल के बँटवारे के सम्बन्ध में भारत व बाँग्लादेश में समझौता आदि। इन विषयों से केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर व्यापक असर पड़ा है क्योंकि इनमें से बहुत से विषय राज्य सूचि में है परन्तु इस सम्बन्ध में कानून, सन्धि/समझौते केन्द्र सरकार द्वारा किये जाते हैं।[13] पुलिस व कानून व्यवस्था राज्य सूचि का विषय है परन्तु प्रशासनिक सुधार आयोग ने अपनी पांचवी रिपोर्ट में पुलिस सुधार लागू करने की अनुशंसा की है। इस सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय ने भी केन्द्र व राज्य सरकारों को आवश्यक दिशा-निर्देश दिये हैं। राज्य सरकारों ने इसे अपने अधिकार क्षेत्र में दखल बताते हुए इसे नकार दिया हैं अप्रैल 2012 में नई दिल्ली मुख्यमन्त्रियों के सम्मेलन में गैर-कांग्रेसी मुख्मंत्रियों ने इसे राज्यों के अधिकार क्षेत्र की उल्लंघन व प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें थोंपने का आरोप लगाया। दूसरे प्रशासनिक सुधार की 165 सिफारिशों में 153 राज्यों के दायरे में आती है इसलिए आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय लेने से पहले राज्यों को विश्वास में लिया जाए। प्रशासनिक सुधार आयोग ने पुलिस सुधार, लोकव्यवस्था प्रबन्धन, आपराधिक न्याय व संघीय न्याय प्रणाली में सुधार जैसे विषयों के सम्बन्ध में सिफारिश की है।[14]

कानून व्यवस्था व आन्तरिक सुरक्षा से सम्बन्धित दूसरा विषय राष्ट्रीय आतंकवाद विरोधी केन्द्र (एन.सी.टी.सी.) की स्थापना है जिसे लेकर केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच में तनातनी है। मुम्बई हमले के बाद राष्ट्रीय सुरक्षा के परिदृश्य में व्यापक परिवर्तन आया है परन्तु राष्ट्रीय आतंकवाद विरोधी केन्द्र की स्थापना न कर पाने से आतंकवाद के विरुद्ध ठोस कदम उठाने में बाधा उत्पन्न होती है। गुप्त सूचनाओं को इकट्ठा व विश्लेषण करने के लिए ऐसी संस्था का होना जरूरी है। राज्य सरकारों के पास यह कार्य करने की आधारभूत संरचना नहीं है इसलिए यह कार्य इस तरह की राष्ट्रीय संस्था द्वारा बेहतर तरीके से किया जा सकता है परन्तु राज्य सरकारों ने संघीय संरचना को खतरा बताते हुए इसका विरोध किया है।[15] इस प्रकार गठबन्धन की सरकार राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े हुए मुद्दे पर इस संस्था की स्थापना नहीं कर पाई और न ही पुलिस सुधारों को लागू कर पाई। बांगलादेश के साथ तीस्ता नदी जल समझौता

पश्चिम बंगाल की मुख्यमन्त्री द्वारा विरोध करने के कारण नहीं हो पाया। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में समय-समय पर केन्द्रीय जाँच अभिकरणों की भूमिका पर प्रश्न उठते रहे है। इसी सम्बन्ध में पश्चिम बँगाल की मुख्यमन्त्री ने केन्द्र पर केन्द्रीय जाँच ब्यूरों (सी.बी. आई.) का दुरुपयोग करने का आरोप लगाया वही केन्द्र में सत्ताधारी दल ने पश्चिम बँगाल की मुख्यमन्त्री पर कोलकाता पुलिस के मुखिया को बचाने का आरोप लगाया।[16]

इस प्रकार गठबन्धन सरकारों की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि केन्द्र व राज्यों में बहुत से कारक व शक्तियाँ है जो गठबन्धन सरकार की शासन प्रणाली को प्रभावित करती हैं इसमें घटक दलों की विचारधारा व राजनैतिक प्राथमिकताएं, क्षेत्रीय दलों के मुद्दे, समस्याएं व मांग, दलीय संगठनों के अध्यक्षों की भूमिका, प्रधानमन्त्री/मुख्यमन्त्री की स्थिति व भूमिका, केन्द्रीय संस्थाओं व जाँच अभिकरणों की भूमिका इत्यादि शामिल हैं। अभी भी कुछ राज्यों में गठबन्ध की सरकारें हैं। भविष्य में केन्द्र व राज्यों में गठबन्धन की सरकारें बन सकती हैं। गठबन्धन सरकार की प्रभावशीलता, स्थिरता व शासन प्रणाली की सफलता सरकार के मुखिया की भूमिका व स्थिति, उस समय का राजनैतिक वातावरण व सरकार द्वारा विभिन्न मुद्दों पर विभिन्न राजनैतिक घटकों व क्षेत्रीय दलों के साथ सहमति बनाने का सामर्थ्य, प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री का राजनैतिक व प्रशासनिक अनुभव पर निर्भर करेगा। हमारे देश के राजनैतिक इतिहास में ऐसे उदाहरण हैं जैसे नरसिम्हा राव ने अल्प संख्यक बहुमत होने के बावजूद अपना कार्यकाल पूरा किया और श्री अटल बिहारी वाजपेयी व डॉ. मनमोहन के नेतृत्व में गठबन्धन सरकारों ने अपना कार्यकाल पूरा किया।

संदर्भ

1. जोसेफ लॉ पलोम्बारा, एन ओवरव्यू आफ ब्यूरोक्रकेसी एण्ड पोलीटीकल डिवलपमेंट, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटीकल डिवलपमेंट, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1963 न्यू जर्सी पृष्ठ 26
2. मोहित भट्टाचार्य, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन टुडे एण्ड टूमारो, इंडियन जरनल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, अँक XLVIII, संख्या 3 P. 323
3. मरीना आर. पिंटो, सिविल, सर्विस न्यूट्रलिटी इन इण्डिया, इंडियन जरनल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, अंक XVIII संख्या 3 पृष्ठ 606
4. संजय बारु, दि एक्सीडेंटल प्राइम मीनिस्टर, मेकिंग एण्ड अनमेकिंग आफ मनमोहन सिंह, पेंगवीन पब्लिशर्ज़, नई दिल्ली, 2016 पृष्ठ 72
5. बेलू महेश्वरी, पॉलीटिशियन्स वरसज ब्यूरोक्रेटस, दि ट्रिब्यून, 26 सितम्बर 1998 पृष्ठ 1
6. माधव गोडबोले, ब्यूरोक्रेसी एट क्रोस रोड़, इंडियन जरनल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, अँक XLVIII, संख्या 3 पृष्ठ 331

7. शांति कोठारी राम आश्रय राय, जिला स्तर पर राजनीतिज्ञों व अधिकारियों के बीच सम्बन्ध, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली,1969।
8. शेखर सिंह, एथिक्स एंड एडमिनिस्ट्रेशन' इंडियन जरनल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन पृष्ठ 331
9. संजय बारु पृष्ठ 84
10. संजय बारु पृष्ठ 101
11. संजय बारु पृष्ठ 102
12. रेखा सक्सेना, दि पायोनियर, 6 सितम्बर 2012 पृष्ठ 9
13. रेखा सक्सेना
14. जनसत्ता 16 अप्रैल 2013 पृष्ठ 1
15. इंडियन एक्सप्रैस, 3 मई 2014 पृष्ठ 10
16. दि ट्रिब्यून, 7 फरवरी 2019 पृष्ठ 8

गठबंधन सरकार की स्थिति

बिपिन दूबे

lkjk'k% आज भारत सहित विश्व के अधिकांश देशों में गठबंधन सरकारें ही देखने को मिल रही हैं। ब्रिटेन को छोड़ कर या जिस देश में द्विदलीय शासन पद्धति ही है उसे छोड़कर विश्व के कई देशों में गठबंधन की सरकारें देखने को मिल रही हैं। गठबंधन की सरकारें सन्तुलित शासनसत्ता या साझा विकास गति भले ही प्रदान कर रही हों परन्तु इसमें स्थायित्व शासन प्रदान करने की प्रवृत्ति नही दिखती है और यही कारण है कि इसे देश को बार-बार चुनाव में ढकेल देने वाला तथा पैसे को बर्बाद करने वाला शासन के रूप में ही देखा जा रहा है तथा अधिकांश जनता इसे नकार ही रही है। इस शोधपत्र में गठबंधन सरकारों की शुरुआत उनकी प्रवृत्ति तथा कार्य करने की रूपरेखा का बिहार के संदर्भ में देखने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

xBc/ku ljdkj l: rkRi;%& भारतीय संविधान द्वारा केन्द्रीय एवं राज्यस्तर पर संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है। संसदीय व्यवस्था शासन की वह व्यवस्था है जिसमें व्यवस्थापिका और कार्यपालिका परस्पर संबंधित होतीं हैं। कार्यपालिका का गठन व्यवस्थापिका में से किया जाता है और कार्यपालिका (मंत्रिमण्डल) व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है। इस संसदीय व्यवस्था में सर्वप्रथम केन्द्रीयस्तर और राज्यस्तर पर व्यवस्थापिका के लोकप्रिय सदन (लोकसभा/विधानसभा) के चुनाव होते हैं। इन चुनावों में जब किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है और यह राजनीतिक दल अपना एक नेता चुन लेता है तब राज्य का प्रधान (राष्ट्रपति/राज्यपाल) बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री पद पर मनोनीत करता है तथा मंत्रिमण्डल के गठन के साथ ही एकदलीय सरकार का गठन हो जाता है, लेकिन जब लोकप्रिय सदन के चुनाव में किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही होता तो त्रिशंकु लोकसभा या त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति बनती है, तब राजनीतिक दलों और दलीय नेताओं के बीच गठबंधन को जन्म देने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और जो गठबंधन राज्य के प्रधान को अपने बहुमत से आश्वस्त कर

देता है, उस गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है और गठबंधन का नेता प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री मिलीजुली सरकार का गठन करता है।[1] मिलीजुली सरकार राजनीतिक समुदायों तथा शक्तियों का गठजोड़ है जो अस्थायी और कुछ विशिष्ठ प्रयोजनों के लिए होता है। राजनीतिक दलों का यह मिलन सरकारों के निर्माण या उनकी रक्षा करने के लिए बनाया जाता है। जिन दलों के सहयोग के फलस्वरूप संयुक्त सरकारों का निर्माण होता है, वे एक बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रम पर एकमत होते हैं।[2] भवानीसेन गुप्ता के अनुसार ''मिलीजुली सरकारों के गठन और जीवन तथा कार्यकरण के लिए जिस प्रतिभा और संस्कृति की आवश्यकता होती है, भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में अभी तक वस्तुतः उसका अभाव रहा है। अस्थायी मिलीजुली सरकारों या अल्पमत सरकारों के क्रम ने राज्य के संकट में योगदान किया है, क्योंकि राज्य सरकार के साथ हुआ है''।[3] इस प्रकार गठबंधन सरकार एक ऐसी सरकार होती है, जिसमें कम-से-कम दो राजनीतिक दलों की भागीदारी होती है। गठबंधन सरकारों में सहभागी दलों की संख्या तीन या इससे अधिक होती है। बल्कि अधिकतम संख्या का कोई निर्धारण नहीं है।

गठबंधन सरकार मतभेदों के बावजूद एक समवेता स्वर होती है। ऊपर से देखने में गठबंधन सरकारें चाहे कितनी भी ठोस प्रतीत हों उसके अन्दर मतभेद के स्वर विद्यमान रहते ही हैं। भागीदारी दलों के बीच विद्यमान ये राजनीतिक मतभेद ही तो दलों को अपना अलग-अलग राजनीतिक अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देते हैं। हमने यह देखा है कि राजनैतिक व्यवस्था किस प्रकार अपना एक स्वरूप ग्रहण कर रही है। प्रश्न यह है कि ये संस्थाएँ किस हद तक समाज में प्रवेश कर पायी हैं और राजनैतिक व्यवस्था कहाँ तक जनता की स्वीकृति पा सकीं हैं। इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें इस व्यवस्था में उन अवयवों या तत्वों को देखना होगा जो इसे गति देते हैं। ये तत्व तीन हैं– *पहला* है की पद्धति और किस प्रकार यह विभिन्न तत्वों या गुटों से गठबंधन करके सहमति प्राप्त करने की कोशिश करती है, *दूसरा* है जाति का ढांचा जो इस पद्धति का सामाजिक आधार बन गया है और *तीसरा* है वे राजनैतिक संस्कार और सामाजिक प्रवृत्तियाँ जो प्रथम दोनों तत्वों से उत्पन्न होती हैं।[4] गठबंधन सरकारें सम्मिलन की राजनीति (Coalition Politics) का परिणाम होती हैं और विभिन्न राजनीतिक दल सम्मिलन की इस राजनीति को चुनाव के पूर्व या चुनाव के पश्चात् अपना सकते हैं। सम्मिलन की इस राजनीति को अपनाने का विशिष्ट प्रयोजन होता है। जब चुनाव के पूर्व सम्मिलन या गठबंधन की राजनीति को अपनाया जाता है तब इसका लक्ष्य होता है, चुनाव में बहुमत प्राप्त कर सरकार का गठन करना। अनेक बार ऐसा होता है कि राजनीतिक दल चुनाव में अकेले अपने ही बलबूते पर बहुमत पाने की आशा करता है, लेकिन जब वह ऐसा नहीं कर पाता, तब वह दूसरे राजनीतिक दलों के साथ गठबंधन कर बहुमत बनाता है और सरकार बनाने का दावा प्रस्तुत करता है। चुनाव के पूर्व जो गठबंधन बनते हैं, उनमें अवसरवादिता का तत्व कम होता है और

साथ-साथ काम करने का आधार बन जाता है। चुनाव के पश्चात और चुनाव से उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए जो गठबंधन बनाये जाते हैं, उनमें अवसरवादिता का तत्व अधिक अंशों में विद्यमान होता है और यही बात इन गठबंधनों को कमजोर कर देती है।

Hkkjr lfgr fo'o d n'kk e xBc/ku ljdkj%& बीसवीं सदी में और इसके पूर्व विश्व के विभिन्न देशों में मिलीजुली सरकारों का अस्तित्व रहा है। संसदीय व्यवस्था का जनक देश इंग्लैण्ड है और इंग्लैण्ड में तो सामन्यता यह कहा जाता है कि 'इंग्लैण्ड मिलीजुली सरकारों को पसन्द नही करता।'(5) लेकिन फ्रांस में चतुर्थ गणतंत्र, पं0 जर्मनी, इटली, कनाडा, श्रीलंका और जापान आदि देशों में मिली जुली सरकारों का अस्तित्व रहा है। फ्रांस के चतुर्थ गणतंत्र (1946–58) में गठित सभी मंत्रिमण्डल गठबंधन मंत्रिमण्डल ही थे। पं0 जर्मनी में क्रिश्चिन डेमोक्रेट और सोशल डेमोक्रेट ने मिलकर कई बार शासन संभाला था। बहुदलीय व्यवस्था के कारण 1948 से लेकर अब तक इटली में कई बार संयुक्त सरकारें बन चुकी हैं। सन् 1947 ई0 में स्वाधीन श्रीलंका के शासन का श्रीगणेश ही संयुक्त सरकार से हुआ था और 1977 में नवीन संविधान अपनाने तक संयुक्त सरकारें एक सामान्य स्थिति थी। जापान में भी कई बार मिलीजुली सरकार का गठन हो चुका है और वर्तमान में भी जापान में मिलीजुली सरकारें ही रहीं हैं। यूरोप में आज यू0के0, स्पेन और ग्रीस को छोड़कर लगभग सभी देशों में मिलीजुली सरकारें देखने को मिलती हैं।

सामान्यता यह सोचा जाता है कि द्विदलीय व्यवस्था में एक दलीय सरकार का गठन करना होगा। भारत लम्बे समय तक इस सामान्य नियम का अपवाद रहा है और इस स्थिति का कारण था भारत की बहुदलीय व्यवस्था में एक राजनीतिक दल की प्रधानता की स्थिति प्राप्त होना। 1947 से लेकर 1966 तक स्थिति यह थी कि कांग्रेस को न केवल केन्द्र बल्कि अधिकांश राज्यों के स्तर पर भी प्रधानता की स्थिति प्राप्त थी। 1971-76 के वर्षो में और पुनः 1980-88 के काल में केन्द्र तथा अधिकांश राज्यों में उसने यह स्थिति प्राप्त कर ली। इस प्रकार भारत के संवैधानिक इतिहास में एक दल की सरकार एक सामान्य स्थिति के रूप में और मिलीजुली सरकारें अपवाद स्वरूप रही है, लेकिन अब केन्द्रीय स्तर पर और अधिकांश राज्यों के स्तर पर मिलीजुली सरकार एक सामान्य स्थिति बन गयी है।

भारत में गठबंधन की सरकारें राज्यों में कई बार बनी हैं तथा केन्द्र में भी कई बार बनी हैं।

Hkkjr d jkT;k e xBc/ku ljdkj%& केरल इस दृष्टि से भारतीय राजनीति का अपवाद रहा है कि 1967 से पूर्व भी कांग्रेस केरल में कभी स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही कर पायी। 1951-52 में कांग्रेस ने केरल (त्रावणकोर-कोचीन) विधानसभा में सबसे अधिक सीटें जीतीं, लेकिन उसे बहुमत प्राप्त नही हुआ। अतः कॉंग्रेस तमिलनाडु-त्रावणकोर

ने नेशनल कांग्रेस की सहायता से मंत्रिमण्डल बनाया किन्तु छः माह के अन्दर ही नेशनल कांग्रेस ने अविश्वास प्रस्ताव के पक्ष में मत देकर सरकार को पराजित कर दिया। उसके बाद 1954 में त्रावणकोर–कोचीन में मध्यावधि चुनाव हुए, जिसमें कोई भी दल स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही कर सका। अतः कांग्रेस के समर्थन से प्रजा समाजवादी दल ने पट्टमथानु पिल्लई के नेतृत्व में अपना मंत्रिमण्डल बनाया, किन्तु मार्च 1955 में इस मंत्रिमण्डल का पतन हो गया। इसके बाद पी0जी0 मेनन के नेतृत्व में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बना जो लगभग एक वर्ष तक रहा। इसके बाद 1960 में पुनः पिल्लई के ही नेतृत्व में ही गठबंधन सरकार का गठन हुआ और यह सरकार 1962 तक चली। इस प्रसंग में एक तथ्य यह है कि केरल के कांग्रेस नेतृत्व और कांग्रेस हाईकमान द्वारा केरल की इन मिलीजुली सरकारों या केरल की साम्यवादी सरकार को गिराने की निरन्तर चेष्टाएँ की गई और ये गठबंधन सरकारें राजनीतिक अस्थायित्व का कारण ही बनीं।

भारत में राज्यस्तर पर गठबंधन सरकारों का कार्यकाल चतुर्थ आम निर्वाचन (फरवरी 1967) से प्रारम्भ होता है। चतुर्थ आम चुनाव के पूर्व केन्द्रीय स्तर पर तथा अधिकांश राज्यों के स्तर पर कांग्रेस को सत्ता पर एकाधिकार प्राप्त था, लेकिन एक विशेष बात यह थी कि कांग्रेस विरोधीमत विभिन्न विपक्षी दलों में विभाजित हो जाते थे और लगभग 45 प्रतिशत मतों के आधार पर ही कांग्रेस भारी बहुमत प्राप्त कर लेती थी। चतुर्थ आम चुनाव में भारतीय जनता द्वारा मतदान के आधार पर क्रांति लाने का प्रयास किया गया।[6] लोकसभा में कांग्रेस की संख्या 361 से घटाकर 281 रह गयी और भारतीय संघ के 17 में से लगभग आधे राज्यों में स्थिति यह बनी की कांग्रेस को बहुमत प्राप्त नही था या कांग्रेस को क्षीण बहुमत प्राप्त था, जो कुछ सदस्यों के दल बदल के कारण समाप्त हो गया और इन राज्यों में संयुक्त विधायक दल की सरकारें (गठबंधन सरकारें) बनीं। राजस्थान में जनता ने तो कांग्रेस को बहुमत नहीं दिया, लेकिन राज्यपाल ने विपक्ष को सरकार बनाने का अवसर नही दिया और अन्ततः कुछ विपक्षी सदस्यों के दल-बदल के आधार पर कांग्रेस ने अपने लिए बहुमत जुटा लिया। 1967-70 के हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पं0 बंगाल, बिहार, केरल और पंजाब में गठबंधन सरकारों का गठन हुआ।

fcgkj e 2015 d xBc/ku ljdkj dk ,d vè;;u%& बिहार में महागठबंधन सरकार के सत्तारुढ़ होते ही समाजिक राजनीति की एक नयी आधारशिला रख दी गयी। उस समय जद्यु और राजद जो कई वर्षो तक एक दूसरे के घोर विरोधी रहे थे उन दोनों राजनीतिक दलों ने मिलकर चुनाव लड़ा और बहुमत प्राप्त कर सत्ता में आ गये। बिहार में जो महा गठबंधन बना उसके पीछे तीनों घटक दलों जदयु, राजद, कांग्रेस की अपनी-अपनी राजनीतिक मजबूरी थी, लेकिन इसकी कल्पना शायद इन दलों को भी नही रही होगी कि उनका यह प्रयोग इतना सफल सिद्ध होगा।[7]

नीतिश की महागठबंधन सरकार में उम्मीद के मुताबिक लालू प्रसाद के दोनों बेटों तेजस्वी और तेज प्रताप को प्रमुख मंत्रालय देने पड़े जो अनुभवहीन ही नही बल्कि प्रशासनिक निपुर्णता भी नही थी। हांलांकि राजद के नाकामियों के कारण ही जदयु और भाजपा की सरकार 2005 में पहली बार बनी थी। कई वर्षो तक राजद के काल का प्रचार कर जनता द्वारा जदयु वोट मांगता रहा परन्तु सत्ता की ख्वाईश ने नीतिश को गठबंधन के लिए मजबूर कर दिया। महागठबंधन सरकार का नेतृत्व संभालने के पहले तक नीतिश की सामाजिक न्याय और नजरिये वाली राजनीति अलग किस्म की रही। उन्होंने पिछड़ी जातियों के साथ-साथ अति पिछड़ी जातियों को भी अपनी राजनीति के केन्द्र में रखा और उस जनाधार का भी नेतृत्व किया जिसका प्रतिनिधित्व भाजपा विकास के नारे के साथ करती थी। विधानसभा चुनाव में भाजपा की ओर से विकास के अपने मूल जड़ से हटकर जो राजनीति की गयी उससे महागठबंधन को स्वतः ही समाज के बड़े वर्ग का साथ मिला और वे जीतने में सफल रहें। परन्तु कुछ ही वर्षो के बाद राजद और जदयु के बीच विकास को लेकर दरार पड़ने लगी। भाजपा लगातार राजद के काले कारनामों का पर्दाफाश कर रही थी और लालू प्रसाद यादव का पूरा परिवार उसमें फंसता गया। विधानसभा में नीतिश सरकार की बेईज्जती होने लगी जिससे उन्होंने तेजस्वी यादव पर त्यागपत्र देने के लिए दबाव बनाया परन्तु राजद ने इसे नकार दिया। जिसके कारण जदयु को पुनः भाजपा के साथ जाना पड़ा जो उनकी मजबूरी थी। इस प्रकार गठबंधन में अक्सर अवसरवादिता देखने को मिल रही है।

गठबंधन सरकारों के कार्यकाल में प्रशासनिक तंत्र के सामने उठनेवाली मुख्य समस्याएँ

1. ऐसी सरकारों में विभिन्न दलों की मूलभूत वैचारिक भिन्नताओं के कारण तथा लोकनीति की दृष्टि से ऐसी सरकारें निष्फल मानी जाती हैं। इसी कारण प्रशासन के क्रियान्वयन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
2. गठबंधन सरकारें न्यूनतम साझा समझौते पर कार्य करती हैं। इसके लिए संबंधित दलों को विशेषरूप से प्रमुख दलों को चुनाव घोषणा-पत्र तक को तिलांजली देनी पड़ती है। इस प्रकार प्रशासनिक पक्ष की उपेक्षा करते हुए न्यूनतम कार्यक्रम एक राजनीतिक दस्तावेज बन जाता है। इससे समस्त प्रशासनिक तंत्र प्रभावित होता है।
3. साझा सरकारों में दूरगामी योजनाओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सामान्य रूप से साझा सरकारें तत्कालिक आवश्यकताओं तथा समझौते के अनुरूप संचालित होती हैं। प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री की स्थिति साझा सरकार में कमजोर हो जाती है तथा गठबंधन में सम्मिलित तत्वों की जायज-नजायज माँगों को पूरा करने में विवशता अनुभव करते हैं।

4. प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री की कमजोर स्थिति का प्रशासनिक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है एवं उनकी नेतृत्व क्षमता भी प्रभावित होती है तथा महत्वपूर्ण योजनाओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। साझा सरकार की इस राजनीतिक मजबूरी का अन्ततः देश की प्रगति तथा कुशल प्रशासन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
5. साझा सरकारों के कार्यकाल में भ्रष्टाचार पर अंकुश नही लग पाता है। विभिन्न दलों के दबाव में अनेक पद तथा प्रशासनिक संस्थाएँ गठित की जाती है। लाभ के पद की यह प्रणाली भ्रष्टाचार के नवीन मार्ग खोज रही है। मनोवांछित अधिकारियों की नियुक्ति तथा अधिक मात्रा में स्थानान्तरण भ्रष्टाचार के द्वार खोजते हैं। ऐसी सरकारों में प्रशासनिक खर्च भी बढ़ता है।
6. सामान्यतः साझा सरकारें अस्थिरता को बढ़ावा देती हैं। साथ में नौकरशाही अधिक प्रभावी हो जाती है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी पर गठित तथा अस्थिर सरकारें कुशल, ईमानदार प्रशासन नहीं दे सकती हैं।[8]

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि गठबंधन राजनीति देश के लोकतंत्र के लिये आवश्यक तथा समय की माँग बन गई है और इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। भारत के बहुलतावाद में अब प्रतीत होता है कि एक दल या दो दल के लोकतंत्र का कोई स्थान नहीं हैं। भारत की पहचान 'विविधता में एकता' है। अतः समय और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए गठबंधन राजनीति से बचना संभव नही हैं। समय के साथ चलने में लोकतंत्र और देश की भलाई है। हालांकि हाल के वर्षों में लोकसभा चुनाव एवं कई राज्यों के चुनावों में जनता ने गठबंधन की राजनीति को दूर कर बहुमत वाली सरकारें चुनी है। इस प्रकार गठबंधन सरकार एक समय की मांग है वही इसकी नाकामी सरकार के विकृत रूप को सामने लाती है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय शासन एवं राजनीति– डॉ0 पुखराज जैन एवं डॉ0 बी0एल0 फाड़िया पृ0–566.
2. कश्यप तथा गुप्ता राजनीतिकोश पृ0–57.
3. Bhabanisen Gupta - India-Problem of Governance, New Delhi, Konark,1996, P-104.
4. ''द कांग्रेस सिस्टम इन इंडिया''–एशियन सर्वे IV नं0 12 दिसम्बर 1964.
5. England does not love Coalitions.
6. E.P.W.de Casta : Roots of Change in Popular Vote; The Hindu; March 17-1967.

7. संजय गुप्ता–नए समीकरणों की सियासत–दैनिक जागरण 22 नवम्बर 2015.
8. अवस्थी एवं अवस्थी–गठबंधन सरकारों में प्रशासन की समस्याएँ–पृष्ठ 652–653.

संदर्भ पुस्तकें

1. अवस्थी एवं अवस्थी– भारत में लोक प्रशासन – प्रकाशक–लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. डॉ0 पुखराज जैन एवं डॉ बी0एल0 फाड़िया–भारतीय शासन एवं राजनीति–प्रकाशक–साहित्य भवन, आगरा।
3. रजनी कोठारी–भारत में राजनीति, प्रकाशक–ओरियंट ब्लैकस्वॉन।

भारतीय संघवाद का रूप एवं भारतीय संघवाद पर साझा सरकारों का प्रभाव

अंशु मोहन

Ikjk'k% 1950 में भारतीय संविधान के क्रियान्वित होते ही भारतीय संघवाद के स्वरूप के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की मिश्रित प्रतिक्रिया रही। के. सी. वियर ने भारतीय संविधान को एक अर्ध-संघीय सरकारी व्यवस्था तथा गौण ऐकिक गुणों से युक्त संघीय राज्य की तुलना में गौण संघात्मक गुणों से सम्पन्न एक ऐकिक राज्य के रूप में अभिव्यन्जित किया।[1] आइवर जेनिंग्स ने भारत को ''दृढ़ केन्द्रीय प्रवृत्तियों वाला संघ राज्य'' बताया।[2] एक अन्य भारतीय विद्वान ने भारत के संघीय स्वरूप पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए टिप्पणी की : ''अब हम भारतीय संघ के विषय में अपनी धारणा व्यक्त कर सकते हैं। यद्यपि भारतीय संविधान में संघात्मक गुण हैं लेकिन वे इतने मजबूत नहीं हैं कि भारत के संघात्मक स्वरूप को अन्य प्रसिद्ध संघ राज्यों के बराबर ला सकें।[3]

प्रस्तावना

भारतीय संघवाद का रूप

1950 के अन्तिम चरण में भारत में राज्यों की भाषा के आधार पर पुनर्गठन तथा 1967 के आम चुनावों के उपरान्त अनेक राज्यों में गैर-कांग्रेसी गठबन्धन सरकारों के बन जाने के कारण कांग्रेस की एकदलीय प्रभुत्व की व्यवस्था भंग होने के परिपेक्ष्य में संविधानविद्ों एवं राजनीतिक पर्यवेक्षकों का ध्यान भारतीय संघवाद के स्वरूप की ओर आकृष्ट होने लगा।[4] 1960 दशक के उत्तरोत्तर काल में स्थानीय एवं क्षेत्रीय मुद्दों को लेकर तथा केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को पुनर्भाषित करने सम्बन्धी माँगें तूल पकड़ने लगीं। भारत-चीन युद्ध (1962), प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की 1964 में आकस्मिक मृत्यु, सितम्बर 1965 में भारत-पाक युद्ध एवं 1969 में कांग्रेस का विभाजन कुछ ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ थीं जिन्होंने लोकतंत्र एवं संघवाद के लिए कई चुनौतियाँ खड़ी कर दीं।

मौरिस जोन्स ने भारतीय संविधान को महत्वपूर्ण ऐकिक गुणों से सम्पन्न संघ बताते हुए सावधानी पूर्वक इसे 'फेडरेशन' की अपेक्षा 'यूनियन' कहा जबकि अन्य विशेषज्ञों ने इसे 'अर्ध-संघ' की संज्ञा दी।[5] कठिन प्रतियोगितात्मक सौदेबाजी को भारतीय संघवाद का स्वरूप बताते हुए मौरिस जोन्स ने यह स्पष्ट किया कि कांग्रेस की अनौपचारिक शक्ति संरचना भारतीय संघवाद को काफी समय तक संचालित करती रही।[6] जोन्स के इस विचार का कई अन्य विद्वानों ने भी समर्थन किया है।[7] कई विद्वानों द्वारा भारतीय संघात्मक स्वरूप को 'अर्ध-संघीय' की उपमा दिये जाने पर प्रसिद्ध संविधानवेत्ता ग्रेनविल आस्टिन ने इसे 'मात्र दिलचस्प' बताते हुए विचार व्यक्त किया है कि भारतीय संघ का एक सकारात्मक स्वरूप भी है जो भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला एक प्रकार का नया 'संघवाद' है, जिसे आस्टिन ने 'सहयोगी संघवाद' का उपनाम दिया है जिसके अन्तर्गत एक सशक्त केन्द्र है, परन्तु राज्य सरकारें भी कमजोर नहीं हैं।[8]

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान को समय एवं परिस्थितियों की जरूरतों के अनुरूप ढलने वाला 'ऐकिक एवं संघीय' ढाँचा बताया जिसका निर्माण सामान्य परिस्थितियों में एक संघीय व्यवस्था के रूप में कार्य करने के लिए किया गया था[9]। भारत जैसे विविध समाज में नये प्रकार के तनावों एवं चुनौतियों से निपटने के लिए संगठनात्मक समाधान की भारतीय संघवाद की सफलता को के.आर. बोम्बवाल ने भी स्वीकारा है[10]।

1970 का दशक भारतीय संघवाद के लिए चुनौतियों भरा रहा। सामयिक सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों ने नई चुनौतियों को उभरने में सहायता की। 1970 दशक के आरम्भिक काल में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में विपक्ष द्वारा आर्थिक-राजनीतिक सुधारों के लिए आन्दोंलन, पश्चिमी बंगाल में नक्सलवादी हिंसा का उभरना एवं सरकार द्वारा स्थिति से निपटने के लिए सख्त कदम उठाना, तथा जून 1975 में आन्तरिक आपातकालीन की घोषणा इत्यादि ऐसी घटनाएँ थीं जिन्होंने भारतीय संघीय ढाँचे के लिए नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी। आपातकाल (1975-1977) के दौरान शक्तियों का केन्द्रीयकरण एवं जमाव केन्द्र सरकार के पास हो गया। 1977 में सम्पन्न हुए लोकसभा चुनावों के उपरान्त संघवाद को एक नए दृष्टिकोण से देखा जाने लगा।

1980 दशक के दौरान राज्यों द्वारा अधिकारों की माँग, क्षेत्रीय एवं स्थानीय दलों द्वारा राजनीति में भागीदारी के प्रयास तथा विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को गत्यात्मता प्रदान करना इत्यादि मुद्दों ने जोर पकड़ना आरम्भ कर दिया। पश्चिमी बंगाल में सत्तारूढ़ वामपंथी सरकार ने केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के विषय में 1 दिसम्बर 1977 को केन्द्र सरकार को दिए गए ज्ञापन में कहा : ''यद्यपि हम मजबूत राज्य चाहते हैं परन्तु साथ-ही-साथ हम कमजोर केन्द्र भी नहीं चाहते। मजबूत राज्यों की मांग एक मजबूत

केन्द्र के विरोधाभास में नहीं है यदि उनके कार्यक्षेत्र और शक्तियों को सुपरिभाषित कर दिया जाए।[11] राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करने के साथ ही साथ स्थानीय प्रशासनिक इकाईयों को अधिक अधिकार दिए जाने की भी मांग की जाने लगी।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के विषय पर केन्द्र सरकार ने सरकारिया आयोग का गठन किया। सरकारिया आयोग ने अपनी रिपोर्ट में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में सुधार लाने के कई उपाय सुझाए। 1990 दशक में केन्द्रीय सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया क्रियान्वित करने से वैश्वीकरण, उदारवादी बाजार व्यवस्था एवं निजीकरण की प्रक्रियाओं को बढ़ावा मिला तथा परिणामस्वरूप केन्द्र एवं राज्यों में सत्तासीन सरकारों में क्षेत्रीय दलों की बढ़ती हुई भूमिका ने भारतीय संघवाद का परिपेक्ष्य काफी हद तक बदल दिया।

1977-80, 1989-91 तथा 1996-98 के दौरान केन्द्र में साझा सरकारों के असफल अनुभवों के उपरान्त 1999 से बहुदलीय साझा सरकार की स्वस्थ परम्परा आरम्भ हो गई। केन्द्र में बहुदलीय साझा सरकार का सत्तासीन होने का अर्थ था क्षेत्रीय एवं राज्य-स्तर के दलों की केन्द्रीय सरकार में भागीदारी जो संघीय व्यवस्था के लिए एक शुभ संकेत था क्योंकि इससे राज्यों को अधिक स्वायत्तता का अवसर मिल पाया। एक मतानुसार : ''.... सशक्त क्षेत्रीय दलों से युक्त बहुदलीय व्यवस्था ने एकदलीय प्रभुत्व प्रणाली को अपदस्थ कर, दिया तथा बाजार अर्थव्यवस्था के योजना एवं लाइसेन्स राज प्रणाली को शिथिल कर दिया''।[12] कुछ विशेषज्ञों ने यह मत भी व्यक्त किया कि केन्द्र में राज्यों की भागीदारी ने भारतीय संघीय ढांचे को एक नया स्वरूप प्रदान कर दिया। परन्तु यह तर्क अधिक तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि सभी राज्यों को केन्द्र में भागीदारी का समान अवसर नहीं मिला तथा अधिकांश राज्यों में असमानताएं ज्यों की त्यों रहीं।

एन.डी.ए. की साझा सरकार (1999-2004) एवं यू.पी.ए.–1 (2004-2009) एवं यू. पी.ए.–2 (2009 से 2014) एन.डी.ए.–1 (2014-2019) और एन.डी.ए.–2 (मई 2019 से अब तक) की साझा सरकारों की केन्द्र में सफलता तथा कई क्षेत्रीय एवं राज्यों के दलों का इनमें प्रतिनिधित्व तथा केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में किसी विशेष तनाव का अभाव 'सहयोगी संघवाद' के सफल कार्यान्वयन के प्रतीक माने जा सकते हैं।

भारतीय संघवाद पर साझा सरकारों का प्रभाव

संघीय प्रणाली में सरकारों के बीच अधिकारों का विभाजन इस प्रकार किया जाता है कि केन्द्रीय सरकार एवं देश के विभिन्न प्रदेशों की सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में कानूनी-तौर पर एक दूसरे से स्वतन्त्र होती हैं। इसका आशय ऐसे तरीके से है जिसके अनुसार केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के मध्य शक्तियों को इस तरह बाँटा जाए कि दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में समन्यवयकारी व स्वतन्त्र हों। ऐसी राजनीतिक पद्धति हो

सकती है जिसमें इन दोनों शासन प्रणालियों का ऐसा विभिन्न मिश्रण हो कि केन्द्रीय सरकार की स्थिति क्षेत्रीय सरकारों के मुकाबले में बहुत अधिक शक्तिशाली हो। भारत में इसी प्रकार की संघवादी पद्धति को अपनाया गया है।

भारत का संघीय स्वरूप मूलतः 1935 के अधिनियम पर आधारित है। यह इतना लचीला नहीं है कि समय के साथ उभरती हुई मांगों के अनुरूप बदल सके और परम्पराओं एवं विश्वासों के अनुसार कार्यरूप में चल सके। फिर भी आरम्भ में राज्यों को यह संतोष था कि उनके लिए एक निश्चित विधायी सूची है जिसपर वे कानून बना सकते हैं। कालान्तर में ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि लोगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व व जवाबदेही को देखते हुए कोई भी दल जनमानस की इच्छाओं के विरूद्ध जाने का साहस नहीं करेगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जिस विशिष्ट वर्ग के सत्ता ग्रहण की वह शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में था इस वर्ग ने एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना ही नहीं की बल्कि और अधिक शक्तियाँ संघ सरकार के लिए एकत्रित करने में जुट गया। 1952 के पहले ही आम चुनाव में जब कांग्रेस की स्थिति पैप्सू, त्रावणकोर-कोचीन, मद्रास जैसे क्षेत्रों में अल्पमत में आ गई, तो केन्द्र सरकार ने अपनी सत्ता का प्रयोग राज्य प्रमुख द्वारा इस प्रकार से किया कि प्रथमतया वहाँ गैर-कांग्रेसी सरकार बनी, तो केन्द्र के हस्तक्षेप से उसे भी भंग कर दिया गया। 1957 में उड़ीसा में भी ऐसी ही स्थिति आई, जहाँ काँग्रेस एवं गणतंत्र परिषद् ने सत्ता संभाली।

1967 के आम चुनावों में कांग्रेस को केन्द्र में लोकसभा में पहले की तुलना में कम सीटें मिल पाईं तथा कई राज्यों में पराजय का भी सामना करना पड़ा। यद्यपि केन्द्र में कांग्रेस की ही सत्ता कायम रही परन्तु कुछ राज्यों में गैर-कांग्रेसी साझा सरकारें बन गई। केन्द्र में सत्तासीन होने के कारण कांग्रेस आमतौर पर गैर-कांग्रेसी सरकारों को अपदस्थ करती रही। केवल तमिलनाडु में ही गैर-कांग्रेसी सरकार राजनीतिक रूप से सक्रिय एवं स्थायी रही।

1971-72 के चुनाव जीतने के उपरान्त तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने एक नई राजनीतिक प्रक्रिया प्रारम्भ की जिसके अन्तर्गत एक शक्तिशाली केन्द्र की पुर्नस्थापना की गई। केन्द्र द्वारा राज्यों में हस्तक्षेप की नीति अपनाने के फलस्वरूप संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं का महत्व कम होने लगा। 1975 में घोषित आपात स्थिति का संघीय स्वरूप पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस अवधि के दौरान केन्द्रीय सरकार इतनी शक्तिशाली बन गई कि इंदिरा गांधी ने अपने दल के भीतर और बाहर विरोधियों का सफाया ही नहीं किया बल्कि जिन राज्यों में राजकीय सरकारों ने अपनी स्थिति को मजबूत किया था, उन्हें अपदस्थ कर दिया। संविधान में 38वाँ एवमं 42वाँ संशोधन ऐसे समय किया गया था जिसके कारण संघीय स्वरूप पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा।

1977 में सम्पन्न चुनावों में राजनीतिक शक्तियों के नवीन समीकरण से जनता पार्टी का जन्म व कांग्रेस का फिर विभाजन हुआ। केन्द्र व राज्यों में एकदलीय प्रभुत्व का अकस्मात अंत हो गया परन्तु केन्द्र की सोच में अधिक अंतर नहीं आया। इसका कारण यह था कि मौखिक रूप से जनता पार्टी के नेता विकेन्द्रीकरण के समर्थक थे परन्तु व्यावहारिक रूप में नहीं। 1980 में इंदिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस पुनः केन्द्र में सत्तारूढ़ हुई। 1984 में श्रीमती इंदिरा गांधी के देहावसानोपरान्त राजीव गांधी सत्ता में आए। 1987 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने जिला मजिस्ट्रेटों का सम्मेलन बुलाया जिसमें किसी मुख्यमंत्री अथवा अन्य मंत्रियों को शामिल नहीं किया गया।

उनके अतिरिक्त पंचायती राज्य को मजबूत करने, स्थानीय निकाय चुनाव करवाने और विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी निरन्तर उद्घोषणाएं की गई। 1989 में वी.पी. सिंह की अध्यक्षता में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने अपने कार्यक्रम में विकेन्द्रीकरण एवं राज्यों की स्वायत्तता के प्रति निष्ठा प्रकट की। निःसंदेह अन्तर्राज्यीय परिषद का गठन किया गया और राष्ट्रीय विकास परिषद् का विस्तार किया गया मगर राज्यपालों की नियुक्ति तथा भूमिका के सम्बन्ध में, जो संघीय भावना को ठेस पहुँचाने वाला मुद्दा था, चुप्पी साधी गई।

1991 में प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव की अध्यक्षता में कांग्रेस सरकार ने अन्तर्राज्यीय परिषद् को जारी तो रखा परन्तु यह विशेष सक्रिय नहीं रही। राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करना, राज्यपालों का पद का दुरुपयोग और राष्ट्रपति शासन लागू करना सामान्य क्रियाएं रही। 1996 में किसी भी पार्टी को लोकसभा में बहुमत न मिलने के कारण संयुक्त मोर्चा की सरकार बनाई गई। इस अवधि के दौरान संघीय पद्धति एक नए चरण में प्रवेश किया जिसे विशेषज्ञों ने सौदेबाजी वाला संघवाद अथवा Bargaining Federalism की संज्ञा दी।

1996 से पूर्व केन्द्र की जो स्थिति थी, उत्तरोत्तर काल की परिवर्तित परिस्थितियों में वह अब नहीं रही थी। क्षेत्रीय दलों की केन्द्र में साझा सरकार में भागीदारी के परिणामस्वरूप किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन, राज्यपालों की मनमाने ढंग से नियुक्ति करना, वित्तीय सहायता राज्यों को न देना इत्यादि केन्द्रीय सरकार की शक्तियों में ह्रास आया। 1998 में भाजपा के नेतृत्व में एन.डी.ए. की सरकार केन्द्र में सत्ता में आई। इस सरकार ने राजभाषा की वास्तविक स्थिति के आंकलन के लिए एक समिति का गठन किया, मगर कार्यरूप में कुछ न हो सका क्योंकि सरकार एक वर्ष एक माह की अल्पावधि में ही गिर गई।

1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनावों में भाजपा के नेतृत्व में एन.डी.ए. पुनः सत्ता में आई। इनमें घटक दलों की संख्या 18 थी, बिहार में कुछ कारणों की वजह से राष्ट्रपति शासन लगाया गया जो कालान्तर में राज्यसभा में बिल पास न होने के कारण हटाना पड़ा। एन.डी.ए. सरकार ने भारतीय संविधान की समीक्षा हेतु एन.एम.

वेंकटचेलैय्या आयोग का गठन (22 फरवरी 2000) के नेतृत्व में किया तथा आयोग ने अपनी रिपोर्ट 31 मार्च 2002 को सरकार को सौंप दी। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में 249 सिफारिशें की जिनमें प्रमुख थीं- चुनाव अधिनियमों में परिवर्तन, बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के परिवेश में नए मौलिक अधिकार, विकेन्द्रीकरण, केन्द्र राज्य सम्बन्ध सामाजिक-आर्थिक सुधार प्रक्रिया में गत्यात्मकता जारी रखना इत्यादि। कांग्रेस एवं इसके सहयोगी दलों ने इस आयोग की सिफारिशों को लागू करने का विरोध किया। 2004 के चुनावोपरान्त यू.पी.ए. साझा सरकार सत्ता में आई तथा आयोग की रिपोर्ट अभिलेखागार का हिस्सा बन गई।

यू.पी.ए.–1 (2004–2009) की सरकार 14 घटक दलों की साझा सरकार थी जिसमें अधिकांश घटक दल राज्य-आधारित अथवा क्षेत्रीय दल थे। वामपंथी दल इस सरकार को बाहर से समर्थन दे रहे थे। अतः यह स्वाभाविक था कि राज्यों के हितों को वरीयता दी जाए। जुलाई 2008 में भारत-अमेरिका परमाणु समझौते के प्रश्न पर जब वामपंथी दलों ने यू.पी.ए. सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया तो पश्चिमी बंगाल सरकार ने, जहाँ वामपंथी दलों की सरकार सत्ता में थी, केन्द्र द्वारा राज्य के प्रति किसी प्रकार के भेदभाव की शिकायत नहीं की। यू.पी.ए. द्वारा 2004 में जारी किए गए कॉमन मिनीमम प्रोग्राम अथवा सी.एम.पी. में सामयिक क्षेत्रीय असमानताओं एवं केन्द्र-राज्यों के सम्बन्धों का विशेष उल्लेख किया गया।

कॉमन मिनिमम प्रोग्राम में क्षेत्रीय असमानताओं तथा विभिन्न राज्यों में तथा राज्यों की आन्तरिक असमानताओं को दूर करने की यू.पी.ए.–1 सरकार की कटिबद्धता दोहराई गई। इसके अतिरिक्त पूर्वी एवं उत्तर-पूर्वी राज्यों में औद्योगीकरण की गति बढ़ाना, राज्यों के ऋण-बोझ को कम करना, पिछड़े एवं गरीब राज्यों की सामाजिक-आर्थिक प्रगति पर विशेष ध्यान देना, राज्यों में सामाजिक एवं भौतिक अधोसंरचना का विकास, उत्तर-पूर्वी राज्यों, बिहार, जम्मू-कश्मीर तथा अन्य राज्यों के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु पूर्व केन्द्रीय सरकारों द्वारा किए गये वायदों को शीघ्रातिशीघ्र लागू करना इत्यादि का उल्लेख भी कॉमन मिनिमम प्रोग्राम में किया गया।

यहाँ यह उल्लेख करना तर्कसंगत होगा कि यू.पी.ए. (2004-2009) सरकार ने अपने कार्यकाल के दौरान सी.एम.पी. में दर्शाये गए अधिकांश वायदों को पूरा करने के प्रयत्न किए तथा राज्यों द्वारा केन्द्र के विरूद्ध किसी भेदभाव का कोई विशेष उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं हुआ। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि साझा सरकारों ने संघात्मक प्रक्रिया को गत्यात्मकता प्रदान की है।

संदर्भ

1. एन.सी. साहनी (सम्पादित) कोलिशन पालिटिक्स इन इंडिया, न्यू एकेडमिक पब्लिकेशन्स, जालन्धर, 1971, पृ. 24।

2. एच. भट्टाचार्य, इंडिया एज ए मल्टीकल्चरल फेडरेशन : एशियन वैल्यूज, डेमोक्रेसी एण्ड डिसेन्ट्रलाइजेशन, फ्रीबोर्गः इनस्टीच्यूज आफ फेडरेलिज्म, 2001, पृ. 1-53.

3. सी. रंगाराजन एवं डी.के. श्रीवास्तव, फेडरेलिज्म एण्ड फिसकल ट्रानसफर्स इन इंडिया, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2011।

4. एम. गोविन्द राव एवं निरविकार सिंह, दी पॉलिटिकल इकानमी ऑफ फेडरेलिज्म इन इंडिया, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 2005।

5. डॉ. जयप्रकाश नारायण, ''फेडरेजिज्म एण्ड कोलिशन गर्वनमेंटस्, दी इंडियन एक्सपीरियेन्स'', लोकसत्ता (हैदराबाद), 18 नवम्बर 1997.

6. इ. श्रीधरण, : कोलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया, ड्यूरेशन, थ्योरी एण्ड कमपैरिजन'', ISAS Working Paper, संख्या 50, सिंगापुर, 23 सितम्बर 2008, www.isas.hus.edesc.sg.pdf

संदर्भ सूची

[1]के. सी. वियर, फेडरेल गवर्नमेंट, पृ. 28.

[2]टाइवर जेनिंग्स, सम करेक्टरी ऑफ दी इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन, पृ. 1।

[3]के. वी. राव, पार्लियामेण्टरी डेमोक्रेसी इन इंडिया, पृ. 328।

[4]एच. भट्टाचार्य, इंडिया इन ए मल्टीकल्चरल फेडरेशन : एशियन वैल्यूज पृ. 1-53।

[5]मौरिस जोन्स, दी गवर्नमेन्ट एण्ड पौलिटिक्स ऑफ इंडिया, पृ. 132।

[6]वही, पृ. 121।

[7]आर.एल. वाट्स, न्यू फेडरेशन्स् ऐक्सपेरिमेन्ट्स इन दी कॉमन वेल्थ, साथ में देखें, एल. रुडोल्फ एण्ड एस. रुडोल्फ परसूट ऑफ लक्ष्मी : दी पोलिटिकल इकोनोमी ऑफ दी इंडियन स्टेट, पृ. 252।

[8]ग्रेनविल ऑस्टिन, दी इंडियन कॉन्स्टीट्यूशन : कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन, पृ. 186-187।

[9]आर. एल. वाट्स, न्यू फेडरेशन्स् ऐक्सपैरिमेन्टस् इन दी कॉमन वैल्थ, साथ में देखे, एल. रुडोल्फ एण्ड एस. रुडोल्फ, इन परसूट ऑफ लक्ष्मी, दी पोलिटिकल इकॉनोमी ऑफ दी इंडियन स्टेट, पृ. 356।

[10]के. आर. बोम्बवाल, दी फाउण्डेशन्स ऑफ इंडियन फेडरेलिज्म, पृ. 110।

[11]के. एम. कुरियन एवं पी.एन. वर्गीज (संपा.), सेन्टर-स्टेट रिलेशनस् इन इंडिया, पृ. 204-214।

[12]एल. रुडोल्फ एण्ड एस. रुडोल्फ, ''रीडूयिंग दी कॉन्स्टीट्यूशनल डिजाइन : फ्राम एन इन्टरवेन्शनिस्ट स्टेट टू ए रेगुलेटरी स्टेट इन इंडिया,'' में देखें, अतुल कोहली (संपा.) दी सक्सेस ऑफ इंडियाज डेमोक्रेसी, पृ. 129।

पुस्तक समीक्षा

राजेश वर्मा, उत्तर-पूर्व भारत का इतिहास, मित्तल पब्लिकेशन, 459-9 दरिया गंज, नई दिल्ली, पृष्ठ-248, मूल्य : 800/- रुपये

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र बांग्लादेश, भूटान, चीन, म्यांमार और तिब्बत-पाँच देशों की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित है। असम, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम–इन आठ राज्यों से बना समूह पूर्वोत्तर क्षेत्र भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में लगभग 400 समुदायों के लोग रहते हैं और लगभग 220 भाषाएँ बोलते हैं। संस्कृति, भाषा, परंपरा, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, वेश-भूषा आदि की दृष्टि से यह क्षेत्र इतना वैविध्यपूर्ण है कि इस क्षेत्र को भारत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा लेकिन दुर्भाग्यवश पूर्वोत्तर के इतिहास और सामाजिक जीवन से हिंदी का जनमानस अपरिचित है। इसका प्रमुख कारण हिंदी में पूर्वोत्तर क्षेत्र के इतिहास, समाज, साहित्य, संस्कृति और लोकजीवन पर आधारित प्रामाणिक पुस्तकों का अभाव है। श्री राजेश वर्मा ने अपनी पुस्तक "उत्तर-पूर्व भारत का इतिहास" के द्वारा इस अभाव को दूर किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक में रेखांकित किया है कि पूर्वोत्तर में 1824-1826 के प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्ध से आधुनिक इतिहास का प्रारंभ हुआ। पुस्तक में अहोम काल की कुछ प्रमुख घटनाओं एवं उसके उत्थान–पतन का विवरण दिया गया है। गदाधर सिन्हा की मृत्यु के बाद उनका पुत्र रूद्र सिन्हा 1696 में अहोम राजा बना। उसने अहोम साम्राज्य की शक्ति को चरम पर पहुंचा दिया लेकिन 1769 में सिंहासन पर बैठनेवाला उसका पुत्र लक्ष्मी सिन्हा एक कमजोर और मंत्रियों के वशीभूत रहनेवाला अदूरदर्शी राजा था। उसने अहोम राजवंश की प्रतिष्ठा मिटटी में मिला दी। अगला अहोम राजा गौरीनाथ सिन्हा (1780-1795) अहोम राजाओं में सबसे अक्षम, चरित्रहीन, दुष्ट और कायर था। उसने अहोम साम्राज्य के पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। पुस्तक में असम एवं अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन के प्रारंभ होने की प्रक्रिया की विवेचना की गई है। ब्रिटिश सरकार की सीमांत नीतियों, उत्तर-पूर्व में राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता आन्दोलन में उत्तर-पूर्व की भागीदारी एवं स्वतंत्रता के बाद होनेवाले परिवर्तनों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरूद्ध भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से पूर्वोत्तर क्षेत्र भी अछूता नहीं था। इतिहासकार ने अपनी पुस्तक में 1829 के खासी विद्रोह, 1839 के खाम्ती विद्रोह, 1843 के सिंहफो विद्रोह, 1857 के विद्रोह, कृषक विद्रोह, असहयोग आन्दोलन, सविनेय अवज्ञा आन्दोलन (1930–1934) आदि पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी आहुति देनेवाले

सेनानियों का गौरव गान किया है। श्री वर्मा ने पुस्तक के अंतिम अध्याय में स्वतंत्रता के बाद उत्तर-पूर्वी राज्यों के पुनर्गठन की विवेचना की है। अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा राज्यों के गठन एवं सिक्किम के भारत में विलय संबंधी ऐतिहासिक तथ्यों के साथ दृसाथ पूर्वोत्तर में आए बदलावों का भी विवेचन किया गया है। पुस्तक को आठ खंडों में विभक्त किया गया है। 1.प्रस्तावना 2.अहोम वंश का शासन काल-उत्थान एवं पतन 3.उत्तर-पूर्व में यूरोपियनों का आगमन 4.प्रथम आंग्ल-बर्मी युद्ध 5.उत्तर-पूर्वी राज्यों का अधिग्रहण एवं प्रशासन 6.उत्तर-पूर्व ब्रिटिश सीमांत नीति 7.उत्तर-पूर्व में स्वतंत्रता संग्राम 8.उत्तर-पूर्व : स्वतंत्रता के पश्चात। यह पुस्तक छात्रों, अध्यापकों, शोधकर्ताओं और पूर्वोत्तर भारत में रुचि रखनेवाले सामान्य पाठकों के लिए अत्यंत उपादेय है। इतना विस्तृत, अनुसंधानपरक और प्रामाणिक इतिहास लेखन के लिए श्री वर्मा वास्तव में साधुवाद के अधिकारी हैं।

ohjUnz ijekj

गठबंधन की सरकार एंव प्रशासन : ग्रन्थ सूची

मीना मिश्रा

- कमलेश्वर. (2015). कितने पाकिस्तान. दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स. 361 पृ.
- परुथि, आर के. (2016). आधुनिक भारत (1919, 1939) राष्ट्रीयवादी साहित्य एवम क्रांतिकारी आदोंलन. दिल्लीः अर्जुन प्रकाशन. 384 पृ.
- यादव, कृष्ण कांत. (2015). आधुनिक भारत का संवैधानिक विकास (1773, 1858). नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 143 पृ.
- चन्द्रा, बिपिन. (2011). आधुनिक भारत में विचारघारा और राजनीति. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 292 पृ.
- रूगंता, सुरेश. (2012). बीते दशक की देश दशा एंव वर्तमान चुनौतियाँ. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 245 पृ.
- कुमार, मुकेश. (2010). लोकतंत्र मिथक और यथार्थ. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 240 पृ.
- मोहन, अरविंद. (2009). लोकतंत्र का नया लोक. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 827 पृ.
- सिंह, राजवीर और मोहन, अजय. (2014). राजनीतिक अपराधीकरण और भ्रष्टाचार के सांये में नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 282 पृ.
- सिंह, के.पी. पृ. (2008). राजनीतिक विचारधाराएँ. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 408पृ.
- शर्मा, एच. सी. (2007). राष्ट्रवाद और राष्ट्र निर्माण सिद्वांत एंव प्रकिया. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 303 पृ.
- कुमार, पुनीत. (2019). भारतीय लोकतंत्रः चुनौतियाँ एंव सभांवना. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 144 पृ.

- आर्य, राकेश कुमार (2018). भारत की राजनीति और लोकतंत्र. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 206 पृ.
- भदहुदी, अमित. (2011). भारत में लोकतंत्र. नई दिल्लीः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. 107 पृ.
- कुमार, सजंय. (2019). बिहार की चुनावी राजनीतिः जाति वर्ग का समीकरण. नई दिल्लीः फोरवर्ड प्रेस.
- भारत सरकार. (2019). सबका साथ सबका विकास, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी स्पीक (2015-2016). नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग.
- जहा, धीरेंद्र के. (2017). हिदुंत्व के मोहरेः परदे के पीछे से भाजपा की मदद करने वाले सगठंन. नई दिल्लीः जुगरनोट बुक्स. 256 पृ.
- जहा, प्रशांत. (2017). कैसे जीती हैं भाजपाः भारत की सबसे सशक्त चुनावी मशीन पर एक नजर. नई दिल्लीः जुगरनोट बुक्स. 224 पृ.
- पुनीयानी, राम. (2016). धर्म, सत्ता और हिंसा. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. 288 पृ.
- मुश्रीफ, एस.एम. (2016). आर.एस.एस.– देश का सबसे बड़ा आतंकवादी सगंठन. नई दिल्लीः फेरोस मीडिया. 48 पृ.
- पुनीयानी, राम और शर्मा, शरद (2011). सम्प्रदायिकता. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन. 232 पृ.
- अम्बेडकर. भीमराव. (2018). जाति का विनाश. नई दिल्लीः मार्जनलाइड प्रकाशन. 184 पृ.
- सधंवी, वीर. (2015). जनादेशः जनता का आदेश. नई दिल्लीः वेस्टलेंड बुक्स. 148 पृ.
- रविकांत (2018). आज के आइने में राष्ट्रवाद. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. 192 पृ.
- ड्रीज, जीन और सेन, अमृता (2018). भारत और उसके विरोधाभास. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन. 400 पृ.
- थरुर, शशि. (2018). मैं हिन्दू क्यों हूँ. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन. 234 पृ.
- राय, राम बहादुर. (2019). राजनीति की लोक सस्ंकृति. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 328पृ.
- प्रकाश, ए. (2019). सूर्य. कॉंग्रेंस का फासीवाद. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 56 पृ.

- गुप्ता, शिशिर. (2018). इडिंयन मुज्जहुद्दीन एवम भीतरी शत्रु. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 232 पृ.
- आडवानी, लाल कृष्ण. (2016). नजरबंद लोकतंत्र. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 300 पृ.
- साहासराबुदे, विनय. (2019). विकास की राजनीति. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 160 पृ.
- त्रिपाठी, हर्षवर्धन और द्विवेदी. (2019). नए भारत की और. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 168 पृ.
- शास्त्री, विजय सोकांर. (2019). दलित-मुस्लिम राजनीतिक गठजोड़. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 256 पृ.
- जहा, प्रभात. (2018). समाधान की और. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 272 पृ.
- पांडेय, श्रद्धा (2018). वाद-विवाद एवम सम्भाषण. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 176 पृ.
- सिंह, राम लोचन (2018). भारतीय राजसत्ताः कितनी संवैधानिक. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 500 पृ.
- अय्यर, शंकर. (2017). उन्नत भारत. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 320 पृ.
- मोहन, अरविंद. (2017). लोकतंत्र की माया. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 500 पृ.
- कलाम, ए. पी. जे. अब्दुल (2018). मेरा भारत. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 200 पृ.
- शौरी अरूण. (2016). संसदीय प्रणाली. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 304 पृ.
- स्वरूप, देवेन्द्र (2018). अखण्ड भारतः स्वपन और यथार्थ. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 216 पृ.
- अकबर, एम.जे. (2016). देश, समाज और राजनीति का आयना. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 280 पृ.
- सरदेसायी, राजदीप. (2015). 2014 चुनाव जिसने भारत को बदल दिया. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 412 पृ.
- श्रीनिवास, एम. एन. (2016). आधुनिक भारत में जाति. राजकमल प्रकाशन. नई दिल्लीः 179 पृ.
- देव, रजंना. (2016). अभिव्यक्ति, असहिष्णुता और भारत असहिष्णुता का भ्रम एक साजिश. साहित्य सदन. नई दिल्लीः 123 पृ.

- जैन, श्रीपाल. (2018). केजरीवाल की सियासत. नई दिल्लीः मंजुल. 160 पृ.
- त्रिवेदी, विजयी. (2019). बी.जे.पी. कल, आज और कल. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन. 216 पृ.
- सहगल, प्रिया. (2019). देवेदर. साइमन और सकसटर इंडिया. नई दिल्लीः मार्जनलाइड प्रकाशन. 272 पृ.
- ओमवेद, गेल. (2015). दलित और प्रजातांत्रिक क्रांतिः उपनिवेशीय भारत में दो अम्बेडकर एवम दलित आदोंलन. नई दिल्लीः वेस्टलेंड बुक्स. 343 पृ.
- कोटलर, फिलिप. (2017). लोकतंन्त्र का पतनः इसके भविष्य का पुनर्निर्माण. नई दिल्लीः सेज प्रकाशन. 184 पृ.
- शर्मा, रूचिर. (2019). लोकतंत्र वाय सदक मार्गः भारत की 25 साल की चुनावी यात्राओं का निचोड़ नई दिल्लीः पेनगुइन. 304 पृ.

Books

- Adeney, Katharine. (2005). *Coalition politics and Hindu nationalism*. New York: Routledge. 312pp.
- Ansari, M. Hamid. (2016). *Citizen and society.* New Delhi: Rupa Publications. 336pp.
- Baru, Sanjay. (2016). *The accidental Prime Minister: the making and unmaking of Manmohan Singh* New Delhi*:* Penguin 320pp.
- Bhambhri, C.P. (2010). *Coalition politics in India: first decade of 21st century*. New Delhi: Shipra Publication. 188pp.
- Bruce, Bueno de Mesquita. (1975). *Strategy, risk and personality in coalition politics: the case of India*. Cambridge: Cambridge University Press. 198pp.
- Chakrabarty, Bidyut. (2006). *Forging power: coalition politics in India*. New Delhi: Oxford University Press. 280pp.
- Chakrabarty, Bidyut and Kandpal, Prakash Chand. (2012). *Public administration in a globalizing world: theory and practices.* New Delhi: Sage. 588pp.
- Chalam, K.S. (2014). *Governance in South Asia: state of the civil services*. New Delhi: Sage. 312p.
- Chander, N. Jose. (2004). *Coalition politics: the Indian experience*. New Delhi: Concept. 273pp.
- Chatterjee, Partha and Katznelson, Ira. (2012). *Anxieties of democracy: Tocquevillean reflections on India and the United States.* London: Oxford University Press. 348pp.
- Chauhan, Rajinder Singh and Vasudeva, S. (2011). *Coalition government in India: problems and prospects*. New Delhi: Deep and Deep Publications. 332pp.
- Das, Samir Kumar. (2015). *India: democracy and violence*. London: Oxford University Press. 268pp.
- Dittmar, Kelly. Sanbonmatsu, Kira and Carroll, Susan J. (2016). *A seat at the table: Congresswomen's perspectives on why their presence matters*. Oxford University Press. 272pp.

- Holbrook, Thomas M. (2016). *Altered states: changing populations, changing parties, and the transformation of the American political landscape*. Oxford University Press. 240pp.
- Islam, Maidul. (2019). *Indian Muslim(s) after liberalization*. London: Oxford University Press. 336pp.
- Kailash, K.K. (2003). *Coalitions in a parliamentary federal system: parties and governments in India 1989-1999*. New Delhi: Jawaharlal Nehru University. 421pp.
- Kapur, Devesh and Vaishnav, Milan. (2018). *Costs of democracy: political finance in India*. London: Oxford University Press. 326pp.
- Karunakaran, Kotta P, (Ed.). (1975). *Coalition governments in India: problems and prospects.* Simla: Indian Institute of Advanced Study. 457pp.
- Kashyap, Subhash C. (Ed.). (1997). *Coalition government and politics in India*. New Delhi: Uppal Publishing House. 146pp.
- Kashyap, Subhash C. (2011). *Our political system: India – the land and the people series*. New Delhi: National Book Trust. 420pp.
- Katz, Richard S. and Crotty, William (eds.), (2006). *Handbook of Party Politics*. London: Sage. 52pp.
- Khajooria, M.M. (2010). *Good governance and coalition politics: PDP-Congress in Jammu and Kashmir*. Kalpaz Publication. 189pp.
- Kohli, Atul. (1990). *Democracy and discontent: India's growing crisis of governability*. Cambridge: Cambridge University Press. 297pp.
- Koreth, George and Wadgera, Kiron. (2013). Building a citizen's partnership in democratic governance. New Delhi: Sage. 372pp.
- Kumar, Arun. (1998). *On coalition course.* New Delhi: Press Trust of India and Gyan Pub. House. 345pp.
- Kumar, Sunil. (2004). *Parties and coalition politics: a comparative study*. New Delhi: Uppal Publishing. 231pp.
- Lijphart, Arend. (2012). *Electoral systems and party systems: a study of twenty-seven democracies, 1945-1990.* Oxford University Press. 323pp.
- Macnamara, Michael Fenwick. (2015). *A Governors' raj: British administration during Lord Irwin's Viceroyalty, 1926-1931*. New Delhi: Sage. 278pp.
- Mahendra, Prakash. (2013). *Coalition government and reforms*. Brussels: Lambert Academic Publishing. 388pp.
- Majeed, Akhtar. (Ed.). (2000). *Coalition politics and power sharing*. New Delhi: Manak Publishers. 197pp.
- March, James G and Johan P Olsen. (1989). *Rediscovering institutions: the organisational basis of politics.* New York: Free Press. 311pp.
- March, James G. (Ed.). (1999). *The pursuit of organisational intelligence*. Blackwell: Malden, Massachusetts. 211pp.

- Moury,Catherine. (2014). *Coalition government and party mandate: how coalition agreements constrain ministerial action*. Russel: Routledge. 176pp.
- Muhammad, Zulqarnain Zulfi. (2015). *Effects and implications of coalition governments on Indian politics*. New Delhi: Scholars Press. 207pp.
- Mukherjee, Pranab. (2017). *The coalition years*. New Delhi: Rupa Publications India. 353p.
- Muller, Wolfgang C. and Strom, Kaare. (2003). *Coalition governments in Western Europe.* London: Oxford University Press. 618pp.
- Naqvi, Saba. (2019). *Politics of jugaad*. New Dehi: Rupa Publications India. 148pp.
- Neisser, Ulric. (2003) 'Cognitive Psychology' in Margaret P. Munger. (Ed.). *The History of Psychology: Fundamental Questions.* New York: Oxford University Press. 195pp.
- Neumann, Sigmund (Ed.). (1965). *Modern political parties: approaches to comparative politics*. Chicago: University of Chicago Press. 395pp.
- Pai, Sudha and Kumar, Sajjan. (2018). *Everyday communalism: riots in contemporary Uttar Pradesh*. London: Oxford University Press. 364pp.
- Pakem, B. (1999). *Coalition politics in North-East India*. New Delhi: Regency Publications North-Eastern Regional Centre,v.p.
- Panda, Smita Mishra. (Ed). (2008). *Engendering governance institutions: state, market and civil society*. New Delhi: Sage. 372pp.
- Pandey, Jawaharlal. (1982). *State politics in India: a study in coalition politics in an Indian State*. New Delhi: Uppal. 302pp.
- Peters, Guy B. (1999). *Institutional theory in political science: the new institutionalism*. London: Pinter. 195pp.
- Ram D. (2007). Suner. *Coalition politics in India*. New Delhi: National Publishing House. 402p.
- Ram, D.S. (2007). *Federal system and coalition government in India: conflict and consensus in centre-state relations*. New Delhi: Kanishka Publishers. 342pp.
- Ratna, Anurag. (2015). *Coalition politics: a new turn to constitutional development of India*. New Delhi: Uppal. 348pp.
- Riker, William. (1962). *The theory of political coalitions*. New Haven: Yale University Press. 198pp.
- Roy, Ramashray and Wallace, Paul, eds. (2007). *India's 2004 elections: grassroots and national perspectives*. New Delhi: Sage. 236pp.
- Ruparelia, Sanjay. (2015). *Divided we govern: coalition politics in modern India*. London: C. Hurst & Co. 288pp.
- Sen, Tansen. (2016). *India, China and the world: a connected history*. New Delhi: Oxford University Press, 560pp.

- Shankar, B.L. (2014). *The Indian parliament: a democracy at work*. London: Oxford University Press. 428pp.
- Shukla, Vimla. (1989). *Indian political system and prime minister*. New Delhi: Anmol. 432p.
- Singh, Amita. (Ed.). (2005). *Administrative reforms: towards sustainable practices*. New Delhi: Centre for Law and Governance, Jawaharlal Nehru University. 320pp.
- Singh, Hoshiar. Mathur, P.C. and Singh, Pankaj. (Eds.). (2007). *Coalition governments and good governance*. Jaipur: Aalekh Publishers. 225pp.
- Singh, M.P. and Anil Mishra. (Ed.). (2004): *Coalition politics in India: problems and prospects*. New Delhi: Manohar. 345pp.
- Singh, Mahendra Prasad and Mishra, Anil. (2004). *Coalition politics in India: problems and prospects*. Manohar. 338pp.
- Singh, Zorawar Daulet. (2018). *Power and diplomacy: India's foreign policies during the cold war.* London: Oxford University Press. 416pp.
- Sinha, Sachchidanand. (1987). *Coalition in politics: the new challenge*. Muzaffarpur: Moral Prakashan. 97pp.
- Sridharan, E. (1997). *Coalition politics in India: lessons from theory, comparison and recent*. New Delhi: CPR. 24p.
- Sridharan, E. (1999). Principles, Power and Coalition Politics in India: Lessons from Theory Comparison and Recent History in D D Khanna and Gert W Kuec. (Eds), *Principles, Power and Politics*, Macmillan, New Delhi, p 270.
- Sridharan, E. (2012). *Coalition politics and democratic consolidation in Asia*. London: Oxford University Press. 304pp.
- Sridharan, E. (Ed.). (2014). *Coalition politics in India: selected issues at the centre and the states*. New Delhi: Academic Foundation. 463pp.
- Suri, K.C., Yadav, Yogendra and Palshikar, Suhas. (2014). *Party competition in Indian states: electoral politics in post-congress polity*. London: Oxford University Press. 592pp.
- Swach, J.R. (1976). *Indian government and politics*. New Delhi: Sterling Publishers. 256pp.
- Tayal, B.B. (2011). *Democracy and governance in India*. New Delhi: Sultan Chand and Sons. 300pp.
- Tillin, Louise. (2019). *Indian federalism*. London: Oxford University Press. 186pp.
- Venkateshwaran, R.J. (1973). *Cabinet government of India*. London: George Allen and Unwin Ltd. 234pp.
- Wheare, K.C. (1963). *Federal government*. London: Oxford University Press. 278pp.

Articles

- Ahmed, Farzand. (2004). Leaders: who, me?- who, me- Indian's election. *The Economist*, 371(8376). p.10.
- Anderson, Christopher J. (1995). The dynamics of public support for coalition government. *Comparative Political Studies*, 28(3), p.350-383.
- Andersen, W. (1990). Election 1989 in India: the dawn of coalition of politics? *Asian Survey*, 30(6). p.532.
- Arora, Balveer. (2001). Coalition, reforms and the new federal polity. *Social Action*, 51(3), p.283-302.
- Baren, Ray. (1997). Running a UF coalition government. *Mainstream*, 35(21), p.8
- Bhalla, Surjit S. (1998). The welcome era of coalition politics. *Seminar,* p.465, 15.
- Biezen, Ingrid van and Saward, Michael. (2008). Democratic Theorists and Party Scholars: Why They Don't Talk to Each Other, and Why They Should. *Perspectives on Politics*, 6, p.21-35.
- Chakravartty, Nikhil. (1997). Future of coalition politics. *Mainstream*, 35(19), p.20-21.
- Dalton, Russell J. and Weldon, Steven. (2005). Is the Party Over? Spreading Antipathy Toward Political Parties. *Public Opinion Pros*.
- David, Stephen. (2006). Down and out: the JMM Supremo's conviction has rocked the UPA boat at the centre and in Jharkhand. India Today, 11 Dec, p.22.
- Duncan, I. (1997). New political equations in North India – Mayawati, Mulayam and Government instability in Uttar Pradesh. *Asian Survey*, 37(10), p.988.
- Grofman, Bernard (1982). A dynamic model of protocoalition formation in ideological n-space. *Behavioural Science*, 27, p.77-90.
- Franklin, M.N. and Mackie, T.T. (1984). Reassessing the importance of

size and ideology in the formation of governing coalitions in parliamentary democracies. *American Journal of Political Science*, 28(4), p.692.

- Herrera, Richard. (1999). The origins of opinion of American party activists. *Party Politics*, 5, p.237-252.
- Hicken, Allen. (2006). Stuck in the mud: parties and party systems in democratic Southeast Asia. *Taiwan Journal of Democracy*, 2 , p.23-46.
- John, P. John. Coalition governments with special reference to Kerala. *Journal of State Politics and Administration,* 6 &7 (11 &12), p.42-55.
- Karp, Jonathan. (2006). His father's son: Karnataka first shot at coalition politics fails as Deve Gowda's son walks out on the Congress- JD (S) government. Waiting in the wings is the BJP for its first taste of power in the South. *India Today*, 30 Jan, p.49.
- Kohli, Atul. (1996). Muddled mandate. Far Eastern Economic Review, 159(21), p.16.
- Kothari Rajni. (1964). The Congress system in India. *Asian Survey*, 4(12), p.1161-73.
- Kumar, Sanjay. (2009). The Fourth delimitation: an evaluation. Economic and Political Weekly, 44(3), p.41-46.
- Kumar, Sudhir. (2008). Constitutional position of coalition government in India, *Indian Journal of Political Science*, 69(3), p.531-545.
- Kuruvilla, C.P. (1998). Enduring another election. *Journal of Democracy*, 9(3), p.7-20.
- Laver, Michael. (1989). Party competition and party system change: the interaction of coalition bargaining and election competition. *Journal of Theoretical Politics*, 1(3), p.301-324.
- Malik, Dipak. (1997). Politics of coalition. *Mainstream*, 35(18), p.39.
- McDonald, Hamish. (1997). Comeback dreams. *Far Eastern Economic Review*, 160(3). p.22.
- Miraglotta, Narele. (2002). Poll driven government: a review of public administration in 2001, *Australian Journal of Public Administration*, 61(1), p.120-127.
- Misra, Amaresh. (1997). Beyond coalition politics. *Seminar,* p.454, 34.
- Narain, Iqbal and Sharma, Mohan Lal. (1971). Coalitional politics, nation-building and administration: from myths to realities, *Indian Journal of Public Administration*, 17(4): p.583-600.
- Nikolenyi, Csaba. (1993). India: revivalist retreat. *Far Eastern Economic Review,* 156(49), p.18.
- Pai, Sudha. (1998). Indian party system under transformation: Lok Sabha 1998. *Asian Survey*, 388(9), p.83-852.

- Palshikar, Suhas. (2009). Tentative emergence of a new and tentative coalition. *Economic and Political Weekly,* 23 May, p.8-10.
- Randall, Vicky and Svåsand, Lars. (2002). The Contribution of Parties to Democracy and Democratic Consolidation. *Democratization*, 9, p.1-10.
- Sanghavi, Nagindas and Thakkar, Usha. (2000). Regionalisation of Indian politics. *Economic and Political Weekly*, 12 Feb, p.514-518.
- Saxena, Rekha. (1998). Coalition experiment. *Mainstream*, 36(18), p.11.
- Schaffer, Teresita and Saigal-Arora. (1998). The new Indian party system: what kind of a model. *Party Politics,* 4(3), p.367-80.
- Seshia, Shaila. (1999). India: a fragmented democracy. *The Washington Quarterly*, 22(4), p.143-150.
- Sridharan, Eswaran. (1998). Divide and rule in Indian party politics: the rise of the Bhartiya Janata Party. *Asian Survey,* 38(11), p.1036-50.
- Sridharan, E. (2003). Coalitions and party strategies in India's parliamentary federation. *Publius*, 33(4), p.135-152.
- Sridharan, E. (2004). Electoral coalitions in 2004 general elections: theory and practice. *Economic and Political Weekly*, 39(51), p.5418-19.
- Sridharan, E. (2005). Coalition strategies and the BJP's expansion, 1989-2004. *Commonwealth and Comparative Politics*, 43(2), p.194-221.
- Stokes, S. C. (1999). Political parties and democracy. *Annual Review of Political Science*, 2, p. 243- 267.
- Swain, Ashok and Blomkvist, (2001). Hans. Investigating democracy and social capital in India. *Economic and Political Weekly*, 36(8). p.639-643.
- Wilkinson, Steven. (2003). Coalitions and party strategies in India's parliamentary federation. Publius, 33(4), p.135-52.
- Ziegfeld, Adam. (2012). Coalition government and party system change: explaining the rise of regional political parties in India. *Comparative Politics,* 45(1). p.69-87.
- Zutshi, Ravi K. (1990). Populism, programmes and administrative myopia. *Indian Journal of Public Administration*, 36(4), p.743-749.

THE INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

NON-ELECTED MEMBERS OF THE EXECUTIVE COUNCIL

President
M. VENKAIAH NAIDU
Vice-President of India

Chairman
T.N. CHATURVEDI
Former Governor of Karnataka

Vice President
SHEKHAR DUTT
(Former Governor of Chhattisgarh)

Co-opted Members

ARUN KUMAR GROVER
Vice-Chancellor
Panjab University,
Chandigarh-160014.

JOSEPH K. ALEXANDER
Chairman
IIPA Kerala Regional Branch,
T.C.14/2144, Medes Lane, Palayam,
Thiruvananthapuram-695034.

S.S. KSHATRIYA
Chairman
IIPA Maharashtra Regional Branch,
16th Floor, New Administrative Building,
Opp. Mantralaya, Hutatma Rajguru Chowk,
Madame Cama Road, Mumbai-400032.

N. LOKENDRA SINGH
Chairman
IIPA Manipur Regional Branch,
C/o Registrar,
Manipur University,
Canchipur,
Imphal-795003.

AJIT KUMAR TRIPATHI
Chairman
IIPA Odisha Regional Branch,

Secretaries to Government of India

AJAY MITTAL
Secretary
Department of Personnel & Training,
Ministry of Personnel,
Public Grievances & Pensions,
Govt. of India,
Room No.112,
North Block,
New Delhi-110001.

ASHOK LAVASA
Secretary
Department of Expenditure,
Ministry of Finance, Govt. of India,
Room No.128 C, North Block,
New Delhi-110001.

AMITABH KANT
Chief Executive Officer, NITI Aayog,
Govt. of India, NITI Bhavan,
Sansad Marg, New Delhi-110001.

IIPA Academic Staff

DOLLY ARORA
IIPA, New Delhi-110002.

K.K. PANDEY
IIPA, New Delhi-110002.

GIRISH KUMAR
IIPA,
New Delhi110002.

Director & Member-Secretary
SURENDRA NATH TRIPATHI
Indian Institute of Public Administration
I.P. Estate, Ring Road,
New Delhi-110002.

Telegram: ADMNIST

Telephone: 23702400-17

INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
NEW DELHI

INDIAN JOURNAL OF PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: published since January 1955)
Editor: MAHENDRA PRASAD SINGH

Yearly Subscription:
Individuals: (Inland) Rs. 425.00; (Abroad) $120 or £48;
Single Copy: (Inland) Rs. 120.00; (Abroad) $30 or £12;
Special Number: (Inland) Rs. 275.00; (Abroad) $80 or £36
Institution/Library: (Inland) Rs. 700.00; (Abroad) $240.00 or £96.00
Life Members of IIPA: Annual subscription: Rs. 300.00; Single Copy Rs. 75.00;
Special Number Rs. 200.00

IIPA NEWSLETTER

(Monthly recorder of national and international news of
public administration and allied matters since 1956)
Editor: SURENDRA NATH TRIPATHI

Yearly Subscription: India: Rs. 10.00; Abroad: $ 4.00 or £ 2.00

DOCUMENTATION IN PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: Published since 1973)
Editor: SURENDRA NATH TRIPATHI, Director, IIPA, New Delhi
Assistant Editor: SUNITA GULATI, Dy. Librarian, IIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 150.00; Abroad: $ 60.00 or £ 24.00

NAGARLOK

(Urban Affairs Quarterly: Published since 1969)
Editor: SURENDRA NATH TRIPATHI, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: V.N. ALOK, Associate Professor in Urban Finance (CUS),
lIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 200.00.

लोक प्रशासन (अर्ध-वार्षिक)

सम्पादकः एस.एन. मिश्र

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

Bank drafts/postal orders should be drawn only in favour of
"**Director, Indian Institute of Public Administration**"
Note: Subscribers are advised to secure safe delivery
through Registered Post @ Rs. 100.00 per periodical.
For complete information about IIPA publications write to:

THE EDITOR
INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
Indraprastha Estate, Ring Road, New Delhi-110 002 (India)

Edited by S.N. Mishra and printed and published by Snehlata for Indian Institute of Public Administration, New Delhi, Ph.: 23468368 and Printed at New United Process, A-26, Naraina Industrial Area, Phase-II, New Delhi-110 028.